ब्रिटिश राज के वित्तीय आधार

सैन्य विद्रोह के बाद भारतीय लोकवित्त के
पुर्ननिर्माण काल के प्रमुख चरित्र तथा विचार

सव्यसाची भट्टाचार्य

दि मैंकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड
नई दिल्ली बंबई कलकत्ता मद्रास
समस्त विश्व मे सहयोगी कंपनिया

अनुवाद : श्रीकान्त मिश्र

प्रथम हिंदी संस्करण : 1976

भारत सरकार से रियायती दर पर प्राप्त कागज
इस पुस्तक मे इस्तेमाल किया गया है।

मूल्य : 32.00

भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद द्वारा प्रवर्तित

एस० जी० वसानी द्वारा दि मैंकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड
के लिए प्रकाशित तथा प्रगति प्रिंटर्स, दिल्ली 110032 मे मुद्रित।

S. Bhattacharya : British Raj Ke Vittiya Adhar

माता-पिता को

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतम् प्रजासु।
यस्मान्न ऋते कि चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद की ओर से

भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद के अनेक उद्देश्यों में एक है शोध की उपलब्धियों को उस पाठक वर्ग तक पहुंचाना जो हमसे यह अपेक्षा रखता है कि हम भारतीय भाषाओं मे इतिहास संबंधी रचनाएं तैयार तथा प्रकाशित करें। अंग्रेजी भाषा के माध्यम से भारतीय इतिहासविद अतर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे पहुच सकते है, नाम और प्रतिष्ठा अर्जित कर सकते हैं, किंतु भारतीय पाठकवर्ग का यह छोटा अंश ही इससे लाभ उठा पाता है। शिक्षण और अनुसंधान के माध्यम के रूप में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के प्रयोग की प्रवृत्ति बल पकड़ रही है। ऐसी स्थिति मे इतिहास की स्तरीय पुस्तकों की कमी गंभीर रूप से अनुभव की जा रही है। सबसे पहले हमें भारतीय इतिहास की ओर ध्यान देना है। अतः भा० इ० अ० प० ने कुछ गौरव ग्रंथों (क्लासिक्स) तथा इतिहास विषयक शोध की निर्दोष पद्धतियों पर आधृत और इतिहास की समकालीन प्रवृत्तियों को प्रतिबिंबित करने वाली कुछ अन्य पुस्तकों का अनुवाद कराने का निश्चय किया है।

प्रस्तुत पुस्तक का विषय ब्रिटेन की वित्तीय नीति है, जिसमे 1857 की सैनिक क्राति के बाद महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। इसमे परिवर्तन की प्रक्रिया के प्रति उत्तरदायी व्यक्तियों और विचारधाराओ का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। विभिन्न हित समूहों, नीति निर्माताओ तथा प्रतिद्वंद्वी संगठनों का भी विवरण दिया गया है। ब्रिटेन की इस नीति के फलस्वरूप ब्रिटिश शासन के विरुद्ध भारतीय जनमत तैयार हुआ था। इस प्रकार इस पुस्तक से हमे वह पृष्ठभूमि प्राप्त होती है जो 12वी शताब्दी के सातवें दशक से प्रारंभ होने वाले आर्थिक राष्ट्रवाद को समझने के लिए आवश्यक है।

पुस्तक का प्रकाशन पटना यूनिट के प्रयासों का परिणाम है जिसके लिए अनुवादक श्रीकांत मिश्र, डा० नगेंद्रप्रसाद वर्मा तथा अन्य सभी सहयोगियों के प्रति हम धन्यवाद ज्ञापन करते हैं।

28 फरवरी 1976
नई दिल्ली

रामशरण शर्मा
अध्यक्ष
भारतीय इतिहास अनुसधान परिषद

आभार

मैं बहुत सारे व्यक्तियों के प्रति आभारी हूं। उनका स्मरण करते हुए मुझे हर्ष होता है। मेरे लिए कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रोफेसर ए० त्रिपाठी के प्रति पूरी तरह आभार प्रकट कर पाना कठिन है, जिन्होंने मेरे प्रथम शोध प्रयास का निर्देशन किया है। मैं डाक्टर एन० के० सिन्हा, भूतपूर्व आसुतोष प्रोफेसर, इतिहास विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय तथा प्रोफेसर नीहाररंजन रे, निदेशक, इंडियन इंस्टीट्यूट आफ एडवांस्ड स्टडी को, उनके द्वारा दिए गए परामर्श और प्रोत्साहन के लिए धन्यवाद देना चाहूंगा।

अपने गुरुजनों, सहयोगियों तथा विद्यार्थियो के प्रति बौद्धिक ऋणभार की आभारोक्ति केवल सामान्य रूप से ही की जा सकती है। मुझे विशेष रूप से प्रोफेसर एस० पी० सरकार का उल्लेख करना चाहिए जिन्होंने उस समय भी, जब मैं प्रेसीडेंसी कालेज कलकत्ता मे बी०ए० का ही छात्र था, मुझे सुनने की इच्छा उदारतापूर्वक दिखाई थी। दिल्ली विश्वविद्यालय के डा० विपनचन्द्र, इंडियन इंस्टीट्यूट आफ मैनेजमेंट, कलकत्ता के डा० वरुन डे तथा आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के डा० एस० गोपाल ने इस रचना से संबद्ध विषयों पर व्यक्तिगत और कभी-कभी सामूहिक रूप से विचार विमर्श करने का कष्ट उठाया है। इन सभी के प्रति और कलकत्ता, दिल्ली तथा आक्सफोर्ड के अन्य बहुत सारे व्यक्तियों के प्रति मैं बहुत कृतज्ञ हूं। परतु भूलो और त्रुटियों के लिए मैं अकेला ही उत्तरदायी हूं।

मैं इतिहास विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय तथा इंडियन इंस्टीट्यूट आफ एडवांस्ड स्टडी को, उनके द्वारा शोध कार्य और शोध प्रबंध के प्रकाशनार्थ दी गई सहायता के लिए; शिकागो विश्वविद्यालय की कमेटी आफ साउथ एशिया स्टडीज को प्रकाशन हेतु दी गई सहायता के लिए और उसी विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग को 1968-69 में प्रेरणादायी वातावरण (और अध्यापन कार्य से मुक्त एक सत्र) प्रदान करने के लिए; और डा० रेमण्ड कार तथा आक्सफोर्ड की प्रबंध समिति के सदस्यों को हैरिसन फैलोशिप के लिए मेरा चुनाव करने के निमित्त धन्यवाद देता हूं।

मैं श्री एच० आर० सान्याल के प्रति जिन्होने कुछ सांख्यिकीय सारणियों की जांच करने तथा भारत में मेरी अनुपस्थिति में पुस्तक का प्रूफ पढ़ने की अनुकंपा की। पाद टिप्पणियों में उल्लिखित पत्र पत्रिकाओं के संपादकों के प्रति उस सामग्री के प्रयोग की अनुमति देने के लिए जिसे पहले मैंने लेखों के रूप में प्रकाशित कराया था; श्रीमती पोलाइन डावर आफ मारपेथ, नोर्थंबरलैंड के प्रति सर चार्ल्स ट्रैवीलियन के निजी कागजात

सांख्यिकीय परिशिष्ट में सारणियों की सूची

शब्द संक्षेप

लेखा शाखा : लेखा शाखा, वित्त विभाग कार्यविवरण।

कृषि, राजस्व व वाणिज्य कार्यविवरण : कृषि, राजस्व तथा वाणिज्य विभाग संबंधी गवर्नर जनरल इन काउंसिल का कार्यविवरण।

डी० एन० बी० : 'डिक्शनरी आफ नेशनल बायोग्रेफी' (लंदन)

इक० एच० आर० : 'इकानामिक हिस्ट्री रिव्यू'।

ई० एच० आर० : 'इंग्लिश हिस्ट्रारिकल रिव्यू'।

एल्गिन कागजात : जेम्स ब्रूस, एल्गिन के आठवें अर्ल (1811-63), भारत के गवर्नर जनरल (1862-63) के कागजात (पांडुलिपियां-यूरोप, एफ० 83, इंडिया आफिस लाइब्रेरी)

व्यय शाखा : व्यय शाखा, वित्त विभाग कार्यविवरण।

वित्त प्रेषण : वित्त संबंधी प्रेषण, भारत सरकार से भारत मंत्री को।

वित्त कार्यविवरण : वित्त विभाग संबंधी गवर्नर जनरल इन काउंसिल का कार्यविवरण।

पृथक राजस्व वित्त : पृथक राजस्व शाखा, वित्त विभाग कार्यविवरण।

गृह कार्यविवरण : गृह विभाग संबंधी, गवर्नर जनरल इन काउंसिल का कार्यविवरण।

गृह प्रेषण : गृह विभाग प्रेषण, लोक शाखा, भारत सरकार भारत मंत्री।

गृह राजस्व कार्यविवरण : गृह विभाग कार्यविवरण, राजस्व शाखा।

गृह पृथक राजस्व कार्यविवरण : गृह विभाग कार्यविवरण, पृथक राजस्व शाखा।

जे० इक० एच० : 'जर्नल आफ इकानामिक हिस्ट्री'।

के० डब्ल्यू० : 'कैप्ट विद', सपरिपद गवर्नर जनरल की कार्यवाही से संबधित फाइलों मे संलग्न अतिरिक्त कागजातो पर अभिलेखागार का संकेतन है।

लारेंस कागजात : सर जान लारेंस, प्रथम बेरन लारेंस (1811-79), भारत का गवर्नर जनरल लारेंस (1864-69) के कागजात (पाडुलिपिया, यूरोप एफ० 90, इंडिया आफिस लाइब्रेरी)।

विधान परिषद कार्यविवरण (साराश) : भारतीय विधान परिषद का कार्यविवरण सारांश (नई सीरीज)।

विधान परिषद विवरण	: भारतीय विधान परिषद का कार्यविवरण (पुरानी सीरीज)
अवकाश व पेंशन	अवकाश व पेंशन शाखा, वित्त विभाग कार्यविवरण।
मेयो कागजात	: रिचर्ड बोर्क, मेयो का छठा अर्ल (1822-72), भारत का गवर्नर जनरल (1869-72) (पता 7490, कैंब्रिज विश्वविद्यालय पुस्तकालय)।
सैन्य प्रेषण	सैन्य प्रेषण, भारत सरकार भारत मंत्री।
सैन्य विभाग कार्यविवरण	. सपरिषद गवर्नर जनरल का सैन्य विभाग संबंधी कार्यविवरण।
प्रकीर्ण शाखा	: प्रकीर्ण शाखा, वित्त विभाग कार्यविवरण।
एम० एम० पी० आर०	: मारल एंड मैटीरियल प्रोग्रेस रिपोर्ट (संसदीय कागजात)।
पी० पी० एच० सी०	. संसदीय कागजात (हाउस ऑफ कामंस)।
पी० पी० एच० एल०	: संसदीय कागजात (हाउस आफ लार्ड्स)।
लोक शाखा	: लोक शाखा, गृह विभाग कार्यविवरण।
निर्माण कार्यविवरण	: सपरिषद गवर्नर जनरल का लोक निर्माण विभाग संबंधी कार्यविवरण।
राजस्व कार्यविवरण	: राजस्व शाखा, गृह विभाग कार्यविवरण।
राजस्व प्रेषण	: राजस्व प्रेषण, भारत सरकार भारत मंत्री।
रेल प्रेषण	: रेल विभाग प्रेषण, भारत सरकार, भारत मंत्री।
हिंदुस्तानी प्रेस रिपोर्ट	: हिंदुस्तानी प्रेस के संबंध में रिपोर्ट (भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार)।
पृथक राजस्व	पृथक राजस्व शाखा, वित्त। गृह विभाग कार्यविवरण।
हिंदुस्तानी समाचार उद्धरण	. हिंदुस्तानी भाषाओं के समाचार पत्रों से उद्धरण (भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार)।
ट्रेवीलियन कागजात	: सर चार्ल्स ट्रेवीलियन (1807-86) के पत्र, मद्रास का गवर्नर, 1859-60, और गवर्नर जनरल की परिषद का वित्तीय मामलों का सदस्य, 1862-65 (माइक्रोफिल्म, बोडलियन लाइब्रेरी, आक्सफोर्ड)।
वुड कागजात	सर चार्ल्स वुड प्रथम विस्काउंट हैलीफाक्स (1800-85), भारत मंत्री 1859-66, (पाडुलिपियां यूरोप एफ० 78, इंडिया आफिस लाइब्रेरी)।

शब्द संक्षेपों तथा टिप्पणियों के पूरे स्पष्टीकरण के लिए संदर्भ ग्रंथ सूची को देखिए।

अनुक्रम

प्रस्तावना

भारतीय साम्राज्य के व्यापक वित्तीय संगठन में बहुत से छोटे-छोटे अधिकारियों मे से एक अधिकारी चार्ल्स लैम था। ईस्ट इंडिया कंपनी के लंदन स्थित अकाउंटेंट जनरल के कार्यालय में जब वह नौकरी करता था तब एक बार उसने डेविड बूथ की 'टेबल्स आव सिंपल इंटरेस्ट' नामक पुस्तक की, जिसे वह लगभग प्रतिदिन प्रयोग में लाता रहा होगा, समीक्षा की। उसने लिखा कि 'इस पुस्तक में उन सामान्य पुस्तकों से अलग एक खास प्रकार की दिलचस्पी अंत तक बनी रहती है जिनका अवलोकन करना हमारे भाग्य में बदा है।'[1] लेखकों को बहुधा अपनी कृति के विषय मे भ्रम रहता है, फिर भी यह समझना कि यह रचना आम पुस्तकों का अपवाद होगी और पाठकों की रुचि अंत तक बनाए रखेगी, व्यावहारिक दृष्टि से युक्तिसंगत नहीं है। इसके अलावा उस नीरस विषय मे पाठकों को घसीट ले जाना, जोकि लेखक ने उनके लिए निर्धारित किया है, कोई विशेष बढाई की बात भी नही है। अस्तु इस प्रस्तावना का उद्देश्य पाठक की इस कृति के विस्तार क्षेत्र का परिचय देना मात्र है। प्रथम अध्याय का भी उद्देश्य यही है। इसमे काल विशेष के प्रमुख पात्रों का परिचय पाठकों को देने के साथ-साथ इस अवधि की विशिष्ट समस्याओं की रूपरेखा भी निर्धारित की गई है।

भारतीय लोकवित्त का अध्ययन उस महान उथल-पुथल की समाप्ति से प्रारंभ होता है जिसे सैन्य-विद्रोह के नाम से जाना जाता है। अध्ययन प्रारंभ करने के लिए 1858 का वर्ष सुविधाजनक है। सैन्य विद्रोह द्वारा उत्पन्न वित्तीय संकट के कारण उस समय *नीति का पुनर्निर्धारण आवश्यक हो गया था*। इसी समय *वित्तीय शक्ति का स्थान* परिवर्तन और अन्य महत्वपूर्ण संस्थागत परिवर्तन, जिनके साथ ही भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन समाप्त हो गया, हो रहे थे। (संस्थागत ढाचे के पुनर्गठन पर दूसरे अध्याय मे और प्रधान नीति विषयक समस्याओं पर तीसरे और चौथे अध्यायों मे विचार किया गया है।) 1872 को दो भिन्न अवस्थाओं का संधि वर्ष माना जा सकता है। इसके अनेक कारण है: पाश्चात्य यूरोप की सभी प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं मे और विशेष रूप से ग्रेट ब्रिटेन मे 1873 से 1896 की अवधि मे भारी मंदी का प्रकोप; चांदी की अंतरर्राष्ट्रीय कीमत और स्टर्लिंग के साथ रुपये की विनिमय दर मे परिवर्तन; 1871-72 में भारतीय वित्त के विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया का पूर्ण होना; 1872 मे मेयो का (जो इस कथानक के प्रधान पात्रों मे से है) प्रशासन समाप्त होना; और इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात है पुनर्निर्माण की प्रेरक शक्ति का समापन—जो उन्नीसवी शताब्दी के छठे दशक की

विशेषता थी। इस प्रकार 1858 से 1872 तक की अवधि मे एक निश्चित संगति के दर्शन होते हैं। हमने इसी अल्प परंतु निर्णायक महत्व की अवधि के गहन अध्ययन का निर्णय किया है। इस और आगे के अनेक अध्यायों मे इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास किया गया है कि ब्रिटिश राज के विकास की दृष्टि से इस काल का वित्तीय इतिहास क्यों महत्वपूर्ण माना जाता है।

प्रस्तुत पुस्तक एक साम्राज्य के वित्तीय संगठन के विषय में है। यह सर्वविदित है कि लोकवित्त का स्थान राजनीतिविज्ञान और अर्थशास्त्र के बीच की सीमा पर है। अध्ययन के इस क्षेत्र मे यदि हम शुद्ध राजनीतिक विधिक या प्रशासनिक इतिहास की औपचारिक विधिवादिता (नियम-कायदा) का ही अध्ययन करें अथवा राजनीतिक संदर्भ से कटे शुद्ध आर्थिक इतिहास मात्र में ही अपने को लगाए रखें तो संभवतः यह उपयोगी नही हो सकता। सरकार की साम्राज्यिक व्यवस्था के प्रति परंपरागत दृष्टिकोण विधिवादी रहा है। सिविल सेवा (सिविल सर्विस) में रहने वाले व्यक्तियों तथा विधि-शास्त्रियों ने इस दिशा मे पथप्रदर्शक का कार्य किया है। इन लोगों ने औपचारिक तथा विधिक ढाचे की व्याख्या की है। इन्होने जानबूझ कर अपने अध्ययन को यही रूप क्यों दिया यह स्वतः स्पष्ट है। परंतु बाद के लोगों ने भी, जिन्होंने इस क्षेत्र मे कार्य किया है, जब इस परंपरा को अपनाया तो इससे उन अनेक प्रश्नों की उपेक्षा करने की प्रेरणा मिलती है जिनके उत्तर विधि तथा अधिनियमों के अध्ययन, सांविधानिक उत्तरदायित्वों एवं कार्यो के विश्लेषण, तथा औपचारिक सरकारी तंत्र के अंगो के इतिहास मात्र से नही दिए जा सकते। उदाहरण के लिए, वित्तीय नीतिनिर्धारण की प्रक्रिया मे उन लोगों के अतिरिक्त, जिन पर नीतिनिर्धारण का औपचारिक उत्तरदायित्व होता था, अन्य अनेक व्यक्ति भाग लेते थे। बहुत से लोगों को प्रभावित करने वाले निर्णय लेने का उत्तर-दायित्व यद्यपि थोड़े से लोगों पर डाला जाता था, तथापि इन बहुत सारे व्यक्तियों में से कुछ लोग निर्णय लेने के अधिकारी व्यक्तियों पर प्रभाव डालने का प्रयास करते थे। ऐसे अनेक गुट थे जो उन व्यक्तियों तक पहुंचने का प्रयास करते रहते थे जिनके पास निर्णय लेने का अधिकार हुआ करता था। इनमे से कुछ गुटों को दबाव डालने मे सफलता मिली और इस प्रकार इन्होंने निर्णय लेने की प्रक्रिया मे अप्रत्यक्ष रूप से भाग लिया। कुछ ऐसे भी गुट थे जो अपने उद्देश्य मे असफल रहे, परंतु उन्होंने अधिकारियों को रजामंद करने और उन पर दबाव डालने का कार्य जारी रखा। एक दूसरे को प्रभावित करने वाली इस गतिशील प्रक्रिया, तथा उन अनेकानेक विचारों और दबावों को, जिनसे निर्णयों तथा कार्यवाहियों की रीति-नीति निर्धारित होती थी, केवल सत्ता के औपचारिक ढांचे के माध्यम से नही समझा जा सकता। विधिवादी दृष्टिकोण की अपर्याप्तता भी उस समय इतनी ही स्पष्ट हो जाती है जब हम कानूनों और विनियमों मे किसी स्पष्ट परिवर्तन के बिना ही प्रशासनिक पदानुक्रम (हाइरार्की) मे एक स्तर से दूसरे स्तर पर क्रमशः निर्णय लेने के अधिकार के स्थानांतरण पर विचार करते हैं। संचार प्रणाली की प्रगति का प्रभाव इस दृष्टि से अच्छा उदाहरण है। भारतीय तार व्यवस्था के प्रारंभ (1854), यूरोप के साथ स्थल मार्ग से केबिल द्वारा संबंध स्थापित होने (1868), समय की बचत

करने वाले स्वेज मार्ग के खुलने (1869) और अंत मे समुद्री केबिल पड़ जाने (1970) से इंग्लैंड के साथ ही नही भारत के अंदर भी संचार व्यवस्था की गति तेज हो गई। इससे भारत सरकार पर ब्रिटिश सरकार का और प्रांतीय सरकारों पर भारत सरकार का नियन्त्रण बढ गया और यही प्रवृत्ति प्रशासन में सबसे नीचे स्तर तक व्याप्त हो गई। और भी, धीरे-धीरे वित्तीय नियंत्रण को कड़ा कर देने मात्र से केंद्रीय अथवा सर्वोच्च सरकार (उस समय केंद्रीय सरकार को यही कहा जाता था) के लिए प्रांतीय (अथवा अधीनस्थ) सरकारों के निर्णय लेने की शक्तियों में कमी कर पाना संभव था। जैसा कि सर चार्ल्स ट्रैवीलियन ने कहा है : 'केंद्रीय सरकार ने वित्तीय केंद्रीकरण की नीति का पालन करते हुए प्रायः अदृश्य रूप से ब्रिटिश भारत के सविधान में "आधार भूत परिवर्तन किए।' 'चूंकि सरकार के सभी तत्वों मे वित्त सबसे सबल होता है, इसलिए यह सहज ही अन्य सभी तत्वों को आत्मसात कर लेता और उन्हें दूसरा रूप दे देता है।'[2] यदि हम परंपरागत विधिक दृष्टिकोण ही अपनाते है तो विविध प्रक्रियाओं जैसे··· दबाव गुटों के प्रभाव, नवीन सचार प्रणाली के परिणामस्वरूप सत्ता के केंद्र में स्थानांतरण अथवा सरकारी यत्र के अंगीभूत तत्वों के बीच औपचारिक विधिक संबंधो से भिन्न वास्तविक संबंधो में परिवर्तनों का विश्लेषण संभव नही हो सकता। इसलिए सपूर्ण व्यवस्था के निरूपण का प्रयास औपचारिक विधिक ढाचे से प्रारंभ तो अवश्य होना चाहिए (अध्याय 2 मे वित्तीय शक्तियों के सबंध में इस ढाचे का अध्ययन किया गया है) परतु उसी के साथ समाप्त होना आवश्यक नही है, क्योंकि प्रत्येक यत्र अपनी चालू अवस्था मे अपने आकारगत ढाचे के बाहर भी अनेक तत्वो के गुरुत्वाकर्षी क्षेत्र मे स्थित होता है। इस स्थिति का विश्लेषण करने में हमने कुछ खास शब्दों का प्रयोग किया है जिनकी परिभाषा देना आवश्यक है।

नौकरशाही (ब्यूरोक्रेसी) शब्द का प्रयोग पूर्ण रूप से अनिंदात्मक अर्थ मे किया गया है। इसके लिए एक वैकल्पिक शब्द सिविल सेवा (सिविल सर्विस) हो सकता है। सबसे पहले इस शब्द का प्रयोग ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा किया गया था। बाद मे, ब्रिटिश सिविल सेवा के सगठन पर चार्ल्स ट्रैवीलियन यथा नार्थकोट की रिपोर्ट (1858) के प्रकाशन के बाद यह इंग्लैंड मे काफी प्रचलित हो चला। यहा पर नौकर-शाही शब्द इसलिए अधिक उपयुक्त माना गया है क्योंकि भारत मे 'सिविल सेवा' का अर्थ प्रायः भारतीय सिविल सेवा लगाया जाता था। मूल रूप से भारतीय 'सिविल सेवा में कपनी के वे ही संविदाबद्ध (कावेनेंटेड) कर्मचारी आते थे जो गैरसैनिक होते थे, जबकि नौकरशाही शब्द व्यापक है और इसकी परिभाषा मे सरकारी पदाधिकारियों का संपूर्ण वर्ग आ जाता है जिसमें भारतीय सिविल सेवा के संविदाबद्ध कर्मचारियों के अतिरिक्त अन्य अधिकारी भी शामिल है।

हितबद्ध गुट (इंटरेस्ट ग्रुप) शब्द व्यक्तियों के उन समूहो के लिए प्रयोग किया गया है जिनका खास समस्याओं के संदर्भ में एक जैसा हित हो और जो स्वार्थ के आधार पर कल्पित अथवा वास्तविक समुदाय के रूप में संघटित हों। तात्पर्य यह है कि विशिष्ट समस्याओ पर गुट के सभी व्यक्तियो की आवश्यकताएं एक जैसी होनी चाहिए

और सभी समान रूप से उनकी संतुष्टि के इच्छुक हों। हमारी दिलचस्पी इन गुटों के आंतरिक संगठन के बारे में इतनी नही है जितनी कि उस प्रक्रिया के विषय मे है जिसके द्वारा ये हितबद्ध गुट अपने वर्ग के उद्देश्य के अनुरूप निर्णय पाने के लिए उन व्यक्तियों पर प्रभाव डालने का प्रयत्न करते थे जिनके पास कानून के अंतर्गत निर्णय लेने का अधिकार था। कोई भी वर्ग जो इस प्रकार सरकार पर दबाव डालता है, उसके बारे मे कहा जा सकता है कि वह परोक्ष रूप से निर्णय की प्रक्रिया में भाग लेता है, क्योंकि यह वह प्रक्रिया है जो कार्यवाही की दिशा और नौकरशाही के सदस्यों द्वारा निर्णयों के क्रियान्वयन की प्रणाली निश्चित करती है। दूसरे शब्दों में, हमारी दिलचस्पी उन गुटो के द्वारा डाले जाने वाले प्रभावों में है जिनकी पहुंच सरकार तक थी। हमारे इस अध्ययन का विषय केवल उन्ही वर्गों तक सीमित है जिनकी रुचि सरकार की आर्थिक और विशेष रूप से वित्तीय नीतियों मे थी। इस संदर्भ में सत्ता (पावर) और प्रभाव (इंफ्लुएंस) शब्दों में, अतर करना आवश्यक है। हम सत्ता शब्द का प्रयोग सरकार मे निर्णय करने की औपचारिक विधिक शक्ति के लिए कर सकते हैं। प्रभाव शब्द उस सत्ता को प्रभावित करने की सामर्थ्य (परामर्श, अनुनय, अथवा चालाकी द्वारा) की ओर संकेत करता है।

अनेक वर्ग जब मिलजुल कर कार्य करते हैं तो उनका प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक होता है। इस प्रकार के वर्गों को 'हितबद्ध गुट समूह' (इंटरेस्ट कंस्टलेशन्स) कहा जा सकता है। मेयो, आरगाइल, अथवा ट्रेवीलियन ने इसी अर्थ में रेल उद्योग से संबंधित हितों अथवा कपास व्यवसाय से सबद्ध हितों की चर्चा की है।[3] यहां हमारी अधिक दिलचस्पी उन्ही संगठित हितबद्ध समूहों में है जो काफी स्पष्ट रूप से बोधगम्य हैं क्योंकि हितबद्ध गुट समूहों की भाति वृहत समष्टि के संबंध में साधारणीकरण कर सकना तो सहज है परंतु उनका परीक्षण कठिन है। यह दावा करना व्यर्थ है कि हितबद्ध गुटों का प्रभाव मापा जा सकता है। परंतु गुटो के विभिन्न भेदो, उनकी कार्य प्रणालियो एवं उद्देश्यों तथा उनके पारस्परिक सघर्षों तथा संपर्कों का अध्ययन उपयोगिता हो सकता है।[4] औपचारिक ढंग से सगठित दबाव गुट मोटे तौर पर दो प्रकार के थे।[5] प्रथम तो वे गुट थे जो भलीभाति और सुचारु रूप से सगठित थे। इनमे से प्रत्येक गुट आर्थिक हितों और इन हितों से संबद्ध विशिष्ट उद्देश्यो के लिए किए जाने वाले प्रयत्नो की दृष्टि से समरूप (एक जैसा) होता था। दूसरे प्रकार के दबाव गुट मोटे तौर पर दो प्रकार के दबाव गुट अपेक्षाकृत विषमरूप होते थे तथापि औपचारिक संगठन अथवा समुदाय के रूप मे वे संगठित थे और प्राय. सामान्य नीतिनिर्देशन करते थे क्योंकि गुट की विषम-रूपता के चलते किसी आर्थिक गुट विशेष के हितो का पक्ष लेने की प्रवृत्ति नही रह पाती थी। पहले प्रकार के गुटों की रचना और उनके व्यवहार मे कुछ समानता थी। दूसरी श्रेणी मे आने वाले गुटो मे विषमता थी और वे एक दूसरे को निभाने के उद्देश्य से बने हुए अप्रिय संगठनों की भाति थे। इस प्रकार के गुटों में आने वाले सभी तत्वों के दीर्घकालीन हित-उद्देश्य अनिवार्य रूप से एक ही नही थे। विश्लेषणात्मक दृष्टि से हितों मे समानता, संगठन और दृढ़ता के स्तर तथा उद्देश्यों की विशिष्टता के आधार पर इन दोनों प्रकार के गुटों मे भेद कर सकना संभव है। एक तीसरे प्रकार का तत्व

कराची के अन्य दो चेंबर बहुत छोटी संस्थाएं थे और कलकत्ता की ही भांति इनके सभी पदाधिकारी यूरोपीय ही थे। जैसा कि आगे स्पष्ट होगा, चेंबर्स आव कामर्स की दिलचस्पी मुख्य रूप से टैरिफ, सीमा शुल्क मूल्याकन देश में वस्तुओं के स्थानांतरण पर अंतर्देशीय शुल्क, व्यावसायिक कर जैसे मोहतरफा और व्यापार करने के लिए अनुज्ञापत्र (लाइसेंस) शुल्क, आयकर, तथा बागान उद्यमों को प्रभावित करने वाले भूमिव्यवस्था संबंधी सरकारी नीति में होती थी। छोटे व्यवसायियों ने दि कलकत्ता टेडर्स एसोसिएशन, 1830 में बनाया। इन लोगों के प्रयोजन बंगाल चेंबर आव कामर्स की तुलना में बहुत सीमित थे और ये केवल अपने ऊपर लागू होने वाले करों से छुटकारा प्राप्त करना चाहते थे। इस संघ ने भूमि से प्राप्त होने वाली आय अथवा अचल संपत्ति तथा निष्क्रिय पूंजी पर भारी करों की मांग की थी जिससे व्यापार पर करों का बोझ कम करना संभव हो सके। विशेष रूप से 1859-61 की अवधि में दि इडिगो प्लाटर्स एसोसिएशन आव बगाल, कुर्ग के कहवा बागान मालिकों और असम के चाय बगान मालिकों के साथ मिलकर सक्रिय रूप से काम कर रहा था। उन्होने उस समय तक अपने अलग संघ नही बनाए थे, तथापि वे इतने सगठित अवश्य थे कि संयुक्त रूप से स्मरणपत्र भेज सके। इन्होने भूमि सबधी विनियमों में परिवर्तन की माग की थी जिससे प्राप्त मालगुजारी की अदायगी करने वालो को पूर्ण स्वामित्व सहित भूमि का पट्टा प्राप्त हो सके।[9] इनकी कार्यवाही से ब्रिटेन में भारत मंत्री के कार्यालय पर मेनचेस्टर के काटन सप्लाई एसोसिएशन का दबाव बढ चला। यह एसोसिएशन उन्नीसवी शताब्दी के छठे दशक से ही भारत से कच्ची कपास की आपूर्ति में वृद्धि के प्रोत्साहन का आग्रह भारत सरकार से कर रहा था। यह एक ऐसी आवश्यकता थी जो मेनचेस्टर के सूती मिल मालिकों की दृष्टि से उस समय बहुत नाजुक स्थिति में पहुंच गई जब अमरीकी गृह युद्ध के कारण कपास की आपूर्ति में भारी कमी हो गई थी। भारत सरकार के इस एसोसिएशन ने जो उपाय सुझाए थे उनमे भूमि सबधी विनिमयों मे परिवर्तन की माग की थी ताकि पूंजीपतियों के लिए कपास बागानों का विकास कर सकना संभव हो जाए। एसोसिएशन ने भारत सरकार से कपास का उत्पादन करने वाले क्षेत्रों से बन्दरगाहों तक सड़कों का निर्माण करने, कपास की खेती वाली भूमि को मालगुजारी से मुक्त करने, कपास निर्यात के लिए बंदरगाहों पर सुविधाओं के विकास मे धन लगाने, कच्ची कपास में मिलावट रोकने के लिए कानून बनाने, और सामान्य रूप से भारत में इग्लैंड की अतिरिक्त पूंजी और मुक्त उद्यम के निवेश का मार्ग सुगम करने मे सहायता देने का आग्रह किया।[10] इस एसोसिएशन को मेनचेस्टर चेंबर आव कामर्स और उन अनेक संसद सदस्यों का समर्थन मिला हुआ था जिनके हित सूती वस्त्र उद्योग जुड़े हुए थे। इसने दबाव गुट के रूप मे सभी प्रकार की संभव युक्तियो का प्रयोग किया। इसने 1857, जुलाई, 1859; अप्रैल, 1860 मे कोर्ट आव डायरेक्टर्स तथा भारत मंत्री को स्मरणपत्र दिए, फरवरी, 1859 तथा अक्तूबर, 1861 में भारत कार्यालय (इंडिया आफिस) को प्रतिनिधि मंडल भेजे। संघ की पत्रिका 'दि काटन सप्लाई रिपोर्टर' के द्वारा समाचार पत्रों में प्रचार किया गया। संसद सदस्यों को संसद के गोष्ठी पक्ष मे प्रभावित करने का प्रयास किया और अप्रैल 1860, मई, 1861 मे गवर्नर

जनरल के पास प्रतिवेदन भेजे ।[11] जहां तक भारत सरकार का संबंध था ग्लासगो, लीड्स, डंडी इत्यादि के चेंबर आव कामर्स अपेक्षाकृत कम सक्रिय थे, फिर भी भारतीय सीमा शुल्कों के संबंध में मेनचेस्टर के चेंबर की भांति ही ये भी चिंतित थे।

दि ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन भी इसी प्रकार का हितबद्ध संघ था । इस विचार से वे लोग शायद असहमत हों जो जमींदारों के हितों के संरक्षक एवं हिमायती होने के कारण उसकी भूमिका की ओर से अपनी दृष्टि खामोशी से हटा लेते है। इस एसोसिशन को प्राय: राष्ट्रवाद का छद्म प्रदान कर दिया जाता है और यदि यह स्वीकार भी किया जाता है कि इसके प्रयोजन और इसका व्यवहार स्वार्थ पर आधारित थे तो भी यह कह-कर इस पक्ष को अनदेखा कर दिया जाता है कि यह उच्च प्रतिमानों से यदाकदा होने वाली भूल-चूक है । दि ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन, 1837 में स्थापित उस जमींदार्स एसोसिएशन आफ बंगाल का वंशज था जिसका नाम बाद में लैंडहोल्डर्स सोसायटी पड़ा। लैंडहोल्डर्स सोसायटी ने उदार भाव से अनन्यता (संबंधी सिद्धांतों) को अस्वीकार कर सदस्यता के लिए एकमात्र शर्त इस देश में, भूमिहित होना निर्धारित की।[12] 1843 में स्थापित ब्रिटिश इंडिया सोसायटी के साथ इसके एकीकरण से 1851 में ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन की स्थापना हुई। जमींदार वर्ग के हितों के प्रतिनिधि इस एसोसिएशन को भारत भ्रमण पर आए हुए एक अंग्रेज पत्रकार ने बड़े ही सारगर्भित ढंग से संगठित स्वार्थपरता का नमूना बताया था।[13] सरकार इस एसोसिएशन को जमींदार वर्ग के प्रतिनिधि के रूप मे यथेष्ट महत्व देती थी और इसके अनेक सदस्य विधान परिषद के सदस्य मनोनीत किए गए थे। इन मनोनीत सदस्यों मे प्रसन्न कुमार टैगोर भी थे जो उन्नीसवी शताब्दी के सातवे दशक में इसके प्रधान नेताओं मे से थे। इन्हें 1860 में आय-कर विवरणी प्रारूप समीति की सदस्यता दी गई थी।[14] जिसके अध्यक्ष रिचर्ड टैंपिल थे, एसोसिएशन के सभी सदस्य जमींदार नहीं थे, कुछ सदस्य व्यापारी और व्यवसायी भी थे, परंतु इसका हार्द संपन्न जमींदार वर्ग था और जिन लोगों को शिशिर कुमार घोष की तरह आशा थी कि धीरे-धीरे शिक्षित व्यक्तियों, मध्यम वर्ग और व्यवसायियों के संघ में सम्मिलित हो जाने से जमींदार वर्ग का अल्पमत हो जाएगा, अंतत: उनका यह भ्रम दूर हो गया। भ्रम दूर होने का परिणाम यह हुआ कि मध्यम वर्ग के लोगों को अधिक जनतांत्रिक आधार पर प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए 1876 में प्रतिद्वंद्वी इंडियन एसोसिएशन की स्थापना की गई ।[15] वित्तीय नीति से संबंधित मामलों पर ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन के विचारों मे वर्गीय हितों के प्रति काफी झुकाव था। 1860 मे इस एसोसिएशन के सदस्यों ने जमींदारों की आय पर प्रत्यक्ष कराधान का इस आधार पर विरोध किया कि इससे 1793 के स्थाई बंदोबस्त का उल्लंघन होता है।[16] 1861 में इन्होंने सरकार से नमककर बढ़ाने का आग्रह किया। इसका भार प्रधान रूप से निर्धन वर्ग के ऊपर था यह बात इस एसोसिएशन के सदस्यों को कम से कम आपत्तिजनक लगी। एसोसिएशन को आशा थी कि] नमककर से अधिक आय प्राप्त होने पर सरकार के लिए उच्च आय वाले वर्गों को आयकर के उत्पीडन से मुक्ति दे पाना संभव होगा ।[17] 1871 मे इन्होंने सड़क उपकर तथा शिक्षा उपकर सरीखे स्थानीय उपकरों से एकत्रित

धनराशि से किए जाने वाले स्थानीय सुधारों में रोड़े अटकाए और पुनः स्थाई बंदोबस्त की दुहाई दी।[18] 1868 में जब ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन ने सरकार को वित्तीय नीति पर परामर्श देने के लिए योग्य भारतीयों और भद्र अंग्रेजों की सलाहकार समिति के गठन की इच्छा प्रकट की तो सपरिषद गवर्नर जनरल ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि इस प्रकार की सस्था केवल थोड़े से वर्गों का प्रतिनिधित्व करेगी जिनका एक ही स्वार्थ है कि वे अपने ऊपर कराधान न होने दें।[19]

इन हितबद्ध गुटो के विपरीत दूसरे प्रकार के गुट अधिक व्यापक आधार पर संगठित और विषमरूप थे और ये अपेक्षाकृत अधिक व्यापक हितों के लिए कार्य करते थे। ईस्ट इडिया एसोसिएशन, इंडिया रीफार्म सोसायटी, बाबे एसोसिएशन इत्यादि सभवतः इसी श्रेणी मे रखे जा सकते है। नौरोजी के प्रभाव में ईस्ट इंडिया एसोसिएशन इग्लैंड के राजनीतिक क्षेत्र मे एक वैसी लाबी बन गया था जैसी कि उन्नीसवी शताब्दी के सातवें दशक के उत्तरार्द्ध में भारतीयों के लिए सभव थी। नौरोजी ने इस एसोसिएशन के कार्यों के बारे मे सोचा था कि यह लंदन में भारतीयों के हितो की देखभाल एवं रक्षा करेगा, उन्हें आवश्यक सूचनाए देगा और इन कार्यों को प्रभावशाली ढंग से कर सकने के लिए साधन एकत्रित करेगा। इसमे इग्लैंड मे पढने वाले भारतीय छात्र और वे अंग्रेज (1868 में इनकी संख्या कुल सदस्य सख्या की बीस प्रतिशत थी) सम्मिलित हुए जो भारत मे कार्य कर चुके थे। इसकी सदस्यता, और विशेषकर इसके सदस्यों मे ऐसे भारतीय युवको की उपस्थिति, जिनके कलकत्ता और बबई के साथ कम से कम अस्थाई रूप से तो संबध शिथिल ही थे तथा साथ ही इसके कार्यस्थल ने कुछ समय के लिए इसे सार्वजनिक हितों एवं सामान्य रूप से भारतीयों के कल्याण के रक्षक की भूमिका अदा करने में सहायता पहुंचाई।[20] लदन मे ईस्ट इडिया एसोसिएशन की गोष्ठियों मे इवास बेल सरीखे उदार-वादियों ने साम्राज्यिक नीति के आधार के रूप मे विश्वास के महत्व पर दृढ़ता के साथ जोर दिया था। सर चार्ल्स ट्रैवीलियन ने भारत के साम्राज्यिक स्वामियो एव शिक्षको द्वारा इस देश को बिना हानि पहुंचाए ही इसे छोड़ जाने की भावी संभावना पर अटकलबाजी की थी। और तो और घनघोर सत्तावादी बार्टल फ्रेर ने भारतीय लोकमत पर अपने विचार व्यक्त किए थे।[21] जर्नल आव दी ईस्ट इंडिया एसोसिएशन मे प्रकाशित एसोसिएशन के कार्य विवरण तथा भारत मत्री और संसदीय प्रवर समितियो आदि को दिए गए स्मरणपत्रों से पता चलता है कि इस एसोसिएशन के प्रमुख सदस्यो को वित्तीय समस्याओं की अच्छी जानकारी थी। उनके कुछ विचार तो काफी प्रगतिशील थे। उन्होने चालू राजस्व से लोक निर्माण पर व्यय करने की तत्कालीन प्रचलित रीति के स्थान पर ऋण की और ऋण शोधन निधि (सिंकिंग फड) की उचित व्यवस्था के लिए वकालत की, और नौरोजी द्वारा की गई हिमायत से, विशेषतः 1870 मे एसोसिएशन के सामने पढ़े गए उनके लेख 'वान्ट्स एड मीस आव इंडिया' से यह विषय सार्वजनिक बहस के एक नए ऊंचे स्तर पर पहुच गया।[22] फिर भी, ईस्ट इडिया एसोसिएशन एक प्रकार से स्वदेश से बाहर विस्मृत अवस्था में ही था और उसकी ईस्ट इडिया एसोसिएशन, बंबई (1869 मे स्थापित) के नाम से ज्ञात एकमात्र भारतीय शाखा

की भूमिका विचित्र रूप से प्रभावहीन रही। केवल भारतीय राजस्व के संबंध में संसदीय प्रवर समिति की नियुक्ति के अवसर पर बंबई शाखा ने अपनी याचिका (अर्जी) 1871 में ब्रिटेन के भारत कार्यालय संबंधी खर्चों (होम चार्ज) के विषय मे जाच की भूमिका तैयार करने की दिशा मे थोड़ा सा प्रयास किया था।[23] इस सस्था और बंबई एसोसिएशन के बीच जिसने लगभग इसी समय और इसी संबंध मे याचिका प्रस्तुत की थी भ्रम नही होना चाहिए।[24] बंबई एसोसिएशन मे बंबई के तीन प्रमुख संप्रदाय पारसी, गुजराती, महाराष्ट्रीय सम्मिलित थे। इसने आर० जी० भंडारकर और सोराबजी सपूरजी बंगाली जैसे अनेक विख्यात व्यावसायिक व्यक्तियों को आकर्षित किया। इनमे से बहुत सारे व्यक्ति एल्फिंसटन कालेज के छात्र रह चुके थे। इसे नाथभाई, मंगलदास और जमशेदजी जीजीभाई जैसे व्यापारियों का समर्थन प्राप्त था। बबई एसोसिएशन की दिलचस्पी मुख्य रूप से स्थानीय मामलों में थी। यह लोकनिर्माण कार्यों की *श्रेष्ठता और उनमें किफायत*-शारी का पक्षपाती था। 1871 में इसने गृह कर तथा चुगी का विरोध किया और कलकत्ता तथा दूसरे स्थानों पर विधानपरिषदों में सुधार और सिविल सेवा में भारतीयो का प्रवेश सुकर बनाने की माग की।[25] यह आश्चर्य की बात है कि भारतीय वित्त से सबंधित अधिक महत्वपूर्ण मामलो पर एसोसिएशन चुप्पी साधे था। संभवतः ऐसा इसलिए हुआ होगा कि व्यापारी वर्ग ने चेंबर आव कामर्स को (जिसमें बंगाल चेंबर आव कामर्स की तुलना मे भारतीयों का प्रतिनिधित्व अधिक प्रबल था) इन मामलों के लिए अधिक प्रभावशाली सस्था समझा हो।

उन्नीसवी शताब्दी के सातवे दशक में ऐसे विचार धीरे-धीरे निश्चित रूप ले रहे थे जिनमें आर्थिक राष्ट्रवाद का सारा तत्व आ जाता है (इस सबंध में अध्याय पाच में विवेचना की गई है)। अनेक स्थानीय संघ जैसे, बाबे एसोसिएशन, पूना सार्वजनिक सभा, मद्रास नेटिव एसोसिएशन, अनुनय और दबाव की रीतियां सीख रहे थे। इस संदर्भ में नौरोजी की स्थिति विशेष थी, क्योकि इंग्लैंड मे अपनाए गए इन तरीकों से उनका व्यक्तिगत परिचय था और उनका कार्यस्थल लदन होने से उन्हें स्थिति का लाभ भी प्राप्त था। उन्होंने भारतीय वित्त विषयक संसदीय प्रवर समिति से 1871 में कहा था कि 'भारत सरकार पर अंग्रेजी हित इस प्रकार का दबाव डालते हैं कि जब तक संसद अपने कर्तव्य का पालन नही करती और अपने वादो के अनुसार भारतीयों के प्रति न्याय पर जोर नही देती तब तक इस सबंध मे कोई आशा नही की जा सकती।'[26] इस प्रकार के दबाव से लड़ने के लिए नौरोजी मैदान मे उतरे थे मगर उन अधिकारियों तक उनकी पहुंच नही थी जिन्हें उन्होने शासनतंत्र मे निर्णय लेने वाला मस्तिष्क और निर्णय को कार्यरूप देने वाला हाथ कहा जाता है। संभवतया उन्होंने प्रचार के असर को अधिक महत्वपूर्ण मान लेने की भूल की थी। उनकी भूल यह भी रही कि उन्होने आशा की थी *कि न्याय के बारे मे प्रचलित ब्रिटिश धारणा की रक्षा के लिए संसद भारत सरकार* को डाट कर उसी प्रकार हस्तक्षेप करेगी जैसे बालवाड़ी (नर्सरी) में परिचारिका उदंड छात्र पर रोकथाम लगाती है। परंतु नौरोजी ने समस्या प्रस्तुत करने तथा पक्ष समर्थन मे जनमत और सहानुभूति तैयार करने के लिए उस समय जो भी रीतियां अपनाई जा

सकती थी उन सभी का प्रयोग किया। इस संबंध में उन्हें अंग्रेजी हितों ने ही रास्ता दिखाया था। 'इंडिया इट्स गवर्नमेंट अंडर ब्यूरोक्रेसी' के लेखक तथा 'रीफार्म ट्रैक्ट सीरीज' के प्रकाशक जान डिकिसन द्वारा 1853 मे स्थापित इंडिया रीफार्म सोसायटी के प्रयत्नो से इंग्लैंड मे तैयार किए गए वैचारिक वातावरण से नौरोजी को सहायता मिली।[27] कुछ लोकोपकारी उद्देश्यों ने भी उत्साही लोगों को आकर्षित किया। उदाहरणार्थ, उन्नीसवी शताब्दी के सातवें दशक मे भारत सरकार की अफीम उत्पादन और व्यापार में भागीदारी के विरोध मे आदोलन की ओर लोगों का ध्यान गया। इस आदोलन का परिणाम अंततो गत्वा यह हुआ कि 1874 मे अफीम के व्यापार पर रोक लगवाने के लिए एक सोसायटी की स्थापना हुई।[28]

जनतान्त्रिक व्यवस्था की बनिस्वत एकतन्त्रात्मक व्यवस्था मे दबाव गुटो द्वारा अपनाई जाने वाली रीतियों की व्यापकता सीमित होती थी। सरकार के अंगों तक पहुचने का आम माध्यम याचिका (अर्जी) अथवा स्मरणपत्र होता था। ऐसा लगता है कि एक परपरा सी बन रही थी कि भारत में स्मरणपत्र पहले नीचे स्तर के सरकारी अधिकारियों (जैसे—प्रातीय राजस्व बोर्ड के सचिव अथवा भारतीय वित्त विभाग के सचिव) को भेजा जाता था। संभवत. इसका उद्देश्य स्थिति का पता लगाना रहता होगा। तत्पश्चात स्मरणपत्र सरकार के ऊचे अधिकारियो (जैसे गवर्नर जनरल और उसकी परिषद) और अंत मे भारत मत्री के पास भेजा जाता था। दूसरी ओर, इग्लैंड मे कार्य करने वाले दवाव गुट सीधे भारत मंत्री के पास पहुंचते थे जो सपरिषद गवर्नर जनरल (गवर्नर जनरल इन काउंसिल) को सदेश भेजता था। परंतु इग्लैंड मे कार्य करने वाले हितवद्ध गुटों के सामने यह विकल्प भी था कि वे अपने सतोष के लिए भारत सरकार के साथ सीधी कार्यवाही कर सकते थे। अत: लदन मे अपने प्रयत्नों से सतुष्ट न होकर काटन सप्लाई एसोसिएशन ने सपरिषद गवर्नर जनरल के साथ सीधा पत्र व्यवहार किया।[29] कुछेक भारतीय सघों और विशेष रूप से ईस्ट इडिया एसोसिएशन ने लंदन मे भारत मत्री के साथ सीधा संपर्क स्थापित किया था। इसी प्रकार 1870 में जब संसदीय प्रवर समिति (सलेक्ट कमेटी) की नियुक्ति आसन्न दिखाई देने लगी तो ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन और बाद में ईस्ट इडिया एसोसिएशन अपील के आखरी न्यायालय में पहुचे।[30] नौरोजी का अनुभव था कि पिरामिड रूपी शासनतंत्र के शीर्ष इडिया आफिस और ससद से निकटता के कारण इग्लैंड के दवाव गुटों की बनिस्वत अधिक सुविधा थी।

स्मरणपत्र का प्रभाव उस समय अधिक पड़ता था जब अनेक गुट अथवा संघ मिलजुल कर सामूहिक प्रयास करते थे। ब्रिटिश दवाव गुटों से भिन्न भारतीय सघ प्रधान रूप से स्थानीय गुट होते थे और संगठित ढग से कार्यवाही कर पाने मे असमर्थ थे। उदाहरण के लिए, हम ब्रिटिश दवाव गुटों के एक छोटे से आदोलन पर विचार करें। यह आदोलन शोरे पर लगाए गए शुल्क मे कमी करने के लिए चलाया गया था। दिसंबर 1860 में लदन की उन 42 फर्मो ने आदोलन प्रारंभ किया जो भारत से शोरे का आयात करती थी (आयात मुख्यत: यूरोपीय देशों को फिर से निर्यात करने के उद्देश्य से किए जाते थे)। इन्होंने भारत मंत्री को एक स्मरणपत्र भेजा जिसमे लिखा गया था कि

भारतीय निर्यात शुल्क से उनके व्यापार को हानि होती है। दो माह के भीतर ही बंगाल चेंबर आव कामर्स भी इस संघर्ष में सम्मिलित हो गया। बंगाल चेंबर के दो माह बाद बंबई चेंबर आव कामर्स ने निर्यात शुल्क पर अपना विरोध पत्र दिया। मद्रास चेंबर आव कामर्स की प्रतिक्रिया कुछ देर से हुई, परंतु इसने सरकार को तीन स्मरणपत्र भेजकर अपने विलंब की त्रुटिपूर्ति की। कराची चेंबर आव कामर्स अपेक्षाकृत पिछड़ी अवस्था में था और अप्रैल, 1862 तक आंदोलन में सम्मिलित होने में असमर्थ रहा। मामले को गर्म रखने के लिए व्यक्तिगत व्यापारिक फर्मों ने (उदाहरणार्थ, सिंध के शोरा उत्पादकों और कलकत्ते की निर्यातकर्मी ब्रिटिश फर्मों) ने मिलकर संयुक्त रूप से समय-समय पर कुछ और भी स्मरणपत्र भेजे। इस लगातार सामूहिक प्रयत्न का परिणाम यह हुआ कि 1865 में शुल्क कम कर दिया गया। 1866 में इसमें पुनः कमी की गई।[31] उस समय तक भारतीय संगठनों के द्वारा इस प्रकार का संगठित प्रयास संभव नहीं था।

नीति निर्धारकों के पास पहुंचने की एक अन्य रीति यह थी कि भारत सरकार के उच्चपदस्थ सदस्यों अथवा भारत मंत्री के पास प्रतिनिधि मंडल भेजा जाए। उदाहरणार्थ, सीमा शुल्क मूल्याकन प्रणाली से असंतुष्ट बंगाल चेंबर आव कामर्स गवर्नर जनरल की परिषद के वित्त सदस्य को उस प्रतिनिधि मंडल (अक्तूबर, 1860) से बातचीत करने के लिए राजी करने में सफल हो सका जिसे कलकत्ता, मद्रास, बंबई और मेनचेस्टर के चेंबरों द्वारा प्रस्तुत विविध स्मरणपत्रों में की गई शिकायतों की ओर ध्यान आकर्षित करना था।[32] काटन सप्लाई एसोसिएशन ने 1859 और 1862 के बीच अनेक अवसरों पर भारत मंत्री से मिलने के लिए प्रतिनिधि मंडल भेजे। भारत को प्रस्थान करने से कुछ ही समय पहले वित्त सदस्य विल्सन और लैंग ने मेनचेस्टर के प्रतिनिधि मंडलों से मुलाकात की थी।[33] भारतीय व्यापारियों के इस प्रकार के प्रतिनिधि मंडलों के उदाहरण बहुत थोड़े मिलते हैं। (1860 में कलकत्ता के मारवाड़ी व्यापारी एक प्रतिनिधि मंडल के रूप में बंगाल सरकार के सेक्रेटेरियट से यह आग्रह करने के उद्देश्य से मिले थे कि सरकार इस बात पर विचार करे कि आयकर निर्धारकों द्वारा की जाने वाली जाच से यदि यह प्रकट हो जाता है कि व्यापार में कितना धन उसका अपना और कितना दूसरे का है तो इससे अनेक मारवाड़ी कोठियों की व्यापारिक ख्याति को हानि होगी)।[34] स्पष्टतया अपनी शिकायतें रखने की इस रीति का प्रयोग जितनी बार अंग्रेजों ने किया उतनी बार भारतीय नहीं कर सके। संभवतः आमने-सामने की भेंट से कोई लाभ भी नहीं होता था। जब हम ब्रिटिश सिविल सेवा अधिकारियों और पराधीन प्रजाति के बीच बढ़ती हुई सामाजिक दूरी को ध्यान में रखते है तो इसमें कोई आश्चर्य की बात भी नजर नहीं आती।

जो लोग अपनी शिकायतें रखने और न्याय पाने के लिए विनम्र भाव से दिए जाने वाले स्मरणपत्रों और याचिकाओं (अर्जियों) को अपर्याप्त समझते थे उनके सामने एक तीसरा रास्ता भी था कि वे समाचार पत्रों के माध्यम से प्रचार करें। कुछ दबाव गुटों के निजी प्रचार साधन थे। इनका उद्देश्य काटन सप्लाई एसोसियशन द्वारा निकाली जाने वाली 'काटन सप्लाई रिपोर्टर' नामक पत्रिका की भांति या तो बहुत अधिक विशिष्ट अथवा सीमित होता था, या फिर प्रचार के ये साधन पूर्ण समाचार पत्र होते थे जैसे कि

'हिंदू पेट्रिअट' जिसे एक बोर्ड आव ट्रस्टीज चलाता थाजिस मे ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन के सदस्यों का दबदबा अधिक था।[35] इतना अधिक प्रत्यक्ष नियंत्रण न होने पर भी समाचारपत्रों का प्रयोग प्रचार के लिए किया जा सकता था। भारत का यूरोपीय वाणिज्यिक समाज 'इंगलिशमैन' अथवा 'पायनियर' जैसे समाचारपत्रो का उपयोग प्रायः इसी प्रकार करता था। इसी प्रकार बबई की 'रास्तगोफ्तार' नामक एक प्रमुख पारसी पत्रिका का प्रयोग नौरोजी और ईस्ट इडिया एसोसियशन के उनके सहयोगियो ने प्रचार कार्य के लिए किया। भारतीय स्वामित्व वाले अंग्रेजी समाचारपत्रो की उभयमुखता एक प्रासंगिक दिलचस्पी की बात है। ये समाचारपत्र अपने लेखों मे उत्तेजनात्मक और समझौताकारी रुखो मे संगति-सी बैठाते रहते है। सभवतः ऐसा इसलिए था कि ये पत्रिकाए एक नही दो प्रकार के पाठको के लिए हुआ करती थी। ये दो प्रकार के पाठकगण पराधीन वर्ग के प्रबुद्ध सदस्य और शासक वर्ग के सहानुभूतिशील सदस्य थे। इस श्रेणी मे आने वाली पत्रिकारिता की इस विशेषता की ओर किसी का ध्यान न जाए ऐसा हो नही सकता।

ससद मे लाब्बी की रीति एक ऐसी कला थी जिससे भारतीय परिचित होने लगे थे। सभी प्रकार की लाब्बी का उद्देश्य प्रत्यक्ष स्वार्थ नही था। ब्रिटिश संसद सदस्यो ने लोक-कल्याण के लिए कार्य करने वाले अनेक नागरिक गुटों को अपना समर्थन दिया था। इसी श्रेणी मे आने वाली एक लाब्बी अफीम विरोधी गुट था। प्रति वर्ष कम उपस्थिति वाले सदन मे कुछ ससद सदस्य भारत मंत्री के वित्तीय विवरण पर टिप्पणी करने के लिए खड़े होते और भारत सरकार की भागीदारी मे होने वाले अफीम के व्यापार की नैतिक दृष्टि से निंदनीय प्रकृति की ओर ध्यान आकर्षित करते। कर्नल साइक्स, आर० एन० फाउलर, सर डब्ल्यू० लासन, स्टीफन केंव तथा एम० फाउलर कुछ संसद सदस्य थे जो अफीम विरोधी लाब्बी मे आते थे।[36] ससद में की जाने वाली एक अन्य प्रकार की लाब्बी वाणिज्यिक हितबद्ध गुटो की ओर से होती थी। इंग्लैंड मे किसी भी हितबद्ध गुट की लाब्बी (जैसे सूती वस्त्र उद्योग के हितों के समर्थक ससद सदस्य जे० बी० स्मिथ तथा टी० बेजले और उनके सहायक वाटसन, क्राफोर्ड और कुछ दूसरे लोग) भारतीयों की तुलना में बहुत अधिक सशक्त थी। यद्यपि स्वार्थ पर आधारित संबंधो की तुलना में सहानुभूति के बंधन सामान्यतया शिथिल होते है, फिर भी संसद में भारतीयों के कुछ ऐसे हमदर्द सदस्य थे जो भारत मंत्री और भारत सरकार के लिए असुविधाजनक स्थिति उत्पन्न कर देते थे। डिजरायली तथा स्टेफोर्ड नोर्थकोट को लिखे गए अपने पत्रों मे मेयो ने तीव्र आलोचना करते हुए कहा है कि इन भारतीय शिकायतबाज उग्र लोगो की यह सहज प्रवृत्ति है कि ये भारत सरकार के विरुद्ध प्रस्तावों और अल्पज्ञ भारतीय राज-नेताओं का समर्थन करते है।[37] इन्होंने काफी समय से मन मे भरा गुबार उस समय निकाला जब भारतीय वित्त के सबध मे संसद की प्रवर समिति की नियुक्ति की गई। इंडिया आफिस से आरगाइल ने लिखा कि यह एक उबाऊ परंतु उसने इसे अनिवार्य बुराई मानकर अपने आपको सतुष्ट कर लिया था।[38] वित्त सदस्य रिचर्ड टैंपिल ने (मेयो तथा आरगाइल की भांति ही निजी पत्रों मे) श्री एफ० द्वारा पूछे गए प्रश्नों की घोर निंदा करते हुए लिखा कि 'ये प्रश्न तो थे ही नहीं, ये तो भारत सरकार पर

अप्रत्यक्ष रूप से किए गए प्रहार थे।'[39] टैंपिल ने जिस आलोचक को निंदक के रूप में चुन रखा था वह संभवत: हेनरी फास्ट था जो कैंब्रिज विश्वविद्यालय मे राजनीतिक अर्थशास्त्र का प्रोफेसर (1863-84) और ब्राइटन से चुना गया संसद सदस्य (1865 और 1868 मे चुना गया) था। वह न केवल भारत के प्रति सहानुभूति रखने वाले व्यक्ति के रूप में विख्यात था, बल्कि यों कहिए कि वह इसके लिए लगभग कुख्यात था। वह हेनरी हिंडमैन के परामर्शदाताओं मे था जो ट्रिनिटी में उसका शिष्य रह चुका था। हेनरी हिंडमैन (जेम्स गेडस तथा नौरोजी की रचनाओं से प्रभावित होकर) भारतीय हितों का एक अनन्य समर्थक बन गया था।[40] यद्यपि ससद द्वारा की जाने वाली मध्यस्थता अथवा किसी भारत हितैषी संसद सदस्य के अत्यधिक उत्साह पर कलकत्ता स्थित राज-भवन (गवर्नमेंट हाउस) अथवा इंडिया आफिस मे कोई उत्साहपूर्ण प्रतिक्रिया की संभावना नही होती थी, तथापि ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन, बांबे एसोसिएशन तथा ईस्ट इंडिया एसोसिएशन इस प्रकार के अवसरों का उत्सुकतापूर्वक लाभ उठाते थे। नौरोजी को प्रवर समिति के सामने भारतीय वित्त पर अपनी आलोचना रखने का जो अवसर प्रदान किया गया, उसके आधार पर उसकी स्थिति विरोधी प्रवक्ता के रूप में लगभग बँध मान ली गई। जब भारतीय वित्त के संबध मे 1871 में ससदीय प्रवर समिति नियुक्त हुई तो इन संस्थाओं द्वारा भेजे गए स्मरण पत्रों से स्पष्ट है कि ये संसदीय जाच को शिकायत-प्रकाश में लाने का एक माध्यम मानती थी। नौरोजी ने प्रवर समिति के सामने अपने वक्तव्य में कहा था कि साम्राज्य की इस महान संसद का नियंत्रण उन अनेक बुराइयों को रोक सकेगा जिन्हें भारत सरकार मे उत्तरदायित्व की भावना से मुक्ति के कारण प्रोत्साहन मिलता है।[41] यह जाच ब्रिटिश जनता और संसद को जान-कारी कराने का अद्वितीय अवसर थी। यह कह सकना कठिन है कि इन संघो के नौरोजी जैसे सदस्य वास्तव मे यह विश्वास करते थे कि भारतीयों के साथ होने वाले अन्यायो को समाप्त करने के लिए तत्पर संसद और भारत के बीच जानकारी की कमी को दूर करने भर से कोई चमत्कार हो जाने वाला था। यह सत्य है कि इस प्रकार के सहज कथन और इनके साथ-साथ अंग्रेजो के राष्ट्रीय चरित्र के विषय में अस्पष्ट साधारणीकरण काफी प्रचलन में थे। न्याय की भावना आदि का प्राय: उल्लेख किया जाता था। परंतु यह फैशन मात्र, राजनीति के खेल की एक कला, एक तरीका और एक भाषा थी जो वांछित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उपयुक्त समझी जाती थी।

अंत में, किसी दबाव गुट और भारत सरकार के मध्य सलाह और विचारों के आदान-प्रदान का एक अन्य माध्यम विधानपरिषद तथा सरकार द्वारा नियुक्त समि-तियों आदि मे गुट का प्रतिनिधित्व होता था। चेंबर्स आव कामर्स तथा ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन के सदस्यों को विधानपरिषद मे मनोनीत किया गया। एस० एन० बुलन (बंगाल चेंबर आव कामर्स का अध्यक्ष) को सीमा शुल्क मूल्याकन पुनरीक्षण समिति (1860) मे।[42] प्रसन्न कुमार टैगोर (ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन) को आयकर पत्रक मे संशोधन समिति (1860) में[43] और जे० ए० क्राफोर्ड (बंगाल चेंबर आव कामर्स)[44] को 1866 की टैरिफ समिति के सदस्य रूप मे शामिल किया गया। सरकार द्वारा प्रमुख

गुटों के प्रवक्ताओ के रूप में गैर सरकारी व्यक्तियों के सतर्कतापूर्वक चुनाव के ये तथा कुछ अन्य उदाहरण सरकार की इन गुटो के साथ संपर्क रखने की उत्सुकता प्रकट करते हैं। विधान परिषद की शक्तिया इतनी सीमित थी और इन समितियो के कार्य इतने कम महत्वपूर्ण थे कि इन संस्थाओं के साथ गैर सरकारी व्यक्तियों के औपचारिक संबंध से केवल एक ही लाभ था कि संबंध बने रहने के अलावा एक दूसरे के विचारों के बारे मे जानकारी बनी रहती थी। हमने एक अन्य स्थान पर विधानपरिषद मे मनोनीत गैर सरकारी भारतीय सदस्यों में जमीदार अभिजात वर्ग की प्रधानता के कारण पेशेवर शहरी मध्यम वर्ग में उत्पन्न असंतोष का उल्लेख किया है।[15] चूंकि विधानपरिषद की *बहसों के मोटे-मोटे विवरण समाचार पत्रों मे आ ही जाते थे, और चूंकि ये कार्यविवरण* आसानी से उपलब्ध हो जाते थे, अत: इतिहासकारो ने विधानपरिषद की कार्यवाही की ओर विशेष ध्यान दिया है। परंतु इस बात के पक्ष में विशेष प्रमाण नही है कि नीति निर्धारण पर परिषद की बहसों का कोई प्रभाव पड़ता था।

स्मरणपत्र, प्रतिनिधि मंडल, समाचारपत्रों द्वारा प्रचार, संसद मे लाब्वी और विधानपरिषद अथवा सरकारी समितियों मे प्रतिनिधित्व दवाव गुटों और सरकार के बीच संपर्क के महत्वपूर्ण माध्यम थे। परतु अनौपचारिक संबंधों के द्वारा निर्णय को प्रभावित करने की संभावना छोड़ी नही जा सकती। उदाहरण के लिए, प्रशासन के नीचे के स्तर पर काम करने वाले व्यक्तियो पर यूरोपीय व्यापारियों का कुछ प्रभाव था। 1860 मे कलकत्ता मे सीमा शुल्क निर्धारण प्रणाली के बारे मे जांच करते हुए एशले ईडन को सीमा शुल्क अधिकारियो और बंगाल चेंबर आव कामर्स के सदस्यो मे साठ-गाठ का संदेह हुआ था।[16] सीमा शुल्क दरों का निर्धारण बंगाल चेंबर आव कामर्स तथा सीमा शुल्क कलेक्टर द्वारा प्रस्तावित दरों के बीच मे समझौते द्वारा ही हुआ था। ईडन ने पाया कि व्यापार की उन सभी वस्तुओं का अवमूल्यांकन हुआ था जिनमे अधिक प्रभावशाली व्यापारियों की दिलचस्पी थी।[17] इस बारे मे कोई प्रमाण नही है कि इस तरह का भ्रष्टाचार व्यापक था। कम से कम सरकार के सर्वोच्च अधिकारियों से यह आशा नही की जा सकती थी कि वे किसी से इस प्रकार की साठ-गाठ करेंगे। परंतु क्या वे भारत मे अंग्रेज जाति के सामाजिक दवाव से मुक्त थे? इस प्रश्न का उत्तर काफी महत्वपूर्ण है।

ऐसा लगता है कि उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे यूरोपीय लोगों और भारतीयो के बीच सामाजिक दूरी बढ़ने लगी। इससे भारतीयों की यूरोपियनो तक पहुंच अधिक सरल न रही। दूसरी ओर यूरोपियनों के संपर्क का दायरा सकुचित हो जाने से वे अपने ही छोटे से समाज के सदस्यो के दवाव मे अधिक आ गए। प्रवाह के साथ तैरने वालो को तो अधिक दवाव मालूम नही पड़ता, परतु जो धारा के विपरीत जाते है उन्हे इस दवाव की शक्ति का पता चलता है। एंग्लो इंडियन समाज की सामान्य इच्छा के विरुद्ध जब सर चार्ल्स ट्रैवेलियन तथा मेयो ने निर्णय लिए तो उन्हे इसी प्रकार का अनुभव हुआ था। ट्रैवेलियन ने देखा कि किफायतशारी बरतने के उसके प्रयत्नों मे *सेवा भावना और संघ भावना बाधक थी।*[18] *उसके सामने ऐसे मामले आए जिनमे लोगो*

ने प्रधान रूप से भ्रातृ भाव से प्रेरित होकर अपने पद से स्वयं अपने और मित्रों के लिए अनुचित लाभ उठाए थे।[49] जब उसने अपने 1865 के बजट मे अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त चाय, कहवा तथा जूट पर निर्यात कर लगाने का प्रस्ताव रखा तो वह व्यापार में लगे हुए यूरोपियनों का कोपभाजन बना। एंग्लो इंडियन समाचारपत्रों ने समझा कि वह बागान मालिकों के हितों के *विरुद्ध था,*[50] और *जैसा कि फ्रेंड आव इंडिया ने लिखा* कि उसे वाणिज्य और व्यापारी वर्ग के साथ सक्रिय सहानुभूति नही थी।[51] भारत मंत्री ने नए निर्यात करों पर अपनी स्वीकृति नही दी। भारत सरकार अपने द्वारा ही पराजित अधिनियम की संबद्ध धाराएं रद्द करने को बाध्य हुई, और वर्ष समाप्त होने से पहले ही ट्रैवीलियन का स्थान ग्रहण करने के लिए इग्लैंड से डब्ल्यू० एन० मैसी आ गया।[52] मेयो का मामला अधिक मनोरंजक है क्योकि उसे नौकरशाही और सेना के ही भीतरी दबावों से सघर्ष करना पड़ा था। जब उसने सेना पर व्यय मे कमी करने का प्रयत्न किया तो उसका अपने ही कमांडर इन चीफ से संघर्ष प्रारंभ हो गया। दोनों ओर से टिप्पणियों का युद्ध प्रारंभ हो गया। इस संघर्ष में सेनाध्यक्ष ने फेबियन दावपेच इस्तेमाल किए (*निर्णय न होने देने के लिए उसने सबधित कागजात अपने पास रोक लिए*), *उसने अपने* शत्रु पर अप्रत्यक्ष वार भी किया (भारत मत्री और उसकी परिषद के सदस्यों के साथ सीधा पत्र व्यवहार करके), और पूरी तरह मात देने के लिए सेना सबधी मामलों के सदस्य ने तो खुलकर प्रतिकारात्मक वार किया (उसने सेना पर व्यय मे कमी न करने और असैनिक व्यय में कमी करने का प्रस्ताव रखा)।[53] सेना के रसद विभाग और बैरक निर्माण पर व्यय मे कमी करने के लिए मेयो को पूरा लाछन मिला[54] परंतु उसने दृढ़ निश्चय के साथ मोटी तनख्वाह पाने वाले दायित्वहीन सैनिक पदाधिकारियों[55] और अपने उन सहयोगियों के साथ सघर्ष किया जो पहले मितव्ययता के लिए काफी जोरदार माग कर रहे थे।[56] भारत मत्री ने सेना पर व्यय मे कमी को अस्वीकार कर दिया। अतः हारकर मेयो ने *बड़ी कटुता के साथ लिखा : 'स्वार्थ को पराजित कर पाना कठिन है। जन सेवा* का स्थान तो गौण है।'[57] इसी प्रकार की एकता 1870 में सिविल सेवा के अनुबंधित (कावेनेंटेड) अधिकारियों ने दिखलाई थी जब उन्होंने ऊची पेशनों के लिए आदोलन चलाया था। संघ भावना से प्रभावित होकर गवर्नर जनरल और उसकी परिषद ने भारत मंत्री को इनके मामले पर अपनी सिफारिश की। इस मामले में ब्रिटिश सरकार के अधिकारियों पर यह दबाव कारगर सिद्ध नही हुआ। और कुछ भी हो, अर्थाभाव के कारण पेशनें बढ़ाई नही जा सकी। आरगाइल ने स्पष्ट रूप से एक सरकारी विज्ञप्ति मे कहा था कि गवर्नर जनरल की परिषद मे विधि सदस्य और गवर्नर जनरल को छोड़कर सभी व्यक्ति सिविल सेवा के व्यक्ति है और उनका इस मामले के साथ व्यक्तिगत हित जुड़ा हुआ है।[58] आरगाइल के *मतानुसार साम्राज्य में ही नही, सभवतः विश्व भर मे* दूसरी सेवाओं मे लगे हुए व्यक्तियों की तुलना मे भारतीय सिविल सेवा मे अधिकारियो के वेतन अधिक थे।[59] सेवा निवृत्ति के बाद ऊचे भत्तों और अधिक सुविधाओ के लिए सरकारी अधिकारियों के आवेदनपत्र की अस्वीकृति संबंधी विज्ञप्ति की भाषा से अधिकारियो के रुष्ट हो जाने के भय के कारण मेयो ने आरगाइल से आग्रह किया था

कि विज्ञप्ति को प्रकट न किया जाए।[61] मामला शांतिपूर्वक रद्द कर दिया गया। ये घटनाए इस बात की ओर सकेत करती है कि प्रशासन और सेना में भी कुछ स्थितियों में उसी प्रकार के व्यवहार का ढर्रा उभर कर आता था जैसा कि बाहर के हितबद्ध गुटों मे होता था और भ्रातृ भाव, सघ भावना और स्वदेशवासियो के प्रति सहानुभूति महत्वहीन तत्व नही थे। तथापि नीति निर्धारण सबधी सामाजिक दबाव के बारे में और अधिक साधारणीकरण करने से पहले हमे सिविल सेवा अधिकारियों की पृष्ठभूमि, भारत मे यूरोपीय समुदाय के अन्य लोगों के साथ इनके सबंधो, उनके पूंजी निवेशों, तथा उनके हितों को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रभावित करने वाले सरकारी निर्णयों के प्रति इनके दृष्टिकोण की गहरी जानकारी आवश्यक है। परंतु यह ठीक ही है कि सामाजिक दबाव निर्णयो को प्रभावित करने का एक माध्यम था और इसे सामूहिक परंपरागत समझदारी आचरण के स्वीकृत प्रतिमान तथा पारस्परिक प्रत्याशाओं से उत्पन्न होने वाली अनिवार्यताओं से बल मिलता था।

सामाजिक दबाव सहानुभूति पाने के लिए डाला जाता था। सत्तावादी प्रणाली मे यदि दबाव गुटों की मागें पूरी नही की जाती थी तो उनमें से अधिकाश अनुशास्ति (सैक्शन) का प्रयोग करने मे असमर्थ होते थे। संभवतया मेनचेस्टर चेंबर आव कामर्स अथवा काटन सप्लाई एसोसिएशन जैसी सशक्त संस्थाएं भारत मंत्री के लिए कठिनाइया उत्पन्न कर सकती थी। शायद इसी प्रकार भारत मे चेंबर आव कामर्स भी उपद्रव कर सकते थे। परंतु साधारतया दबाव गुट अधिक से अधिक समझा-बुझा सकते थे, अनुरोध कर सकते थे अपना मामला रख सकते थे, और परामर्श दे सकते थे। इस दृष्टि से सहानुभूति पाना काफी महत्वपूर्ण था। विदेशी शासन के कारण देशी गुटों की कुछ खास असमर्थताए थीं। इन असमर्थताओं में दोनो प्रजातियों के बीच सामाजिक दूरी भी कम महत्व नही रखती थी। वस्तुत. इसी से भारतीय हितो की तुलना मे ब्रिटिश हितों को अत्यधिक सुविधा मिली हुई थी।

ऊपर दबाव गुटों की किस्मो और कार्यपद्धतियों के विषय में जो कुछ कहा गया है उससे इनके कुछ लक्षण प्रकट होने के साथ-साथ इनके कार्यकलाप भी पृथक हो जाते है। यहा सभी संगठनो और संघों की सूची तैयार करना और उनके कार्यो का विस्तृत वर्णन करना लाभप्रद नही होगा। राष्ट्रीय राजनीति के इतिहासकारो ने इस दिशा में काफी कार्य किया है। हमारी दिलचस्पी सरकार और दबाव गुटो के बीच क्रिया-प्रतिक्रिया और लोकवित्त की निर्णय प्रतिक्रिया पर पड़ने वाले इनके प्रभावों में अधिक है। हितसमरूपता की मात्रा, गुट के रूप मे संगठन तथा एकीकरण के अश, तथा उद्देश्यो की विशिष्टता के आधार पर हमने गुटों के दो भेद किए है। पहली किस्म के गुट है—चेंबर आव कामर्स, भूस्वामी (जमीदार) संघ, बागान मालिक सघ, व्यापारी गुट आदि, और दूसरी किस्म के गुट है—अग्रराजनीतिक संघ (प्रोटो पालिटिकस एसोसिएशन), परोपकारी विचार गुट, सुधारवादी उत्साही वर्ग आदि। इनके अलावा असंगठित और अस्थाई गुट भी थे, जो अपेक्षाकृत मूक और असंगठित जनसमुदाय की प्रतिक्रिया प्रकट करते थे और ऐसा लगता है कि इस प्रकार के लोग अनायास ही कभी-कभी एकत्र हो जाते थे, भारी

संख्या में याचिका (अर्जी) पर हस्ताक्षर करते थे अथवा प्रतिनिधि मडल भेजते थे, परंतु इनके इन सब कार्यों से दवाव गुट नहीं वनता था। व्यवस्था मे सफलतापूर्वक कार्य करने अथवा राजनीति के इस खेल में कामयाबी हासिल करने की दृष्टि से प्रथम स्थान पहली किस्म के, द्वितीय स्थान दूसरे प्रकार के और अंतिम स्थान अव्यवस्थित गुटों का था। इसके विपरीत, व्यवस्था के खतरे की आशका के पहलू से विचार करने पर इन गुटों का क्रम ठीक उलटा हो जाता है। पहले प्रकार के गुट दवाव डालने की कला में दक्ष थे। दूसरी श्रेणी मे आने वाले गुट अभी कार्य संपादन, भारी परिश्रम के साथ स्मरणपत्र तैयार करके भेजना, लाब्वी करना और सामान्यतया 'उपद्रव करना सीख रहे थे। साधारण लोग जिन्हें मेयो ने मूक बहुतेरे कहा है[62] इस कला मे अकुशल थे। उनकी शिकायतें तथा मागें बंगाल के नील विद्रोह तथा दक्षिण की बगावत की भाति बड़े विद्रोहों के रूप मे प्रकट होती थी। (बंगाल में नील विद्रोह में सम्मिलित होने वाले किसानों को थोड़े से जमीदारों और ग्रामीण समाज के बाहर कलकत्ता के शिक्षित मुख्तारों, पत्रकारों और मिशनरियों का समर्थन मिला था।[63] इसी प्रकार दक्षिण के किसानों को मालगुजारी में वृद्धि के विरुद्ध आदोलन में पूना सार्वजनिक सभा की सहानुभूति प्राप्त थी जिसने किसानों की शिकायतों के संबंध मे जाच की व्यवस्था की थी।[64] परंतु 1859 में बगाल मे और 1875 में दक्षिण मे जो भी विद्रोह हुए वे पुरानी अनिर्णीत शिकायतो के फलस्वरूप स्वत: प्रवर्तित विस्फोट थे और उनका नेतृत्व दवाव गुटों के दाव पेच में कुशल शहरी व शिक्षित व्यक्तियों के हाथ में नही था। यह स्पष्ट किया जा चुका है कि नील उत्पातों से संबधित अभिलेखों में गावो के जिन मुखियों अथवा मंडलों के नाम नेताओं के रूप में मिलते है वे इतने अधिक हैं कि प्रत्येक का उल्लेख कर पाना कठिन है...' किसी भी गांव मे जो नेता उत्पन्न हो गए, उनका अत्यधिक प्रभाव अविश्वसनीय अल्प समय में पास पड़ोस के अनेक गावों मे हो गया, परंतु यह प्रभाव नष्ट भी उतनी ही शीघ्रता से हो गया।[65] दक्षिण के किसानों की याचिकाओं से वहा के उपद्रवों की पूर्व सूचना मिल गई थी। इन याचिकाओं में एक याचिका विशिष्ट थी जो जुलाई 1873 में इंदापुर गाव की एक सभा में तैयार की गई थी, जिस पर थोड़े ही समय मे 2,694 व्यक्तियों के हस्ताक्षर हो गए थे जिससे यह काफी प्रभावशाली वन गई थी। 1875 के उपद्रव आत्मस्फूर्त थे और वे उस प्रकार के संगठित आंदोलन से भिन्न थे जैसा कि पूना सार्वजनिक सभा ने सोचा था।[66] बंगाल और दक्षिण के आदोलनो के वैधानिक हस्तक्षेप के रूप में कुछ सारपूर्ण परिणाम निकले। सरकार ने किसानों की शिकायतो की ओर ध्यान दिया। परंतु वंगाल और दक्षिण के किसानो ने जो कुछ भी किया वह उच्च वर्गीय दवाव गुटों के परिष्कृत दाव पेचों के नियमों के विरुद्ध था।)

ब्रिटिश दवाव गुटों की भारतीयों की तुलना में निर्णय अधिकारियों पर सामाजिक दवाव डालकर उन्हें प्रभावित करने की क्षमता न केवल अधिक थी, वल्कि उन्हे और भी सुविधाएं मिली हुई थीं। ब्रिटेन मे सरकारी अधिकारियों के साथ उनके सीधे संपर्क निर्णायक सिद्ध हुए। 1875-79 की अवधि मे भारत मंत्री द्वारा मेनचेस्टर के माल पर आयात शुल्क हटाने के लिए किए गए हस्तक्षेप (और वाद मे भारतीय सूती वस्त्रों का मूल्य

मेनचेस्टर के मूल्य के बराबर करने के उद्देश्य से उन पर उत्पादन शुल्क लगाकर किए गए हस्तक्षेप) ने पक्षपात के नाटकीय प्रदर्शन के रूप में जनसाधारण का ध्यान आकर्षित किया। अठारहवी शताब्दी के सातवें दशक में सूती वस्त्रो और जूट के माल पर निर्यात शुल्को में कमी करने के प्रश्न पर इंडिया आफिस का हस्तक्षेप कम नाटकीय होते हुए भी कम प्रभावोत्पादक नहीं था। प्रतियोगी भारतीय गुटों की तुलना मे ब्रिटिश हित बद्ध गुटों की सुसंगठित कार्यवाही की सामर्थ्य काफी अधिक थी। भारतीय गुटो की असमर्थता का कारण अनुभव की कमी और नए प्रकार से लाब्बीग के लिए आवश्यक विशिष्ट प्रपंचपूर्ण कला का अभाव भी था। ब्रिटिश हितबद्ध गुटों की इस श्रेष्ठता से इसकी सफलता का आंशिक (आंशिक इसलिए कि और भी अधिक महत्वपूर्ण कारण थे) स्पष्टीकरण हो जाता है। उदाहरण के लिए, काटन सप्लाई एसोसिएशन तथा बागान मालिक संघो को 1862 में भूमि संबंधी नियमो मे परिवर्तन करवाने मे सफलता मिली थी। डंडी चेंबर आफ कामर्स जो 1869 मे जूट के तैयार माल पर आयात शुल्क हटवाना चाहता था,-1870 मे यह उद्देश्य प्राप्त करने में सफल हो सका। उन्नीसवीं शताब्दी के पाचवें दशक मे निजी पूजी लगाने वालों को रेलों मे पूजी लगाने पर चाहे लाभ हो या न हो, राज्य से निश्चित ब्याज की गारंटी पाने मे सफलता अवश्य मिली थी। मेनचेस्टर के सूती वस्त्र उत्पादकों को उनके माल पर लगने वाले आयात शुल्क में 1862 और 1863 मे कमी करवाने मे, और फिर 1869 में इसे पूरी तरह से हटवाने में सफलता मिली।[67] 1870 मे बंगाल में जूट मिलो के मालिक जिनमे अधिकांश स्काटलैंड निवासी थे, डंडी चेंबर आफ कामर्स से पराजित हो गए। (यह स्मरणीय है कि इनमें प्रतियोगिता मुख्य रूप से आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और दक्षिण अफ्रीका के बाजारो में थी।) शोरे पर निर्यात शुल्क मे कमी करवा पाने के लिए इसके उत्पादकों और निर्यातकों को पाच वर्ष तक संघर्ष करना पडा था। (हालाकि शोरे का व्यापार तो स्वाभाविक रूप से समाप्त हो रहा था, क्योंकि यूरोप मे शोरे के कृत्रिम उत्पादन तकनीक ने इसके पुनर्निर्यात व्यापार को नष्ट कर दिया था।) परंतु अधिकाश मामलो में सरकार की प्रतिक्रिया स्वीकारात्मक और अविलंब होती थी। सरकार को प्रभावित करने में मेनचेस्टर की सफलता ने तो इतिहासकारों का ध्यान आकर्षित किया है, परतु भारत मे ब्रिटिश हितबद्ध गुट कम प्रभावशाली नही थे। कुछ निर्णयों को प्रभावित करने मे बंगाल चेंबर आफ कामर्स की सफलता का रेकार्ड आश्चर्यजनक है। अप्रैल, 1859 मे चेंबर ने ऊंचे टैरिफ शुल्को पर विरोध प्रकट किया (टैरिफ शुल्क सैन्य विद्रोह के कारण असाधारण सरकारी खर्चो का परिणाम थे) और फरवरी, 1860 मे विल्सन ने अनेक निर्यात शुल्क (जूट, सन, फ्लैक्स, खाल, ऊन आदि पर निर्यात शुल्क) हटा दिए।[68] अगस्त, 1860 में मेनचेस्टर, बंबई तथा मद्रास के चेंबर आफ कामर्स के समर्थन पर बंगाल चेंबर आफ कामर्स ने सीमा शुल्क मूल्याकन में सशोधन की माग की और अक्तूबर, 1860 मे सरकार ने मूल्याकन मे संशोधन करने के लिए एक समिति नियुक्त कर दी जिसका एक सदस्य बंगाल चेंबर का प्रतिनिधि भी था।[69] फरवरी 1861 मे बंगाल चेंबर ने शोरे के निर्यातकर्ताओं की इस माग का समर्थन किया कि निर्यात शुल्क में कमी की जानी चाहिए और

मार्च, 1865 में यह कमी (दो रुपये प्रति मन से एक रुपया प्रति मन) कर दी गई।[70] अप्रैल, 1865 में बंगाल चेंबर आफ कामर्स ने ट्रैवीलियन द्वारा प्रस्तावित चाय,कहवा, जूट खाल, ऊन आदि पर नए आयात शुल्कों की निंदा की। मई, 1865 में भारत मंत्री ने इन शुल्कों के संबंध मे स्वीकृति देने से इंकार कर दिया और जून मे भारत सरकार ने इन्हें निरस्त (रिपील) कर दिया।[71] फरवरी, 1866 में बंगाल चेंबर ने शोरे पर निर्यात शुल्क में और अधिक कमी करने की माग की और उसी वर्ष इसमें और अधिक कमी कर दी गई (एक रुपये प्रति मन के स्थान पर मूल्यानुसार 3 प्रतिशत)।[72] नववर, 1867 मे चेंबर ने सीमा शुल्क मूल्यांकन में और विशेष रूप से सूती वस्तुओं के बारे मे संशोधन चाहा और फरवरी 1868 में मूल्याकन में संशोधन करने के लिए एक समिति नियुक्त कर दी गई (सूती वस्त्रो के मूल्यांकन में 15 प्रतिशत की कमी कर दी गई)।[73] दो मामलों में बगाल चेबर आफ कामर्स को उतनी अधिक सफलता नहीं मिली। मार्च, 1867 मे चेंबर ने खाद्यान्न व्यापारियों के निर्यात शुल्क में कमी के लिए चलाए गए आंदोलन का समर्थन किया,[74] परंतु जनवरी, 1873 तक गेहूं पर शुल्क हटाया नहीं गया। इसके अलावा चेंबर द्वारा प्रत्यक्ष करों का विरोध एक हारे हुए मामले की वकालत थी, क्योंकि सरकार आय के एक बड़े सभावित स्रोत को पूरी तरह से छोड़ने के लिए अनिच्छुक थी।[75]

यद्यपि सरकार के निर्णयों को प्रभावित करने के लिए प्रयत्नशील ब्रिटिश और भारतीय दबाव गुटों में से *किसी का भी परिणाम पर पूरा नियंत्रण नहीं था,* फिर भी कुल मिलाकर ब्रिटिश हितबद्ध गुटों को अकसर थोड़े समय ही में सफलता मिल जाती थी। यह हम पुनः स्पष्ट कर देना चाहते है कि उक्त कथन का यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि ब्रिटिश दबाव गुट जो चाहते थे, सदैव करवा ही लेते थे। आखिरकार सरकार के सामने भी महत्वपूर्ण सीमाएं थी। ब्रिटिश हितबद्ध गुटों द्वारा की जाने वाली मागों के *अलावा स्वयं व्यवस्था की मांगें भी तो थीं। साम्राज्यवादी व्यवस्था को भी तो* बनाए रखना आवश्यक था। उसकी वैधता और सुरक्षा, उसके वित्तीय सामर्थ्य और अपने आपको बनाए रख सकने की क्षमता को संकट मे नहीं डाला जा सकता था। अतएव व्यवस्था की आवश्यकताओं से विविध बंधन उत्पन्न हुए थे। एक तो करों मे रियायत, सीमा शुल्कों के निरस्तीकरण, आयकर की समाप्ति आदि की माग, ब्रिटिश हितों के द्वारा कितने ही जोरदार शब्दो में और आग्रहपूर्ण ढग से क्यों न उठाई गई हो, सरकार इन पर सपूर्ण वित्तीय स्थिति को ध्यान में रख कर ही विचार कर सकती थी। यदि सरकार के लिए सभव होता था तो रियायतें दी जाती थीं, अन्यथा चेंबर आफ कामर्स तथा वेतन भोगियों के लिए अप्रिय आयकर के मामले में सरकार के सामने कोई विकल्प नही था। इस विषय पर अथवा सूती वस्त्रों पर आयात शुल्क के मामले मे चेंबर्स आफ कामर्स को सरकार के नकारात्मक उत्तर का साराश यह था कि सरकार के लिए यदि इन करो को हटा सकना संभव होगा तो इन्हें हटा दिया जाएगा, परंतु सरकार ऐसा कर पाने मे असमर्थ है। इस प्रकार के वादे किए गए कि जैसे ही मौका मिलेगा, इस दिशा में कार्य किया जाएगा। परंतु दबाव गुटो को इससे पूरा संतोष नहीं हुआ। व्यापारी ही नही, प्रत्येक करदाता अपने ही जीवन काल मे राहत चाहता था, जबकि सरकार जो अपनी

वित्तीय स्थिरता को जोखिम मे नही डालना चाहती थी, धीमी प्रगति से संतुष्ट थी (*उदाहरणार्थ*, धीरे-धीरे प्रगति से ही लगभग पूर्ण रूप से अबाध व्यापार 1882 में संभव हो सका)। परंतु जिसे हम संबद्ध अवधि कह सकते है, वह आखिरकार सरकार के लिए भी अधिक थी।

द्वितीय सरकार जनसाधारण मे अपने विषय मे प्रचलित धारणाओं के बारे में बिलकुल उदासीन नही थी। बार्टल फ्रेर ने सरकार को जनसाधारण की भावना समझने की सलाह दी थी। मेयो ने भी देखा था कि भारतीयों मे वित्तीय मामलों के बारे में काफी चेतन। आ रही है। और तो और परंपरागत रूप से शात मद्रास मे (राज बोर्ड आफ रेवेन्यू) को यह लगने लगा था कि 'प्रजा में से अधिकाधिक लोग सरकार के निर्णयों का सूक्ष्म परीक्षण करने के अलावा उस पर काफी समझदारी के साथ बहस भी करने लगे हैं।'[76] वित्तीय संकट के समय विल्सन ने ब्रिटिश फर्मों के द्वारा यूरोप के महान औद्योगिक देशो को जूट, कपास आदि कच्चे पदार्थों *के निर्यात पर शुल्क हटाने का प्रतिवाद किया* था (1860)। लैंग ने बडे ही उत्साह के साथ सूती वस्त्रों पर आयात शुल्क में कमी को न्यायोचित ठहराया था (1861-1862)। इन दोनों उदाहरणो से यह बात जाहिर होती है कि सदस्य केवल अपने प्रत्यक्ष श्रोताओं अर्थात विधान परिषद के सरकारी और आज्ञापरायण मनोनीत गैर सरकारी सदस्यों को ही संबोधित नही करते थे। ये वस्तुत: ब्रिटिश हितबद्ध गुटों को दी जाने वाली रियायतों को जनसाधारण के सामने न्यायोचित ठहराने के प्रयत्न थे। ट्रैवीलियन के अनुसार 'सरकार में लोगों की आस्था के लिए उसकी ख्याति' बनाए रखना उपयोगी था।[77] वायसरायों और सदस्यों के बीच पत्र व्यवहार मे इस बात के अप्रत्यक्ष प्रमाण मिलते है कि सरकार इस बात का ध्यान रखती थी कि जनसाधारण उसके बारे मे क्या सोचता है। उन सभी निर्णयों पर जो लोकप्रिय नही होते थे अथवा उस सूचना पर जिस पर प्रतिकूल प्रतिक्रिया हो सकती थी व्यक्तिगत पत्र व्यवहार मे विचार विमर्श होता था। आयात शुल्कों मे कमी के लिए वुड का आग्रह और विशेष रूप से उसकी भारतीय सूती वस्त्रो के बारे मे शुल्क योजना जिसका उद्देश्य *भारतीय माल का मूल्य ब्रिटिश सूती वस्त्रों के मूल्य के बराबर करना था* (भारतीय सूती वस्त्रों पर उत्पादक शुल्क अथवा भारत मे सूत तैयार करने वाली मिलों पर विशिष्ट कर) केवल एल्गिन और बार्टल फ्रेर को *छोड़कर सभी के लिए गोपनीय थी*।[78] देशी जुलाहा विषयक कागजात (उदाहरणार्थ घरेलू वस्त्र उद्योग के विषय मे ट्रैवीलियन द्वारा एकत्रित सूचना आगे देखिए) को सीमित वितरण के लिए गोपनीयता के उद्देश्य से उतनी ही सावधानी के साथ छापा गया था जितनी बजट छापने के समय अपनाई जाती है। ट्रैवीलियन ने वुड को यह विश्वास दिलाया कि गवर्नर जनरल की परिषद और इंडिया आफिस को देने के लिए दर्जन से भी कम प्रतियां छापी गई है और इनके अतिरिक्त इंग्लैंड और भारत मे कोई दूसरा व्यक्ति इन्हे देख भी नही सकेगा।[79] और भी 1862 मे स्थाई बदोबस्त लागू करने के संबंध मे व्यापक रूप से ज्ञात सरकारी फैसले को बदलने का निर्णय क्रेनबोर्न, आरगाइल, लारेंस तथा मेयो ने अपने गोपनीय पत्र व्यवहार मे विचार विमर्श द्वारा किया था; और 1871 तक नई नीति को सार्वजनिक रूप से

स्वीकार नहीं किया गया था।[80] जनता की प्रतिक्रिया के बारे में सरकार की चिंता के ये कुछ उदाहदण है। जैसा कि चार्ल्स वुड के साथ ट्रैवीलियन के निजी पत्र व्यवहार[81] से स्पष्ट है सरकार की यह चिंता सैन्य विद्रोह के बाद के वर्षों में अधिक थी। बाद में भी यह चिंता सरकार की वित्तीय नीति पर जिसका अधिकाधिक आलोचनात्मक दृष्टि से सूक्ष्म परीक्षण होने लगा था प्रतिबंध का कार्य करती रही।

एक तीसरे प्रकार की सीमा इस तथ्य से निर्धारित होती है कि ब्रिटिश सरकार ने भारतीय साम्राज्य को एक उपव्यवस्था के रूप में विश्वव्यापी साम्राज्य का अशमात्र समझ लिया था और भारत सरकार से साम्राज्यिक हितों की पूर्ति के लिए त्याग का आग्रह किया गया था। अत. इस उपव्यवस्था ने अपने अल्प स्रोतों के मुकाबले की गई भारी मांगों से अपने आपको बचाने का यथासंभव प्रयत्न किया। उदाहरणार्थ ब्रिटिश सेना विभाग (वार आफिस) तथा नौ सेना विभाग (एडमिरल्टि) ने भारत सरकार पर भारी खर्च थोप दिए थे। भारत सरकार ने उन्हे कम करवाने अथवा उनसे पूरी तरह बचने का प्रयास किया था। प्रतिरक्षा मंत्री कार्डवैल का तर्क था कि भारत से ऐसी ब्रिटिश सेना का खर्च वसूल करना न्यायोचित है जिसे रिजर्व माना जा सकता है और आपात्काल में भारत सरकार जिसका प्रयोग खुद कर सकती है। सेना विभाग ने भारत के बाहर ब्रिटिश सेना के अभियानों पर होने वाले व्यय को भारत और ब्रिटेन के बीच में असमान रूप से बांटा और न्यायोचित भी ठहराया।[82] आरगाइल ने यह स्वीकार किया कि भारत पर लादे गए खर्चों में कुछ तो वास्तव मे अत्यधिक है। फिर भी, उनसे दृढ़तापूर्वक कहा कि युद्ध संबंधी खर्चों का मामला केवल भारतीय न होकर साम्राज्यिक है और कभी भी इस बारे मे निर्णय केवल भारतीय आवश्यकताओं को आधार मानकर नही हो सकता।[83] भारत सरकार इंडिया आफिस के माध्यम से सेना विभाग (वार आफिस) के साथ बातचीत द्वारा इस उगाही मे कमी नही करवा सकी। न्याय अथवा ईमानदारी की अस्वीकृति के प्रति लारेंस ने विरोध किया और मेयो ने आशंका व्यक्त की थी कि 'यहा पर (भारत में) ऐसा असंतोष उत्पन्न हो सकता है जिसे शात कर पाना कठिन होगा।' परंतु इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया।[84] भारत सरकार को हिंद महासागर में सामान्य नौ सैनिक प्रतिरक्षा के लिए मनमाने ढंग से निर्धारित राशि ब्रिटेन के नौ सेना विभाग को अदा करनी होती थी। उसने इस स्थिति का दृढ़तापूर्वक विरोध प्रकट करते हुए मामले को उठाया। लारेंस ने लिखा था कि 'मेरा विचार है कि यह ऐसी जिम्मेदारी है जिसे वह (इंग्लैंड) वाणिज्य से मिलने वाले लाभो के बदले में निबाहता है...।' मेयो ने इस व्यवस्था को बहुत स्पष्ट व संक्षिप्त भाषा में 'एक अत्यधिक लज्जाजनक डकैती का कार्य' कहा।[85] भारत सरकार के हितों की रक्षा के ये तथा कुछ अन्य दृष्टात कभी-कभी भारत के संरक्षकों की निष्पक्षता एवं महानता के उदाहरण के तौर पर पेश किए जाते है। वास्तविकता चाहे कुछ भी हो, भारत सरकार के अधिकारियों के लिए यह स्वाभाविक था कि वे अपनी सरकार की आय पर की जाने वाली बाहरी मागो मे कमी करवाने का प्रयत्न करें (यद्यपि इस मामले में वे असफल रहे)। प्रांतीय सरकारों तथा प्रशासनिक विभागों का भी ठीक यही रवैया था जो केंद्रीय

(या उच्चतम) सरकार के साधनों से यथासंभव बड़ा भाग प्राप्त करने के लिए संघर्ष करते रहते थे।[86] उपव्यवस्था को उसके साधनों से वंचित करने पर उसकी प्रतिक्रिया का सामान्य रूप यही होता था।

वित्तीय सामर्थ्य बनाए रखने की आवश्यकता, जनसाधारण द्वारा सरकारी नीतियों की छानबीन की स्थिति में नेकनीयती की ख्याति सुरक्षित रखने की जरूरत और अपने साधन-स्रोतों में दूसरों का हस्तक्षेप रोकने की आवश्यकता जैसी बुनियादी जरूरतों के अलावा कुछ अन्य संगत और असंगत दोनों ही प्रकार के घटक थे जिनसे ब्रिटेन और ब्रिटिश नागरिकों के हितों को प्रभावित करने वाले भारत सरकार के निर्णय निर्धारित होते थे।

पहले हम असंगत तत्वों पर विचार करेंगे। हम यह तर्क दे चुके है कि निर्णय अधिकारियों तक अपनी सामाजिक पहुंच और उन पर सामाजिक दबाव डाल सकने की सामर्थ्य के कारण ब्रिटिश हितबद्ध गुटों के लिए शासकों की सहानुभूति पाना सहज था। परंतु यदि उपर्युक्त बात में सचाई है तो यह भी सत्य है कि सरकार के ऊंचे अधिकारियों में ऐसे भी लोग थे जिनके बारे में यह कहा जा सकता है कि उनकी कलकत्ते के अंग्रेज जूट-व्यापारियों अथवा बंबई के चमड़ा-व्यापारियों में विशेष दिलचस्पी नहीं थी और वे इनसे कुछ दूर ही रहना चाहते थे। मेयो जैसे अभिजातवर्गीय लोग भारत में रहने वाले गैर-सरकारी यूरोपियनों को हेय दृष्टि से देखते थे। व्यापार एवं उद्योगों में लगे हुए यूरोपीय इसी श्रेणी में आते थे। मेयो ने इनके विषय में लिखा है कि 'ये लोग यहां पर काले लोगों से यथासंभव रुपया ऐंठने के लिए आते हैं...मुझे इस वर्ग के प्रति कोई सहानुभूति नहीं है और इन्हें यह मालूम है।'[87] ऐसा विश्वास किया जाता है कि सर चार्ल्स ट्रेवेलियन और भारत में निवास करने वाले ब्रिटिश व्यापारी वर्ग में पारस्परिक सहानुभूति का अभाव था। वित्त सदस्यों में केवल विल्सन ही ऐसा था जो टोप-उत्पादन जैसे मामूली से व्यवसाय कर चुका था। इस व्यवसाय को उन दिनों कितने हीन भाव से देखा जाता था यह उस समय के व्यंग्यों तथा राजनीतिक कार्टूनों में दिखलाई पड़ता है। (इस पुस्तक में इस प्रकार के दो कार्टून सम्मिलित किए गए हैं।) एल्गिन ने व्यंग्य का पुट देकर लिखा कि प्रथम दो वित्त-सदस्य जेम्स विल्सन और सैमुअल लैंग (जिसका कुछ संबंध रेल-उद्यमों से था), मध्यवर्गीय सटोरिये व्यवसायी समाज के थे।[88] जान लारेंस के अतिरिक्त सभी वायसराय अभिजात वर्गीय थे और यह नियम सा हो था कि इस वर्ग के लोग व्यापारियों को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखते थे। फिर भी, भारत में ब्रिटिश व्यापार तथा उद्यम की उपयोगिता एवं महत्त्व के विषय में उनके विचार सामान्य ज्ञान पर आधारित होते थे। भारतीय सिविल सेवा अपने श्रेष्ठ वर्गीय गौरव के बावजूद, अपनी परंपराओं और सामाजिक रचना की दृष्टि से ब्रिटेन सेना की भांति ऊंचे पेशों में नहीं आती थी। भारतीय सिविल सेवा के अनेक लोग, जिन्हें जी० ओ० ट्रेवेलियन 'काम्पीटीशन वाला' कहता था, संभवतः व्यापार को अभिजात वर्ग सुलभ हेय दृष्टि से नहीं देखते थे। किसी भी मामले में ऐसा नहीं लगता कि सेक्रेटेरियट अथवा इंडिया आफिस में पूर्वाग्रह इतना प्रबल था कि अधिकारी व्यापारियों को अविश्वास

वृद्धा की भांति संदेह की दृष्टि से देखते थे और यह समझते थे कि वे सभी उससे अप्रत्याशित ढंग से अवैध पक्षपात पाने के लिए कोई षड्यंत्र कर रहे है।[89] महज अधिकारियों के दंभ के कारण व्यापारी वर्ग कभी हतोत्साहित नही हुआ और यह सर्वविदित है कि राष्ट्रीय भावना की अपील के (हमारे सम्राट के मुकुट का सबसे सुदर रत्न···यह दूर तक विस्तृत साम्राज्य···सूर्यास्त कभी नही होता···आदि के) आश्चर्यजनक परिणाम निकले है।

नौकरशाही की अकर्मण्यता, सरकारी मशीनरी की शाही धीमी गति, विभागीय दृष्टिकोण की पवित्रता और एक साधारण सरकारी कर्मचारी में इस पवित्रता से हटने की अनिच्छा उन व्यापारियों के रास्ते में बाधाएं थी जो अपने लक्ष्यों को जल्दी प्राप्त करना चाहते थे। ईस्ट इंडिया कंपनी की कार्यावधि की समाप्ति जैसी महत्वपूर्ण घटना के साथ सैन्य विद्रोह जैसे संकट का संयोग हो जाने पर ही सरकार अपनी परंपरागत लीक से हट सकी। छठें दशक मे विल्सन और उसके उत्तराधिकारियों द्वारा निर्धारित नीतियां कार्यान्वित की गईं और सर्वोच्च नीति निर्धारक अधिकारियों से लेकर छोटे से छोटे सरकारी कर्मचारियो तक, सभी के लिए, नीति-विषयक कुछ धारणाएं लगभग निर्विवाद सूक्तियां बन गई। ये धारणाए जो सामूहिक रूप से विभागीय दृष्टिकोण के नाम से प्रसिद्ध थीं, एक विशेष प्रकार के आर्थिक सिद्धात पर आधारित थीं। इस विषय की विवेचना आगे की गई है।

उपर्युक्त सीमाओ के भीतर, किसी भी हितबद्ध गुट द्वारा डाला जाने वाला दबाव निर्णायक होता था। गुट की सफलता इस बात पर निर्भर होती थी कि उपर्युक्त रीतियो को कितने प्रभावशाली ढंग से प्रयोग में लाया गया है और क्या सरकार को उसकी समग्र वित्तीय स्थिति, (संतुलित बजट अथवा शोधनक्षमता को उस समय असाधारण महत्व दिया जाता था), ब्रिटिश सरकार के कर्मचारियों की नीति, विभागीय दृष्टिकोण आदि के द्वारा, निर्धारित सीमाओ तक, दबाया जा सका है या नहीं। सभी हितबद्ध गुट सरकारी निर्णयों को प्रभावित करने में समान रूप से सफल नही हो पाते थे। यह कहा जा सकता है कि बर्मा के अंग्रेज खाद्यान्न व्यापारियों (वे 1867 मे खाद्यान्नों पर शुल्क में कमी करवाना चाहते थे और इसके लिए उन्हे 1873 तक प्रतीक्षा करनी पड़ी) या भारत से इंग्लैंड को शोरे का निर्यात फिर वहां से उसका पुर्ननिर्यात करने वाली ब्रिटिश फर्मों (शुल्क मे कमी के लिए इनका आदोलन 1860 में प्रारंभ हुआ था और उसे पाच वर्ष बाद भी आशिक सफलता ही मिली) की तुलना में डडी या मैनचेस्टर के हित अधिक प्रभावशाली थे। खाद्यान्न अथवा शोरे का व्यापार करने वाली फर्में छोटी थी और इन्हे थोड़ा सा ही लाभ प्राप्त था। ये जो रियायतें चाहते थे उन्हे ये चेंबर आफ कामर्स के समर्थन से ही प्राप्त कर सके।

अतः निर्णयकर्ता अधिकारी सभी ब्रिटिश हितबद्ध गुटों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण नहीं थे। यहां पर इस बात पर जोर देना सार्थक होगा कि हर समय और हर राजवित्तीय (फिस्कल) मामले पर सभी ब्रिटिश दबाव गुटों के हित पूरी तरह से एक से नहीं थे। प्रत्येक गुट लगभग सभी लोगों का समर्थन पाने के लिए अपने वर्गीय हित को

राष्ट्रीय हित के रूप मे प्रस्तुत करता था। किंतु कम से कम, अल्पकालीन दृष्टिकोण से, ऐसे दावो को गंभीरतापूर्वक स्वीकार करना या हितों की एकरूपता का अनुमान लगाना बेमानी होगा। यह उस समय स्पष्ट हो जाता है जब हम उदाहरण के लिए डंडी के जूट उत्पादकों (जिन्होंने जूट-माल पर आयात कर को हटाने की मांग की थी और जो पूरी भी हुई थी), और बंगाल के जूट मिल मालिकों, मैनचेस्टर के सूती वस्त्र उत्पादकों और वस्त्र उद्योग में काम आने वाली मशीनो के ब्रिटिश निर्यात कर्ताओं अथवा ब्रिटिश व्यापारियों की प्रशासन व्यय कम करने की माग (जिससे कर भार में कमी हो) और नौकरशाही द्वारा इसके विरोध पर विचार करते हैं। हम अगले पृष्ठो मे देखेंगे कि किस प्रकार ये परस्पर विरोधी दबाव, स्वार्थों का सम्मिलन और सामंजस्य तथा जनमत और निर्णयकर्ता अधिकारियों को प्रभावित करने के लिए प्रतियोगी अभियान एक अत्यधिक पेचीदा तस्वीर पेश करते है। जो लोग हितों मे एकरूपता मानकर चलते हैं वे उपर्युक्त जटिलता की उपेक्षा करते है। साथ ही वे निर्णय प्रक्रिया के असंगत तत्वों को पर्याप्त महत्व देने में असमर्थ रहते है और निर्णय अधिकारियों के ऊपर प्रतिबंधों को हल्का मान लेते हैं।

हम यह तर्क दे चुके है कि (क) लोक वित्त संबधी मामलो पर निर्णय प्रक्रिया मे अनेक हितबद्ध गुट भाग लेते थे और प्रत्येक गुट अपने लिए अधिक से अधिक अनुकूल (उदाहरणार्थ, पूंजी लगाने वाले राज्य द्वारा ब्याज की गारंटी के विषय मे आश्वासन; व्यापारी सड़को, बदरगाहों तथा दूसरी आर्थिक उपरिव्यय पूजी का विकास; बागानों तथा खानों के मालिक भूमि संबधी अनुकूल अधिनियम पारित करवाना; शहर के पेशेवर लोग सरकारी सहायता पर आधारित शिक्षा; व्यापारी और भूस्वामी विधान-परिषद मे संस्थागत प्रतिनिधित्व के रूप में निर्णयकर्ता अधिकारियो तक पहुंचना, आदि चाहते थे), अथवा कम से कम प्रतिकूल निर्णयों के लिए प्रयत्न करता था (उदाहरणार्थ, भूस्वामी कृषि और आय कर पर कर मे कमी, व्यापारी व्यापारिक कर जैसे—लाइसेंस कर मे कमी, आयातकर्ता और निर्यातकर्ता टैरिफ शुल्कों मे कमी, बागान मालिक भूमि संबंधी प्रतिबंधात्मक कानूनों मे ढील और सामान्य करदाता सरकारी खर्च में कमी चाहते थे)। (ख) दबाव गुटो और निर्णय अधिकारियों की परस्परक्रिया के परिणाम विभिन्न प्रतिस्पर्धी, सहयोगी और विरोधी गुटों द्वारा डाले गए परस्पर विरोधी दबावों, दबाव गुट विशेष और सरकार के बीच विशिष्ट संबंध से अलग कतिपय प्रतिबंधों तथा कुछ असंगत तत्वो जैसे—सामाजिक दभ, स्थिर विचार और व्यक्तिगत निर्णयकर्ता अधिकारी की निजी प्रवृत्तियों पर निर्भर होते थे। (ग) अतः परिणाम की सही-सही भविष्यवाणी [illegible] निर्णय-
[illegible]। अपने अनुकूल निर्णय पाने की संभावना ब्रिटिश हितबद्ध गुटों (जिन्हें अन्य अच्छी सुविधाओ के अलावा शासन-तंत्र के पिरामिड के शीर्षस्थ इंडिया आफिस तथा संसद के साथ सीधे संबंधों, निर्णय अधिकारियों तक सामाजिक पहुंच और सामाजिक दबाव डाल सकने की सामर्थ्य, लाब्बीग की कला से परिचय, तथा गुट के पारस्परिक स्तर के अलावा गुटके

भीतरी स्तर पर अधिक सामंजस्य के लाभ प्राप्त थे) के बारे मे अधिक होती थी। दबाव गुटो की राजनीति परिष्कृत व जटिल थी और इस दृष्टि से उपर्युक्त कथन की बोझिल सत्यता दुर्भाग्यपूर्ण है।

इस मान्यता के आधार पर कि सरकार के उद्देश्य महान थे (बुरे उद्देश्य की मान्यता भी संभव है), बजट भाषणों मारल एंड मैटीरियल प्रोग्रेस रिपोर्ट्स, संसद की वार्षिक वित्तीय समीक्षा, आदि मे नीति विषयक वक्तव्यो से नीति का स्वरूप तय करना अधिक सरल और शायद अधिक सुविधाजनक होगा। आयोजित कार्यवाही के साथ संपादित कार्यवाही के लिए नीति शब्द के प्रयोग से नीति विषयक धारणा और व्यावहारिक नीति मे भेद कर पाना कठिन हो जाता है। परंतु वास्तव मे नीति की ठीक रूपरेखा उसी समय निर्धारित हो सकती है जब हम किसी महान उद्देश्य की मान्यता को स्वीकार न करे और अलग-अलग बिखरे हुए वास्तविक निर्णयों और कार्यों के आधार पर एक ढांचा तैयार कर ले। इसके लिए हमें निर्णयों का अध्ययन उनके प्रासंगिक आधार पर करना होगा और निर्णयकर्ता अधिकारियो तथा दूसरे लोगो के बीच पहली दृष्टि मे थकाऊ और गौण लगने वाली उस परस्परक्रिया की ओर ध्यान देना होगा जिसके द्वारा निर्णय होते है या यों कहिए कि नीति का स्वरूप निश्चित होता है। जो लोग नीति संबंधी धारणाओं पर ही ध्यान देते है वे इस तथ्य को भुला बैठते है कि हितबद्ध गुटों की भी भूमिका महत्वपूर्ण होती है। इसके साथ-साथ इस बात से भी इंकार नही किया जा सकता कि नीतियों की अविछिन्नता तथा निर्णयकर्ता अधिकारियों की प्रतिक्रिया के स्वरूप मे स्थिरता की पूरी व्याख्या उस समय तक नही हो सकती जब तक हम इन अधिकारियों की नीति विषयक धारणाओं, इनके द्वारा आदतन प्रयोग मे लाए जाने वाले राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धातों, इसके विचार करने के ढंग और दृष्टिकोण तथा संपूर्ण साम्राज्य की विचारधारा पर ध्यान नही दें। यहां हम अपने को साम्राज्यिक विचारधारा के उस अंश तक ही सीमित रखेगे जो वित्तीय नीति के निर्धारण के लिए प्रत्यक्ष रूप से सगत है।

जिन अर्थशास्त्रियों ने भारत मे वित्तीय नीति को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया है उनमें जेम्स विल्सन अग्रणी है जो इस देश का प्रथम वित्त सदस्य था, आज उसे प्रधानत: लंदन से प्रकाशित होने वाले दि इकानोमिस्ट के संस्थापक-सपादक के रूप में स्मरण किया जाता है। अर्थशास्त्र की विविध पुस्तको के लेखक के रूप मे उसकी साधारण ख्याति है। उसके ही समकालीन लोगों मे से कार्ल मार्क्स ने उसे ऊचे स्तर का सरकारी अर्थशास्त्री कहकर उसकी स्थिति का सही-सही मूल्यांकन किया है।[90] जिन आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने, जिनमे से शुपीटर तथा केनक्रास भी हैं, इसकी रचनाओं की ओर ध्यान दिया है उन्होने इसके आर्थिक विश्लेषण मे विशेष मौलिकता नही पाई है।[91] उसका अर्थविज्ञान में योगदान नाममात्र का था, परंतु जैसा कि उसका दामाद वाल्टर बेजहाट उसके विषय में कहता है वह एक महान विश्वासोत्पादक अर्थात एक प्रतिभाशाली प्रचारक था।[92] इस क्षमता के साथ-साथ राजनीतिक अर्थविज्ञान के व्यावहारिक महत्व के विषय में अपनी समझ के कारण अनेक दुरूह सिद्धातशास्त्रियों से वह आगे निकल गया था। (उदाहरणार्थ,

सुरक्षा ही थी। यदि शस्त्र का बार-बार सहारा लिए बिना भी अधिकांश शासित व्यक्तियों की स्वीकृति और थोड़े से लोगों का सक्रिय सहयोग पा सकना संभव रहा हो तब भी ब्रिटिश शासन का बुनियादी आधार सेना ही थी। सैनिक व्यय को न्यूनतम रखना एक ऐसा आदर्श था जिसका पालन इंग्लैंड में तो हो सकता था परंतु भारत में कृपणता की नीति का पालन करते हुए सेना को कमजोर बना देना भूल थी। भारत में एक बड़ी यूरोपीय सेना रखने की आवश्यकता सैन्य विद्रोह के अनुभव से अच्छी तरह स्पष्ट हो गई थी। इस प्रकार की सेना का खर्च भारतीय करदाता पर लादा जा सकता था जिसे भारत के बाहर रिजर्व सेना के रूप में प्रयोग किया जा सकता था। यदि आवश्यकता होती थी तो भारतीय सेना दूसरे स्थानों पर भेजे जाने के लिए उपलब्ध रहती थी। इस प्रकार की व्यवस्था के राजनीतिक लाभ बहुत अधिक थे। इससे इंग्लैंड एशिया और अफ्रीका में अपने शत्रुओं को डराने में समर्थ हो गया था। साथ ही, इससे इंग्लैंड में करदाताओं को राहत भी मिल सकी थी। (अध्याय 3, देखिए)। जब मेयो ने वित्तीय घाटे को कम करने के लिए सैनिक व्यय में कटौती का प्रस्ताव रखा था तो भारत मंत्री ने इस व्यवस्था के विशिष्ट स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहा था कि सैनिक व्यय का स्तर केवल भारत की तात्कालिक आवश्यकताओं के संदर्भ में निर्धारित नहीं किया जा सकता।[102] सातवें दशक के उत्तरार्द्ध में प्रसिद्ध अंग्रेज उग्र राजनीतिज्ञ जोजफ (रिट्रेंचमेंट) ह्यूम के भतीजे कर्नल ह्यूम की अध्यक्षता में सैनिक वित्त आयोग ने सेना पर व्यय में भारी कमी की थी, परंतु इसका उद्देश्य मुख्य रूप से देशी भारतीय सेना के आकार को कम करना था जिससे इसके और भारत स्थित ब्रिटिश सेना के बीच सुरक्षित अनुपात रखा जा सके।[103]

द्वितीय, यह भी अनुभव किया गया कि भारत की विशिष्ट परिस्थितियों में राज्य द्वारा दी जाने वाली गारंटी अथवा किसी अन्य रूप में आर्थिक सहायता देकर पूंजी-निवेश को प्रोत्साहन देना आवश्यक था। जिसे सार्वजनिक जोखिम पर निजी उद्यम कहा गया है उसका सबसे अधिक जाना-माना उदाहरण पूंजी निवेशकों को ब्याज गारंटी की संविदा के आधार पर भारतीय रेलों का निर्माण है। लगभग सभी पूंजी निवेशक अंग्रेज थे। 1870 में 51,890 अंशधारियों में लगभग 0.6 प्रतिशत भारतीय थे और कुल पूंजी निवेश में इनका भाग 1 प्रतिशत से थोड़ा ही अधिक था।[104] इस व्यवस्था के बारे में जो कुछ अन्यत्र (अध्याय 3 में) कहा गया है, हमें उसके बारे में यहां अनुमान लगाने की आवश्यकता नहीं है। सरकार को रेलों के विकास का जो अनुभव हुआ उसने उसे अन्य देशों में इसी प्रकार की व्यवस्था के बारे में सतर्क बना दिया। 5 प्रतिशत ब्याज की सरकारी गारंटी के आधार पर 10 लाख पौंड की पूंजी से मद्रास में स्थापित एक सिंचाई कंपनी एक उल्लेखनीय अपवाद थी। इसकी स्थापना उस समय हुई थी जब मेनचेस्टर काटन सप्लाई एसोसिएशन सरकार पर इस बात के लिए दबाव डाल रहा था कि वह भारत में कपास का उत्पादन बढ़ाने के लिए इंग्लैंड की फालतू पूंजी और निजी उद्यम को लोक निर्माण कार्य का विकास करने दे।[105] 1870 तक सरकार ब्याज की गारंटी से हटने लगी। उन्नीसवीं शताब्दी के छठे दशक के प्रारंभिक वर्षों में सरकार अपने न्यायोचित कार्यों का अतिक्रमण किए बिना व्यापारी को अविलंब सहायता देने के लिए तत्पर थी।[106] दशक की समाप्ति के आसपास

ब्याज की गारंटी के दोषों से अवगत होकर, सरकार दावा कर रही थी कि निजी उद्यम के क्षेत्र में अगुआई करना प्राय: सरकार का कर्तव्य हो सकता है।[107] फिर भी इस प्रकार की भूमिका सरकार ने केवल चाय उद्योग में ही अदा की। अधिकाश प्रारंभिक लागत राज्य की थी और जोखिम भी उसी ने उठाया। जब यह उद्योग सुरक्षित दिखाई देने लगा तो इसे अंग्रेज बागान मालिकों ने ले लिया।[108] (सैन्य-विद्रोह से पहले की अवधि में लोहे व इस्पात उद्योग में इस प्रकार कुछ इक्के-दुक्के असफल प्रयास हुए थे)।[109] सब बातों को देखते हुए लगता है कि सरकार का झुकाव उद्यमी की भूमिका अदा करने के स्थान पर, परोक्ष रूप से व्यापारी को सहायता देने की ओर था।

यह अप्रत्यक्ष सहायता मुख्य रूप से आधारभूत आर्थिक उपरिव्यय पूंजी के विकास के रूप में थी। एक पिछड़ी अर्थव्यवस्था में सरकार की इस भूमिका पर जे० एस० मिल ने जोर दिया है।[110] जेम्स विल्सन का विचार था कि कपास, जूट, ऊन तथा यूरोप के उद्योगों के लिए आवश्यक कच्चे पदार्थों का उत्पादन बढ़ाने के लिए भारत सरकार का प्रधान कर्तव्य लोक निर्माण कार्य तथा सड़कों का विकास करना था।[111] छठे दशक के प्रारंभिक वर्षों में कपास क्षेत्र में सड़कों के निर्माण पर अधिक जोर था। रेलवे कंपनियों के प्रवर्तकों ने भी कपास का उत्पादन करने वाले जिलों तक रेल निर्माण के महत्व पर बल दिया। कोर्ट आफ डायरेक्टर्स तथा भारत मंत्री को अपने स्मरणपत्रों में काटन सप्लाई एसोसिएशन ने कच्चे पदार्थों के निर्यात मे सुविधा की दृष्टि से लोक निर्माण कार्यों, सड़कों, बंदरगाहों आदि पर पूंजी निवेश में वृद्धि की माग की।[112] अमरीकी गृह युद्धकाल मे कपास दुर्भिक्ष के कारण यह आग्रह अधिक जरूरी हो गया। परंतु मैनचेस्टर सकट जब गभीरतम स्थिति में था उस समय इडिया आफिस का भारत सरकार को काफी जोरदार सुझाव था कि भारत में वाणिज्यिक उद्योगों को सहायता पहुंचाने के उद्देश्य से सिंचाई, कपास क्षेत्र में सड़कों अथवा अन्य निर्माण कार्यों पर व्यय की मात्रा इस बात को ध्यान में रखते हुए निर्धारित होनी चाहिए कि व्यय की पूरी राशि बाद में निकल आएगी।[113] 1863 से 1866 तक की अवधि मे बबई प्रेसीडेंसी को, जो कपास की प्रधान उत्पादक थी, लोक निर्माण पर कुल सामान्य पूंजी निवेशों का 24 प्रतिशत भाग मिला था, जबकि बंगाल प्रेसीडेंसी का भाग 17 प्रतिशत और मद्रास प्रेसीडेंसी का 13.9 प्रतिशत था। बंबई में 1863 से 1872 तक की अवधि में औसत सामान्य लोक निर्माण व्यय 79 रुपये प्रति वर्गमील था। पश्चिमोत्तर प्रांतों, बंगाल और मद्रास की राशियां क्रमश: 78 रुपये, 34 रुपये और 45 रुपये प्रति वर्गमील थी।[114] 1865 में अमरीका से कपास की पुन: आपूर्ति (सप्लाई) और उड़ीसा के दुर्भिक्ष के अनुभव के आधार पर बबई प्रेसीडेंसी के साथ तरजीही सलूक और सिंचाई सुविधाओं की तुलना मे भीतरी प्रदेश को रेलों से मिलाने वाली सड़कों को प्राथमिकता देने की नीति बदल दी गई। परतु ब्रिटिश सरकार के अधिकारी अलाभकर लोक निर्माण कार्यों को सहायता देने के लिए अनिच्छुक थे। उनका यह रवैया आर्थिक उपरिव्यय मे सार्वजनिक पूंजी निवेश पर एक महत्वपूर्ण प्रतिबंध बना रहा। अलाभकर लोक निर्माण कार्यों से तात्पर्य उन परियोजनाओं से था जिन पर व्यय की गई पूंजी का ब्याज भी आय से पूरा नहीं हो पाता था (अध्याय 3)।

सुरक्षा ही थी। यदि शस्त्र का बार-बार सहारा लिए बिना भी अधिकांश शासित व्यक्तियों की स्वीकृति और थोड़े से लोगों का सक्रिय सहयोग पा सकना संभव रहा हो तब भी ब्रिटिश शासन का बुनियादी आधार सेना ही थी। सैनिक व्यय को न्यूनतम रखना एक ऐसा आदर्श था जिसका पालन इंग्लैंड मे तो हो सकता था परंतु भारत मे कृपणता की नीति का पालन करते हुए सेना को कमजोर बना देना भूल थी। भारत मे एक बड़ी यूरोपीय सेना रखने की आवश्यकता सैन्य विद्रोह के अनुभव से अच्छी तरह स्पष्ट हो गई थी। इस प्रकार की सेना का खर्च भारतीय करदाता पर लादा जा सकता था जिसे भारत के बाहर रिजर्व सेना के रूप मे प्रयोग किया जा सकता था। यदि आवश्यकता होती थी तो भारतीय सेना दूसरे स्थानों पर भेजे जाने के लिए उपलब्ध रहती थी। इस प्रकार की व्यवस्था के राजनीतिक लाभ बहुत अधिक थे। इससे इंग्लैंड एशिया और अफ्रीका मे अपने शत्रुओ को डराने मे समर्थ हो गया था। साथ ही, इससे इंग्लैंड में करदाताओं को राहत भी मिल सकी थी। (अध्याय 3, देखिए)। जब मेयो ने वित्तीय घाटे को कम करने के लिए सैनिक व्यय मे कटौती का प्रस्ताव रखा था तो भारत मंत्री ने इस व्यवस्था के विशिष्ट स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहा था कि सैनिक व्यय का स्तर केवल भारत की तात्कालिक आवश्यकताओ के संदर्भ मे निर्धारित नही किया जा सकता।[102] सातवें दशक के उत्तरार्द्ध मे प्रसिद्ध अंग्रेज उग्र राजनीतिज्ञ जोजफ (रिट्रेंचमेंट) ह्यूम के भतीजे कर्नल ह्यूम की अध्यक्षता मे सैनिक वित्त आयोग ने सेना पर व्यय में भारी कमी की थी, परंतु इसका उद्देश्य मुख्य रूप से देशी भारतीय सेना के आकार को कम करना था जिससे इसके और भारत स्थित ब्रिटिश सेना के बीच सुरक्षित अनुपात रखा जा सके।[103]

द्वितीय, यह भी अनुभव किया गया कि भारत की विशिष्ट परिस्थितियों मे राज्य द्वारा दी जाने वाली गारंटी अथवा किसी अन्य रूप में आर्थिक सहायता देकर पूजी-निवेश को प्रोत्साहन देना आवश्यक था। जिसे सार्वजनिक जोखिम पर निजी उद्यम कहा गया है उसका सबसे अधिक जाना-माना उदाहरण पूजी निवेशकों को ब्याज गारंटी की संविदा के आधार पर भारतीय रेलो का निर्माण है। लगभग सभी पूजी निवेशक अंग्रेज थे। 1870 मे 51,890 अंशधारियों मे लगभग 0.6 प्रतिशत भारतीय थे और कुल पूजी निवेश में इनका भाग 1 प्रतिशत से थोडा ही अधिक था।[104] इस व्यवस्था के बारे मे जो कुछ अन्यत्र (अध्याय 3 मे) कहा गया है, हमे उसके बारे में यहा अनुमान लगाने की आवश्यकता नही है। सरकार को रेलों के विकास का जो अनुभव हुआ उसने उसे अन्य देशों मे इसी प्रकार की व्यवस्था के बारे मे सतर्क बना दिया। 5 प्रतिशत ब्याज की सरकारी गारंटी के आधार पर 10 लाख पौंड की पूजी से मद्रास मे स्थापित एक सिंचाई कंपनी एक उल्लेखनीय अपवाद थी। इसकी स्थापना उस समय हुई थी जब मेनचेस्टर काटन सप्लाई एसोसिएशन सरकार पर इस बात के लिए दबाव डाल रहा था कि वह भारत मे कपास का उत्पादन बढ़ाने के लिए इंग्लैंड की फालतू पूजी और निजी उद्यम को लोक निर्माण कार्य का विकास करने दे।[105] 1870 तक सरकार ब्याज की गारंटी से हटने लगी। उन्नीसवी शताब्दी के छठे दशक के प्रारंभिक वर्षों मे सरकार अपने न्यायोचित कार्यों का अतिक्रमण किए बिना व्यापारी को अधिकतम सहायता देने के लिए तत्पर थी।[106] दशक की समाप्ति के आसपास

ब्याज की गारंटी के दोषों से अवगत होकर, सरकार दावा कर रही थी कि निजी उद्यम के क्षेत्र में अगुआई करना प्रायः सरकार का कर्तव्य हो सकता है।[107] फिर भी इस प्रकार की भूमिका सरकार ने केवल चाय उद्योग मे ही अदा की। अधिकाश प्रारंभिक लागत राज्य की थी और जोखिम भी उसी ने उठाया। जब यह उद्योग सुरक्षित दिखाई देने लगा तो इसे अंग्रेज बागान मालिकों ने ले लिया।[108] (सैन्य-विद्रोह से पहले की अवधि मे लोहे व इस्पात उद्योग में इस प्रकार कुछ इक्के-दुक्के असफल प्रयास हुए थे)।[109] सब बातों को देखते हुए लगता है कि सरकार का झुकाव उद्यमी की भूमिका अदा करने के स्थान पर, परोक्ष रूप से व्यापारी को सहायता देने की ओर था।

यह अप्रत्यक्ष सहायता मुख्य रूप से आधारभूत आर्थिक उपरिव्यय पूंजी के विकास के रूप मे थी। एक पिछड़ी अर्थव्यवस्था मे सरकार की इस भूमिका पर जे० एस० मिल ने जोर दिया है।[110] जेम्स विल्सन का विचार था कि कपास, जूट, ऊन तथा यूरोप के उद्योगो के लिए आवश्यक कच्चे पदार्थों का उत्पादन बढ़ाने के लिए भारत सरकार का प्रधान कर्तव्य लोक निर्माण कार्य तथा सड़कों का विकास करना था।[111] छठे दशक के प्रारंभिक वर्षों में कपास क्षेत्र मे सड़को के निर्माण पर अधिक जोर था। रेलवे कंपनियों के प्रवर्तकों ने भी कपास का उत्पादन करने वाले जिलों तक रेल निर्माण के महत्व पर बल दिया। कोर्ट आफ डायरेक्टर्स तथा भारत मंत्री को अपने स्मरणपत्रो मे काटन सप्लाई एसोसिएशन ने कच्चे पदार्थों के निर्यात में सुविधा की दृष्टि से लोक निर्माण कार्यो, सड़कों, बदरगाहों आदि पर पूंजी निवेश मे वृद्धि की माग की।[112] अमरीकी गृह युद्धकाल मे कपास दुर्भिक्ष के कारण यह आग्रह अधिक जरूरी हो गया। परंतु मेनचेस्टर संकट जब गंभीरतम स्थिति मे था उस समय इडिया आफिस का भारत सरकार को काफी जोरदार सुझाव था कि भारत में वाणिज्यिक उद्योगों को सहायता पहुचाने के उद्देश्य से सिचाई, कपास क्षेत्र में सड़कों अथवा अन्य निर्माण कार्यो पर व्यय की मात्रा इस बात को ध्यान मे रखते हुए निर्धारित होनी चाहिए कि व्यय की पूरी राशि बाद मे निकल आएगी।[113] 1863 से 1866 तक की अवधि मे बंबई प्रेसीडेंसी को, जो कपास की प्रधान उत्पादक थी, लोक निर्माण पर कुल सामान्य पूजी निवेशों का 24 प्रतिशत भाग मिला था, जबकि बंगाल प्रेसीडेंसी का भाग 17 प्रतिशत और मद्रास प्रेसीडेंसी का 13.9 प्रतिशत था। बंबई में 1863 से 1872 तक की अवधि मे औसत सामान्य लोक निर्माण व्यय 79 रुपये प्रति वर्गमील था। पश्चिमोत्तर प्रातों, बंगाल और मद्रास की राशिया क्रमशः 78 रुपये, 34 रुपये और 45 रुपये प्रति वर्गमील थी।[114] 1865 मे अमरीका से कपास की पुनः आपूर्ति (सप्लाई) और उड़ीसा के दुर्भिक्ष के अनुभव के आधार पर बबई प्रेसीडेंसी के साथ तरजीही सलूक और सिंचाई सुविधाओ की तुलना मे भीतरी प्रदेश को रेलो से मिलाने वाली सड़कों को प्राथमिकता देने की नीति बदल दी गई। परतु ब्रिटिश सरकार के अधिकारी अलाभकर लोक निर्माण कार्यों को सहायता देने के लिए अनिच्छुक थे। उनका यह रवैया आर्थिक उपरिव्यय मे सार्वजनिक पूजी निवेश पर एक महत्वपूर्ण प्रतिबंध बना रहा। अलाभकर लोक निर्माण कार्यों से तात्पर्य उन परियोजनाओं से था जिन पर व्यय की गई पूजी का ब्याज भी आय से पूरा नही हो पाता था (अध्याय 3)।

चतुर्थ, यह विश्वास किया जाता था कि भारत कच्चे पदार्थों के आपूर्ति कर्ता के रूप में अपनी विशिष्ट भूमिका ठीक प्रकार से निभा सके इसके लिए सरकार को अपनी सामर्थ्य भर संपूर्ण प्रयास करना चाहिए। कच्चे पदार्थों के निर्यात को प्रोत्साहन देना स्वदेशी साधनो को सुधारने का सर्वश्रेष्ठ उपाय था (विल्सन)। कृषि भारत का मुख्य उद्योग होना चाहिए (ट्रेवीलियन तथा उन कच्चे पदार्थों के बदले में, जिनमें भारत को विशिष्ट लाभ प्राप्त है, तैयार माल (यूरोप) का विनिमय (बगाल चेंबर आफ कामर्स) उपनिवेश तथा शासक देश के मध्य आदर्श श्रम विभाजन था।[115] विल्सन ने चाय तथा कहवे के साथ-साथ जो यूरोपीय मालिकों के बागानों की पैदावारें थीं, कच्ची कपास, जूट, सन, ऊन, खाल, लकड़ी आदि को निर्यात शुल्क से मुक्त रखकर भावी नीति के लिए दिशा निर्धारित की। इस प्रस्ताव से कि भारत की आर्थिक भूमिका कच्चे पदार्थों के आपूर्ति-कर्ता के रूप मे ही थी, एक उपप्रस्ताव निकलता था कि भारत मे कच्चे पदार्थों के दोहन के लिए आवश्यक पूजीगत माल का आयात बिना किसी बाधा के होना चाहिए। 1845 और उसके बाद पानी के जहाजों के पेंदों (हल) के लिए प्लेट लोहा, कृषि (मुख्य रूप से बागान कृषि के लिए), खनन रेल उपकरण के लिए मशीनें बिना किसी सीमा शुल्क के आयात की गईं। मेनचेस्टर मे इसे भी शका की दृष्टि से देखा गया। वहा के उत्पादकों का मत था कि भारत सरकार इस देश मे मशीनो के प्रयोग को प्रोत्साहन देकर गलती कर रही है, क्योंकि यहां का स्वाभाविक व्यवसाय तो कच्चे पदार्थों का उत्पादन ही है।[116] इस प्रस्ताव के साथ कि भारत की भूमिका ब्रिटेन को कच्चा पदार्थ देने की ही है, कुछ उत्साही व्यक्तियों ने एक अन्य उपप्रस्ताव जोड दिया। वह यह था कि ब्रिटेन को भारत का औपनिवेशीकरण कर डालना चाहिए। वेकफ़ील्ड की आर्ट आफ कालोनाइजेशन (औपनि-वेशीकरणकी कला 1849) ने ब्रिटेनसे उत्तरी अमरीका और आस्ट्रेलिया को पूजी तथा श्रम के देशातरण की सुविधाएं देकर वहा की उत्पादन क्षमता को बढ़ाने की असीम संभावनाओं की ओर ध्यान आकर्षित किया। एडवर्ड वैस्ट ने भी भारत में ऐसे ही औपनिवेशीकरण का समर्थन किया था। इस विषय पर उसकी पुस्तक का शीर्षक ही उसके कार्यक्रम को सक्षेप मे बता देता है: ब्रिटिश भारत को प्रवास; सयुक्त स्टाक कपनियो और संपन्न प्रवासियों के लिए लाभप्रद पूजी निवेश के अवसर, उद्यमी और होशियार लोगो के लिए रोजगार, कपास, रेशम, चीनी, चावल, तंबाकू, नील तथा अन्य उष्णकटिबधीय उत्पादो की पर्याप्त मात्रा मे पूर्ति; तैयार माल के लिए बढती हुई माग ···(1857)। छठे दशक के प्रारंभिक वर्षों मे इस औपनिवेशीकरण के विचार के कुछ प्रस्तावक थे। यह बहुत संभव है कि इससे बागान मालिको द्वारा बेकार भूमि को पूर्ण स्वामित्व पट्टेदारी पर दिलाने की व्यवस्था करने के लिए भूमि संबंधी अधिनियमो में परिवर्तन संबधी मामले को बल मिला हो। परतु इस प्रकार की आशा व्यवहार मे भ्रम-पूर्ण सिद्ध हुई कि यहा पर यूरोप के लोग भारी संख्या मे आकर बसेंगे। वैस्ट का उस देश के विषय मे अधिक ज्ञान ही नही था जहा पर वह चाहता था कि उसके देशवासी जाकर बसें। इसके अलावा जैसा कि मेरीवेल ने वेकफील्ड की योजना की आलोचना करते हुए स्पष्ट किया है कि उपनिवेशों का विकास अपने आप मे कोई लक्ष्य नही था और देशातरण

तथा निवेश की कृत्रिम सहायता की तुलना में लाभप्रदता का अधिक महत्व था।[117]

साम्राज्य में पूरक विकास की नव वाणिज्यवादी (निओ मर्कैंटयालिस्ट) धारणा और कच्चे पदार्थों के उत्पादन में भारत को तुलनात्मक लाभ पर जोर दिए जाने की स्थिति में, इस देश में निर्माण उद्योगों की संभावनाओं के विषय मे अत्यधिक चिंता की आशा नहीं की जा सकती थी। परंतु परंपरागत वस्तुओं के उत्पादनों के विषय मे क्या विचार था? अपशकुनी 'अनौद्योगीकरण' का प्रश्न पौराणिक पिशाच की भांति यदा-कदा ही सामने आता था। केवल उस एकमात्र वित्त सदस्य के लिए, जिसने स्वदेशी उद्योग के बारे में जाच की थी, यह प्रश्न पूर्ण रूप से कल्पित नहीं था। बंगाल चेंबर आफ कामर्स के आग्रह पर यह जांच ट्रैवीलियन ने करवाई थी। 1862 से 1864 तक मैनचेस्टर के सूती वस्त्रों की माग मे अस्थाई कमी हो गई थी। माग में कमी के कारण थे—अमरीकी गृहयुद्ध के समय इंग्लैंड के वस्त्र की कीमतों मे थोड़ी-सी वृद्धि, सूती वस्त्रों का सन तथा ऊन के बने हुए वस्त्रों द्वारा प्रतिस्थापन, उपलब्ध पूजी को इस उद्योग से निकालकर अधिक लाभप्रद कपास निर्यात के सट्टे में लगाना, और भारतीय मुद्रा बाजार में पूंजी की अस्थाई तंगी।[118] बंगाल चेंबर की यह आशंका समझ में आती थी कि मैनचेस्टर से आने वाले माल की तुलना मे आयातित कपास से कपड़ा कम लागत पर तैयार होता था।[119] ट्रैवीलियन द्वारा की गई जाच का क्षेत्र अवध, पश्चिमोत्तर, मध्य प्रांत और बंगाल के जिला स्तर तक सीमित था। जांच से स्पष्ट हुआ कि माग मे कमी उपर्युक्त कारणों से ही थी, और अमरीकी गृहयुद्ध के बाद कच्चे माल की कीमत मे वृद्धि हो जाने से भारतीय बुनकरों के हाथ से घरेलू बाजार निकल रहा था। ट्रैवीलियन ने सर चार्ल्स वुड को सूचना दी थी कि कपास की कीमत मे वृद्धि (इस तथ्य के साथ-साथ कि काफी बड़े भडारों के कारण इग्लैंड के कपड़े की कीमत में थोड़ी सी ही वृद्धि हुई है) से भारतीय बुनकरो की परेशानी बहुत बढ़ गई है "और बहुत सारे बुनकरों पर तो गंभीर विपत्ति टूट पड़ी है।[120] कपास की ऊंची कीमतो के कारण भारतीय बुनकरो को अपने काम मे कमी करनी पड़ी और बहुत सारे स्थानों पर तो उन्ही सूती वस्त्रों का उत्पादन ही छोडना पड़ा।[121] परंतु यह भारतीय समाज की स्वस्थ प्रगतिशील अवस्था ही थी कि संकट गंभीर होने पर भी, बाहरी सहायता के बिना भी उसका सामना कर लिया गया। ऐसा इस कारण हो सका कि प्रथम बुनकर सूती वस्त्रों के उत्पादन होने के साथ-साथ कृषक भी थे, और दूसरा और अधिक महत्वपूर्ण कारण यह था कि श्रम की माग सामान्यरूप से पर्याप्त थी। और अंत में, यह उल्लेखनीय है कि बुनकरों की बढी संख्या (जैसा कि सर्वविदित है, बुनकर बड़ी संख्या मे शहरों मे बसे होने के साथ-साथ देश के प्रत्येक गांव में फैले हुए थे) पर इस दबाव का एक लाभकारी परिणाम यह निकला कि इन लोगों द्वारा उद्योगो को छोड़कर कृषि व्यवसाय अपनाने की प्रक्रिया तेज हो गई जो समान रूप से भारत और इंग्लैंड दोनों ही के हित मे थी"...।[122] ट्रैवीलियन द्वारा जाच के निष्कर्ष निस्संदेह निर्णायक नही थे। घरेलू उद्योग मे आश्चर्यजनक लोच के दर्शन हुए। तथापि इस जांच के निष्कर्ष इस दृष्टि से महत्वपूर्ण थे कि इस काल से संबधित घरेलू उद्योगो के बारे मे केवल यही एक व्यवस्थित जाच थी। ट्रैवीलियन के विचार से उद्योगों

का जो पतन हो रहा था, सभी लोगों ने उसे वाछनीय प्रक्रिया का अनिवार्य समापन नही माना है। एक दशक के बाद एशले ईडन ने इसके परिणामों को एक भिन्न पहलू से देखा है। उसने लिखा है, जनाधिक्य द्वारा संभावित सामाजिक कठिनाइयो का सामना करने के लिए यदि हमे किसी बात पर औरों की तुलना मे अधिक ध्यान देना है तो वह यह कि औद्योगिक उत्पादन करने वाला वर्ग पैदा किया जाना चाहिए और भूमि पर जितने लोग ठीक प्रकार से जीवन व्यतीत कर सकते है उसी तुलना मे जनसंख्या का भार दुगुना हो गया है और यह कम होना चाहिए ।[123] तथापि प्रशासन मे ईडन के सहयोगियों की दृष्टि मे उसकी यह चिता एक प्यारी सनक थी और ट्रैवीलियन की जाच को उसके सहयोगी वाछित प्रशासनिक सेवा के बाहर एक अतिरिक्त कार्य मानते थे। इस समस्या ने उन्नीसवी शताब्दी के अंतिम चतुर्थाश तक विशेष ध्यान आकर्षित नही किया । परंतु दुर्भिक्ष आयोगों की रिपोर्टों तथा राष्ट्रवादी इतिहासकारो की रचनाओ ने इस समस्या का यदि पुनर्मूल्याकन करने के लिए नही तो कम से कम इसका सिंहावलोकन करने के लिए लोगो को विवश कर दिया।

सामान्य सरकारी अधिकारियों की व्यावहारिकता और सैद्धांतिक तर्क के प्रति विमुखता लगभग अनुश्रुति जैसी थी और ये भारतीय सिविल सेवा (आई० सी० एस०) से संबंधित साहित्य मे निश्चित रूप से गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुकी थी। इंग्लैड से भेजे गए वित्त सदस्यो और विशेष रूप से विल्सन, लैंग तथा मैंसी ने राजनीतिक अर्थव्यवस्था संबंधी विचारो और सिद्धातों के भंडार से काफी प्रेरणा ग्रहण की। अतः व्यापारी वर्गों पर विशिष्ट करों को न्यायोचित ठहराने के लिए लाभ सिद्धांत को आधार बनाया गया। निस्संदेह सभी वर्गों को लाभ हुआ है⋯परंतु पूजीपति और व्यापारी वर्गों को विशेष लाभ प्रदान किया गया है और इनके लाभ की तुलना मे दूसरे वर्गों का लाभ कुछ भी नही है।[124] यह लाइसेंस कर के समर्थन मे दिया जाने वाला तर्क था। इसके आधार पर ब्रिटिश शासन से लाभान्वित वर्गों को इन लाभो की लागत मे न्यायोचित अंशदान के लिए बाध्य किया जा सकता था। यह ठीक है कि इस तर्क को, कि प्रजा को राज्य के कार्यों से मिलने वाले लाभों के आधार पर ही कराधान होना चाहिए, अनेक प्रतिष्ठित विद्वानों के अलावा हाब्स तथा ग्रोशस का समर्थन प्राप्त था। परतु व्यवहार मे यह बहुत कम अपनाया गया, क्योंकि तत्कालीन अर्थशास्त्रियों और विशेष रूप से जे० एस० मिल ने हित या लाभ के सिद्धात को अस्वीकार कर दिया था ।[125] एडम स्मिथ के क्षमता सिद्धात को रिकार्ड तथा जे० एस० मिल का समर्थन प्राप्त था। सभवत मिल के प्रभाव के कारण ही विल्सन तथा लैंग ने लाभ सिद्धात के साथ-साथ क्षमता सिद्धात का भी उल्लेख किया है । स्थाई बंदोवस्त के क्षेत्र मे जमीदारो के विरुद्ध क्षमता सिद्धात एक सुविधाजनक अस्त्र था। ये जमीदार 1783 के विनियम 1 की गलत व्याख्या के आधार पर अनुचित छूट का लाभ उठा रहे थे यद्यपि वे अच्छी तरह से कर देने की क्षमता रखते थे। स्टाप कर पर बहस मे लाभ सिद्धांत और लागत दृष्टिकोण को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। लागत दृष्टिकोण के अनुसार प्रजा को राज्य के द्वारा संपन्न की जाने वाली सेवाओ के लिए लागत के आधार पर अंशदान करना चाहिए। विल्सन का तर्क था कि

वाणिज्यिक कानूनों, न्यायालयों आदि के प्रशासन की लागत का भार व्यापारियों तथा बैंकरो को वहन करना चाहिए।[126] इसके आधार पर वाणिज्यिक संव्यवहार (आदान-प्रदान) से संबंधित दस्तावेजो पर विशेष स्टांप शुल्क को न्यायोचित माना गया। सभी न्यायिक तथा विधिक कागजात पर सामान्य स्टाप शुल्क के संबंध मे भी उपर्युक्त तर्क दिया गया। यहा पर यह उल्लेखनीय है कि मुकदमा लड़ने वाले को न्याय प्रशासन की लागत का कम से कम एक अंश तो देना ही होता था। (सामान्य स्टाप शुल्क को इस आधार पर भी उचित ठहराया गया था कि इससे अनावश्यक मुकदमेबाजी कम होती है।)

जो भी हो, न तो लाभ सिद्धांत और न ही क्षमता सिद्धात का कोई व्यावहारिक महत्व था। यदि किसी भी विचार का कुछ इस प्रकार का महत्व था तो वह आर्थिक उदारवाद मे निहित समानता का सिद्धांत था। कराधान के संदर्भ मे इसका अर्थ था कि इसके द्वारा आय और संपत्ति के सापेक्ष वितरण मे किसी भी प्रकार का परिवर्तन नही होना चाहिए। अत: आरोही कराधान की कोई गुंजाइश नहीं थी। विल्सन ने लिखा था कि लोगो की स्थिति में समानता लाना सरकार का कार्य नही है।[127] यद्यपि जेम्स मिल ने अपनी हिस्ट्री आफ इंडिया मे एक अज्ञात अवतरण द्वारा यह माना है कि बेंथमवादी आय की ह्रासमान उपयोगिता संबधी सिद्धात के आधार पर आरोही कराधान को न्यायोचित ठहराया जा सकता है, तथापि जे० एस० तथा लोकवित्त के सिद्धांतों के परंपरानिष्ठ प्रतिपादकों ने ऐसे कराधान का घोर विरोध किया। इनका तर्क था कि आरोही कर उद्योग और अर्थव्यवस्था पर कर होगा···अर्थात् यह अपने पड़ोसियों से अपेक्षाकृत अधिक परिश्रम और बचत करने वाले व्यक्तियों पर दंड होगा।[128] फिर भी जे० एस० मिल ने भी अर्जित आय और भूमि के मूल्यो में अनर्जित वृद्धि में भेद करने की आवश्यकता को स्वीकार किया था और मृत्यु कर का समर्थन किया था। परंतु आय स्रोत के आधार पर भेद के सिद्धात को विल्सन और उसके उत्तराधिकारियों ने स्वीकार नही किया। बंगाल चेंबर आफ कामर्स तथा कलकत्ता ट्रेड्स एसोसिएशन का तर्क था कि भूसंपत्ति से आय की तुलना मे उद्योगो से प्राप्त होने वाली आय पर कराधान की दर नीची होनी चाहिए।[129] कलकत्ता ट्रेड्स एसोसिएशन ने अपने तर्क के समर्थन मे जे० एस० मिल का उल्लेख किया, परतु इसका कोई प्रभाव नही पड़ा। यद्यपि सरकार ने अंतिम रूप से प्राप्त अर्जित आय और पूजी से होने वाली आय, भूमि में मूल्यों में वृद्धि इत्यादि मे कोई अंतर नहीं माना था, फिर भी किसी गुट विशेष के साथ भेदभाव न करने का सिद्धात व्यापार तथा व्यावसायिक आय पर लाइसेंस कर के विरुद्ध एक प्रबल तर्क के रूप मे धीरे-धीरे ही स्वीकार किया गया था। 1860 में ऊंची आय वाले वर्गों पर कर की दर थोड़ी सी अधिक करने का अधिनियम बनाया गया। परंतु विल्सन ने इसका सावधानी के साथ स्पष्टीकरण दिया कि यह आरोही कराधान के सिद्धात की स्वीकृति नही वरन निम्न आय वर्गों पर, जिन्हे लाइसेंस कर तथा आय कर दोनों ही देने थे, इन करों के दोहरे प्रभाव को रोकने का प्रयास था।[130]

कुल आय में इन प्रत्यक्ष करो का योगदान नगण्य अनुपात में था। इस अवधि में

यह 5 प्रतिशत से कभी भी अधिक नही था। सरकार की आय के दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत मालगुजारी और अफीम से होने वाली आय थे। इनका सरकार की आय मे भाग क्रमश: 40 प्रतिशत और 15 प्रतिशत से अधिक था। अफीम से प्राप्त होने वाली आय का एक भाग बवई से निर्यात होने वाली अफीम पर शुल्क के रूप मे प्राप्त होता था। यह अफीम मुख्य रूप से ब्रिटिश भारत के वाहर मध्य भारत की देशी रियासतों मे पैदा की जाती थी। शेष भाग बंगाल की अफीम की बिक्री से प्राप्त होता था जिस पर एकमात्र सरकार का एकाधिकार था। इस अप्रचलित किस्म के एकाधिकार पर अबाध व्यापार की दृष्टि से ही नही लोकोपकारी तथा नैतिक पहलू से भी ऐतराज होना स्वाभाविक था।[131] सरकार ने इन दोनो ही तर्कों को अस्वीकार करने मे, और अपना एकाधिकार बनाए रखने मे विशेष व्यावहारिकता दिखाई। मेयो ने इस संबध मे लिखा है कि हमने विचार विशेष के लिए अनेक भूले की है, परंतु मुझे आशा है कि इस प्रकार का मूर्खतापूर्ण आचरण (एवमेव; अफीम पर एकाधिकार का परित्याग) हम नहीं करेंगे।[132] अफीम विरोधी आदर्शवादी सरकार के अफीम पर अपना एकाधिकार रखने के इरादे को प्रभावित करने में असफल रहे।

जिसे कर भार कहा जाता था उसकी गणना मे अफीम से आय और मालगुजारी को सरकार सम्मलित नही करती थी। अफीम को अलग रखना ठीक था, परतु राष्ट्रवादी प्रवक्ताओं ने भूकर को अलग रखने के औचित्य के बारे मे जोरदार ढग से शंका व्यक्त की। सरकारी मत था कि मालगुजारी कर नही है। इस परिभाषात्मक समस्या को इतना अधिक महत्व देना कुछ लोगों को अस्पष्ट हो सकता है। उपयोगितावादी सिद्धात के प्रभाव के आधार पर यह पूरी तरह से स्पष्ट नही होता। परंतु जे० स्ट्रेची उस समय निश्चय ही इस सिद्धात से प्रभावित था जबकि उसने लिखा था, अति प्राचीन काल में भारत मे सैद्धातिक दृष्टि से और व्यवहार में भी राज्य की अधिकाश सपत्ति भूमि के रूप मे ही रही है और सरकार के लिए जितना लगान ले सकना संभव और समीचीन रहा है उतना लिया गया है। भारत मे मालगुजारी भूमि पर लगाने का केवल यही अश है।[133] इस कथन की ऐतिहासिक कथन के रूप मे सदिग्धता पर जोर देना अथवा भाषाशैली की विशिष्टता और विचार के उद्गम की खोज करना अर्थहीन है। प्रश्न यह है कि उस काल मे जब कि उपयोगितावाद का प्रभाव घट रहा था, इस प्रकार की आस्था क्यों थी और सरकारी सिद्धातों मे मालगुजारी की लगान के अंश तथा गैर कर स्रोत के रूप मे परिभाषा क्यों महत्वपूर्ण वन गई थी। इस सबंध मे रिकार्डो अथवा मिल के प्रति निष्ठा के अतिरिक्त भी कुछ और बात थी। इस प्रकार सरकार ने भूमि से आय को बढ़ा पाना संभव व समीचीन दोनों ही पाया और उसने देश के कुछ संपन्न तथा अच्छे कराधान की संभावना वाले क्षेत्रो से करों के रूप मे उस आय को प्राप्त करने के लिए प्रयास किया जो इन प्रदेशों मे उसने मालगुजारी का स्थाई वंदोबस्त होने पर छोड़ दी थी। विल्सन द्वारा लगाया जाने वाला आय कर जमीदारों पर कराधान का पहला प्रयास था। उसने कराधान से छूट के लिए जमीदारो के वहानों को अस्वीकार कर दिया।[134] यदि मालगुजारी की कर के रूप मे परिभाषा की जाती तो स्थाई वदोवस्त की व्याख्या इस प्रकार हो

सकती थी कि जिसका अर्थ मालगुजारी देने वाले व्यक्तियों को और अधिक कराधान से स्थाई छूट होती है (जैसे, आय कर, सडक उपकर, शिक्षा उपकर इत्यादि से छूट)। अस्तु, सरकार ने मालगुजारी की लगान के अंश तथा आय के गैर कर स्रोत के रूप में परिभाषा पर जोर दिया। इसके अलावा, इस प्रकार की परिभाषा के आधार पर सरकार मालगुजारी को तथाकथित कर भार के अनुमानों से अलग रख सकी। अफीम से प्राप्त होने वाली आय के साथ-साथ इसे भी अलग रखने पर प्रति व्यक्ति कर भार उस कर भार का आधा प्रतीत होता था जो इन्हें सम्मिलित रखने पर होता था। निश्चय ही, ऐसा लगता था कि अधिकाश व्यक्ति कोई कर ही नही देते है। उनका सरकारी आय में एकमात्र योगदान जिसे कर कहा जा सकता था, उनके द्वारा नमक पर दिया जाने वाला शुल्क था। यही सरकारी मत था और एंग्लो इडियन प्रेस ने इसका कर्तव्यनिष्ठा के साथ प्रचार किया था।

हमारे इस दावे की कि उन्नीसवी शताब्दी के छठे दशक मे उपयोगितावाद मे पतन हो रहा था, कुछ सीमाएं हैं। केनिंग ने उत्तर भारत की सामाजिक व्यवस्था मे भूस्वामी अभिजात-वर्ग को प्राप्त परपरागत स्थान पुन: दिलाने तथा सैन्य विद्रोह के बाद समाज सुधार की विस्फोटक विधाई नियमों को छिन्न-भिन्न करने के अनुदार दृढ़ निश्चय की नीति प्रारंभ की जिससे एक नवीन युग प्रारंभ हुआ। इसकी विशेषता सरकार की सीमित अहस्तक्षेपी नीति थी। जे० एस० मिल ने[135] मालगुजारी के क्षेत्र में वर्ड, प्रिंगिल तथा थामसन द्वारा समर्थित उपयोगितावादी नीति से हटकर जमीदारवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया की ठीक-ठीक व्याख्या की है। मिल ने इस प्रतिक्रिया के बारे में अपने प्रभावशाली मित्रो एच० एस० मेने तथा डब्ल्यू० टी० थांटर्न को चेतावनी दी थी और अपनी बात को स्पष्ट करने के उद्देश्य से उसने इसके सैद्धांतिक आशय की उतनी अधिक विवेचना नही की जितनी इसके आशकित व्यावहारिक परिणामों की। मिल ने कहा कि जमीदारो के साथ मालगुजारी के संबंध मे स्थाई बंदोबस्त की व्यवस्था दीर्घकाल में सरकार के लिए बुरा सौदा सिद्ध होगी। परंतु 1862 तक सरकार इस संबंध में प्रतिज्ञा-बद्ध हो चुकी थी। 1862 में सर चार्ल्स वुड ने यह निर्णय किया कि जितनी जल्दी संभव होगा अस्थाई बंदोबस्त वाले क्षेत्रो में स्थाई बंदोबस्त लागू किया जाएगा। सरकार जिन कारणों से इस निर्णय से धीरे-धीरे मुकर गई उनकी अध्याय 4 मे विवेचना की गई है। जहा तक इस निर्णय का प्रश्न है इसके बारे मे यह तर्क किया जा सकता है कि इस पर उपयोगितावाद के पक्ष व विपक्ष में सैद्धातिक तर्कों का कोई प्रभाव नही था। स्थाई बंदोबस्त के विरोधियों ने यद्यपि लगान के उपयोगितावादी सिद्धात का सहारा लिया था (उदाहरणार्थ सर जान स्ट्रैची),[136] तथापि सरकार ने स्थाई बंदोबस्त का विस्तार इस कारण से नहीं रोका। इसके कारण थे चांदी की कीमत मे गिरावट और भूमि के मूल्यों मे लगातार वृद्धि जिन पर उन्नीसवी शताब्दी के छठे दशक के प्रारंभिक वर्षों में चार्ल्स वुड तथा स्थाई बंदोबस्त के समर्थको का ध्यान नही गया था। इनके अलावा एक अन्य कारण यह भी था कि सरकार को कराधान की ऐसी प्रणाली का निर्माण करने मे कठिनाई हो रही थी जिसके द्वारा वह भूमि आय में होने वाली वृद्धि में अपने हिस्से का

दावा छोड़ देने से होने वाली हानि पूरी कर सके। उपयोगितावादी दर्शन को आधार बनाना और प्रशासकों द्वारा उसकी स्वीकृति या अस्वीकृति के रूप में मालगुजारी नीति की व्याख्या करना ठीक नहीं है। इस प्रकार के दृष्टिकोण से विचारधारा के प्रभाव में अतिव्याप्ति का दोष आ जाता है, यह निर्णयकर्ताओं की स्वस्थ व्यावहारिकता को कम महत्व देता है और वित्तीय ढाचे एवं सपूर्ण आर्थिक दृश्य की उपेक्षा करता है। स्थाई वंदोबस्त के प्रश्न पर यद्यपि विचारधाराओं में संघर्ष इस दृष्टि से बहुत मनोरंजक था कि इसके द्वारा उपयोगितावाद का एक वैकल्पिक सामाजिक दर्शन से मुकावला हुआ। चार्ल्स वुड तथा एस० लैंग के लिए जो स्थाई वंदोबस्त के विस्तार के समय क्रमशः इंडिया आफिस तथा वित्त विभाग के प्रधान थे, यह उपयोगितावादी सामाजिक दृष्टि का विकल्प था। इसका अर्थ 'एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की नींव डालना था, संभवतः जिसकी सरलता के साथ व्यवस्था तो नहीं हो सकती थी, परंतु जिसमें सभ्यता और प्रगति की दृष्टि से आवश्यक तत्वों के बाहुल्य के साथ-साथ विविधता भी थी। इस समाज में भूमि से संबद्ध मध्यम वर्ग का क्रमिक विकास भी हो सकता था।[137] सरकार के प्रति निश्चित रूप से निष्ठावान कुलीन जमींदार वर्ग के विकास की संभावना स्थाई बंदोबस्त के पक्ष में एक महत्वपूर्ण प्रेरक शक्ति थी। व्यवहार में स्थाई बन्दोबस्त की योजना को पहले स्थगित किया गया और बाद में इसका परित्याग कर दिया गया। परंतु यह अहस्तक्षेपी नीति विषयक दृष्टिकोण पर उपयोगितावाद की विजय न होकर उन कठोर आर्थिक परिवर्तनों (विश्व के बाजारों में चादी की कीमतों में गिरावट तथा भारत में भूमि के मूल्यों में वृद्धि) के प्रति नीति-निर्धारकों की विशुद्ध व्यावहारिक प्रतिक्रियाओं का परिणाम थी जिन पर सरकार का कोई नियंत्रण नहीं था।

सैन्य विद्रोह से उपयोगितावादियों की सुखद कल्पनाओं और निष्प्रभ अमूर्त धारणाओं में आस्था को धक्का लगा। सैन्य विद्रोह से विजित देश में शासक प्रजाति की भूमिका के संबध में दहशतपूर्ण अहसास और व्यापक चेतना का उदय हुआ। अप्रकट प्रजातीवाद (रेशलिज्म) उभर कर आया। सैन्य विद्रोह जान लारेंस के शब्दों में प्रायः प्रजातियों के बीच युद्ध माना गया था और इसके बाद की अवधि में प्रजातीय भावनाएं प्रबल हो गई थी।[138] इसके द्वारा न केवल शासित एवं शासक प्रजातियों के बीच एक सामाजिक दीवार अथवा यों कहिए कि एक सामाजिक दूरी बन गई जो दबाव गुटों की कार्यवाहियों की दृष्टि से महत्वपूर्ण थी, वरन इसने प्रजातीय सिद्धांतों को भी जन्म दिया। सत्तावाद के समर्थन में उसका ही पुट लिए हुए एक प्रजातिवादी स्पष्ट वक्तव्य गवर्नर जनरल की परिषद में विधि सदस्य (1869-72) जे० फिट्ज जेम्स स्टीफन के लेखों में मिलता है। लिबर्टी, ईक्वेलिटी, फ्रैटर्निटी में स्टीफन ने नीची प्रजाति के ऊपर बिना किसी कानून के शासन करने वाली सर्व सत्तावादी नौकरशाही के दृष्टिकोण में निहित विचार प्रकट किए है। ये विचार हैं कि लोगों में मौलिक असमानता होती है, विजयी प्रजाति श्रेष्ठ है, विजयी प्रजाति के लोगों के द्वारा निरकुश सरकार की आवश्यकता है इत्यादि।[139] इस प्रकार का सर्व सत्तावाद सैद्धांतिक दृष्टि से उपयोगितावाद में निहित उसके ही एक तत्व का विस्तार था और ऐतिहासिक दृष्टि से यह एक

प्रजाति पर दूसरी प्रजाति के साम्राज्यिक शासन का औचित्य प्रतिपादन करता था। साम्राज्यिक सदेश के प्रसारण में ग्रेटर ब्रिटेन (1868) का लेखक सर चार्ल्स डिल्के स्टीफन की तुलना में कहीं अधिक सफल था। उसके द्वारा गढ़ा गया गोबिन्यू का प्रजातीय असमानता का विचार, डार्विन की भ्रष्ट ढग से की गई व्याख्या, और संपूर्ण भूमंडल पर एंग्लो-सैक्सन प्रजाति के एकत्व की सुदर कल्पना वहुत लोगो तक पहुंची। डिल्के का विचार था कि भारत आश्रित राज्यों मे ऐसा राज्य था जिसे ब्रिटिश शासन से वंचित नही रखा जाना चाहिए था। गवर्नर जनरल की परिपद में विधि सदस्य सर हेनरी मेन (1862-69) द्वारा किए गए पुरातन समाजों के अध्ययन और उसके द्वारा प्रतिपादित नियम दूसरे ही बौद्धिक धरातल पर अधिष्ठित थे। भारतीय समाज के विकास मे बाधाओं पर उसके विचारों की अलग-अलग व्याख्याए की गई है। भारतीय एवं यूरोपीय लोगों की एक ही आर्य परंपरा पर मेन के विचार भारतीय आत्म सम्मान की रक्षा के लिए आवश्यक औपधि के रूप में प्रयोग किए जा सकते थे। साथ ही उसका भारतीय शाखा की गतिहीनता का सिद्धात शासित प्रजाति की निंदा के लिए प्रयोग मे लाया जा सकता था। दि इकानामिस्ट से संबद्ध वाल्टर बेजहाट तथा अर्थशास्त्री टी० ई० सी० लेजली मेन की रचनाओं से बहुत प्रभावित थे।[140] लेजली (जो ट्रिनिटी कालिज, डबलिन में मेन का विद्यार्थी रहा था) ने जर्मनी के इतिहासवादी अर्थशास्त्रियों की भांति ही गैर-पाश्चात्य अर्थव्यवस्थाओं की विशिष्टता पर जोर दिया। बेजहाट उस चेतना के लिए मेन के प्रति आभारी था जिसे वह सामाजिक विकास की प्राक् आर्थिक अवस्था कहता था। आर्थिक नीति निर्धारण के सबंध मे इसका अर्थ स्पष्ट था कि विकसित पाश्चात्य समाजो के लिए अनुकूल आर्थिक सिद्धात पिछड़ी अर्थव्यवस्थाओं में लागू नही भी हो सकते। भारत के लिए विशिष्ट नुसखा कुछ भी रहा हो, परंतु इसमे संदेह नही है कि पाश्चात्य समाजों में सरकार की निर्धारित भूमिका की तुलना में ब्रिटिश भारतीय सराकर की भूमिका कही अधिक विस्तृत थी। जान स्ट्रैची स्टीफन के कथन का अनुमोदन करते हुए उसे उद्धृत करता है कि भारत मे ब्रिटेन की भूमिका एक युद्धरत सभ्यता की भूमिका थी। स्ट्रैची ने जिस समय यह लिखा था चूकि भारत के प्रति हमारा यह परम कर्तव्य है इसलिए हम यहा अपना शासन बनाए रखना चाहते हैं, वह इसमे निहित व्यंग्योक्ति से अनभिज्ञ था।[141] आरगाइल ने भी जब यह कहा था कि 'भारत मे अपने शासन की रक्षा करना वहा के लोगों के प्रति हमारे प्रथम कर्तव्यों मे से है' तो इस मनोरजक विरोधाभास की अभिव्यक्ति मे उसे कोई कठिनाई नही हुई थी।[142] जिन्होंने साम्राज्यवादी विचारधारा को स्वीकार कर लिया था उनके लिए भारत पर इग्लैंड का शासन करने का अधिकार और कर्तव्य विवाद का विषय नही था।

परंतु समुद्र मे घात लगाकर बैठा राक्षस जैसे सिर उठाता है उसी प्रकार यदाकदा शंका उठ खड़ी होती थी। ट्रैवीलियन ने यह प्रश्न उठाया था कि क्या भारत को उस समय के लिए तैयार किया जा रहा है जबकि यहां से इसके स्वामी एवं शिक्षक इसे छोड़कर चले जाएंगे।[143] काम्ते के वस्तुनिष्ठावादी शिष्य रिचर्ड कांग्रेव ने यह प्रश्न किया था कि यूरोप के लिए सामाजिक विकास के संबंध में प्रजाति की धारणा पर आधारित दृष्टिकोण

अपनाना तथा भारत की सभ्यता को नीचे स्तर की मानना और उस पर थोड़ी सी भी सहानुभूति न रखने वाली सरकार थोप देना क्या अविवेकपूर्ण नही है ? [114] जेम्स विल्सन का प्रश्न था कि क्या इंग्लैंड ने इस समस्या का सामना सच्चाई के साथ किया है कि भारत पर ब्रिटेन का शासन स्थाई रूप से रहना है या इस देश को स्वशासन के लिए धीरे-धीरे तैयार करना है ?[115] अंग्रेजों द्वारा इस प्रकार की शंकाएं भारत मे खुलेआम प्रकट नही की जाती थी। एक अवसर पर यह सार्वजनिक मामला बन गया था। यह अवसर था तथाकथित मद्रास विद्रोह जबकि मद्रास का गवर्नर चार्ल्स ट्रैवीलियन 1860 के बजट और वित्तीय केंद्रीकरण की नीति पर अपना असंतोष व्यक्त कर बैठा था। ट्रैवीलियन के उद्देश्य या कारण मिले-जुले थे। अशतः यह उसकी स्वस्थ प्रशासनिक समझदारी थी··· कलकत्ता स्थित सरकार केंद्रीकरण के दोषों को देख सके, इससे बहुत पहले ही उसने अत्यधिक केंद्रीकरण के जोखिमो को समझ लिया था और विकेंद्रीकरण की दिशा मे कदम उठाए थे। अशत: यह उसकी व्यवहार कुशलता मे कमी, लोक सेवा के प्रति निर्भीक बोध, और विवादप्रिय स्वभाव था। वह बहस करने मे पटु था और इसमे अपनी कुशलता के प्रदर्शन की प्रवृत्ति उसकी प्रधान दुर्बलता थी। अंशत मद्रास विस्फोट फ्रैंड आफ इंडिया की भाषा मे स्थानीयता की भावना अर्थात मद्रास और बबई के नागरिकों मे ईर्ष्यापूर्ण स्वतत्रता की भावना का लक्षण थी।[116] प्रशासनिक व्यवहार्यता पर मत-भेद, सरकारी अफसरों मे विवाद के लिए उत्साह या प्रांतीय ईर्ष्याएं पहले न हों ऐसी बात नही थी, परंतु इनसे कभी ऐसा तूफान खड़ा नही हुआ था जैसा कि ट्रैवीलियन के सामने खड़ा हो गया। जिस कारण से ट्रैवीलियन की निंदा हुई, और उसे सेवा से मुक्त करके इग्लैंड बुला लिया गया, वह यह था कि उसने आधारभूत मामलो पर संदेह व्यक्त किया था। उसने लिखा था कि 'भारत मे लोकप्रिय विधानसभा के स्वरूप तथा रीति-नीति की अच्छी नकल कर ली गई है, फिर भी इस समय हम स्थानीय हितों के प्रति-निधित्व से, पहले की तुलना मे, कही अधिक दूर है।'[147] ट्रैवीलियन ने विरोध प्रकट करते हुए यह भी कहा था कि सरकार ब्रिटिश वित्तीय ढाचे को प्रतिरोपित तो कर रही थी, परतु इस व्यवस्था की एक आधारभूत शर्त कि करदाताओं का प्रतिनिधित्व होना चाहिए, पूरी नही होती थी। वास्तविक प्रतिनिधि व्यवस्था के अभाव मे लोकमत से ही सरकार पर नियंत्रण की आशा की जा सकती थी। परंतु भारत मे ब्रिटिश समुदाय के मत को ही लोकमत समझने की गलती की गई थी। इस देश मे यूरोपीय लोगो के उपभोग की वस्तुओ पर शुल्क को 20 प्रतिशत से 10 प्रतिशत करने और हमारे घरेलू उत्पादन के लिए आवश्यक प्रमुख कच्चे माल को सीमा शुल्क से मुक्त करने से बजट शासक वर्ग मे काफी लोकप्रिय हुआ था, और जिसे लोकमत कहा जाता था यह उसका प्रतिनिधि मत था। ट्रैवीलियन ने वर्ग विधान की जो आलोचना की थी उसकी उपेक्षा नही की जा सकती थी। भारत मत्री से शिकायत करते हुए सपरिषद गवर्नर जनरल ने विशेष रूप से उपर्युक्त उद्धरण को छाट कर उसे आपत्तिजनक तथा खतरनाक बतलाया। ट्रैवीलियन का दूसरा अक्षम्य अपराध यह था कि उसने सरकार की इज्जत कम की। मद्रास के गवर्नर ने भारतीय वित्तीय नीति पर अपने आलोचनात्मक विचारो को प्रकट कर दिया था और

इस संबंध मे वहस में भारतीयों को सम्मिलित कर लिया था। सपरिषद गवर्नर जनरल कैनिंग ने लिखा कि 'मैं यह तो नहीं कहूंगा कि हम अपने आपको अमोघ बनाए रखेंगे, परंतु हम असंदिग्धता बनाए रखने का यथासाध्य प्रयास करेंगे।[148] भारत मे विकसित सरकार की कार्य प्रणाली में इज्जत के विचार को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। शासित प्रजाति और प्राच्य मस्तिष्क के संबंध में रूढ़िगत धारणा, आघातपूर्ण सैन्य विद्रोह के *अनुभव से उत्पन्न असुरक्षा की भावना, ब्रिटिश प्रशासकों और स्वाभाविक रूप से संपर्क* मे आने वाले अधीनस्थ अथवा विनयपूर्ण भारतीयों के मध्य संबंध की प्रकृति इनमें से कुछ भी इस इज्जत की जड़ मे रहा हो, ब्रिटिश नौकरशाही सरकार की मान मर्यादा एवं प्रतिष्ठा को परम महत्व प्रदान करती थी। उसको लगा कि ट्रैवीलियन को वापस इंग्लैंड बुला लेने से वह लज्जित होने से वच सकी और उसकी इज्जत बनी रही।

इज्जत की पूजा के अतिरिक्त सरकार की कार्य प्रणाली मे प्राच्य मस्तिष्क से संबंधित एक अन्य तत्व संभवतः रूढ़िवादी धारणाओं मे खोजा जा सकता है। सैन्य विद्रोह के बाद इस विचार को अधिक मान्यता प्राप्त हुई कि स्थिरता के हित मे समाज के स्वाभाविक नेता भूस्वामी अभिजात वर्ग का समर्थन प्राप्त करना चाहिए। यह विचार ऐसा नही है कि किसी अनुभव पर आधारित न हो। अभिजात वर्ग का पुनर्स्थापना का विषय इस कृति के क्षेत्र के बाहर है।[149] परंतु इस नीति से संबधित एक पहलू प्रासंगिक है। भारतीय विधान परिषद के प्रारंभ (1862 से 1872 तक) इसमे सरकार द्वारा मनोनीत प्रत्येक भारतीय सदस्य जमीदारों के हितों का प्रतिनिधि था और इनमे से अधिकाश अभिजात वर्गीय थे। कुल 12 मनोनीत सदस्यो मे से 3 राज्यों (पटियाला, जयपुर और रामपुर) के शासक, 5 राजा, महाराजा अथवा नवाब का खिताब प्राप्त जमीदार (विजयनगरम, किशनकोट, वर्दवान, वलरामपुर और ढाका) और शेष जागीरदार, तालुकदार एव जमीदार (देवनारायण सिंह, दिनकर राव, प्रसन्नकुमार टैगोर, देवराजसिह) थे। विधान परिषद के गैर सरकारी सदस्यो से परामर्श करना औपचारिक व्यवस्था मात्र था। परिषद की बैठकें नियमित रूप से नही होती थी। उदाहरणार्थ, पहले दस वर्षों मे (1862-71) प्रतिवर्ष औसतन 29 बैठकें हुई।[150] इन बैठको मे से लगभग एक तिहाई मे कोई भी भारतीय सदस्य उपस्थित नही था। अनेक बार जब वे उपस्थित भी होते थे तो परिषद के कार्य विवरण पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि उनकी भूमिका नही के बराबर होती थी। फिर भी भूस्वामी अभिजात वर्ग के सदस्यो के मनोनयन से यह स्पष्ट था कि सरकार इस वर्ग को कितना महत्व देती थी। प्रसन्नकुमार टैगोर वकील होने के नाते और पुरानी विधान परिषद मे क्लर्क रहने की दृष्टि से पूरी तरह से इस श्रेणी मे नही आते थे, परंतु उन्होंने वगाल मे जमीदारों की सस्था ब्रिटिश इडियन एसोसिएशन का प्रतिनिधित्व किया था। वे (बंगाल मे) जमीदार भी थे। इसी प्रकार दिनकर राव भी जमीदार थे (आगरे मे) परंतु विधान परिषद में गौरवपूर्ण स्थान पाने का अतिरिक्त उनका दावा इस बात पर भी आधारित था कि उन्होंने सैन्य विद्रोह के समय ब्रिटिश राज की पूरी निष्ठा के साथ सहायता की थी। 1868 मे परिषद के सदस्य के रूप मे मनोनीत वलरामपुर के महाराजा अवध के ब्रिटिश

इंडियन एसोसिएशन के 20 वर्षों तक (1862-82) अध्यक्ष थे। यह तालुकदारों का संघ था जिसकी राय सरकार (मुख्य रूप से प्रांतीय विषयों पर) लिया करती थी। इस संघ का कार्यालय केनिंग द्वारा संघ को दिए गए कैसरबाग महल मे था और 1876 मे सरकार के साथ इसका सबध इतना घनिष्ठ हो गया था कि सरकार ने मालगुजारी के साथ-साथ तालुकदारो से इस एसोसिएशन का चदा वसूल करने का कार्य भी अपने ऊपर ले लिया था।[151] भूस्वामी अभिजात वर्ग और उसके संघों की सरकार द्वारा पक्षधरता से शहरी, शिक्षित और व्यावसायिक वर्गो को प्रसन्नता नही हुई। हिंदू पैट्रिअट ने भी, जो वस्तुतः ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन का मुख पत्र था, लिखा था कि शिक्षित वर्गों की नियमित रूप से उपेक्षा की जाती है और राजा-महाराजा···उसी तरह ब्रिटिश महारानी की भारतीय प्रजा के प्रतिनिधि नही है जिस प्रकार लुई नेपोलियन अथवा विक्टर एमेनुअल इंग्लैंड के जनसाधारण का प्रतिनिधित्व नही करते थे।[152] (यह 1870-71 की स्थिति है जब प्रसन्नकुमार टैगोर की मृत्यु के दो वर्ष वाद परिषद के सदस्यों मे कोई भी बंगाली नही था और इसकी बैठको में शरीक होने वाले एकमात्र भारतीय जयपुर के महाराजा थे।) अगले दशक मे इस सबंध मे लोगों का रोष बढ़ गया। इंडियन नेशनल कांग्रेस के प्रथम दो अधिवेशनो मे वर्गीय हितों को प्रतिनिधित्व देने के लिए मांग उठाई गई क्योंकि नेतागण जैसा कि सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने कहा है, इस बात के लिए उत्सुक थे कि परिषद में सभी प्रभावशाली हितो को समुचित प्रतिनिधित्व मिले।[153] 1892 के इंडियन काउंसिल एक्ट से यह माग आशिक रूप से पूरी हो गई।

ब्रिटिश साम्राज्य की विचारधारा पर इतिहासकारों ने पर्याप्त ध्यान दिया है। ब्रिटिश राज की समाप्ति के बाद इसके विघटन के विषय में हाल की अनेक रचनाओ मे विचारो (न्यासधारिता, पितृवाद, उपयोगितावाद, आदि) पर जो जोर दिखाई देता है उससे त्रुटिहीन धारणा की कल्पित कथा का निर्माण हुआ है, मानो साम्राज्यिक नीतिया बर्क, बेंथम या मिल की अमूर्त आत्माओ द्वारा पैदा हुई हो। यह भावी इतिहासकारों द्वारा इतिहास लेखन के लिए दिलचस्पी का विषय होनी चाहिए। साम्राज्यिक और राष्ट्रवादी इतिहास लेखन मे समानातर प्रवृत्तिया और हितवद्ध गुटों *के स्थान पर विचारधाराओं पर ध्यान केंद्रित करने की प्रवृत्ति से जो अटकलबाजी का* क्रम चलता है, उस पर हम यहा विचार नही करेंगे। लेकिन इससे इंकार नही किया जा सकता कि ये प्रवृत्तिया आज भी मौजूद हैं। अत: हितवद्ध गुटों की भूमिका पर जोर देने पर दो प्रकार से ऐतराज किया जा सकता है—प्रथम तो इसे ब्रिटिश नीतियों का अनुचित लक्षण चित्रण कहा जा सकता है (ब्रिटिश हितवद्ध गुटों के अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन के आधार पर), अथवा दूसरी ओर इसे भारतीय राष्ट्रवादियो की अव्यक्त निंदा माना जा सकता है (उनके आदर्शों एवं लक्ष्यों की अनुदार व्याख्या के आधार पर)।

जिस काल का इस पुस्तक मे अध्ययन किया गया है उसमें भारतीय अपनी भूमिका ठीक प्रकार से निभा नहीं सके जबकि ब्रिटिश हितवद्ध गुट इस दिशा मे उनसे कहीं आगे निकल गए थे। फिर भी, उनके प्रकट रूप से निष्फल लगते वाले प्रयत्नों से जैसे कि जनमत तैयार करने, संघ बनाने, शिकायतों का प्रचार करने, आदि से, राष्ट्रीय

राजनीतिक दल के गठन का मार्ग प्रशस्त हुआ। इसके साथ ही साथ बहुधा परस्पर विरोधी वर्गीय हितों से ऊपर उठकर एक विचारधारा सामने आई जो कालातर मे आर्थिक राष्ट्रवाद के रूप मे विकसित हुई। जमीदारों एव शहरी मध्यम वर्ग के आद्य-राजनीतिक संघो के उद्देश्यों व कार्यवाहियों मे तथा उस व्यवस्था के भीतर, जिसमें ब्रिटिश राज के साथ सहयोग और उसके आदेशों का पालन ही होता था, वर्गीय आर्थिक हितों पर जोर देने का अर्थ यह नही कि उपर्युक्त प्रवृत्तियों को अस्वीकार किया जाता है। हम इस विषय पर अध्याय पाच मे पुन: विचार करेंगे। जहा तक ब्रिटिश हितवद्ध गुटों का प्रश्न है, हम नीति निर्धारकों पर प्रतिबंधों का उल्लेख पहले ही कर चुके है। इन प्रतिबंधों के कारण दबाव गुटो के लिए सरकार को अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी दिशा मे ले जा पाना संभव नही था। यह स्पष्ट है कि व्यापारियो के अतिरिक्त कुछ अन्य लोग जैसे भूतपूर्व उपनिवेशवादी, उद्धत राष्ट्रवादी देशभक्त, लोकहितैषी उत्साही व्यक्ति, पत्रकार, सुसमाचारक, आदि की भी उपनिवेशवाद से सबधित समस्याओं मे दिलचस्पी थी। यह पहले ही नही मान लेना चाहिए कि औपनिवेशिक अधीनस्थ राज्यो के प्रति ब्रिटेन की नीति के विषय मे इन सभी गुटों के मत मे अखड एकरूपता थी। वह भाव जिसे टेनिसन ने साम्राज्य का स्वर कहा है सट्टेवाज साम्राज्यवादियो की देन नही है। यह भी मान लेना ठीक नही होगा कि अल्पकाल मे सभी व्यावसायिक हितो मे सर्वव्यापी समरूपता थी और प्राय: व्यवसायी गुट अल्पकालीन बातों को ध्यान मे रखकर ही आचरण करते थे।[154] हमें हितवद्ध गुटों की भूमिका और विशेष रूप से व्यापारिक हितों की भूमिका का सही-सही मूल्याकन करने के लिए उपर्युक्त तथ्यो को ध्यान मे रखना चाहिए। अंत मे एक और बात महत्व की है कि इन हितवद्ध गुटों की भूमिका पर विचार अलग से न करके ब्रिटिश साम्राज्य के विदेशों मे विस्तार के परिप्रेक्ष्य में किया जाना चाहिए। ब्रिटिश हितबद्ध गुटों की भूमिका को अधिक महत्व देने पर इस संबध मे यह ऐतराज उठाया जा सकता है कि ब्रिटेन द्वारा विदेशों मे पूजीनिवेश के भौगोलिक वितरण से यह सिद्ध नही होता है कि भारत मे अपना साम्राज्य बनाए रखने में उसके भारी आर्थिक हित थे। विदेशों में ब्रिटेन के कुल पूजीनिवेशों की तुलना मे भारत ही नही सम्पूर्ण साम्राज्य मे भी उसके निवेश बहुत थोड़े थे। अस्तु, साम्राज्यिक नीति निर्धारण में आर्थिक हित महत्वपूर्ण नही थे। आर्थिक साम्राज्यवाद के सिद्धात के आलोचकों की इसे पहले से ही स्पष्ट प्रतिक्रिया को एक खास विचारधारा का व्युत्पन्न तत्व मानकर अस्वीकार नही किया जा सकता। यदि ऐसा हो भी, तो भी इस मत पर आनुभविक रीति द्वारा विचार तो होना ही चाहिए। इस दिशा में सर जार्ज पैश के प्रयास (1911) के तत्काल बाद सी० के० हाब्सन (1914) और एल० एच० जैक्स (1924) ने कार्य किया था और तब से ब्रिटिश पूजी के निर्यात के परिमाणात्मक अध्ययन की दिशा में तीन महत्वपूर्ण प्रयत्न ए० एच० इम्ला (1958), ए० के० केनंक्रास (1958) और मैथ्यू साइमन व हार्वे सेगल ने (1961) किए है। अब इस बात से सुनिश्चित प्रमाण उपलब्ध है कि ब्रिटेन द्वारा विदेशों मे किए गए पूजीनिवेशों का बहुत बड़ा भाग साम्राज्य के बाहर स्वतंत्र देशों मे था।[155] इस क्षेत्र मे नवीनतम और सबसे अधिक प्रभावशाली जाच साइमन

(1967) की है। इसने 1865 से 1914 तक की अवधि में ब्रिटेन द्वारा विदेशों में किए गए नए संविभागीय (पोर्टफोलिओ) पूंजीनिवेशों के भौगोलिक एवं उद्योगवार वितरण से संबंधित व्यापक आकड़ों का विश्लेषण किया है जो कम्प्यूटर की सहायता के विना संभव ही नहीं हो सकता था। उसकी जाच का एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह था कि ब्रिटेन द्वारा विदेशों में किए गए पूंजीनिवेशों में से लगभग 40 प्रतिशत तो साम्राज्य के भीतर थे और 59 प्रतिशत स्वतंत्र देशों में। उत्तरी व दक्षिणी अमरीकी महाद्वीपों का अंश सर्वाधिक था (क्रमश: 34 प्रतिशत व 17 प्रतिशत)। एशिया तथा अफ्रीका का भाग अपेक्षाकृत कम था। मैथ्यू साइमन के अनुमान के अनुसार ब्रिटेन द्वारा यूरोप के बाहर किए जाने वाले निवेशों में 68 प्रतिशत शीतोष्ण प्रदेश में नए वसे क्षेत्रों में थे। 1865 से 1873 की अवधि में ब्रिटेन के साम्राज्य के भीतर संविभागीय निवेश का वार्षिक औसत 98 लाख पौड था जबकि स्वतंत्र प्रदेशों में औसत 3 करोड़ 49 लाख पौड के लगभग था। (1874 से साम्राज्य के भीतर होने वाले निवेशों में वृद्धि हुई और 1885 में जब ये सर्वाधिक थे तो उस समय इनका कुल निवेश में भाग 67 प्रतिशत था। इसके बाद इनमे पुन: कमी हुई और 1890 में ये कुल निवेश के 25 प्रतिशत रह गए। उन्नीसवी शताब्दी के अंतिम दशक में आस्ट्रेलिया के खनन उद्योग में गरमबाजारी के समय एक बार इनमें फिर से वृद्धि हुई और 1903 में इनका अनुपात 59 प्रतिशत हो गया जो इस अवधि में सर्वाधिक था।)[156]

ब्रिटेन से विश्व के विविध भागों को पूंजी का प्रवाह विभिन्न अल्प अवधियों में भारी मात्रा में हुआ है। ब्रिटेन से भारत में पूंजी का भारी आयात 1865 से पहले हुआ था और इसी वर्ष से साइमन का अध्ययन प्रारंभ होता है। एल० एच० जैक्स के अनुसार 1857 से 1865 के बीच में ब्रिटिश पूंजी का भारत को बड़े पैमाने पर निर्यात हुआ··· 1870 तक लगभग 7 करोड 50 लाख पौंड का पूंजीनिवेश रेलो में हुआ। अंग्रेजो के हाथ में जो स्टाक पहले से ही था, उसके अतिरिक्त भारतीय ऋण के 5 करोड़ 50 लाख पौड भी उनके हाथ आ गए। अनुमान है कि चाय बागान, जूट मिलों, बैंको (अंशों और निक्षेपों दोनो ही रूप में), नौपरिवहन तथा वाणिज्यिक प्रतिष्ठानों में 2 करोड़ पौंड की पूंजी निजी आधार पर लगाई गई।'[157] इस प्रकार जैक्स ने अपने आकड़ो का, (जैक्स फाइले) जिन्हें साइमन ने भी प्रयोग किया है, सार प्रस्तुत किया है। अधिकाश शोध-कर्ताओ ने जिनमें सी० के० हाब्सन और केर्नक्रास भी है, अ[illegible] '870 के बाद

तथापि निश्चित रूप से सिद्ध हो जाता है कि ब्रिटिश पूंजी की प्रवृत्ति नवीन विश्व और साम्राज्य के बाहर के देशों में प्रवाहित होने की थी। यही पैश के अध्ययन (1911) का भी निष्कर्ष था। भारत और श्रीलंका में 36 करोड़ 50 लाख पौंड, आस्ट्रेलिया में 38 करोड़ पौंड तथा दक्षिण अफ्रीका में 35 करोड़ 10 लाख पौंड के पूंजीनिवेशों की तुलना में इंग्लैंड द्वारा नवीन विश्व में किए गए निवेशों का मूल्य 164 करोड़ 70 लाख पौंड था (इनमें से कनाडा में किए गए निवेशों की राशि 37 करोड़ 20 लाख पौंड थी।)[159]

आर्थिक साम्राज्यवाद के सिद्धांत के आलोचकों ने निवेशों के भौगोलिक वितरण से संबंधित आकड़ों का काफी प्रयोग किया है। संभवतः संसार के कुछ भागों में विधिवत साम्राज्य की स्थापना बिलकुल अनावश्यक हो गई थी, और औपचारिक साम्राज्यवाद भी यदि अधिक नहीं तो समान रूप से लाभकारी था। परंतु निवेशों के वितरण के स्वरूप के आधार पर क्या यह निष्कर्ष निकाला जाना युक्तिसंगत है कि पूंजी-*निवेश की प्रेरणा साम्राज्य की विधिवत स्थापना का कुछ भी स्पष्टीकरण नहीं करती?* यह कोई आसान प्रश्न नहीं है। यह कहना एक बात है कि साम्राज्य पूंजीनिवेश की दृष्टि से कम आकर्षक क्षेत्र सिद्ध हुआ और यह कहना कि साम्राज्य को पूंजीनिवेशों की दृष्टि से कभी आकर्षक समझा ही नहीं गया और इस दृष्टि से ये कभी साम्राज्य की स्थापना की प्रेरक शक्ति थे ही नहीं, बिलकुल दूसरी बात है। प्रथम तो न तो व्यवसायियों और न ही नीति-निर्धारकों के पास परवर्ती इतिहासकारों की पश्च दृष्टि थी। यह तथ्य कि किन्हीं निर्दिष्ट क्रियाओं का (उदाहरणार्थ, आत्महत्या के प्रयास का) वांछित फल नहीं निकला, (आत्महत्या का प्रयास सफल नहीं हुआ), ऐसा कोई स्पष्ट कारण नहीं जिससे सिद्ध हो कि क्रिया हुई ही नहीं थी (अन्यथा कोई भी आत्महत्या दंडनीय नहीं होगी)। केवल साम्राज्य के भीतर ही निवेशों का होना इस दावे के लिए पर्याप्त आधार नहीं है कि एक का दूसरे के साथ कोई संबंध नहीं है। ऐतिहासिक आंकड़ों से स्पष्ट है कि *साम्राज्य के बाहर निवेशों के लिए अवसर अधिकाधिक आकर्षक सिद्ध हुए।* हमें निवेशकों पर इस संबंध में अलौकिक पूर्वज्ञान का आरोप लगाना आवश्यक नहीं है। ऐसा संभव है कि जो जानकारी उस समय मिल सकती थी उस तक भी यथार्थ में निवेशकों और साम्राज्य निर्माताओं की पहुंच न रही हो। *सूचना की मात्रा से स्पष्टतः निवेश संबंधी निर्णय* निर्धारित होते हैं। अधूरी सूचना के आधार पर निर्णय लिए जा सकते हैं। निवेश, कच्चे माल की प्राप्ति आदि की दृष्टि से तथाकथित उपयुक्त देशों पर राजनीतिक प्रभुत्व बनाए रखने के लिए दीर्घकालीन योजनाएं भी निश्चित की जा सकती है। परंतु इन निर्णयों में पूरी जानकारी हो जाने पर परिवर्तन किए जा सकते है। (यह ठीक है कि हर समय इस प्रकार का परिवर्तन संभव नहीं होता।) आज भी अल्प विकसित देशों में निवेश संबंधी निर्णय लेने के लिए आवश्यक तत्वों के बारे में सूचना कम ही है और गत शताब्दी में तो यह और भी कम थी। ऐसी स्थिति में व्यक्तिनिष्ठ तत्वों जैसे विस्तृत बाजारों के बारे में दिवास्वप्न, तथाकथित व्यावसायिक अन्तर्बोध, स्वार्थी गुटों द्वारा दिए गए नारों को स्वीकार करने की तत्परता, लाभप्रद अवसरों के बारे में इच्छाजनित धारणाओं की भूमिका काफी महत्वपूर्ण रही है। एशियाई अधीनस्थ प्रदेशों के बारे में

इनमे से अनेक प्रत्याशाए भ्रामक सिद्ध हुई है और फिर पूजी अन्यत्र चली गई है। परंतु जब तक यह भ्रम रहा है, साम्राज्य को वनाए रखने की इच्छा वलवती होती गई। यद्यपि इस वात का अहसास वढ रहा था कि ब्रिटिश पूंजी के लिए इसके कार्यक्षेत्र पर विधिवत नियत्रण का होना आवश्यक नही फिर भी इस वात का विश्वास नही किया जा सकता था कि दूसरे देशो के अधीनस्थ प्रदेशों मे ब्रिटिश पूजीनिवेश मे कोई वाधा नही पड़ेगी। औपनिवेशिक अधीनस्थ देशो मे शासक देश के अतिरिक्त अन्य देशों से पूजी का प्रवाह निर्वाध नही था। ब्रिटेन के अन्य देशों मे संविभागीय निवेशो के केवल 1 प्रतिशत दूसरों के अधीनस्थ देशों मे थे (जैसे जर्मन-अफ्रीका तथा डच-इडीज मे)।[160] अस्तु, विधिवत स्थापित साम्राज्य का नकारात्मक पहलू से कुछ महत्व था। अंत मे, प्रश्न उठता है कि क्या हम उन ब्रिटिश भारतीय हितवद्ध गुटो के प्रभाव का अतिरजन कर रहे हैं जिनके हाथ मे विदेशों मे लगी ब्रिटिश पूजी का थोड़ा-सा भाग ही था ? किसी भी हितवद्ध गुट का प्रभाव उसके पूजीनिवेशों, कुल बिक्री आदि के अनुपात से अधिक हो सकता है। भले ही किसी भी साम्राज्यवादी देश के कुल विदेशी पूजीनिवेशों मे से एक छोटा अनुपात ही अधीनस्थ देश या उपनिवेश मे लगाया जाए और भले ही व्यवसायी वर्ग के वहुत थोड़े ही लोग उपनिवेश मे दिलचस्पी रखते हों, फिर भी इन निवेशकों अथवा व्यवसायियो की सरकार की उपनिवेश संवधी नीति मे रुचि इसलिए कम नही हो जाएगी कि अधिसंख्यक पूजीपत्तियों या व्यवसायियो के ध्यान में कुछ और ही स्वार्थ है। थोड़े से हितवद्ध गुटों के उत्साहपूर्ण प्रयत्नो के महत्व को कम नही समझना चाहिए। न तो भारत में सक्रिय हितवद्ध गुटों का प्रभाव इग्लैंड के भारत मे पूजीनिवेश के उसके समस्त विश्व में निवेश के अनुपात से सहसंवधित था और और न ही नीति निर्धारक इस अनुपात के आधार पर हितबद्ध गुटो के दवाव को निर्णायक रूप से पता करते हैं, फिर भी यह सहज प्रस्ताव इस तर्क मे निहित है कि साम्राज्य मे भारत जैसे अधीनस्थ क्षेत्रों मे पूजीनिवेश की मात्रा थोड़ी होने से यह सिद्ध होता है कि साम्राज्य के नीति निर्धारण मे पूजीनिवेश का महत्व अधिक नही था।

1865 से 1914 तक विदेशो मे ब्रिटेन के नवीन सविभागीय पूजी निवेशो के क्षेत्रीय वितरण से स्पष्ट है कि परिवहन, लोकोपयोगी सेवाओ तथा लोक निर्माण कार्यों मे भारी पूजी लगाई गई। सामाजिक उपरिव्यय पूजी मे निवेश कुल निवेश का 69 प्रतिशत (रेलो मे लगी 41 प्रतिशत पूजी सहित), कृषि और खनन उद्योगों मे 12 प्रतिशत तथा निर्माण उद्योगों मे 4 प्रतिशत से भी कम था। साइमन का निष्कर्ष है कि इस तरह उन सुविधाओ के विकास पर जोर दिया जाता था जिनसे प्राथमिक श्रेणी की वस्तुओं का उत्पादन करने वाले राष्ट्रों के द्वारा यूरोप को अपने फाजिल बिकाऊ माल का निर्यात कर सकने के सामर्थ्य में वृद्धि हो।[161] मेकफरसन तथा थोर्नर ने भारत मे रेलों मे निवेश से संबधित अपने अध्ययन मे स्पष्ट किया कि मैनचेस्टर के सूती वस्त्र उद्योग के मालिको ने रेलों के विकास का उत्साह के साथ समर्थन किया था। इस समर्थन के कारणों में कच्चे माल की आपूर्ति की प्रत्याशा एक महत्वपूर्ण कारण थी।[163] मेनचेस्टर के उद्योगपतियों को भारत से कपास की आपूर्ति वनाए रखने के वारे मे उत्सुकता विशेष रूप से अमरीकी

गृह युद्ध के साथ काफी बढ गई थी। किंतु उन्नीसवी शताब्दी के पाचवें दशक में ही काटन सप्लाई एसोसिएशन ब्रिटेन की अमरीकी आपूर्ति पर निर्भरता कम करने के उद्देश्य से साम्राज्य के भीतर ही कपास की आपूर्ति विकसित करने का प्रयत्न कर रहा था। (भारत की संभावनाओं के विषय मे जानकारी की स्थिति कितनी असंतोषजनक थी यह इसी से स्पष्ट हो जाता है कि जो लोग सरकारी हस्तक्षेप के लिए आदोलन कर रहे थे उनकी कपास की आपूर्ति बढाने के संबंध मे जबरदस्त प्रत्याशाए थी लेकिन उन्होंने कुछ साधारण तथ्यों जैसे छोटे रेशे वाली भारतीय कपास के तकनीकी गुणो की ओर ध्यान ही नही दिया था। जसे ही भारतीय कपास से संबंधित समस्याओं का पता चला और अमरीका से 1864-65 मे आपूर्ति पुन. चालू हो गई यह आदोलन समाप्त हो गया।) प्रथम दो वित्त सदस्यों विल्सन तथा लैंग द्वारा कच्चे पदार्थों द्वारा आपूर्तिकर्ता के रूप मे भारत की भूमिका पर दिए गए वल और आगे भी इस नीति के पालन के विषय मे ऊपर लिखा गया है। 1860 से 1870 के मध्य तक कपास निर्यात (सरकारी मूल्य) मे ढाई गुनी, कच्चे जूट मे छ: गुनी और खालो मे तीन गुनी वृद्धि हुई। 1860-61 के कुल निर्यात मे वस्त्र निर्माण मे काम आने वाले कच्चे माल (कपास, जूट, रेशम तथा ऊन) का भाग 28 प्रतिशत था। 1870-71 मे यह 43 प्रतिशत से अधिक हो गया।[163] रेल व सड़क निर्माण संबंधी नीति तथा सीमा शुल्क नीति दोनों ही पर कच्चे माल के निर्यातों को विकसित करने की आशंका की स्पष्ट छाप है, जो यदि तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो प्रतीत होता है कि यह पूर्जी निवेश के लिए उपयुक्त क्षेत्र खोज पाने की इच्छा से कही अधिक बलवती थी। ऐसा नही लगता कि नीति निर्धारको को भारत मे ब्रिटिश निवेशो के स्वरूप के बारे मे विशेष दिलचस्पी थी। निर्यात की दृष्टि से महत्वपूर्ण बागान उद्यमों, खनन एवं कृषि उद्योगो तथा रेलों मे भारी मात्रा मे पूजी निवेश अथवा रेलो मे निवेश प्रेरक प्रभावो (सहसंबध) का अभाव (रेलों के विकास के लिए आवश्यक मशीनो पर भारी मात्रा मे व्यय इंग्लैंड मे ही किया गया) कुछ ऐसे तथ्य थे जिनमें नीति निर्धारकों की रुचि नहीं थी। साम्राज्य के भीतर अनुपूरक विकास के सबंध मे नव वाणिज्यवादी दृष्टिकोण के होते हुए नीति निर्धारकों से इसी बात की आशा भी की जा सकती थी। विधान परिषद मे जिस दिन बजट पेश किया जाता था उस दिन वित्त सदस्य तथा चेंबर आफ कामर्स का प्रतिनिधि रस्मी तौर पर यह कह कर एक दूसरे को बधाई देते थे कि ब्रिटिश पूजी के साथ-साथ भारत में अभिकर्ता गृहो (एजेंसी हाउसेज) के द्वारा जुटाई गई अंग्रेजो के स्वामित्व मे चल पूजी से भारत का विकास हो रहा है।

सरकार की भूमिका यथासंभव निष्क्रिय मानी गई थी। आवश्यक होने पर यह भमिका सक्रिय हो सकती थी, परंतु इसकी आवश्यकता कभी ही पड़ती थी। उन्नीसवी शताब्दी के मध्य मे ब्रिटेन का आर्थिक नेतृत्व निर्विवाद था और ब्रिटिश वित्तीय तथा व्यापारिक हितो के सहायतार्थ हस्तक्षेप की आवश्यकता विरले ही पड़ती थी। 1870 से पहले की अवधि मे विश्व के अन्य भागो मे ब्रिटिश नीति अबाध व्यापार का साम्राज्यवाद के नाम से ज्ञात है। संक्षेप मे यह नीति इस प्रकार स्पष्ट की जा सकती है—यदि संभव हो तो शासन की सहायता के लिए बिना ही व्यापार किया जाना चाहिए, परन्तु यदि

आवश्यकता हो तो व्यापार के साथ-साथ राजनीतिक प्रभुत्व भी स्थापित किया जा सकता है (कारलाइल से क्षमायाचना पूर्वक) या फिर गालाघर तथा रोबिंसन इस नीति को इन शब्दों में बतलाते हैं : 'जब सभव हो अनौपचारिक नियंत्रण के साथ व्यापार किया जाए और जब आवश्यक हो तो व्यापार के लिए शासन तंत्र की सहायता ली जाए।'[164] विदेश मे सशर्त राजनीतिक हस्तक्षेपवाद की यह नीति भारत मे ब्रिटिश नीति जैसी ही थी। अधिक उपयुक्त शब्दो के अभाव में इस नीति को भेदमूलक हस्तक्षेपवाद कहा गया है। जहा एक ओर सरकार ने कुछ क्षेत्रों मे हस्तक्षेप न करने की नीति अपनाई थी, जैसे कि सामाजिक उपरिव्यय पूजी के विकास पर व्यय का सीमा निर्धारण, आरोही पुनर्वितरणीय कराधान से बचाव, घरेलू उद्योगो को टैरिफ संरक्षण न देना, आवर्ती दुर्भिक्ष की स्थितियो में भी खाद्यान्नों के स्थानान्तरण के संबंध मे हस्क्षेप न करना, औद्योगिक क्षेत्र में कोई रचनात्मक भूमिका निभाने के विषय मे अनिच्छा दिखाना, वही दूसरी ओर कुछ अन्य क्षेत्रों मे इसने अहस्तक्षेपी, नीति के सीधे व संकीर्ण मार्ग से अपने को हटा लिया और निजी पूजी निवेशो को आर्थिक सहायता या गारटी दी, बागानो में निवेश को सहायता पहुंचाने के उद्देश्य से भूमि सबधी अधिनियमों में सशोधन किए, कपास तथा दूसरे कच्चे माल के उत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिए असाधारण प्रेरणाएं दी और कच्चे माल के निर्यात के पक्ष मे आर्थिक उपरिव्यय पूजी व परिवहन सुविधाओं में निवेश को प्रोत्साहन दिया। उन्नीसवी शताब्दी के छठे दशक में अधिकांश ब्रिटिश हितवद्ध गुट जिनमें काटन सप्लाई एसोसिएशन एक महत्वपूर्ण अपवाद था, केवल इतना चाहते थे कि सरकार सही किस्म की हस्तक्षेपी नीति का पालन करे और इसके अतिरिक्त कुछ भी न करे।

1870 के बाद की अवधि मे साम्राज्य के बाहर राजनीतिक हस्तक्षेप और वाणिज्यिक विस्तार के बीच का संबंध भारी विवाद का विषय रहा है। साम्राज्यवाद की हाव्सवादी समीक्षा के विरुद्ध कई तरह की प्रतिक्रियाए हैं। कुछ लोग साधारण रूप से अनेक बातें कहते थे जो प्राय: निर्विवाद है। उदाहरणार्थ, यह कहा जाता था कि सबका एक ही मूल्य वाले स्पष्टीकरण से काम नही चलेगा। कुछ अन्य प्रतिक्रियाओ मे से आक्रामक ध्वनि आती है (*उदाहरणार्थ, पी० टी० बायर का मत है कि राजनीतिक उप*-निवेशवाद की तथाकथित शोषणकारी प्रकृति व्यापक रूप से इसलिए स्वीकार की जाती है क्योंकि विकसित देशों के बुद्धिजीवियों के मन मे उस समाज के प्रति रोष रहता है जो उन्हें वह महत्ता और शक्ति प्रदान नहीं करता जिसके लिए वे अपने को योग्य समझते हैं। ये व्यक्ति अल्प विकसित देशों में रोष का अर्थशास्त्र स्वीकार करने की तत्परता का पूरा लाभ उठाते हैं।)[165] इतिहास लेखन में इस प्रतिक्रिया का एक परिणाम यह हुआ कि एक ऐसी प्रवृत्ति बन गई थी कि साम्राज्यिक इतिहास मे आर्थिक कारणो के स्थान पर केवल राजनीतिक कारणो पर जोर दिया जाता है। यह एक प्रश्न बना हुआ है कि फोल्डहाउस या गालाघर, रोबिन्सन और डेनी ने 1870 के बाद साम्राज्य के लिए सघर्षों को यूरोप में नवीन राजनयिक रीति और राजनीतिक सुरक्षा के लिए प्रयत्न के रूप मे व्याख्या देकर क्या व्यापारिक हितों के महत्व को कम नही समझा है?[166] डी० सी० एम०

प्लैट के अभी हाल के एक अध्ययन (1968) के अनुसार ब्रिटिश नीति निर्धारण में वित्तीय एवं व्यापारिक हितों का महत्वपूर्ण हाथ रहा है। उसके ही शब्दों में: '1815 से 1914 तक ब्रिटिश विदेशी नीति में जिस स्थिरता एवं सूत्रबद्ध के दर्शन होते हैं वह परंपरागत राजनय से कही आगे है। ब्रिटिश नीति के दो तत्व थे: राष्ट्रीय सुरक्षा की व्यवस्था करना, तथा विश्व के बाजारों में ब्रिटेन द्वारा व्यापार के न्यायोचित एवं समान अवसरों को बनाए रखना।'[167] यह कहा गया है कि ये दोनों तत्व औद्योगीकरण में विशेषीकरण की आवश्यकता, अंतर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन की गहनता, औद्योगिक देश की अपने यहा अनुपलब्ध साधनों के लिए अन्य देशों पर निर्भरता और राजनीतिक शक्ति का प्रयोग करके कच्चे माल तथा बाजारों तक पहुंच बनाकर आर्थिक विकास के जोखिम को यथासंभव कम करने की तार्किक आवश्यकता के कारण घनिष्ठ रूप से संबद्ध है।[168]

यह संक्षिप्त सर्वेक्षण सतही तो है, फिर भी यह उस विषय के पृष्ठपट का कार्य कर सकता है, जिसे इस अध्ययन में केंद्र स्थान प्रदान किया गया है। डीन स्विफ्ट लिखता है कि जिस प्रकार भूगोलविद अफ्रीका के नक्शो मे रिक्त स्थानो को भरने के लिए हाथियों की आकृति बना देते है उसी प्रकार भारत के इतिहासकारों को भी यह सरल युक्ति आकर्षक लगी है। उन्नीसवी शताब्दी के आर्थिक इतिहास की परंपरागत स्वीकृत व्याख्या के पुनर्परीक्षण की दिशा मे हाल मे हुई प्रगति से हमारे ज्ञान मे अनेक रिक्तिया अब स्पष्ट हो चली है। इस संबंध मे कुछ जाने-माने उदाहरणो का उल्लेख किया जा सकता है—अब यह स्पष्ट हो चुका है कि 1881 के बाद की अवधि के अनौद्योगीकरण से संबधित जनसांख्यिकीय (डेमोग्राफिक) आकड़े अविश्वसनीय है, विदेशों में ब्रिटिश पूजी निवेशों के बारे मे अध्ययनों के परिणामस्वरूप 1871 के बाद की अवधि मे ब्रिटेन से अधीनस्थ देशो को पूजी प्रवाह से संबधित पुरानी धारणाएं पूरी तरह से बदल गई है, परंपरागत वस्त्र उद्योग के विनाश से सबंधित व्यापक रूप से मान्य विचारधारा के बारे में संदेह प्रकट किया गया है, उन्नीसवी शताब्दी के अंतिम दशको मे आधारभूत आर्थिक संरचना मे किए निवेशों के स्वरूप एवं महत्व के साथ-साथ विदेशी व्यापार और घरेलू अर्थव्यवस्था के मध्य होने वाली परस्पर क्रिया पर पुनर्विचार हो रहा है।[169] जिन समस्याओं पर हमने विचार किया है वे कभी-कभी हमें उपर्युक्त प्रश्नों पर पहुचा देती है, परतु इन सभी पर गहराई में जाकर विचार करना न तो आवश्यक है और न ही संभव। आजकल कुछ प्रचलित विवाद (उदाहरणार्थ, परंपरागत घरेलू उद्योगो के पतन से संबधित सामान्य रूप से स्वीकृत विचारों की समीक्षा) आनुमानिक परिकल्पनात्मक स्तर पर चलाए गए हैं। जब तक आनुभाविक प्रमाण नही मिलते तब तक इन्हें अनिर्णीत प्रश्न माना जाना चाहिए। यह कहना अनावश्यक है कि इस अध्ययन का उद्देश्य 1858 से 1872 तक का भारत का विस्तृत आर्थिक इतिहास प्रस्तुत करना नही है।

अत मे, हम अपने दृष्टिकोण और अध्ययन की रीति के विषय मे संक्षिप्त टिप्पणी करना चाहेगे। हितबद्ध गुटों और निर्णयकर्ताओं के बीच अंतक्रिया के विषय मे हमारे निष्कर्ष जैसे, सहयोगी और प्रतिस्पर्धी गुटों के परस्पर दबाव, निर्णयकर्ताओं पर नियमित प्रतिबंध, निर्णय की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले अविवेकी तत्व एवं झुकाव, अनि-

आजकल प्रयोग किए जाने वाले पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग नही किया है, जिन्होंने निर्णय प्रक्रियाओं के अध्ययन किए है। इस बात का कोई कारण नजर नही आता कि अनेक पाठकों के लिए अपरिचित विशिष्ट शब्दावली से बोझिल बनाए बिना ही किसी भी निर्णय (उदाहरण के लिए, स्थाई बंदोबस्त के क्षेत्र को विस्तृत न करने का निर्णय) का सीधा-सादा ऐतिहासिक विवेचन क्यों न प्रस्तुत किया जाए। इसके अलावा निर्णय लेने की प्रक्रिया के विस्तृत वर्णन मे अनेक महत्वहीन घटनाएं अनावश्यक प्रतीत हुई हैं। निर्णय प्रक्रिया के विश्लेपण के अपने लाभ है, परंतु इस जाच का यही एकमात्र लक्ष्य नहीं है। अध्याय दो मे विधिवत स्थापित ढाचे की व्याख्या की गई है। इस प्रारंभिक अध्याय मे औपचारिक विधिक ढाचे के बाहर निर्णयों को प्रभावित करने वाले घटकों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। इन घटको का अधिक विस्तार के साथ अध्ययन और विशेष रूप से, भारत और इंग्लैंड में हितबद्ध गुटों की भूमिका की जाच के द्वारा संभवतः सरकार की साम्राज्यिक व्यवस्था के कार्यान्वियन, परस्पर विरोधी हितबद्ध वर्ग समूहों, और उस युक्ति को अधिक गहराई के साथ समझा जा सकता है जिसके द्वारा विदेशी राज को स्वीकृति मिलने के साथ-साथ उसकी स्थिरता में वृद्धि हुई।

अंत मे यह कहना शायद अनावश्यक ही है जैसा कि मैनहीम कहता है: 'हम,मे से कोई भी निष्पक्ष सत्यों के अलौकिक शून्य में नही खड़ा है।'[171] किसी भी भारतीय के लिए, जब वह उन विदेशियो की भावनाओं एवं दृष्टिकोणों को समझने का प्रयास करता है जिन्होने भारत पर शासन किया है, तो 'उसकी अपनी अनुभूति और विदेशी शासकों की अनुभूति मे अतर' पर काबू पाना सहज नही होता। जब वह भारत के लोगों की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण मामलो पर विचार करता है तो उसके लिए अपने निर्णय से व्यक्तिनिष्ठ तत्व को अलग रख पाना आसान नही होता। वस्तुनिष्ठता की इन संभव सीमाओं से पूरी तरह मुक्त होने का दावा करना व्यर्थ है। परंतु पाठक के लिए यह निर्णय कर पाना संभव होना चाहिए कि दिया गया तर्क वस्तुनिष्ठ प्रमाण के नियमानुसार प्रयोग द्वारा उचित सिद्ध होता है या नहीं। यहा पर उठाए गए कुछ नए प्रश्न भारतीय साम्राज्य के राजनीतिक अर्थशास्त्र (हमने जानबूझ कर इस अप्रचलित शब्द का प्रयोग किया है) के अध्ययन के लिए सामान्य रूप से प्रासगिक महत्व के है। इनमें से कुछ के उत्तर अब भी निर्णायक रूप से नही दिए जा सकते। हम आशा करते है कि यह कृति इन प्रश्नों की ओर ध्यान आकर्षित करने मे सहायक सिद्ध होगी।

संदर्भ

1. चार्ल्स लैम ने यह समीक्षा संभवत. ईस्ट इडिया कपनी की सेवा से अवकाश ग्रहण करने के लगभग पाच वर्ष पहले बूथ को 'टेबल्स आफ सिंपल इटरेस्ट' (लदन, 1818) की जिल्द के साथ वाले कोरे पन्नो पर लिखी थी। पाडुलिपि यूरो० मी० 128, इडिया आफिस लाइब्रेरी, एम० सी० सदन, द्वारा इडिया आफिस लाइब्रेरी (लदन, 1967) पृ० 19 पर उद्धृत।

2. वित्त विभाग में गवर्नर जनरल इन काउंसिल का कार्य विवरण, दिसबर 1860, सख्या 2, चार्ल्स ट्रैवीलियन का नोट, 12, मई 1869।)
3. उदाहरणार्थ देखिए चार्ल्स ट्रैवीलियन से चार्ल्स वुड को पत्र 12 अक्तूबर, 1864, ट्रैवीलियन कागजात, पत्र-पजी जिल्द 44 (ट्रैवीलियन तीव्र शब्दों में अस्वीकार करता है कि वह 'बागान हितों' का विरोधी था), आरगाइल से मेयो को, 12 फरवरी, 1869, मेयो कागजात, बडल 47, सख्या 7 (आरगाइल मेयो को रेल योजना को इस समय बहुत अधिक गोपनीय रखने की सलाह देता है। इस समय बहुत अधिक गोपनीय शब्दों के नीचे मोटी रेखाएं खीची गई है। आरगाइल द्वारा मेयो को यह सलाह इसलिए दी गई थी कि रेलवे-हित भयभीत न हो); मेयो से आरगाइल को पत्र, 9 नवबर, 1870, मेयो कागजात, बडल 41, सख्या 300 (मेयो ने भारत में यूरोपीय व्यावसायिक समुदाय के विषय में लिखा है) व्यावसायिक हितो (तथा अन्य हितों जिनका उल्लेख आगे किया गया है) के बारे में इस प्रकार के स्पष्ट उल्लेख प्राय भारत-मत्रियो, गवर्नर जनरलों तथा सदस्यो के निजी पत्र-व्यवहार में मिलते हैं न कि उनके द्वारा लिखे गए सरकारी पत्रो मे। इस सतर्कता के विविध कारणो में एक कारण यह था कि विचारों की स्पष्ट अभिव्यक्ति को जनता से छिपाना आवश्यक था। यह सोचने की ही बात है कि यदि भारत में रहने वाले इनके ही देशवासियो को उदाहरण के लिए मेयो की उनके प्रति घृणा (वे यहा पर काले लोगो के शोषण द्वारा यथासभव धन एकत्र करने के लिए आते हैं—मेयो ने यह भारत मे रहने वाले गैर सरकारी यूरोपियनो के विषय मे लिखा था) अथवा ट्रैवीलियन की चिड़चिड़ाहट (यदि मेनचेस्टर का चेबर आफ कामर्स मुझे यह बता सके कि हम उसके लिए और अधिक क्या कर सकते थे, तो मैं उसका अनुगृहीत होऊगा) मालूम होती तो उनकी क्या प्रतिक्रिया होती, मेयो से आरगाइल को, 9 नवबर, 1870, पूर्व उद्धृत; ट्रैवीलियन से वुड को, 23 मई, 1863, ट्रैवीलियन कागजात, पत्र-पजी जिल्द 42।
4. हमारी दिलचस्पी उपयोगी साधनो मे है। सिद्धातशास्त्रियो की भाति हमें अर्थगत विवादो मे पड़ने की कोई आवश्यकता नही है। दबाव गुटो अथवा हितबद्ध गुटों के बारे मे अनुभवाश्रित अध्ययन केवल पश्चिमी देशो की राजनीतिक प्रणालियो तक सीमित हैं। अत इनके आधार पर निर्धारित सिद्धात एशिया के पराधीन व गैर लोकतंत्रीय देशों के बारे मे सगत नही भी हो सकते। एच० डब्ल्यू० एहरमान (स०) 'इटरेस्ट ग्रुप्स आन फोर काटीनेंट्स' (पिट्सबर्ग, 1958) एक मनोरजक तुलनात्मक दृष्टि प्रदान करता है और डेविड बी० ट्रूमन, 'दि गवर्नमेंटल प्रासेस' (न्यूयार्क, 1951) ए० एफ० बैंटले के 'दि प्रासेस आफ गवर्नमेंट' (शिकागो, 1908) के प्रकाशन के समय से प्रगति का सर्वेक्षण प्रस्तुत करता है। और भी देखिए, हैरी एकस्टीन, 'प्रैशर ग्रुप पालिटिक्स' (स्टैनफोर्ड, 1960)। दबाव गुटो की भूमिका और सरकारी निर्णय प्रणालियों के बारे में हाल मे किए गए उन सभी अध्ययनो की सूची देना अनावश्यक ही नही असभव भी होगा जिनसे आधुनिक और, विशेष रूप से समकालीन, इतिहास के विषय में दृष्टि मिलती है। अकेले वैदेशिक नीति के क्षेत्र मे निर्णय प्रक्रिया पर लिखे गए लेखो (1954 मे आर० सी० स्नाइडर, एच० डब्ल्यू० ब्रक तथा बी० सैपिन के लेख 'डिसीजन मेकिंग ऐज अप्रोच टु दि स्टडी आफ इटरनेशनल पालिटिक्स' के प्रकाशन के समय से। देखिए 'फारेन पालिसी डिसीजन मेकिंग' फ्री प्रेस आफ ग्लेनको, 1962) की सख्या इतनी है कि बहुत बड़ी सदर्भिका तैयार हो

जाएगी। इनमें से कुछ इतिहासकारो के लिए काफी महत्वपूर्ण हैं (उदाहरणार्थ, आर० जे० सी० बटोव, 'जापान्स डिसीजन टु सरेंडर' स्टैनफोर्ड, 1965)। हमने दबाव गुट शब्द प्रयोग किया है। अनेक ब्रिटिश लेखक लाबी शब्द पसद करते हैं। इतिहासकारो की शब्दावली में हाल मे नए शब्द जुड़े हैं परन्तु इसका अर्थ यह नही है कि इन तत्वों एव प्रक्रमो की ओर पहले कोई ध्यान नही दिया है।

5. हमने वर्गीकरण की कोई भी बनी-बनाई पद्धति प्रयोग नही की है। यदि हमारे आकड़ों को बोधगम्य क्रम से रखा जाए तो लगने लगता है कि उस समय कुछ विशेष प्रकार के एक दूसरे से भिन्न दवाव गुट थे।
6. गृह राजस्व कार्य विवरण, 6 सितबर, 1860, सख्या 15 (पशियन विभाग) नाडियाद, जिला कैरा के निवासियो के द्वारा याचिका (अर्जी), 15 जून, 1860। वही पृ० 158, नीचे देखें (वबई याचिका)।
7. बगाल डायरेक्टरी (कलकत्ता, 1858), बगाल चेंबर आफ कामर्स, टाइसन के बगाल चेंबर आफ कामर्स के इतिहास में प्रशसात्मक ध्वनि और अनेक विषयो पर जानबूझ कर मौन के वावजूद भी काफी उपयोगी सामग्री है। यह बंबई और कराची के चेंबर्स आफ कामर्स द्वारा प्रकाशित ऐतिहासिक विवरणो के बारे मे भी सत्य है।
8. गृह राजस्व कार्य विवरण, अप्रैल, 1867, सख्या 20, भारत मत्री को कलकत्ता ट्रेड्स एसोसिएशन के मास्टर, समिति और सदस्यो द्वारा याचिका (अर्जी), 22 अप्रैल, 1867, सख्या 35, वायसराय को याचिका, 15 मार्च, 1867।
9. पी० पी० एच० एल० 1863, जिल्द 22, पत्रक (कार्ड) 87, पृ० 160-62। स्मरण-पत्र लैंडहोल्डर्स एड कमर्शल एसोसिएशन से, 31 मई, 1861; इडिगो प्लाटर्स एसोसिएशन से, 20 नवबर, 1860, काफी प्लाटर्स आफ कुर्ग से 25 जून, 1862; सूरसीपुर टी कंपनी कछार सचालको से 6 फरवरी, 1861।
10. स्मरण-पत्र काटन सप्लाई एसोसिएशन से ईस्ट इडिया कोर्ट आफ डायरेक्टर्स को 1857 मे; भारत मत्री को 26 जुलाई, 1859 को; भारत सरकार को 3 अप्रैल, 1860 को : आइजक वाट्स 'दि ओरिजिन एंड प्रोग्रेस आफ काटन सप्लाई एसोसिएशन' (मेनचेस्टर 1851) पृ० 119, 125, 131, इस ग्रथ में बहुत सारे प्रलेखो (डाकुमेंट्स) का संकलन है। आगे से इस ग्रथ को केवल वाट्स के नाम से सबोधित किया जाएगा।
11. काटन सप्लाई एसोसिएशन के कुछ क्रियाकलाप के लिए देखें एस० भट्टाचार्य 'लेसेफेअर इन इडिया', 'इडियन इकानामिक एड सोशल हिस्ट्री रिव्यू', जनवरी, 1968, पृ० 1-22।
12. रीफार्मर 14 नवंबर, 1937; बी० बी० मजूमदार, 'इडियन पोलिटिकल एसोसिएशन्स एड रीफार्म आफ लेजिस्लेचर' 1818-1917—(कलकत्ता, 1965) पृ० 24 पर उद्धृत।
13. जेम्स रटलेज, 'ब्रिटिश रूल एड नेटिव ओपीनियन इन इडिया' (लंदन, 1878) पृ० 219-20।
14. देखें अध्याय चार।
15. सुरेंद्रनाथ बनर्जी, 'ए नेशन इन मेकिंग' (लदन, 1925) पृ० 40।
16. देखें अध्याय चार।
17. वित्त-कार्य-विवरण जून, 1861, लेखा शाखा सख्या 61, ब्रिटिश इडियन एसोसिएशन, कलकत्ता

के सदस्यों से गवर्नर जनरल को, 5 जून, 1861।

18. सड़क उपकर (सेस) विधेयक के संबंध में 'हिंदू पैट्रिअट' की टिप्पणी 5, 12 तथा 19 जून, 1871, वही 6 फरवरी, 1871; 23 जनवरी, 1871; 10 जुलाई, 1871 'जमींदारों पर शिक्षा और सड़क उपकरों के विषय में'।
19. भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त प्रेषण संख्या 86, 3 अप्रैल, 1868।
20. 'जर्नल आफ दि ईस्ट इंडिया एसोसिएशन' जिल्द 1, संख्या 1, 1867।
21. देखें अध्याय 1, 2, 5।
22. देखें अध्याय 3, 5।
23. देखें अध्याय 4। ईस्ट इंडिया एसोसिएशन की बंबई शाखा से याचिका, (अर्जी), 'जर्नल आफ दि ई० आई० ए०' जिल्द 5, खंड 2, 1871 पृ० 130-32।
24. देखें अध्याय 3।
25. पी० पी० एच० सी० 1871, जिल्द 8, पत्रक 363, परिशिष्ट पृ० 511, बंबई एसोसिएशन तथा बंबई प्रेसीडेंसी के मूल निवासियों द्वारा प्रतिवेदन (1871)। स्थाई करों के बारे में पृ० 86 पर देखें; बी० बी० मजूमदार पूर्वोद्धृत, पृ० 68-73। एनिल सील, 'दि एमरजेंस आफ इंडियन नेशनलिज्म' (कैम्ब्रिज, 1968) पृ० 229-31।
26. डी० नौरोजी, 'स्पीचेज एंड राइटिंग्स आफ दादाभाई नौरोजी' (मद्रास, 1908) पृ० 172, परिशिष्ट "डी, स्टेटमेंट टु दि सिलेक्ट कमेटी आन ईस्ट इंडिया फाइनेंस, 1871"।
27. जे० डिकिंसन (1815-76) 'काटन एंड रोड्स इन वेस्टर्न इंडिया' (1851) 'धार नाट रेस्टोर्ड' (1864), 'गवर्नमेंट आफ इंडिया अंडर ए ब्यूरोक्रेसी' (1853) आदि ग्रंथ प्रकाशित किए; इसने सैन्य विद्रोह के बाद भारतीयों को क्षमा प्रदान करने की वकालत की थी और यह उनके प्रति सहानुभूतिशील था।
28. देखें अध्याय 5।
29. भारत सरकार को काटन सप्लाई एसोसिएशन से स्मरण-पत्र 3 अप्रैल, 1860, वाट्स पूर्वोद्धृत, पृ० 139। गृह राजस्व कार्य विवरण 6 जुलाई, 1861, संख्या 7, मंत्री, सी० एस० ए० से मंत्री, भारत सरकार को 15 मई, 1861। वही 9 दिसंबर, 1861, संख्या 2, ठीक वही 3 सितंबर, 1861।
30. देखें अध्याय 3, 5। वित्त कार्य विवरण जुलाई, 1868, पृथक राजस्व संख्या 14, भारत मंत्री को ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन द्वारा विनम्र स्मरण-पत्र, 31 मई, 1869।
31. देखें अध्याय 4। गृह पृथक राजस्व मार्च, 1861, संख्या 6 एच० डब्ल्यू० जे० वुड, सचिव, बंगाल चेंबर आफ कामर्स से सचिव, भारत सरकार को, 23 फरवरी, 1861; संख्या 7, सी० वुड को मेसर्स ग्रेहम ब्रदर्स तथा अन्य 41 फर्मों से, 15 दिसंबर, 1860; संख्या 7 (ए), जो० मेकर्फिल्प, अध्यक्ष, ई० आई० एसोसिएशन से सी० वुड को, 14 दिसंबर, 1860। गृह पृथक राजस्व कार्य विवरण, अप्रैल, 1862, संख्या 25, सचिव। बंबई चेंबर आफ कामर्स से सीमा शुल्क-कमिश्नर को 21 मई, 1861। वही, कराची चेंबर आफ कामर्स के सचिव से पत्र। वही, अप्रैल, 1862, संख्या 28, अध्यक्ष, मद्रास चेंबर आफ कामर्स से सचिव, बोर्ड आफ रेवेन्यू, फोर्ट सेंट जार्ज, 8 मई, 1861; वही संख्या 42, सचिव, मद्रास चेंबर आफ कामर्स से सचिव,

भारत सरकार को, 28 जनवरी, 1862. वही सख्या 45, मद्रास चेंबर आफ कामर्स के सचिव, भारत सरकार को, 9 अप्रैल, 1862। वही 20 दिसंबर, 1862, सख्या 8, बंबई के गवर्नर को सिंध के रुई के उत्पादकों और व्यापारियों की याचिका, मई, 1862। वही 5 मार्च, 1861, सख्या 8, कलकत्ता की मैसर्स ग्रोव, कितबर्न एंड कंपनी तथा चार अन्य फर्मों से सचिव, भारत सरकार को, 1 मार्च, 1861।

32. अगस्त 1860 में एच० डब्ल्यू० जे० वुड, मत्री, बंगाल चेंबर आफ कामर्स ने सेक्रेटेरियट से भेंट करने के लिए एक प्रतिनिधि मडल का गठन किया था। गृह पृथक राजस्व कार्य विवरण, 1 अक्तूबर, 1860, सचिव, बंगाल चेंबर आफ कामर्स से सचिव, भारत सरकार को, 27 अगस्त, 1860। गृह पृथक राजस्व कार्य विवरण, 27 जुलाई, 1860, सख्या 26, डब्ल्यू० एच० केल, अध्यक्ष, मद्रास चेंबर आफ कामर्स से सचिव, फोर्ट सेंट जार्ज की सरकार को, 30 जून, 1860; वही सख्या 10, सचिव, बंबई सरकार से सचिव, भारत सरकार को, 14 मई, 1860। और भी, गृह पृथक राजस्व कार्य विवरण, 1 अक्तूबर 1860, सख्या 1, 2 व 6 चेंबर आफ कामर्स के प्रतिनिधियों को टैरिफ समिति में लेने के संबंध में। बबई और मद्रास के चेंबरों ने कोई प्रतिनिधि नही भेजे, उन्होंने बंगाल चेंबर आफ कामर्स से संबंध मुलन को ही अपना प्रतिनिधि मनोनीत किया जिसे सरकार ने टैरिफ समिति का सदस्य मनोनीत किया।

33. 'एनुअल रिपोर्ट आफ काटन सप्लाई एसोसिएशन' सख्या 5, 23 सितंबर, 1862। वही संख्या 2, 1859। वाट्स पूर्वोद्धृत पृ० 119 और आगे।

34. देखें अध्याय चार। गृह राजस्व कार्य विवरण 20 अक्तूबर, 1860, सख्या 42, सचिव, बंगाल सरकार से सचिव, भारत सरकार को, 2 अक्तूबर, 1860।

35. बी० बी० मजूमदार पूर्वोद्धृत पृ० 37। एं० सील पूर्वोद्धृत पृ० 204। 'काटन सप्लाई रिपोर्टर' के प्रत्येक अंक में मुखपृष्ठ पर सबसे ऊपर छपा रहता था. 'कपास का किसी भी राजनीति से कोई संबंध नहीं है' तथापि कूटनीतिपूर्ण राजनीति उसका एक प्रमुख कार्य था। लकाशायर के 'कपास के दुर्भिक्ष' के समय मैनचेस्टर के सूती वस्त्र उत्पादक और कपास विक्रेता भारी सख्या में काटन सप्लाई एसोसिएशन के सदस्य बन गए थे। काटन सप्लाई रिपोर्टर इनके अपने प्रचार का साधन था।

36. हाउस आव कामंस में भाषण कर्नल साइक्स द्वारा (29 जून, 1865), किनैर्ड द्वारा (27 जुलाई, 1868), आर० एन० फाउलर द्वारा (3 अगस्त, 1869; 5 अगस्त, 1870), सर डब्ल्यू० लासन (3 अगस्त, 1869), स्टीफन केव (24 फरवरी, 1871), 'फाइनेंशियल स्टेटमैंट्स' ' रिप्रिंटेड फ्राम हसार्ड्स पार्लियामेंटरी डिबेट्स' (कलकत्ता 1872) पृ० 634, 790, 794, 868, 886, 956, 969, 990, 997।

37. मेयो से बिजरायली को 9 मई, 1871, मेयो कागजात, बंडल 43, संख्या 100; मेयो से नोर्थकोट को, 16 नवबर, 1870, मेयो कागजात बंडल 41 संख्या 315।

38. आरगाइल से मेयो को, 16 दिसंबर, 1870, मेयो कागजात, बंडल 48, संख्या 34।

39. आर० टैंपिल से ओ० टी० बर्न को 25 जुलाई, 1871, मेयो कागजात, बंडल 61, (सख्या नहीं दी गई है)।

40. देखें अध्याय 5। डी० एन० बी०, XVIII, पृ० 225। हेनरी हिडमैन, 'दि रिकार्ड्स'

एन ऐडवेंचरस लाइफ,' (लंदन, 1911), पृ० 169, 174-75।

41. डी० नौरोजी पूर्वोद्धृत परिशिष्ट डी, 'स्टेटमेंट टु दि सिलेक्ट कमेटी आन ईस्ट इंडिया फाइनेंस, 1871,' पृ० 173।
42. गृह पृथक राजस्व कार्य विवरण सितंबर, 1860, गवर्नर जनरल इन काउंसिल का प्रस्ताव 29 सितंबर, 1860। बुलन बंगाल चेंबर आफ कामर्स का अध्यक्ष था। गृह पृथक राजस्व कार्य विवरण संख्या 6, सचिव, चेंबर आफ कामर्स से सचिव, भारत सरकार को, 24 सितंबर, 1860।
43. गृह राजस्व कार्य विवरण सितंबर 23, 1860, संख्या 39। गवर्नर जनरल इन काउंसिल द्वारा प्रस्ताव, वही अक्तूबर 20, 1860, संख्या 35 आयकर पत्रक में संशोधन के लिए नियुक्त समिति की रिपोर्ट।
44. वित्त कार्यविवरण जनवरी 1867, रिपोर्ट आफ कमेटी आन कस्टम्स टैरिफ भारत सरकार के वित्त सचिव को प्रेषित, 7 जनवरी, 1867।
45. देखें अध्याय 5।
46. गृह पृथक राजस्व कार्य विवरण 7 जुलाई, 1860 संख्या 7, ए० ईडन। राजस्व बोर्ड सचिव, बंगाल सरकार को, 10 मार्च, 1860।
47. पूर्वोक्त स्थल।
48. चार्ल्स ट्रैवीलियन से चार्ल्स वुड को, 13 जून, 1860, ट्रैवीलियन कागजात।
49. चार्ल्स ट्रैवीलियन से चार्ल्स वुड को, 4 मार्च, 1863, ट्रैवीलियन कागजात।
50. ट्रैवीलियन से वुड को, 12 अक्तूबर, 1864, ट्रैवीलियन कागजात।
51. देखें 'फ्रेंड आफ इंडिया' 14 अप्रैल, 1864; 22 सितंबर, 1864, 6 अप्रैल, 1865, 18 मई, 1865।
52. वित्त कार्यविवरण अप्रैल, 1865, पृथक राजस्व संख्या 35, भारत सरकार को बंगाल चेंबर आफ कामर्स द्वारा स्मरण-पत्र 10 अप्रैल, 1865। वही, जून 1865, संख्या 244, वित्त सचिव, भारत सरकार से सीमाशुल्क कलक्टर को, 21 जून, 1865। भारतमंत्री से भारत सरकार को, वित्त प्रेषण, संख्या 114, 9 मई, 1865।
53. देखें अध्याय 1।
54. मेयो से आर्बुथनोट को 10 जनवरी, 1870, मेयो कागजात, बंडल 35, संख्या 17।
55. मेयो से आरगाइल को, 17 अक्तूबर, 1869, मेयो कागजात, बंडल 37, संख्या 285।
56. मेयो से आरगाइल को, 17 जनवरी, 1870, मेयो कागजात, बंडल 35, संख्या 20।
57. पूर्वोक्त स्थल।
58. देखें अध्याय 3।
59. आरगाइल से मेयो को, 11 अप्रैल, 1871, मेयो कागजात, बंडल 49, संख्या 5।
60. भारत मंत्री से भारत सरकार को, 10 फरवरी, 1871, वित्त प्रेषण, संख्या 52।
61. देखें अध्याय 4।
62. मेयो से आरगाइल को, 9 नवंबर, 1870, मेयो कागजात, बंडल 41, संख्या 300।
63. ब्लेयर बी० किंग, 'दि ब्ल्यू म्यूटिनी : इंडिगो डिस्टरबेंसेज इन बंगाल 1859-62'

(फिलाडेल्फिया, 1966) अध्याय 4 यत्र तत्र ।

64. रविन्दर कुमार, 'दि डेकन राइट्स आफ 1875', 'जनरल आफ एशियन स्टडीज,' XXIV, संख्या 4, अगस्त, 1965, पृ० 613-35 ।
65. बी० क्लिंग पूर्वोद्धृत, पृ० 97-8 ।
66. आर० कुमार, पूर्वोक्त स्थल ।
67. काटन सप्लाई एसोसिएशन तथा भूमि संबंधी अधिनियमों के विषय में देखें अध्याय 4, जूट के तैयार माल पर आयात-शुल्क के विषय में देखें अध्याय 4 ब्याज की गारंटी देकर निर्माण की गई रेलों के संबंध में देखें अध्याय 3 तथा डी० थोर्नर, 'इनवेस्टमेंट इन एपायर' (फिलाडेल्फिया, 1950) पृ० 119-167; सूती वस्त्रों पर आयात शुल्क के विषय में देखें अध्याय 4 और ए० रेडफोर्ड, 'मेनचेस्टर मर्चट्स एंड फारेन ट्रेड' (मेनचेस्टर, 1956) पृ० 25 और आगे ।
68. ऊंची टैरिफ दरों के विरोध में बंगाल चैंबर आफ कामर्स ने एक सभा का आयोजन किया था । संभवतः केनिंग की विद्रोहियों का क्षमादान की नीति के विरुद्ध ब्रिटिश समुदाय में रोष के कारण व्यापारियों को सभा में जनसाधारण को लाने में सफलता मिली । गृह (लोक) मंत्रणाएं, 15 अप्रैल, 1859 । संख्या 10, कलकत्ता याचिका (अर्जी), दिनांक 5 अप्रैल, 1859 विल्सन की टैरिफ नीति पर इस अध्याय में आगे विचार किया गया है ।
69. गृह पृथक राजस्व कार्यविवरण, 1 अक्तूबर, 1860, एच० डब्ल्यू० जे० वुड, सचिव, बंगाल चेंबर आफ कामर्स से सचिव, भारत सरकार को, 27 अगस्त, 1860 । मेनचेस्टर स्मरण-पत्र के बारे में भारत सरकार को बता दिया गया था, गृह पृथक राजस्व कार्यविवरण 7 जुलाई, 1860, संख्या 14, भारत मंत्री से भारत सरकार को, 17 मई, 1860 । गृह पृथक राजस्व कार्यविवरण 27 जुलाई, 1860, संख्या 26, डब्ल्यू० के० फ्रेक, अध्यक्ष, मद्रास चेंबर आफ कामर्स से सचिव, फोर्ट सेंट जार्ज की सरकार को, 30 जून, 1860 । वही संख्या 10, सचिव, बंबई सरकार से सचिव, भारत सरकार को, 14 मई, 1860 ।
70. गृह पृथक राजस्व कार्यविवरण, मार्च 1861, संख्या 6, एच० डब्ल्यू० जे० वुड, सचिव, बंगाल चेंबर आफ कामर्स से सचिव, भारत सरकार को, 23 फरवरी, 1861, देखें अध्याय 4 ।
71. वित्त कार्यविवरण पृथक राजस्व अप्रैल, 1865, संख्या 35, बंगाल चेंबर आफ कामर्स से गवर्नर जनरल को स्मरण-पत्र, 10 अप्रैल, 1865 । भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त प्रेषण, संख्या 114, 9 मई, 1865 । वित्त कार्यविवरण पृथक राजस्व जून 1865, संख्या 244, वित्त सचिव, भारत सरकार से बंगाल, मद्रास, बंबई और ब्रिटिश बर्मा की सरकारों को, 29 जून 1865 । देखिए अध्याय 4 ।
72. वित्त कार्यविवरण मार्च, 1866, संख्या 77, सचिव, बंगाल चेंबर आफ कामर्स से सचिव, भारत सरकार को, 26 फरवरी, 1866 ।
73. वित्त कार्यविवरण संख्या 73, सचिव, बंगाल चेंबर आफ कामर्स से सचिव, बंगाल सरकार को, 21 नवंबर, 1867 । बंबई चेंबर ने बंगाल चेंबर के इस दावे का समर्थन किया कि टैरिफ मूल्यों और बाजार कीमतों में भारी अंतर है । बहुत संभव है कि अमरीकी गृह-युद्ध के समाप्त होने के बाद कीमतें गिर गई थीं और चेंबर्स आफ कामर्स द्वारा शिकायत के लिए आधार थे ।

वित्त कार्यविवरण, पृथक राजस्व फरवरी, 1868, सख्या 76, सचिव, बबई चेंबर आफ कामर्स से सचिव, बबई सरकार को, 22 अक्तूबर, 1867। फरवरी, 1868 मे नियुक्त समिति ने अपनी रिपोर्ट अप्रैल मे दी जिसमे कहा गया था कि इस समय बाजार कीमत और टैरिफ मूल्यो मे थोड़ा ही अतर है और इसलिए *पुनर्मूल्यन को कुछ समय के लिए स्थगित कर देना चाहिए* (वित्त कार्यविवरण पृथक राजस्व, फरवरी, 1868, सख्या 90 तथा अप्रैल, 1868, सख्या 29)। मार्च, 1869 मे टैरिफ मूल्यन मे सशोधन किया गया। भारत सरकार को आशा थी कि 'इस छूट से व्यापार को प्रोत्साहन मिलेगा'''जिससे वित्तीय त्याग मे कुछ कमी हो सकेगी''' (भारत सरकार से भारत मत्री को, वित्त प्रेषण, 240, 20 सितबर, 1869)।

74. देखें अध्याय 4।
75. गृह राजस्व कार्यविवरण, अप्रैल, 1867, सख्या 7, सचिव, बगाल चेंबर आफ कामर्स से सचिव, गृह विभाग, 22 मार्च, 1867, देखें अध्याय 4।
76. बी० फ्रेर 'दि मीन्स आफ एसर्टेनिंग पब्लिक ओपीनियन इन इडिया' 'जर्नल आफ ई० आई० ए०' 1871, जिल्द 5, खड 4, पृ० 102-72। मेयो से डब्ल्यू० आर्बुथनोट, 15 मार्च, 1871, मेयो कागजात, बडल 42, सख्या 68। वित्त कार्यविवरण अप्रैल, 1868, सख्या 48, सचिव, राजस्व बोर्ड से मुख्य सचिव, फोर्ट सेंट जार्ज, 27 जनवरी, 1868।
77. ट्रैवीलियन का कहना था कि सरकार द्वारा अतिरिक्त कराधान की शक्ति उसकी ईमानदारी की ख्याति पर निर्भर होती है। अत उसने आयकर हटाने का आग्रह किया, जो मूल रूप से अल्प काल के लिए आपात्कालीन उपाय के रूप मे लगाया गया था। ट्रैवीलियन से एल्गिन को, 11 अप्रैल, 1863, एल्गिन कागजात, 1, भाग 2, जिल्द 23।
78. वुड ने भारत मे आयातीत तैयार माल पर शुल्क मे कमी का सुझाव दिया था। उसका सकेत सूत तैयार करने वाली फैक्ट्रियो पर सतुलन की दृष्टि से लगाए जाने वाले उत्पादन-शुल्क की ओर था। उसका यह भी विचार था कि भारतीय सूती वस्त्रो पर उत्पादन शुल्क (एक्साइज ड्यूटी) लगाया जाना चाहिए। सी० वुड से एल्गिन को, 3 मार्च, 1862, वुड कागजात, 10, पृ० 62, ठीक वही, 25 जून 1862, वही, पृ० 310, वुड से फ्रेर को, 2 अप्रैल, 1863, वही, 12 पृ० 170। एसा लगता है कि उसकी राय मे भारतीय आयात शुल्को से प्रभावित होने वाले हितो को सतुष्ट करने का सबसे अच्छा ढग यही था कि सूत बनाने वाली फैक्ट्रियो पर विशिष्ट शुल्क लगाया जाए।
79. सी० ट्रैवीलियन से सी० वुड को, 23 मई, 1863, ट्रैवीलियन कागजात।
80. देखें अध्याय 4।
81. देखें अध्याय 4। विल्सन की मृत्यु के 70 वर्ष बाद उसके निजी पत्रो को उसकी पुत्री ने प्रकाशित किया, ई० आई० बैरिंगटन, 'दि सर्वेंट आफ आल' (लदन, 1927); देखे केनिंग से विल्सन को पत्र, 31 जनवरी, 1860, 10 फरवरी, 1860, 18 मार्च, 1860, बैरिंगटन, पूर्वोद्धृत II, पृ० 223-24, 225-27, 274-75।
82. देखें अध्याय 3।
83. आरगाइल से मेयो को, 4 नवबर, 1869, मेयो कागजात, बडल 47।
84. वित्त कार्यविवरण लेखा शाखा फरवरी, 1868, सख्या 57, गवर्नर जनरल द्वारा मेमो० 20

जनवरी, 1868। मेयो से एच० डुरंड को, 24 अप्रैल, 1870, मेयो कागजात, बंडल 39, संख्या 105।

85. वित्त कार्यविवरण लेखा शाखा फरवरी, 1868, संख्या 57, गवर्नर जनरल का मेमो, 20 जनवरी, 1868। मेयो से आरगाइल को 6 अप्रैल, 1870, मेयो कागजात, बंडल 39, संख्या 100।
86. देखें अध्याय 2।
87. मेयो से आरगाइल को, 9 नवंबर, 1870, वही बंडल 4, संख्या 300।
88. एल्गिन से सी० वुड को, 14 मई, 1862, एल्गिन कागजात, अनुभाग I, भाग 1, पत्र-पंजी, जिल्द I, पृ० 13, उद्धृत गोपाल द्वारा, पूर्वोद्धृत पृ० 53।
89. इन शब्दों में सेलिसबरी ने एक ठेठ फारेन आफिस अवर-सचिव के व्यापारियों के प्रति दृष्टिकोण को व्यक्त किया था, लेडी ग्वेंडलन सेसिल, 'लाइफ आफ राबर्ट, मारकस आफ सेलिसबरी' (लन्दन, 1931), III, पृ० 216। उद्धृत डी० सी० एम० प्लाट द्वारा, 'फाइनेंस ट्रेड एंड पालिटिक्स : ब्रिटिश फारेन पालिसी' 1815-1914 (आक्सफोर्ड, 1968) पृ० XX, प्लाट ने नीति-निर्धारण के संदर्भ में नौकरशाही की सामाजिक रचना के बारे में दिलचस्प बातें कही हैं।
90. कार्ल मार्क्स, 'कैपिटल' (डोना टोर द्वारा संपादन), जिल्द 1, पृ० 213।
91. ए० के० केर्नक्रास, 'होम एंड फारेन इनवेस्टमेंट 1870-1913' (कैंब्रिज, 1953), पृ० 244 केर्नक्रास को विल्सन के 'मौद्रिक सिद्धांत में आधुनिक तत्व दिखाई देता है। शुंपीटर विल्सन का प्रसंगवश उल्लेख करते हुए उसके बारे में लिखता है कि 'वह उन लोगों में था जो विश्लेषण के इतिहास में बुरी तरह असफल हुए हैं।' जे० ए० शुंपीटर, 'हिस्ट्री आफ इकानामिक एनेलिसिस' (लंदन, 1961) पृ० 726। विल्सन के आधारभूत आर्थिक विचारों का विस्तृत विश्लेषण राबर्ट लिंक के 'इंग्लिश थियरीज आफ इकानामिक फलक्चुएशन' 1815-1848 (न्यूयार्क, 1959) में मिलता है। और भी देखिए एल्मर वुड, 'इंग्लिश थियरीज आफ सेंट्रल बैंकिंग 1819-1858' (कैंब्रिज, मैसाचूसेट्स 1939)।
92. डब्ल्यू० बेजहाट 'मैमायर आफ दि राइट आनरेबल जेम्स विलसन' (1860), मिसेज रसल बैरिंगटन, 'दि वर्क्स एंड लाइफ आफ वाल्टर बेजहाट' (लंदन, 1955), जिल्द III पृ० 213।
93. सर एडवर्ड वेस्ट, की भारत में जीवन-वृत्ति के विषय में कोई जानकारी नहीं है। रिकार्डो ने अपने प्रिंसिपल्स के आमुख में लगान के सही सिद्धांत के विषय में वेस्ट के योगदान को स्वीकार किया है। देखें डी० एन० बी० L X, पृ० 329, और शुंपीटर, पूर्वोद्धृत, पृ० 586।
94. 'दि इकानामिस्ट,' 7 अप्रैल, 1860।
95. रिचर्ड टेंपिल, 'मैन एंड ईवेंट्स आफ माई टाइम इन इंडिया' (लंदन, 1882). ई० आई० बैरिंगटन द्वारा उद्धृत अपनी पुस्तक 'दि वर्क्स एंड लाइफ आफ वाल्टर बेजहाट' (लंदन, 1915) जिल्द 10, पृ० 337।
96. सी० ट्रैवीलियन से टी० पाइक्रोफ्ट को, 25 फरवरी, 1860, ट्रैवीलियन कागजात।
97. मैं इस काल में प्रचलित आर्थिक विचारों—विशेष रूप से ग्लैडस्टन के वित्त संबंधी सिद्धांतों, की शुंपीटर द्वारा अच्छी व्यवस्था के लिए उसके प्रति आभारी हूं। शुंपीटर, पूर्वोद्धृत, पृ० 402-5।

98. देखें अध्याय 2।
99. देखें अध्याय 4।
100. वही।
101. वही।
102. आरगाइल से मेयो को, 4 नवबर, 1869, मेयो कागजात, बडल 47।
103. सैन्य-व्यय सबधी नीति का विवेचन आगे अध्याय III, अनुच्छेद I और II में किया गया है।
104. 'रिपोर्ट आन दि वर्किंग आफ इडियन रेलवेज (1875)' पृ० 15; यद्यपि भारतीय अश-धारियों के भाग की बहुत प्रशंसा की गई है तथापि इस स्रोत के बारे में अनुमान बहुत ही काम-चलाऊ है, आरगाइल ने मेयो को एक पत्र में लिखा था कि 1869 में रेलों में लगी हुई पूजी में भारतीयो का भाग 1/80 था, पत्र 12 फरवरी, 1859, मेयो कागजात, बंडल 47, सख्या 7।
105. काटन सप्लाई एसोसिएशन से चार्ल्स वुड को स्मरण-पत्र 26 जुलाई, 1859। वाट्स पूर्वोद्धृत पृ० 125, सिंचाई कपनी ने तुगभद्रा नदी से एक नहर खोदने में अपनी समस्त पूजी व्यय कर दी और 1866 से सरकारी ऋणो पर निर्भर हो गई। एक अन्य कंपनी दि ईस्ट इडिया इरिगेशन कपनी इसी प्रकार सरकार से समय-समय पर मिलने वाले ऋणो पर उस समय तक निर्भर थी जब तक कि उसे सरकार द्वारा ले नहीं लिया गया (1868)। इस कपनी को सरकार द्वारा निश्चित ब्याज देने की कोई गारटी नहीं दी गई थी। एम० एम० पी० आर०, 1873-74, जार्ज चेजनी इडियन पालिटी (लदन, 1868) पृ० 411-12।
106. राजस्व कार्यविवरण 28 फरवरी, 1861, सख्या 26, गवर्नर जनरल इन काउसिल द्वारा प्रस्ताव, 28 फरवरी, 1861।
107. वित्त कार्यविवरण जुलाई, 1871, सख्या 83, भारत सरकार से भारत मत्री को, सख्या 40, 6 अप्रैल 1870।
108. एच० ए० एट्रोबस के अनुसार सरकार यह सिद्ध करना चाहती थी कि चाय का उत्पादन विपण्य (बिकाऊ) वस्तु के रूप में हो सकता है। तत्पश्चात वाणिज्यिक आधार पर उसका उत्पादन करने के लिए वह चाय को निजी उद्यम के लिए छोड़ देना चाहती थी। 'ए हिस्ट्री आफ दि आसाम कपनी,' (एडिनबरा, 1957)।
109. एम० जी० रानाडे, 'आइरन इडस्ट्री—पायनियर अटेम्प्ट्स' (1892); एस० के० सेन, 'स्टडीज इन इडस्ट्रियल पालिसी एड डेवलपमेंट' (कलकत्ता, 1964) पृ० 104-13।
110. देखें अध्याय 1।
111. जे० विलसन से डब्ल्यू० वेजहाट को, 4 जुलाई, 1860 ई० बैरिंगटन 'दि सर्वेंट आफ आल' (लदन,1927), जिल्द II, पृ० 252।
112. 1857 में काटन सप्लाई एसोसिएशन से ईस्ट इडिया कोर्ट आफ डायरेक्टर्स को स्मरण-पत्र वाट्स पूर्वोद्धृत पृ० 119, सर चार्ल्स वुड को 26 जुलाई, 1859, वहीं पृ० 125; भारत सरकार को, 3 अप्रैल, 1860, वही पृ० 131।
113. भारत मत्री से भारत सरकार को, वित्त प्रेषण सख्या 115, 16 जुलाई, 1863।
114. देखें अध्याय 5।
115. विलसन का बजट वक्तव्य, विधान-परिषद विवरण (पुरानी सीरीज) जिल्द 6, 1860;

ट्रेवीलियन का वक्तव्य, विधान-परिषद कार्यविवरण (नई सीरीज) 1863, जिल्द II, पृष्ठ 82; गृह पृथक राजस्व कार्यविवरण 31 मार्च, 1862, सख्या 7, डब्ल्यू० एस० फिट्जविलियम, अध्यक्ष, बगाल चेबर आफ कामर्स सपरिषद् गवर्नर जनरल (गवर्नर जनरल इन काउंसिल) को 27 मार्च, 1862।

116. 'मैनचेस्टर गार्जियन' 1 फरवरी 1861, भारतीय मामलों के विषय में मैनचेस्टर चेंबर आफ कामर्स द्वारा बुलाए गए सम्मेलन की रिपोर्ट। इस सम्मेलन मे सूती वस्त्रो पर भारतीय आयात-शुल्क की निंदा करते हुए एक प्रस्ताव पास किया गया था।

117. एच० मेरीवेल (1806-74) कैंब्रिज मे राजनीतिक अर्थशास्त्र का प्रोफेसर (1937-46), उपनिवेशों के लिएस्थाई अवर-सचिव (1948 से) तथा 'लैक्चर्स आन कोलोनाइजेशन' (1841) का लेखक था; 1859 मे उसे स्थानातरित कर इडिया आफिस भेज दिया गया, वह वेकफील्ड (1796-1862) से, जो बहुत सारे पेंफ्लेटो का लेखक और औपनिवेशीकरण आदोलन का नेता था, कम प्रभावशाली था।

118. राजस्व कार्यविवरण जून, 1864, सख्या 23, जी० एम० बैटन, सचिव, सदर बोर्ड आफ रेवेन्यू, एन० डब्ल्यू पी०, से एन० डब्ल्यू० पी० सरकार को, 16 मार्च, 1864।

119. राजस्व कार्यविवरण, 1 दिसबर, 1863, सख्या 2।

120. सी० ट्रेवीलियन से वुड को 4 मार्च (1863) ट्रेवीलियन कागजात।

121. सी० ट्रेवीलियन से एल्गिन को, 21 फरवरी 1863, ट्रेवीलियन कागजात।

122. सी० ट्रेवीलियन से वुड को, 4 मार्च, 1863, ट्रेवीलियन कागजात।

123. देखें अध्याय 5।

124. वही।

125. जे० एस० मिल 'प्रिंसिपल्स आफ पोलिटिकल इकानामी' (1848) एशले का सस्करण V, II, 2।

126. देखें अध्याय 5।

127. देखें अध्याय 4।

128. जेम्स मिल, 'हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इडिया' (सपादक एच० एस० विल्सन, चौथा सस्करण) जिल्द II, पृ० 293, गुन्नार मिर्डाल द्वारा 'पोलिटिकल ऐलीमेंट इन दि डेवलपमेंट आफ इकानामिक थिअरी' (लदन 1955) पृष्ठ 242, जे० एस० मिल, पूर्वोद्धृत, V, II, 3।

129. देखें अध्याय 4। गृह राजस्व कार्यविवरण अप्रैल, 1867, सख्या 7, सचिव बगाल चेंबर आफ कामर्स से सचिव, गृह विभाग को, 22 मार्च, 1867। वही सख्या 20, कलकत्ता ट्रेडर्स एसोसिएशन के मास्टर, समिति और सदस्यो से भारत मत्री को याचिका (अर्जी), 22 अप्रैल, 1867। गृह राजस्व कार्यविवरण, मार्च, 1867, सख्या 35, कलकत्ता ट्रेडर्स एसोसिएशन से वायसराय को याचिका, 15 मार्च, 1867।

130. देखें अध्याय 4।

131. देखें अध्याय 5।

132. मेयो से बार्टल फ्रेर को, 3 जून, 1870, मेयो कागजात, बडल 39, सख्या 156।

133. जे० स्ट्रेची का स्मरण-पत्र, 1874, पी० पी० एच० सी० 1874, पत्रक 326, पृ० 16-17।

134. देखें अध्याय 4।

135 जे० एस० मिल से डब्ल्यू० टी० थोर्नटन को, 28 जनवरी, 1862, मिल से एच० एम० मे को 1 जनवरी, 1869; 'दि लैटर्स आफ जान स्टुअर्ट मिल' (सपादक एच० एम० आर इलियट लदन, 1910), जिल्द I, पृ० 258, जिल्द II, पृ० 169।

136. विधान-परिषद कार्यविवरण (नई सीरीज), VII, पृष्ठ 432।

137. गृह राजस्व कार्य विवरण सितबर, 1862, सख्या 29, मेमो० एस० लैंग द्वारा, 7 अप्रैल 1862। भारत मत्री से भारत सरकार को, 'राजस्व प्रपण सख्या 14, 9 जुलाई, 1862।

138. लारेंस से डलहौजी को, 16 जून 1858, आर० बासवर्थ स्मिथ द्वारा 'लाइफ आफ लार्ड लारेंस (लदन, 1901) जिल्द II मे उद्धृत, पृष्ठ 196। तुलनीय टी० आर० मैटकाफ, 'आफ्टरमै आफ दि म्यूटिनी' (प्रिंसटन, 1965) अध्याय 8, इस पुस्तक मे तत्कालीन राजनीतिक विचार और विशेष रूप से प्रजातिवादी मिद्धातो का ज्ञानप्रद व आलोचनात्मक सर्वेक्षण मिलता है और भी देखिए रिचर्ड कोबनर एव एच० डो० श्मिड्ट, 'इपीरियलिज्म : दि स्टोरी एड सिग्नि फिकेंस आफ ए पोलिटिकल वर्ड 1840-1960' (कैंब्रिज, 1964) अध्याय 4 और 5।

139. लेज्ली स्टीफन, लाइफ आफ जे० एफ० स्टीफन (लदन, 1895) पृष्ठ 243, जे० एफ० स्टी फन का दि टाइम्स को पत्र, 1 मार्च, 1883; उद्धृत मैटकाफ की पूर्वोद्धृत पुस्तक में, पृ० 318 देखें अध्याय 1।

140. देखें अध्याय 1।

141. जे० स्ट्रैची, इंडिया (लदन, 1888), पृ० 360।

142. पृ० 1868-79, LV, लोकसेवा मे भारतीयो को लेने के विषय पर कागजात, पृ० 7।

143. सी० ट्रैवीलियन का भाषण, ईस्ट इडिया एसोसिएशन की बैठक का कार्यविवरण, 7 मार्च 1871, 'जर्नल आफ दि ई० आई० ए०,' जिल्द 5, भाग 2, सख्या 92, पृ० 108 और आगे

144. रिचर्ड काग्रेव (1818-1899) एक विवादप्रिय व्यक्ति था। वह आगस्त काम्ते और वायलेमी सेंट हिलेरी का मित्र और लदन मे प्रत्यक्षवादी समाज (पाजिटिविस्ट सोसाइटी) का सस्थापक था (1855), सैन्य विद्रोह के तत्काल बाद प्रकाशित भारत के सबध मे उसकी पुस्तक की ओर मेरा ध्यान बर्नार्ड पोर्टर के ग्रथ क्रिटिक्स आफ एपायर (मैकमिलन, 1968) ने आकर्षित किया था।

145. दि इकानामिस्ट, 26 सितबर, 1857, XV, 1062; टी० आर० मैटकाफ, 327।

146. एस० भट्टाचार्य 'ट्रैवीलियन, विल्सन, केनिंग एड दि फाउडेशन आफ इडियन फाइनेंशियल पालिसी' बगाल : पास्ट एड प्रजेंट, जिल्द LXXX, 1961, पृ० 65-73।

147. सी० ट्रैवीलियन द्वारा मेमो०, 20 मार्च, 1860, पी० पी० एच० सी०, जिल्द 49 पृ० 112-21।

148. केनिंग से जे० विल्सन को, 24 जुलाई, 1860, ई० आई० बी०, II, 301।

149 टी० आर० मैटकाफ, पूर्वोद्धृत अध्याय 6 व 7।

150 बी० बी० मजूमदार, पूर्वोद्धृत, पृ० 318-36।

151. मैटकाफ, पूर्वोद्धृत, पृ० 160-62।

152. हिंदू पैट्रियट 21 फरवरी, 1870, 10 अप्रैल, 1871।

153. देखें अध्याय 5।

154. जो लोग भारत मे ब्रिटिश पूजीपति वर्ग के हितो क बारे मे अतिरजित भाषा में सहज साधारणीकरण करते हैं वे प्राय अतिम बात की ओर ध्यान नही देते। यह उल्लेखनीय है कि कार्ल मार्क्स ने भारतीय साम्राज्य के विषय मे ऐसा नही किया और उसने व्यक्तियो को मिलने वाले लाभो पर जोर दिया है। देख मार्क्स, ब्रिटिश इनकम्न इन इडिया, न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून, 21 सितबर, 1857, आन कोलोनियलिज्म (मास्को, 1867)। भारतीय आर्थिक राष्ट्रवाद के बारे में देखिए विपन चद्र, पूर्वोद्धृत, अध्याय 1।

155. सी० पैश 'ग्रेट ब्रिटेंस इनवेंस्टमेंट्स इन अदर लैंड्स' जर्नल आफ दि रायल स्टैटिस्टिकल सोसाइटी, LXXIV, 1909, पृ० 456-80; 'ग्रेट ब्रिटेंस कैपिटल इनवेस्टमेंट्स इन इडिविजुअल कट्रीज एड फारेन इडस्ट्रीज,' वही, LXXXIV, 1911, पृ० 167-200। सी० के० हाब्सन, 'दि एक्सपोर्ट आफ कैपिटल (न्यूयार्क, 1914), लीलैंड एच० जेक्स, दि माइग्रेशन आफ ब्रिटिश कैपीटल टु 1875 (न्यूयार्क, 1927), (मैंने बाद के लदन, 1938 सस्करण का उपयोग किया है)। ए० के० केर्नक्रास, 'होम एड फारेन इनवेंस्टमेट 1870-1913 (कैंब्रिज, 1958)। एच० सैगल व एम० साइमन 'ब्रिटिश फारेन कैपीटल इश्यूज', 1865-94 जे० इक० एच०, दिसबर, 1961, पृ० 567-81। एम० साइमन 'दि पैटर्न आफ न्यू ब्रिटिश पोर्टफोलिओ फारेन इनवेस्टमेट 1865-1914' सपादक ए० आर० हाल, दि एक्सपोर्ट आफ कैपीटल फ्राम ब्रिटेन 1870-1914 (लदन, 1668) पृ० 15-44। और भी आर० नर्क्से, 'पैटर्न्स आफ ट्रेड एड डेवलपमेट' (स्टाकहोम, 1959), इतिहास लेखन की पुरानी परपरा मे एक कृति जो पूर्ण रूप से प्रासगिक न होते हुए भी बहुत दिलचस्प है, आर० पेयर्स इकानामिक फैक्टर्स इन दि हिस्ट्री आफ दि एपायर, दि हिस्टोरियस बिजनस एड अदर ऐसेज (आक्सफोर्ड, 1961)।

156. एम० साइमन पूर्वोद्धृत पृ० 28-30।

157. जेंकस, पूर्वोद्धृत 207, 225।

158. ए० आर० हाल, सपादक, दि ऐक्सपोर्ट आफ कैपीटल फ्राम ब्रिटेन 1870-1914, (लदन, 1968) पृ० 13।

159. जी० पैश, पूर्वोद्धृत, (1911)।

160. एम० साइमन पूर्वोद्धृत, पृ० 23-25।

161. वही, पृ० 26।

162. जे० डब्ल्यू मैकफर्सन 'इनवेंस्टमेट इन इडियन रेलवेज 1845-1875' इक० एच० आर०, VIII, एन० एस०, 1955, पृ० 177-86। डेनियल थोर्नर इनवेंस्टमेंट इन एपायर. ब्रिटिश एड स्टीम शिपिंग ऍंटरप्राइज इन इडिया *1825-49 (फिलाडेल्फिया, 1950)*।

163. देखे परिशिष्ट।

164. जे० गालेघर व आर० इ० राबिंसन 'दि इपीरियलिज्म आफ फ्री ट्रेड' इक० एच०, आर०, VI, सख्या 1, 1953। इस विषय पर हाल के वर्षों की महत्वपूर्ण कृतिया हैं : पी हार्नेट्री इपीरियलिज्म एड फ्री ट्रेड, लकाशायर एड दि इडियन काटन ड्यूटीज 1859-62; इक० एच० आर०, जिल्द 18, एन० एस०, 1965-66 और ए० ई० मूर इपीरियलिज्म एड फ्री ट्रेड

एलिजाबेथ व्हाइटकोंब के उत्तरी भारत (अप्रकाशित) अध्ययन से उन्नीसवी शताब्दी के परवर्ती काल में सिंचाई के विकास के बारे मे नए तथ्य प्रकट होने की सभावना है। उत्तर उन्नीसवी शताब्दी में मूल्यों में परिवर्तन के विषय मे ए० घोष और के० मुकर्जी की कृतियो का उल्लेख इस पुस्तक में अन्यत्र किया गया है।

170. चार्ल्स वुड ने एल्गिन(25 जून, 1862, वुड कागजात, 10,पृ० 170)और फ्रेर (2 अप्रैल, 1863, वुड कागजात, पृ० 12, 170) को अपने पत्रो में भारत मे सूत तैयार करने वाली फैक्ट्रियो पर एक कर और उत्पादित सूती वस्त्रो पर उत्पादन शुल्क लगाने का प्रस्ताव रखा था। जब सरकार को यह स्पष्ट हो गया कि उसके लिए मेनचेस्टर के माल पर से आयात शुल्क कम कर पाना अथवा उसे हटा सकना सभव नही है तो अतत: 1895 में भारतीय सूती वस्त्रो पर प्रतिरोधक (काउंटर वैलिंग) उत्पादन शुल्क लगाए गए। यह उल्लेखनीय है कि उत्पादन शुल्क केवल मध्यम श्रेणी के वस्त्र पर जो मेनचेस्टर के माल से प्रतियोगिता करता था, लगाया गया था। प्रत्यक्ष करो के विषय में देखें अध्याय 4 और जे० पी० नियोगी, पूर्वोद्धृत; सैन्य व्यय के विषय मे देखें अध्याय 3, बिना किसी आर्थिक उत्तरदायित्व के भारत में ब्रिटिश सेना रखने के लाभो के सबध मे देखें राबिन्सन, गालेघर, और डेनी पूर्वोद्धृत, पृ० 13। आइज़क वाट की पुस्तक 'दि आरिजिन एड प्रोग्रेस आफ दि काटन सप्लाइ एसोसिएशन' (मेनचेस्टर, 1871) मे मेनचेस्टर के व्यापारियो और मिल मालिकों द्वारा संयुक्त राज्य अमरीका पर निर्भरता कम करने के उद्देश्य से साम्राज्य के भीतर ही कपास के आपूर्ति स्रोत विकसित करने के प्रयत्नो का वर्णन मिलता है, देखें अध्याय 4।

171. कार्ल मैनहीम, एसेज आन दि सोशियोलाजी आफ नालिज, सपादक पी कैस्केमेटी (लदन, 1952) पृ० 148। निस्सदेह मैनहीम का विश्वास था कि बुद्धिजीवी के लिए सैद्धातिक भ्राति से अपने आपको मुक्त कर पाना सभव है तथा ऐतिहासिक और सामाजिक प्रक्रियाओ का वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर पाना सभव है। शुपीटर ने कही पर इसे 'मैनहीम का रक्षा यत्र कहा है। जिसे सामाजिक आत्मबोध की समस्या कहते हैं, उसके लिए देखे ओस्कार लागे, पोलिटिकल इकानामी (वारसा, 1963), अध्याय 7।

पालिसी इन इंडिया 1853-54 इक० एच० आर० XVII, एन० एम०, 1964-65।

165. पी० टी० बायर 'दि इकनामिक्स आफ रिजेंटमेंट : कोलोनियलिज्म एंड अडरडेवलपमेंट जर्नल आफ कंटेपोरेरी हिस्ट्री', जिल्द 4, सख्या 1, जनवरी 1969, पृ० 51-72।

166. डी० के० फील्डहाऊस 'इपीरियलिज्म : ऐन हिस्टोरियोग्राफीकल रिवीजन' 'इक० एच० आर०, जिल्द 14, एन० एम० सख्या 2, 1961, पृ० 187-209, 'दि थिअरी आफ कैपीटलिस्ट इपीरियलिज्म (लदन, 1957) पृ० XIII-XIX, 187-94। आर० ई० रोबिसन, जे० ए० गालेघर व ए० डैनी, अफ्रीका एड दि विक्टोरियन्स (लदन, 1961) पृ० 462 और आगे।

167. डी० सी० एम० प्लाट, फाइनेंस, ट्रेड, एंड पोलिटिक्स इन ब्रिटिश फारेन पालिसी 1815-1915 (आक्सफोर्ड, 1968) पृ० 367।

168. साइमन कुजनेट्स, इकानामिक ग्रोथ एड स्ट्रक्चर (लदन, 1966) पृ० 50-51। कुजनेट्स का यह तर्क है कि जिन देशो मे तेजी के साथ विकास हुआ है उनमे कुछ बाध्यकर तत्व वहा की विस्तारक एव उत्साही प्रवृत्तियो के कारण हैं। अन्य तत्वो मे आधारभूत तत्व यह है कि जब भी उस क्षेत्र का विस्तार होता है, जिस पर उस देश के आर्थिक स्रोतो का बाहरी स्रोतो, विशेषकर प्राकृतिक अथवा कुछ अन्य स्रोतों के साथ उपयुक्त अनुपात मे प्रयोग कर पाना सभव होता है तो प्रति इकाई उत्पादन का स्तर ऊचा उठने और आर्थिक विकास संबंधी जोखिम कम होने की सभावना रहती है। आर्थिक विकास एक जोखिमपूर्ण प्रक्रिया है। व्यक्तिगत फर्म की दृष्टि से इसका अर्थ ऐसी प्रतिबद्धता हो सकता है जिसे वह सहज ही पूरा कर पाने मे असमर्थ हो और देश के पहलू से इस प्रक्रिया मे ऐसे विशेषीकरण और उन साधनो की आवश्यकता पड़ सकती है जो देश की सीमा के भीतर उपलब्ध न हो। किसी भी तेजी के साथ विकासशील देश के नेता राज्य की शक्ति की सहायता से अपने देश की सीमा के बाहर कच्चे माल अथवा बाजार की पक्की व्यवस्था कर इस प्रकार के जोखिमो को कम करने का प्रयत्न कर सकते हैं। आर्थिक विकास के सिद्धात पर एक लेख मे कुजनेट्स की उपर्युक्त उक्ति निश्चय ही व्यापक अर्थ मे है। विशिष्ट रूप से ब्रिटेन के सदर्भ मे प्लाट का कहना है ' 'वैदेशिक नीति का प्रधान कार्य सदैव ही राष्ट्रीय सुरक्षा था। परतु बाजारो तक पहुच और इन बाजारो मे न्याय पाना इग्लैंड की दृष्टि से ऐसा हित था जिसका स्थान प्राथमिकता की दृष्टि से राष्ट्रीय व साम्राज्यिक सीमाओ की रक्षा के ठीक बाद मे होने के साथ-साथ उससे घनिष्ठ रूप से सबद्ध भी था।' प्लाट, पूर्वोक्त स्थल। इस बात पर वे लोग प्रायः ध्यान नही देते जो राजनीतिक तत्वो को अलग से देखते हैं। दूसरी ओर, साम्राज्यिक विस्तार जैसी जटिल समस्या का केवल बाजार, कच्चे माल, पूजी निवेश के लिए अवसर इत्यादि की आवश्यकता के रूप मे विश्लेषण करना भी समान रूप से व्यर्थ प्रयास है।

169. डेनियल एड एलिस थोर्नर 'डी इडस्ट्रियलाइजेशन इन इंडिया 1881-1931' लैंड एड लेबर इन इंडिया (बबई, 1962)। एम० डी० मौरिस 'टुवर्ड ए रिइटरप्रिटेशन-आफ नाइटींथ सेंचुरी इंडियन इकानामिक हिस्ट्री' जे० इक० एच०, 23 (1963) पृ० 606-18। के० एन० चौधरी, इंडियाज इटरनेशनल इकानामी इन दि नाइटीथ सेंचुरी : एन हिस्टोरिकल सर्वे 'माडर्न एशियन स्टडीज', II, 1,](1968) पृ० 31-50। एम० के० थावराज 'पब्लिक इन-वेंस्टमेंट इन इंडिया 1868-1914', इंडियन इकानामिक रिव्यू, II, 4, (1955)। डा०

एलिजाबेथ व्हाइटकोंब के उत्तरी भारत (अप्रकाशित) अध्ययन से उन्नीसवी शताब्दी के परवर्ती काल मे सिंचाई के विकास के बारे में नए तथ्य प्रकट होने की सभावना है। उत्तर उन्नीसवी शताब्दी मे मूल्यो में परिवर्तन के विषय मे ए० घोष और के० मुकर्जी की कृतियो का उल्लेख इस पुस्तक में अन्यत्र किया गया है।

170. चार्ल्स वुड ने एल्गिन (25 जून, 1862, वुड कागजात, 10, पृ० 170) और फ्रेर (2 अप्रैल, 1863, वुड कागजात, पृ० 12, 170) को अपने पत्रो मे भारत मे सूत तैयार करने वाली फैक्ट्रियो पर एक कर और उत्पादित सूती वस्त्रो पर उत्पादन शुल्क लगाने का प्रस्ताव रखा था। जब सरकार को यह स्पष्ट हो गया कि उसके लिए मेनचेस्टर के माल पर से आयात शुल्क कम कर पाना अथवा उसे हटा सकना सभव नही है तो अततः 1895 मे भारतीय सूती वस्त्रो पर प्रतिरोधक (काउटर वैलिंग) उत्पादन शुल्क लगाए गए। यह उल्लेखनीय है कि उत्पादन शुल्क केवल मध्यम श्रेणी के वस्त्र पर जो मेनचेस्टर के माल से प्रतियोगिता करता था, लगाया गया था। प्रत्यक्ष करो के विषय में देखें अध्याय 4 और जे० पी० नियोगी, पूर्वोद्धृत; सैन्य व्यय के विषय मे देखें अध्याय 3; बिना किसी आर्थिक उत्तरदायित्व के भारत मे ब्रिटिश सेना रखने के लाभो के सबध में देखें राबिन्सन, गालेघर, और डेनी पूर्वोद्धृत, पृ० 13। आइजक वाट की पुस्तक 'दि आरिजिन एड प्रोग्रेस आफ दि काटन सप्लाइ एसोसिएशन' (मेनचेस्टर, 1871) मे मेनचेस्टर के व्यापारियों और मिल मालिकों द्वारा सयुक्त राज्य अमरीका पर निर्भरता कम करने के उद्देश्य से साम्राज्य के भीतर ही कपास के आपूर्ति स्रोत विकसित करने के प्रयत्नो का वर्णन मिलता है, देखें अध्याय 4।

171. कार्ल मैनहीम, एसेज आन दि सोशियोलाजी आफ नालिज, सपादक पी कैस्केमेटी (लदन, 1952) पृ० 148। निस्सदेह मैनहीम का विश्वास था कि बुद्धिजीवी के लिए सैद्धातिक भ्राति से अपने आपको मुक्त कर पाना सभव है तथा ऐतिहासिक और सामाजिक प्रक्रियाओ का वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर पाना सभव है। शुपीटर ने कही पर इसे 'मैनहीम का रक्षा यत्र कहा है। जिसे सामाजिक आत्मबोध की समस्या कहते हैं, उसके लिए देखें ओस्कार लागे, पोलिटिकल इकानामी (वारसा, 1963), अध्याय 7।

मितव्ययतापरक कुशलता की दिशा में

भारतीय साम्राज्य के राजस्व-प्रबध के विषय मे लिख पाना सहज नही है। भारतीय साम्राज्य पर शासन करने वाली सरकार की नीतियों के विषय में इतना अधिक लिखा जा चुका है कि एक अन्य प्रयास अनावश्यक माना जा सकता है। फिर भी इस विषय पर अपार और निरतर बढते हुए साहित्य के सतर्क विद्यार्थी से यह छिपा नही रह सकता कि इस साहित्य मे अभी भी अनेक रिक्तिया हैं। अध्ययन के जिन कुछेक क्षेत्रो मे बहुत कार्य हो चुके है, उनमे काम करने पर सीमांत उपलब्धि ह्रासमान हो सकती है, परन्तु अब भी ऐसे अनेक क्षेत्र है जिन में कोई शोध कार्य नही हुआ है। यह समझने में कोई कठिनाई नही होती कि ब्रिटिश भारत के लोकवित्त के इतिहास की ओर वाछित ध्यान क्यो नही दिया गया। प्रायः अस्पष्ट राजनीतिक और आर्थिक विचारों पर आधारित पृथक-पृथक असख्य प्रशासनिक निर्णयों और कार्यों की मारफत वित्तीय नीति की प्रगति का अध्ययन कठिन कार्य है। इस कार्य की ओर बहुत थोड़े लोगों ने रुचि दिखाई है। इसके अलावा अनेक तथ्य, ऐंग्लोइंडियन दफ्तरी भाषा मे यह कहा जाएगा कि उपलब्ध नही थे। बहुत सारे आकडे जो अब अभिलेखागार मे उपलब्ध है और निर्णयकर्ता अनेक उच्चाधिकारियो के निजी कागजात कुछ समय पहले तक प्राप्य नही थे। इन लोगो के विरल और कभी-कभी भ्रामक सार्वजनिक वक्तव्यों और भारतीय राजस्व के मात्र ढाचा संबधी अल्प परिमाणात्मक आकड़ो का अपर्याप्त आधार बनता था जिससे केवल विवाद-प्रिय लोगो तथा नौकरशाहों को ही सतोष हो सकता था, जो यथार्थ की खोज मे उतनी दिलचस्पी नही रखते थे जितनी कि बिंब में। अपूर्ण ज्ञान की धुध मे, जिसमें कभी-कभी आत्मप्रवंचना का मिश्रण भी होता था, अध अस्वीकृति अथवा विनयपूर्ण स्वीकृति दो ऐसे दृष्टिकोण थे जो प्रायः साथ-साथ देखे जा सकते थे, परतु कभी-कभी उनमें विरोध भी होता था। साम्राज्य और उसकी वित्तीय प्रणाली के आलोचकों और समर्थको दोनो को ही जिस प्रकार प्रेक्षको की प्रतिक्रिया ने खतरनाक ढग से प्रभावित किया है और आगे भी कर सकती है, उससे विद्वानो की वस्तुनिष्ठता जिस पर उन्हे काफी गर्व होता है, समाप्त हो जाती है और वे एक दूसरी महत्वपूर्ण भूल कर बैठते है। इस क्षेत्र मे अस्पष्ट एव दुर्बोध हो जाना बहुत सरल किंतु जोखिम भरा है। यदि ऐतिहासिक अनुभव सरल और सगत नही है, और यदि आनुभविक तथ्यों की जटिलता भयावह और निराशा-जनक है, तो यह हो सकता है कि कोई भी व्यक्ति इस परिकल्पना का आश्रय लेने लगे कि घटना-क्रम अस्तव्यस्तता एव सभ्रम की बेतरतीब प्रक्रिया है जिसमे अप्रत्याशित

घटनाओं से बाधा पड़ती है और जिसकी अव्यवस्था कभी-कभी कुछ महापुरुषों की प्रतिभा द्वारा कम हो जाती है। इस विचारधारा के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि इतिहासकार किसी निश्चित प्रवृत्ति की खोज करता है तो वह कर्तव्य विमुख होता है। इस विचारधारा का आकर्षण कुछ संदिग्ध है और हमे इस संबंध मे आगे उस समय विचार करना होगा जब इसके द्वारा या तो कुछ प्रश्नों के उत्तर नहीं मिल सकेंगे अथवा कुछ प्रश्न उठाए ही नही जा सकेंगे।

भारत में ब्रिटिश वित्तीय नीति की व्याख्या से संबंधित समस्या के प्रति ये विभिन्न प्रतिक्रियाएं सौ वर्ष पहले भी देखी जा सकती थी। सैन्य विद्रोह के बाद के दशक मे लोकवित्त की समस्याओं पर जन साधारण ने इतना ध्यान दिया जितना पहले कभी नही दिया था। सैन्य विद्रोह के वित्तीय परिणाम संभवतः उतने ही महत्वपूर्ण थे जितने कि राजनीतिक और प्रशासनिक सैन्य विद्रोह ने वित्तीय सकट को जन्म दिया। सेना, सैन्य पुलिस, नई सैनिक भर्ती और पुलिस व सैनिक लोक निर्माण पर वार्षिक व्यय 13.2 करोड़ रुपये (1856-57) से 17.2 करोड़ रुपये (1857-58) और फिर 24.7 करोड़ रुपये (1858-59) हो गया। इसी अवधि मे भारत सरकार के ऋणों मे 36 प्रतिशत की वृद्धि हुई। सैन्य विद्रोह से अगले पाच वर्षो में प्रत्येक वित्तीय वर्ष मे बजट में घाटा रहा। वित्त मंत्री ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि चासलर आफ ऐक्सचेकर राबर्ट लोवी 'ऐसा जंतु है जिसे आधिक्य मिलना ही चाहिए।' इस उक्ति से बजट सतुलित रखने की चिंता जो ग्लैडस्टोन युग की विशेषता थी, सही-सही प्रकट होती है। इस आधार पर यदि देखा जाए तो स्पष्ट है कि सैन्य विद्रोह के बाद के वर्षों मे भारत सरकार की वित्तीय स्थिति असंतोषजनक थी। यथार्थ में वित्तीय संतुलन जैसा कि उसे प्रायः कहा जाता था, भारतीय साधनों पर असामान्य मागो के कारण सदैव अनिश्चितता की स्थिति मे रहा था। इस तथ्य पर ध्यान देना काफी सूचनाप्रद है कि सैन्य विद्रोह से पहले साम्राज्य विस्तार का काल लगभग वही काल है जिसमे भारत सरकार के बजट घाटे के थे। 1814-19 की अवधि मे बजट घाटे के थे। और यही नेपाल युद्ध और मराठा युद्ध का काल था। इसी प्रकार 1823-28 की अवधि मे पहला बर्मा युद्ध और भरतपुर की घेराबंदी हुई, *1838-48 की अवधि मे अफगान युद्ध, सिंध एवं ग्वालियर युद्ध तथा सिक्खों के साथ* युद्ध हुए और 1853-55 द्वितीय बर्मा युद्ध का काल था। सैन्य विद्रोह के दौरान और बाद में सैनिक व्यय में अभूतपूर्व वृद्धि से संकट उत्पन्न हो गया। स्थिति पर टिप्पणी करते हुए जेम्स *विलसन ने, जिससे सैन्य विद्रोह के उपरात उत्पन्न होने वाली वित्तीय* समस्या के समाधान की आशा की गई थी, कहा कि 'आपतकाल मे ही सुधार कर सकना संभव होता है। इस समय ऐसी ही आपतकालीन स्थिति उत्पन्न हो गई है और अब वे सुधार एवं परिवर्तन किए जा सकते है जो पहले नही हुए है।'[1]

जेम्स विलसन (1805-60), जो एक ऊनी वस्त्र निर्माता का पुत्र था, सोलह वर्ष की आयु से ही व्यवसाय मे लगा हुआ था। उसने 1844 में सफल व्यावसायिक जीवन-वृत्ति से अवकाश ग्रहण किया और फिर 1847 से 1857 तक वह वेस्टबरी और 1857 से 1859 तक डेवनपोर्ट से संसद सदस्य (एम० पी०) रहा। जब वह बोर्ड आफ कट्रोल

का संयुक्त सचिव (ज्वाइंट सेक्रेटरी) (1148-52) था तो उसे भारतीय मामलो का थोड़ा-सा अनुभव हुआ। सयोग से इसी समय उसने भारत में रेलो के निर्माण के संगठन मे महत्वपूर्ण भाग लिया। जब वह ट्रेजरी का फाइनेंस सेक्रेटरी (1853-58) तथा बोर्ड आफ ट्रेड का वाइस प्रेसीडेंट (1859) था तब उसे वित्तीय मामलों से सबधित उपयोगी प्रशिक्षण प्राप्त हुआ। उसे वाणिज्यिक मामलों के व्यावहारिक ज्ञान के साथ-साथ समकालीन आर्थिक सिद्धात की अच्छी समझ थी। वास्तव में इग्लैंड मे उसकी ख्याति लंदन के प्रसिद्ध इकानोमिस्ट के (1843) योग्य सस्थापक-संपादक के रूप मे थी और उसे प्रधानतः इसी के लिए स्मरण किया जाता था। इस पत्र की स्थापना कोबडन की सहायता से 'अबाध व्यापार आदोलन को बौद्धिक प्रतिष्ठा प्रदान करने के उद्देश्य से की गई थी।'[2] कार्न ला विवाद पर इन्फ्लुऐंस आफ दि कार्नलाज नामक पंफ्लेट के अतिरिक्त विल्सन ने करेंसी समस्या पर भी फ्लक्चुएशस आफ करेंसी तथा कैपीटल, करेंसी एंड बैंकिग (1847) नामक लेखों मे ध्यान दिया।[3] तथाकथित बैंकिग विचारधारा को (बैंकिग स्कूल) का सदस्य होने के कारण विल्सन ने इकानोमिस्ट[4] मे करेंसी विचारधारा (करेंसी स्कूल) की आलोचना की थी। विल्सन 1844 के बैंकिग ऐक्ट का आलोचक था, परतु बाद मे उसने इसे अपनी भारतीय पत्र-मुद्रा संबंधी योजना की रूपरेखा के रूप मे प्रयोग किया।[5] सर सी० वुड के आग्रह पर विल्सन ने गवर्नर जनरल की परिषद में वित्तीय सदस्य का पद स्वीकार कर लिया। उसने परिषद की सदस्यता 29 नवंबर 1859 को ग्रहण की। 11 अगस्त 1860 को उसकी मृत्यु हो गई। उसने इसी अल्प समय मे भारतीय वित्त व्यवस्था के पुनर्गठन की प्रक्रिया प्रारंभ कर दी थी। वित्तीय मामलों से संबधित उसके अनुभव उसके लिए उपयोगी सिद्ध हुए। उसकी बजट और आयकर संबंधी योजनाएं उसके इंग्लैंड के अनुभवो पर आधारित थी।[6] विल्सन पर अनेक लोगों ने जिनमे सर सी० ट्रेवीलियन भी था, यह आरोप लगाया है कि वह बहुत अधिक सिद्धांतवादी था और उसमे भारतीय परिस्थितियों की उपेक्षा करने की प्रवृत्ति थी।[7] किंतु विल्सन का जीवनी लेखक बेजहाट लिखता है कि विल्सन को आशका थी कि 'अधिकाश सभ्य देशो मे मान्य प्रशासन विज्ञान की भारत मे अवहेलना होगी···यद्यपि लोगों को धीरे-धीरे अर्थ विज्ञान के रास्ते पर ले ही जाना था तो भी वह उनके ऐतिहासिक पूर्वचरित से उत्पन्न विचारो तथा भावनाओ का बहुत लिहाज करना चाहता था।'[8] उसके व्यक्तित्व की इस दूसरी विशेषता का एक उदाहरण यह है कि उसने इस विचारधारा की पुष्टि के लिए विशेष प्रयास किया कि आयकर मनु सहिता मे सहितावद्ध हिंदू-विधि के अनुरूप है।[9] उसके संबंध में अपना मत प्रकट करते हुए ट्रेवीलियन ने कहा है कि 'विल्सन ने नवीन भारतीय वित्तव्यवस्था की नींव डाली थी।'[10] उसे भारत में लोगों का पूरी तरह विश्वास प्राप्त था।[11] इग्लैंड में उसके प्रति आस्था का सबसे अधिक विश्वासोत्पादक प्रमाण उसकी मृत्यु के बाद मिला। प्रमाण यह था कि जैसे ही उसकी मृत्यु का समाचार इग्लैंड पहुचा भारत निधि की कीमतें तत्काल गिर गई।[12]

हेनरी बार्टिल फ्रेर (1815-84) ने विल्सन की मृत्यु के बाद छः मास से अधिक

समय तक गवर्नर जनरल की परिषद के कार्यवाहक वित्त सदस्य का कार्य किया। फ्रेर की शिक्षा हेलीबरी में हुई थी। वह एक योग्य आई० सी० एस० अफसर था और उसकी नियुक्ति गवर्नर जनरल की परिषद के सदस्य के रूप में (1859-62) हुई। बाद में वह बंबई का गवर्नर (1862-67) बनाया गया।[13] विल्सन ने मृत्युशय्या पर से फ्रेर को 'उसके अधूरे कार्यों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेकर पूरा करने का आग्रह किया था।'[14] फ्रेर के अनुसार विल्सन की योजनाएं बडी लंबी-चौडी थीं और वह अनुभव करता था कि 'उन्हें पूरा करना किसी भी एक मनुष्य के वश के बाहर की बात है।'[15] उसके विचार से 'यदि हडबडी नहीं की जाती तो गति को तेज रखा जा सकता था।'[16] सैद्धांतिक योजनाओं मे उसे नौकरशाहों की तरह अविश्वास था और उसकी आस्था कठिन परिश्रम और 'कोल्हू के बैल की भांति उपयोगी काम' मे थी। उसने वुड को लिखा था कि 'अपने को उलझन से बचाने के लिए आप लेखे और सैकडों बारीकियों के साथ नियमित रूप से अच्छा प्रबंध ही चाहते है।'[17] फ्रेर के इस विचार की ओर ध्यान देना सार्थक होगा, क्योकि यह भारत के बारे मे अनुभवहीन व्यक्तियो के प्रति नौकरशाही के विशिष्ट दृष्टिकोण को प्रकट करता है जो यहां पर ब्रिटिश विचारों और संस्थाओं को लाना चाहते थे। नवीनता के प्रति नौकरशाही के निष्क्रिय विरोध का ही यह परिणाम हुआ कि आधुनीकरण की अनेक प्रेरक शक्तियां असफल तथा व्यर्थ सिद्ध हुई।

विल्सन के उत्तराधिकारी सेमुअल लैंग (1812-97) के पास यद्यपि विल्सन जैसी वित्त संबंधी राजनीतिमता नहीं थी फिर भी वह वित्त सदस्य के रूप में असफल नहीं रहा। उसके बोर्ड आफ ट्रेड संबंधी अनुभव और रेलों के प्रबंध से संबंधित व्यावहारिक अनुभव उपयोगी थे। इसके अलावा वह 1852 से 1857 तक और फिर 1859 मे पार्लियामेंट का भी सदस्य रहा था।[18] लैंग इस दृष्टि से भाग्यशाली था कि उसके कार्यकाल के प्रथम वर्ष (1861-62) में बजट मे बहुत थोड़ा घाटा हुआ। उसने 1862-63 का भी बजट तैयार किया था। 1862 के अंत मे वह भारत से वापस चला गया। उस वर्ष बजट में 18 लाख पौंड का आधिक्य था। बजट मे यह आधिक्य प्रधानतः अफीम से भारी आय और सैनिक वित्त आयोग के द्वारा व्यय मे कटौती के कारण था। टैरिफ में कमी करने के कारण लैंग व्यापारी वर्ग मे लोकप्रिय था।[19] उसका भारतमंत्री से अनेक बार झगड़ा हुआ। इस संबंध में हम आगे स्पष्ट करेंगे।

चार्ल्स ऐडवर्ड ट्रैवीलियन (1807-88) की भी शिक्षा हेलीबरी में हुई थी। उसने बहुत लिखा है। संभवतः गवर्नर जनरल की परिषद के वित्त सदस्यों में वह सबसे अधिक प्रतिभा संपन्न था, यद्यपि कुछ अन्य लोग वित्तीय मामलो के विशेषज्ञों के रूप में अधिक योग्य सिद्ध हुए। लोगो का विश्वास था कि वह मनबहलाव के लिए अधिकृत रिपोर्टों को पढ़ा करता था। मैकाले ने उसे 'वास्तविक प्रतिभा से संपन्न व्यक्ति' माना है····'वह 100° पूर्वी देशांतर के किसी भी व्यक्ति के लिए बुरा आदमी नहीं था।' भारत मे राजसेवा के सफल कार्यकाल (1826-40) के बाद जब वह इंग्लैंड लौटा तो 1840 से 1857 तक ट्रैजरी का असिस्टेंट सेक्रेटरी रहा।[20] इंग्लैंड में सिविल सेवा की भर्ती की प्रणाली से संबंधित जांच कार्य मे वह नोर्थकोट का सहयोगी था।

जिस समय वह मद्रास का गवर्नर (1859-60) था उसका वित्तीय शक्तियों के केंद्रीकरण के प्रश्न पर विलसन के साथ झगडा हो गया। जब वह वित्त सदस्य (1862-65) था तो प्राय. उसका भारतमंत्री के साथ मतभेद रहता था और एक बार तो उसके बजट और कर संबंधी प्रस्तावों को पूरी तरह बदल दिया गया। 1864 में फ्रेंड आफ इंडिया ने लिखा था कि ट्रैवीलियन को 'वाणिज्य और व्यापारिक समुदाय के प्रति सक्रिय सहानुभूति नही थी।'[21] 1865 मे जब ट्रैवीलियन ने चाय और जूट सहित कच्चे माल पर निर्यात शुल्क का प्रस्ताव रखा तो समस्त व्यापारिक समुदाय उसके विरुद्ध हो गया।[22]

डब्ल्यू० एन० मैंसी (1809-81) ने वकालत की शिक्षा प्राप्त की थी। वह 1855 से 1863 तक संसद सदस्य रहा था। उसकी संसदीय राजनीति (पामर्स्टन के गुट मे) मे भूमिका महत्वपूर्ण नही थी।[23] वह 1865 मे भारत आया। हम आगे स्पष्ट करेंगे कि मैंसी के समय मे (1865 से 1868 तक) बजटों मे लगातार घाटा चला। उसे सामान्य योग्यता का व्यक्ति माना जाता था और लोग उसे अकर्मण्य एवं निरुद्यमी समझते थे।[24]

उसका उत्तराधिकारी रिचर्ड टैंपिल (1826-1902) भारतीय सिविल सेवा से आया था वित्त मत्री के रूप मे ऐसा योग्य नही था जिसकी ओर ध्यान जाए। 1860 में वह विल्सन का सहायक नियुक्त हुआ था। उसने विलसन को मेरा स्वामी कह कर संबोधित किया है। कालातर मे उसे एक योग्य प्रशासक के रूप में ख्याति मिली।[25] वह दीर्घ काल तक (1868-74) वित्त सदस्य रहा। वह गवर्नर जनरल मेयो के साथ घनिष्ठ सबंध स्थापित नही कर सका।[26] टैंपिल ने मेयो की वित्तीय विकेंद्रीकरण की योजना को समर्थन नही दिया और मेयो को टैंपिल द्वारा की गई आय कर व्यवस्था दोषपूर्ण लगी। टैंपिल की इस व्यवस्था का बहुत विरोध तथा आलोचना हुई थी।[27] जुलाई 1870 मे मेयो ने आरगाइल को लिखा था, 'मुझे विश्वास नही है कि यह (टैंपिल) विश्व की दृष्टि मे वह स्थान पा सकेगा जो इस प्रकार के साम्राज्य की वित्त व्यवस्था के लिए उत्तरदायी मंत्री को मिलना चाहिए'···'क्योकि उसके पास न तो वित्तीय मामलों का वैसा ज्ञान है और न ही समस्याओं के समाधान हेतु उपाय खोजने की सामर्थ्य है जो परिषद को परामर्श देने के लिए उसके पास होनी ही चाहिए···'[28] मेयो ने टैंपिल से छुटकारा पाने के उद्देश्य से उसे बगाल का लेफ्टिनेंट गवर्नर बनाने का प्रस्ताव रखा था।[29] आरगाइल टैंपिल को मद्रास की गवर्नरी देना चाहता था।[30] परतु टैंपिल का स्थान ग्रहण करने के लिए कोई भी व्यक्ति नही मिल सका। आरगाइल के विचार से इस पद के लिए भारतीय सिविल सेवा का कोई व्यक्ति उपयुक्त नही था। उसने स्टेफर्ड नार्थकोट को वित्त सदस्य का पद स्वीकार करने के लिए राजी करने का प्रयास किया, परंतु इसमे उसे सफलता नही मिली,[31] तथा परिषद और समाचार पत्रों मे निरंतर आलोचना के बावजूद टैंपिल गवर्नर जनरल की परिषद मे वित्त सदस्य बना रहा।

वित्त सबंधी विषयों के बारे मे जान स्ट्रैची (1823-1907) मेयो के विश्वासपात्र

सरकारी सदस्यों की उपस्थिति के बावजूद) लोकतांत्रिक प्रतिनिधि संस्था नहीं थी और वित्तीय मामलो में उसकी शक्तियां बहुत सीमित थी। भारत मंत्री का भारत सरकार पर पूर्ण वित्तीय नियंत्रण था। गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट, 1885 द्वारा सपरिषद भारत मंत्री के हाथ मे वित्तीय नियंत्रण और इसकी छानबीन का काम सिमट आया था। इंग्लैंड और भारत के बीच संचार व्यवस्था मे जैसे ही सुधार हुआ भारतमंत्री ने शासन पर अपने नियंत्रण को और अधिक कस दिया। (संचार तकनीक और शक्ति वितरण एवं प्रयोग में संबंध और इसके फलस्वरूप, विशेष रूप से, जिला अधिकारी की शक्तियों मे कमी और भारत सरकार पर गृह अधिकारियों के नियंत्रण मे वृद्धि ऐसी समस्या है जिसका विस्तार के साथ अध्ययन किया जाना चाहिए) 1858 के अधिनियम की व्यवस्थाओं का पालन करते हुए वह प्रत्येक वर्ष पार्लियामेंट में वित्तीय स्थिति पर वक्तव्य देता था, परंतु इन वक्तव्यों पर शायद ही कभी ध्यान दिया गया हो।

विल्सन की प्रिय भाषा मे आर्थिक कार्यकुशलता पर जोर देने का भी अर्थ यही था कि भारत में वित्तीय शक्तियों के केंद्रीयकरण के कुछ न कुछ उपाय किए जाने चाहिए। 1858 से 1861 तक केंद्रीयकरण की प्रवृत्ति रही और इस मामले को लेकर ट्रैवीलियन तथा विल्सन मे भिड़त हो गई। उन्नीसवीं शताब्दी के छठे दशक के प्रारंभिक वर्षों मे विकेंद्रीकरण की विविध योजनाओं पर विचार किया गया। सेमुअल लैंग, डब्ल्यू० एन० मैसी तथा कर्नल आर० स्ट्रैची ने विविध योजनाओं के प्रस्ताव रखे। परंतु गवर्नर जनरल लारेंस विकेंद्रीकरण का कट्टर विरोधी था, और 1867 मे विकेंद्रीकरण की सभी योजनाएं ताक पर रख दी गई। मेयो ने विकेंद्रीकरण के विचार को पुनर्जीवित किया। उसका विश्वास था कि वित्त के विकेंद्रीकरण के द्वारा (क) सर्वोच्च सरकार और प्रांतीय सरकारों के संबधो में सुधार होगा, (ख) स्थानीय सुधार यथासंभव स्थानीय कराधान द्वारा किए जा सकेंगे, (ग) सर्वोच्च सरकार के लिए उन व्ययों से छुटकारा पाना संभव होगा जिन्हें केवल स्थानीय सरकारें ही प्रभावशाली ढंग से नियंत्रित कर सकती है, तथा (घ) सरकार के लिए स्थानीय एवं म्युनिसिपल स्तर पर प्रशासन के उत्तरदायित्वों को भारतीयों के साथ बांटना संभव होगा और इससे यहां के लोगों को उपयोगी राजनीतिक प्रशिक्षण मिल सकेगा। 1871-72 मे मेयो की वित्तीय हस्तांतरण योजना को लागू कर दिया गया। यद्यपि मेयो की योजना मे बहुत सारे दोष थे, तथापि भारत के वित्तीय इतिहास मे यह एक युगांतरकारी घटना थी।

अस्तु, संगठनात्मक स्तर पर आर्थिक कार्यकुशलता के लिए प्रयत्न किया गया, हालांकि इसमें सफलता नहीं मिली। सरकार की स्थिति संपन्न नहीं थी। वास्तविकता यह है कि 1862-64, 1865-66 तथा 1870-72 के वर्षों को छोड़कर इस अध्ययन की अवधि के अन्य सभी वित्तीय वर्षों के तलपट (बैलेंस-शीट) से घाटे ही प्रकट होते हैं। आय पक्ष में मालगुजारी और अफीम सबसे अधिक महत्वपूर्ण मदें थी। कुल आय में मालगुजारी का भाग 40 प्रतिशत से अधिक और अफीम का 15 प्रतिशत से अधिक था। वस्तुओं पर लगाए जाने वाले कर तीन थे: औसतन कुल आय में नमक कर का योगदान 10 प्रतिशत, उत्पादन शुल्क का भाग 5 प्रतिशत और सीमा शुल्क से प्राप्ति 5 से

9 प्रतिशत तक थी। आय पर कर तथा दूसरे प्रत्यक्ष करो से प्राप्तियां कुल आय का नगण्य भाग थी। आय की अनेक मदें (स्टाप, टकसाल, पोस्टआफिस, तार, लोक-निर्माण, कोर्ट फीस आदि) ऐसी थीं जिनकी प्रकृति सरकार के अनुसार विशिष्ट लाभ-राजस्व की थी। व्यय पक्ष मे, सेना तथा लोक निर्माण पर होने वाले व्यय कुल व्यय के क्रमश: लगभग 33 और 15 प्रतिशत थे। कुल व्यय का एक-तिहाई से अधिक इग्लैंड तथा भारत में प्रशासन पर किया जाने वाला व्यय होता था। ब्याज के रूप में भुगतान कुल समस्त व्यय का 10 प्रतिशत था।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक सरकार की भूधृति नीति (लैंड टेन्योर पालिसी) का स्वरूप निश्चित हो गया था। भूराजस्व (मालगुजारी) प्रशासन और नीति संबंधी महत्वपूर्ण विवाद तथा प्रयोग अठारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध के बाद के वर्षों मे और उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध के प्रारंभिक वर्षों मे हुए थे। एकमात्र महत्वपूर्ण मामला जो तय नही हो सका था, वह स्थाई बदोबस्त को अस्थाई बदोबस्त के क्षेत्रो मे लागू करने का प्रश्न था। इसके अतिरिक्त मालगुजारी के परिशोधन तथा बेकार भूमि की बिक्री से संबंधित कुछ अन्य समस्याएं भी थी। 1862 मे मालगुजारी के स्थाई बंदोबस्त को अन्य क्षेत्रो में लागू करने का निर्णय लिया गया। जिन प्रयोजनो एवं उद्देश्यों ने सरकार को यह निर्णय लेने के लिए प्रेरित किया उनमे से कुछ उल्लेखनीय प्रयोजन थे—रैयत की आर्थिक स्थिति में सुधार की संभावना (यह कर्नल बैंर्ड स्मिथ का सुझाव था), संपत्ति के पूर्ण सृजन द्वारा सरकार के प्रति लोगों के मन मे निष्ठा उत्पन्न करने की इच्छा, भूमि मे पूजी के निवेश को हतोत्साहित करने वाले तत्वो को समाप्त करने की इच्छा। यद्यपि स्थाई बंदोबस्त के सिद्धात को स्वीकार कर लिया गया था तथापि अधिकारी इस प्रकार के बंदोबस्त के लाभो के बारे में पुनर्विचार करने लगे थे। छठे दशक के मध्य से स्थाई बंदोबस्त मे आस्था कम होने लगी थी। यह अनुभव किया गया कि मालगुजारी का स्थाई रूप से निर्धारण सरकार के लिए घाटे का सौदा रहेगा। सरकार के लिए कृषि संपत्ति (ऐसी संपत्ति जिसके विषय मे मान्यता थी कि वह स्थाई बंदोबस्त द्वारा उत्पन्न होगी) पर कर लगाने के लिए कराधान की व्यवस्था विकसित कर पाना और स्थाई बंदोबस्त हो जाने पर आय की हानि को अन्य स्रोतो से पूरा कर पाना कठिन था। भूमि की कीमत मे तेजी के साथ वृद्धि और रुपये के मूल्य में ह्रास ने भी सरकार को हतोत्साहित किया। सरकार अपने हितों की रक्षा के लिए बहुत उत्सुक थी। अत: पहले स्थाई बंदोबस्त की दिशा मे निर्णय स्थगित कर दिया गया और 1883 मे स्थाई बंदोबस्त को और अधिक क्षेत्रो मे लागू करने का विचार विधिवत त्याग दिया गया।

मालगुजारी के बाद आय की मदो मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण अफीम थी। फसल की अप्रत्याशित स्थिति और बाजार मे अनिश्चितता के कारण अफीम से होने वाली आय मे घटा-बढ़ी की प्रवृत्ति के बावजूद हमारे अध्ययन की अवधि मे इस स्रोत से आय मे अनवरत वृद्धि हुई है। जब छठे दशक मे चीन में अफीम का उत्पादन तेजी से बढ़ा तो वहा के बाजार में प्रतियोगिता का थोड़ा भय हो गया था, परतु इससे अफीम से होने वाली आय पर तत्काल कोई प्रभाव नही पड़ा। यद्यपि भारत सरकार का मालवे की अफीम (जिस

पर बंबई मे पारगमन शुल्क लिया जाता था) के उत्पादन से कोई संबंध नही था, तथापि बंगाल के प्रेसीडेंसी मे अफीम के उत्पादन से सरकार का घनिष्ठ संबंध था। अफीम-व्यापार से सरकार के संबंधो के विरोध मे इंग्लैंड मे आदोलन चला, परंतु भारत सरकार के लिए अफीम से होने वाली आय को छोड़ सकना संभव नहीं था। अतः उसने अफीम विरोधी समाज द्वारा चलाए जाने वाले आदोलन की ओर कोई ध्यान नही दिया।

भारत सरकार की सीमा शुल्क नीति (टैरिफ नीति) भारत और इंग्लैंड के बीच श्रम विभाजन पर आधारित लगती है। इस व्यवस्था में भारत को कच्चे माल की आपूर्ति और इग्लैंड को औद्योगिक उत्पादन मे विशिष्टता प्राप्त करनी थी। यह एक विवादरहित तथ्य था कि सीमा शुल्कों का स्वरूप संरक्षणात्मक नही होना चाहिए। ब्रिटेन के उत्पादक वर्ग भारतीय सीमा शुल्क नीति पर विशेष ध्यान रखते थे। यह समझ मे आने वाली बात है। क्योंकि, उदाहरण के लिए, लंकाशायर अपने वस्त्रों के कुल उत्पादन का एक-तिहाई भारत को निर्यात करता था। वित्तीय कारणों से ब्रिटिश आयातों पर सभी आयात शुल्को को समाप्त कर सकना संभव नही था, परंतु उन्हे यथासंभव नीचा रखा गया था। भारतीय कच्चे माल पर निर्यात-शुल्क नीचे रखे गए थे। 1860-61 मे भारत के 28.1 प्रतिशत निर्यात वस्तों के लिए कच्चे पदार्थों के रूप मे (सूत, सिल्क, ऊन एवं जूट) थे। 1870-71 में इनका भाग बढ कर 43.3 प्रतिशत हो गया। 1860-61 में कुल आयात मे सूती वस्त्रों का भाग 39.63 प्रतिशत था। 1870-71 मे सूती वस्त्रों का भाग बढ़ कर 49.82 प्रतिशत हो गया।

नमक शुल्क जो वस्तुत: सबसे कम आय वाले वर्गों पर व्यक्ति कर (पोल टैक्स) था, सरकार की आय का ऐसा स्रोत था जिसमे बराबर वृद्धि हो रही थी। शुल्क की दरो को धीरे-धीरे ऊचा उठाया गया। इस नीति को इस आधार पर युक्तिसंगत ठहराया गया कि पूरे भारत मे शुल्क की दरो को समान करने के लिए ऐसा करना आवश्यक है जिससे अततः देश के भीतर सीमा शुल्क अवरोधों को हटा सकना संभव होगा। आय-कर तथा अन्य प्रकार के प्रत्यक्ष कर अधिक आय वाले वर्गों पर लगाए गए थे, परन्तु वे प्रत्याशित आय जुटा पाने मे असफल रहे।

भारत सरकार के खर्चों में अनवरत वृद्धि हो रही थी। ऐसा आंशिक रूप से समस्त भारत में कीमतों और मजदूरियों मे होने वाली वृद्धि के कारण और आंशिक रूप से श्रेष्ठ प्रशासन के लिए माग के फलस्वरूप था। कुछ मदों में (जैसे, विधि एवं न्याय) पर बढ़ा हुआ खर्च न्यायसगत था। परंतु शिक्षा व लोक स्वास्थ्य पर व्यय बहुत थोड़ा था। भारत और विशेष रूप से इंग्लैंड मे लिए गए ऋणो के ब्याज का भार सरकार पर काफी था। असैनिक (सिविल) खर्चों तथा ब्याज के भार मे कमी करने के लिए समय-समय पर अनियमित ढंग से प्रयास किए गए। ये प्रयास बहुत अधिक सफल नही हो सके। गृह खर्चों मे (होम चार्जेज) में भी कमी नहीं की जा सकी। विशेष रूप से गारंटी प्राप्त रेल कंपनियो को दिए जाने वाले ब्याज, इग्लैंड मे प्राप्त ऋणो पर ब्याज, तथा भारत स्थित ब्रिटिश सेना की सेवाओ के लिए भुगतान को नियंत्रित कर पाना कठिन था।

सेना पर व्यय समस्त व्यय का एक-तिहाई था। सैन्य विद्रोह के बाद जैसे ही

सामान्य स्थिति पुनः स्थापित हुई, सरकार ने सेना पर व्यय में कमी करना प्रारंभ कर दिया। परंतु सरकार के लिए सेना को उस न्यूनतम संस्था के नीचे ले जा पाना संभव नही हो सका जो उसकी दृष्टि मे 1857 जैसी उथल-पुथल की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए आवश्यक थी। भारत स्थित ब्रिटिश सेनाओं पर व्यय, भर्ती, प्रशिक्षण तथा इंग्लैंड से भारत आने-जाने के खर्च, भारतीय बैरकों में यूरोपीय जीवन स्तर बनाए रखने के लिए व्यय, सेवा निवृत्ति पर पेंशन आदि के खर्च भारत सरकार ने उठाए। भारत सरकार का दावा था कि युद्ध कार्यालय भारत स्थित ब्रिटिश सेना की सेवाओ के लिए अनुचित रूप से अधिक राशि वसूल कर रहा है। परंतु ब्रिटिश सेना के प्रभावी तथा अप्रभावी खर्चों में कमी नही की जा सकी। भारत सरकार के लिए भी उस स्थिति से मुकर पाना संभव नहीं हो सका जो उसने ब्रिटिश सेना में ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना के एकीकरण के समय स्वीकार की थी। इसके अतिरिक्त, इंग्लैंड के लिए भारत के खर्चे पर रखी गई सेना (देशी भारतीय सेना सहित) एक रिजर्व सेना थी जिसकी आवश्यकता पड़ने पर भारत की सीमा के बाहर कार्रवाई मे प्रयोग किया जा सकता था। भारत मे ब्रिटेन के शासन और भारत के बाहर उसके प्रभाव का मुख्य आधार भारत स्थित सेना ही थी।

सरकारी पूंजी और सरकार से भारी सहायता प्राप्त निजी पूंजी निवेशों के द्वारा परिवहन एवं संचार का विकास और सिंचाई की सुविधाओं का विस्तार हुआ। परिवहन व्यवस्था के विकास, बाहरी किफायतों मे वृद्धि और अन्यान्य सहूलियतों के विस्तार से आर्थिक विकास को मिलने वाली प्रेरणा आशा से कम रही। लोक निर्माण नीति की कुछ ऐसी विशेषताएं थी जिनसे आर्थिक विकास मे बाधा पड़ी। जैसे, लोक निर्माण (अलाभकर निर्माण कार्यों) के लिए पूंजी की व्यवस्था ऋणों के द्वारा नही की गई जिससे पर्याप्त मात्रा मे साधन नही जुटाए जा सके। लोक निर्माण के लिए उपलब्ध साधनों का बहुत बड़ा भाग सेना के लिए बैरकों के निर्माण जैसे गैर विकास कार्यों के लिए किया गया। भारत में रेलो के विकास के लिए जिन शर्तों पर ब्रिटिश पूजी को प्राप्त किया गया, उसके कारण भारत के ऊपर गारंटीशुदा ब्याज के रूप मे भारी बोझ पड़ा।

इससे पहले कि हम अपनी इस साधारण-सी रूपरेखा के आधार पर महत्वपूर्ण तथ्यों का विस्तार के साथ वर्णन करे, हमारे लिए यह उपयोगी होगा कि हम थोड़ा रुक कर भारत के आर्थिक जीवन में सरकार की भूमिका के प्रश्न पर नीति निर्धारकों के दृष्टिकोण मे दीर्घकालीन प्रवृत्तियों को देखने का प्रयत्न करें।

इस संबंध में किसी संदेह की गुंजाइश नही है कि सैन्य विद्रोह के कारण भारत के प्रति ब्रिटेन के दृष्टिकोण मे भारी परिवर्तन हो गया था। सर जार्ज ट्रैवीलियन ने यह महसूस किया था कि 'भारत के प्रति अंग्रेजों की मनःस्थिति' वह नही थी जो 1857 की राजनीतिक उथल-पुथल से पहले थी।[40] सर चार्ल्स ट्रैवीलियन एक पुराना ऐंग्लो-इंडियन था। उसने 1863 में खेद प्रकट करते हुए कहा कि 'सिविल सेवा के सदस्य' अवांछनीय रूप से 'स्वदेश की ओर उन्मुख हैं।' उसने इस स्थिति के जो कारण बताए,

थे है संचार के द्रुत साधनों का विकास तथा छुट्टी संबंधी नए नियम।[41] एक अन्य पुराना अनुभवी व्यक्ति बार्टल फ्रेर लिखता है कि 'अंग्रेजों की चाहे वे भारत मे काफी समय से रह रहे हो, अथवा नए आए हों भारतीयों के प्रति सहानुभूति यदि विद्वेष मे नहीं तो सामान्य रूप से घृणा मे निश्चय ही बदल गई है; और उनमे यहा रहने,अथवा भारत की चिंता करने की प्रवृत्ति नही है। वे समस्याओ को भारतीय पहलू से न देख कर किसी भी अन्य पहलू से देखने के लिए तैयार हैं…।'[42] इसके अलावा 'भारत अंग्रेज युवकों के लिए कुबेर का खजाना नही रह गया था। अब यह पूजी निवेश और व्यापार की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण बन रहा था।'[43]

भारत को 'विकसित करने' का महान प्रयास सैन्य विद्रोह के परवर्ती काल का मुख्य लक्षण था। जिस किसी भी परियोजना मे इस बात का विश्वास होता था कि भारत को पूजी निवेश के लिए उपयुक्त क्षेत्र के रूप मे विकसित किया जा रहा है उसमे लोगों की दिलचस्पी हो जाती थी और कभी-कभी उसे सरकार का समर्थन भी मिलता था। जेम्स विल्सन का दावा था कि भारत विकास काल की दहलीज पर खड़ा हुआ है। यह तथ्य 'बाद के वर्षों में हमारे घरेलू तथा विदेशी दोनो ही प्रकार के व्यापार मे तेजी के साथ विकास, चाय बागान, कोयला खान, अंतर्देशीय जहाजरानी से संबधित सार्वजनिक कंपनियो मे पूजी के भारी निवेश, लोगो की सुधरी हुई स्थिति, कृषि उत्पादन और उसके मूल्य मे वृद्धि, मजदूरी की दर मे वृद्धि, सड़क, नदी तथा नहर यातायात मे वृद्धि…' आदि से स्पष्ट था।[44] सैन्य विद्रोह के बाद दो दशको के भीतर भारत मे ब्रिटिश पूजी निवेश की राशि अभूतपूर्व थी।[45] 1861-64 मे कपास व्यवसाय मे गरम बाजारी, क्रीमियन युद्ध और अमरीकी गृह युद्ध के समय भारतीय कच्चे माल के बाजारों में विस्तार, स्वेज नहर के खुल जाने, रेल व्यवस्था के विकास आदि ने व्यापार तथा वाणिज्य को, विशेष रूप से भारत के पश्चिमी भाग मे, प्रोत्साहन दिया।[46] इस प्रक्रिया में ब्रिटिश व्यापारी की भूमिका स्वभावत: निर्णायक थी। 'उन्नीसवी शताब्दी के मध्य मे मेनचेस्टर के उद्योगपतियों के दृष्टिकोण मे परिवर्तन हुआ। जहा उनका पहले साम्राज्य निर्माण से अलग रहने और दूसरे देशों मे हस्तक्षेप न करने मे विश्वास था, वहा बाद मे उनकी उत्साहपूर्ण औपनिवेशिक एवं विदेशी नीति में आस्था जाग गई।'[47] औपनिवेशिक व्यापार मे यह नई दिलचस्पी कुछ तो 1870 के बाद अनेक देशों मे संरक्षणात्मक टैरिफ लगाए जाने से विदेशी बाजार सकुचित होने के कारण[48] और कुछ 1857 के बाद भारत पर पूरा नियत्रण स्थापित हो जाने के फलस्वरूप थी। जब भी इग्लैंड के औद्योगिक एव वाणिज्यिक हितो ने चाहा तो अहस्तक्षेपी नीति के सिद्धात मे सशोधन किए गए और भारत सरकार निश्चित रूप से व्यावहारिक नीति का पालन करते हुए लोक नीति के महत्वपूर्ण क्षेत्रो मे प्रायः अहस्तक्षेपी नीति के कठिन और सकरे पथ से हटती रही।[49]

एक ओर ब्रिटिश वाणिज्यिक समाज भारत में अपने आर्थिक हितो के विषय मे अधिक जागरूक हो गया था और दूसरी ओर इसी समय भारत के प्रति उत्तरदायित्व के सबध मे ब्रिटेन मे भी नई चेतना जगी। भारतीय राजस्व पर फासट और हिंडमैन की

रचनाओं ने शुरू के भारतीय राष्ट्रवादियों को बहुत प्रभावित किया था।[50] डिकिसन ने *यथार्थ को रहस्यपूर्ण बनाने की उस व्यवस्था का भंडाफोड़ करने का प्रयास किया* जिसके द्वारा भारतीय नौकरशाही, भारतीय मामलों के बारे में, इग्लैंड के लोगो को अज्ञान में रखती थी।[51] 1859 में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'आवर फाइनेंशियल रिलेशन विद इंडिया' में मेजर विंगगेट ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि ब्रिटिशनीति 'उस देश के लोगों के कल्याण के लिए विशुद्ध स्वार्थरहित एवं परोपकारी दृष्टिकोण के द्वारा निर्धारित नहीं होती।'[52] विंगगेट, मेजर एवान्स बैल[53] और राबर्ट नाइट[54] ने भारत सरकार की आय के गैर भारतीय उद्देश्यों के लिए व्यय और तथाकथित संपत्ति निकास से सबद्ध तथ्यों का उद्घाटन किया है। हंटर तथा बार्टल फ्रेर जैसे भूतपूर्व अनुभवी अफसरों ने इग्लैंड के लोगों को चेतावनी दी थी कि सरकार की आय और साधनों के अपव्यय के प्रति भारत में रोष बढ़ रहा है।[55]

उस काल में प्रचलित लोक वित्त का सिद्धांत, जो इंग्लैंड में ग्लैड्स्टन के नाम से जुड़ा हुआ था, आर्थिक उदारवाद के सिद्धांतों पर आधारित था।[56] उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में वित्तदाताओं के लिए केवल राजस्व के लिए कराधान एक अविवाद्य तथ्य था। इनके अनुसार घरेलू उद्योगो को संरक्षण देने का प्रश्न तो उठता ही नही था। उनका यह भी उद्देश्य था कि लोक व्यय कम रहे और राजस्व इस प्रकार जुट जाए कि निजी क्षेत्र में आर्थिक क्रियाकलाप को किसी प्रकार की हानि न हो और, इस सब के ऊपर, बजट संतुलित होना चाहिए। सरकार की आय उसके व्यय से अधिक रहनी चाहिए और ऋण से *यथासभव बचना चाहिए। भारत के नीति निर्धारक लोक वित्त के* इन रूढ़िवादी सिद्धातों की अवहेलना नही कर सके।

सभी जानते है कि उन्नीसवी शताब्दी मे अहस्तक्षेपी नीति के प्रभुत्व से भारत सरकार की नीति काफी प्रभावित हुई। भारत के आर्थिक विकास संबंधी एक प्रमुख विशेषज्ञ के अनुसार तो 'बीसवी शताब्दी के प्रारंभ तक अहस्तक्षेपी नीति का ही पालन किया गया।'[57] अभी हाल मे यह बात कुछ जोर देकर कही गई है कि '1858 में कपनी का शासन समाप्त होने के साथ ही अहस्तक्षेपी नीति का युग वास्तव में प्रारंभ होता है।' *'यह उग्र अहस्तक्षेपी नीति का काल था।'*[58] एक *अन्य* इतिहासकार ने तो ब्रिटिश राज्य को 'रात्रि-प्रहरी-राज्य कह कर उसकी विशेषता प्रकट की है।[59] और अधिक उदाहरण देना सरल किंतु अर्थहीन है। अहस्तक्षेपी नीति शब्द स्पष्ट रूप से घिसी-पिटी पिष्टोक्ति बन गया है। आज जबकि राज्य के कार्यों का क्षेत्र बहुत बढ गया है, उस समय उन्नीसवी शताब्दी को अहस्तक्षेपी नीति के श्रेष्ठतम युग के रूप मे देखना शायद स्वाभाविक ही है। हमे यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रारंभिक राष्ट्रवादी प्रवक्ताओं का अनौद्योगीकरण सबधी दावा इसी पर आधारित था। उनका तर्क था कि सरकार के उदासीनतावाद से *उन्नीसवी शताब्दी मे भारतीय उद्योगो का अधिक तेजी के साथ* पतन हुआ। कुछ भी हो, भारत के सदर्भ में अहस्तक्षेपी नीति की धारणा का सूक्ष्म परीक्षण करना और, फिर कुछ अन्य प्रश्न उठाना सार्थक होगा।

इस बात को कभी-कभी ठीक प्रकार से समझा नही जाता कि भारत सरकार

'भारत मे अंग्रेज युद्धरत सभ्यता के प्रतिनिधि है।'[66] सर जान स्ट्रैची ने लिखा है कि सर फिट्ज जेम्स स्टीफन के ये शब्द 'हमारे द्वारा प्रवर्तित सिद्धातों' के पीछे निहित भावना को स्पष्ट करते है। एरिक स्टोक्स ने बतलाया है कि स्टीफन और स्ट्रैची ठेठ नई पीढी के प्रशासक थे, जिनमे उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे सभ्यता के प्रसार संबंधी मिशन की सुसमाचारी संकल्पना के साथ कार्यकुशलता के लिए उपयोगितावादी उत्साह का सम्मिलन था।[67] कर्तव्य की यह सकल्पना जेम्स मिल के उपयोगितावाद मे अंतर्निहित सत्तावादी तत्व पर जोर देती थी और इसने कार्यकुशलता संबधी ऐसे आदर्श को जन्म दिया जिसे ऐसे राज्य में ही हासिल किया जा सकता है जिसमे नौकरशाही का प्रभुत्व हो। कर्तव्य की इस कल्पना ने भारत को अधिशासित प्रदेश बना दिया और यहा पर रूढ़िवादी उदार अहस्तक्षेपवाद की प्रासगिकता नही रही। सर जान स्ट्रैची का कथन है कि 'जिन कार्यों की हम अपने जैसे देशों की सरकारों से अपेक्षा करते है, भारत सरकार के कार्य उससे कही अधिक हैं।'[69] कानूनरहित नीची प्रजातियों के शासको तथा प्रायः कमोवेश काम करने ही मे विश्वास रखने वाले आलसी बुद्धिहीनो के स्वामियों के भारी उत्तरदायित्व होते हैं।[68] कभी-कभी उत्तरदायित्व के प्रति उनकी चेतना उनके धार्मिक उत्साह के साथ घुल-मिल जाती है। यह एनन के शब्दों से स्पष्ट है। वह लिखता है 'इस संसार मे केवल हम ही ईश्वर के प्रति उन लोगों के लिए उत्तरदाई है जिन्हें उसने हमारे संरक्षण में रखा है।'[70] कभी-कभी उत्तरदायित्व की कल्पना अपेक्षाकृत अधिक लौकिक भाषा में की जाती थी और यह प्रजाति श्रेष्ठता की धारणा के अनुरूप होती थी।

किपलिंग का अपने देशवासियो को उपदेश था 'श्वेत मानव का उत्तरदायित्व संभालो'। ऐसे बंदरगाहो और सड़कों का जहा तुम जा भी नही सकते, अपने जीवन से निर्माण करो; और अपनी मृत्यु से उन पर एक अमिट छाप छोड़ दो।'[71] उत्तरदायित्व की संकल्पना राज्य के कार्यो के विषय मे नकारात्मक कल्पना के विपरीत थी जिसे उपहास मे रात्रि-प्रहरी-राज्य का विचार कहा गया है। इग्लैंड मे राज्य के नियत्रण के प्रति काफी घृणा थी, परंतु भारत में वैज्ञानिक वैथमवादी प्रशासक तथा सत्तावादी टोरी सज्जनों में स्वाभाविक सहयोग पूरी तरह संभव था।[72]

भारत में नीति निर्धारण के ऊपर अहस्तक्षेपी नीति के सिद्धात के प्रभाव को अधिक आंक सकना सभव है। नौकरशाही का सोचने का ढंग यदि कुछ था तो वह व्यावहारिक था और वह पश्चिम के ऐतिहासिक अनुभव अथवा आर्थिक विचारधारा से प्रेरित सरकारी नीति के विविध प्रतिमानों की प्रामगिकता को सदेह की दृष्टि से देखता था। जैसा कि हम आगे देखेगे नीति निर्धारकों की कुछ विशिष्ट समस्याओं के प्रति प्रतिक्रियाओं के पैटर्न से प्रकट होता है कि वे प्रायः आर्थिक उदारवाद के अहस्तक्षेपवादी सिद्धातों का यथार्थ में खडन नही करते थे तो उनकी अवहेलना अवश्य करते थे। आर्थिक नीति के सिद्धातों की खोज अमूर्त सिद्धातों के क्षेत्र के बाहर कंपनियों के शेयरों के वास्तविक स्तर, ब्याज व लाभाशों, ससदीय लाब्बी तथा चेंबर्स आफ कामर्स के दायरों में होनी चाहिए। जिस काल का हम यहा अध्ययन कर रहे है, भारत मे इस अवधि मे

अहस्तक्षेप नीति के नाम से जानी जाने वाली नीति का उद्देश्य ब्रिटिश माल के लिए भारतीय बाजार को खोलना, कच्चे मालो की आपूर्ति बढाना और पूजी निवेश के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार करना था और इनकी प्राप्ति के लिए राजनीतिक शक्ति का प्रयोग जिस प्रकार हुआ वह वाणिज्यवाद की याद दिलाता है।[73]

यदि भारत में सरकार द्वारा सपन्न किए जाने वाले कार्यों के विस्तार पर विचार किया जाता है तो ब्रेबनर की भांति ही इस प्रकार के साधारणीकरण के लिए इच्छा हो सकती है कि यदि ब्रिटेन मे अहस्तक्षेपी नीति मिथक थी तो वह भारत मे कम मिथक नहीं थी।[74] अनेक बाहरी किफायतशारी बरतने के लिए आधारभूत आर्थिक संरचना मे पूजी निवेश का पेटर्न; रेल *तथा सिंचाई कपनियों मे राज्य द्वारा ब्याज की गारंटी* के आधार पर पूंजी निवेश, कपास आदि कच्चे माल के उत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिए असाधारण उपाय; भारत में यूरोप के लोगों द्वारा निवेश और उनके आवास में बाधक भूमि सबंधी अधिनियमो मे संशोधन, भारत मे यूरोपीय उद्यम को प्रोत्साहन देने के लिए पथप्रदर्शक परियोजनाओं का लोक वित्त द्वारा पोषण ऐसी बातो के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं जिन्हे ब्रिटिश दृष्टिकोण के अनुसार भारत मे विवेकपूर्ण हस्तक्षेपवाद कहा जा सकता है।

हमें सरकारी कार्यों के ऐसे कुछ अन्य क्षेत्रों पर भी ध्यान देना चाहिए जिनमें आर्थिक उदारवाद की पुरानी शुद्धता को बनाए रखा गया है। उन्नीसवी शताब्दी के परवर्ती वर्षों के टैरिफ विवाद मे शिशु उद्योग वाले तर्क का खडन करने के लिए अहस्तक्षेपी नीति के सिद्धातों का आश्रय लिया गया था।[75] भारत जिस समय दुर्भिक्षों के चक्र से गुजर रहा था, उस समय सरकार ने खाद्यान्नो के स्थानातरण मे हस्तक्षेप करने से इंकार कर दिया।[76] अहस्तक्षेपवादी सिद्धांत के आधार पर आरोही कराधान को अपनाया नही गया। इस सबध मे तर्क यह था कि 'लोगों की स्थितियों मे समता लाना वित्तीय व्यवस्था से संबंधित कार्यों का अग नही है।'[77] अहस्तक्षेपी नीति पर आधारित लोक वित्त के सिद्धांतो के कारण आधारभूत आर्थिक संरचना के विकास से सबंधित विविध प्रकार के व्यय मे बाधा रहती थी।[78] सरकार के न्यायसम्मत कार्यों की दृढ परिकल्पना के कारण कभी-कभी सरकार के लिए औद्योगिक क्षेत्र मे अधिक रचनात्मक कार्य कर पाना संभव नही होता था।[79] वस्तुत: ये तथ्य इतने जाने-माने हैं कि उन पर किसी प्रकार के विवाद की आवश्यकता नहीं है। इस संबंध में महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या सरकार की हस्तक्षेपवादी और अहस्तक्षेपवादी नीतियों मे जिनका सरकार साथ-साथ पालन करती थी कोई आधारभूत अंतर्विरोध है।

ऐसा लगता है कि सरकारी हस्तक्षेप की समर्थनकारी और विरोधी प्रतिक्रियाओं का अतर्विरोध वास्तविक न होकर ऊपरी है। उदाहरण के लिए यह प्राय: स्वीकार किया जाता है कि सभी निहित स्वार्थों मे मेनचेस्टर के सूती वस्त्र उद्योग हितों का स्थान केंद्रीय था। आगे हम देखेंगे कि मेनचेस्टर के सूती वस्त्र उद्योग को कपास की आपूर्ति बनाए रखने के लिए अहस्तक्षेपवादी नीति की अवहेलना अनुचित नही मानी गई। इसी के साथ-साथ भारत के घरेलू कपास उद्योग को टैरिफ संरक्षण न देने के

मामले मे अहस्तक्षेपी नीति को कड़ाई के साथ लागू किया गया। इन दोनो बातो मे ऊपरी असंगति के बावजूद दोनों ही नीतियां एक ही प्रकार के हितो की दृष्टि से उपयोगी थीं। विविध विचारों की अंतर्क्रिया और सरकार की नीति मे लोच के कारण स्थिति बहुत जटिल है। अहस्तक्षेपी नीति का लेबल होने पर हमे इस जटिलता की उपेक्षा करने का साहस होता है। यदि किसी सरल लेबल की ही आवश्यकता है तो सभवतः स्थिति की परिभाषा अहस्तक्षेपी नीति शब्द की तुलना मे भेदमूलक हस्तक्षेपवाद के द्वारा अधिक सही हो सकेगी।

जे० ए० शुंपीटर के अनुसार यूरोप में उन्नीसवी शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश मे 'आर्थिक उदारवाद में इतना अधिक हेर-फेर किया गया कि कभी-कभी तो इससे उसके अपने सिद्धांतों का ही अप्रकट रूप से परित्याग होगया।'[80] इंग्लैंड मे निर्धनो को दी जाने वाली सहायता से संबद्ध व्यवस्था के आधुनिकीकरण, फैक्ट्रियो और जन-स्वास्थ्य के नियम, नगर-समाजवाद के प्रयोगों, सार्वजनिक शिक्षा-प्रणाली के संगठन आदि के कारण घोषित अहस्तक्षेपवाद के बावजूद सरकारी कार्यकलाप का क्षेत्र विस्तृत हुआ। इंग्लैंड में औद्योगिक पूंजीवाद के अभ्युदय के कारण ही अहस्तक्षेपी नीति के सिद्धांतों से हटा गया था जबकि भारत मे पिछड़ी अर्थ व्यवस्था और उसके शोषण की समस्याओ के कारण ऐसा हुआ। यह तर्क देना युक्तिसगत होगा कि अपने भारतीय अनुभव के कारण अहस्तक्षेपी नीति में ब्रिटिश लोक जनो की आस्था समाप्त हो गई, और इस प्रकार कम से कम उन नीतियो के प्रति जिनके द्वारा सरकारी कार्यों का विस्तार होता था, उनकी घृणा कम हो गई। यूरोप के सिद्धांतवादियों के प्रभाव के अलावा सभवतः 'भारत सरकार की व्यावसायिक क्रियाओ से ही इंग्लैंड मे समष्टिवाद को सबसे अधिक प्रोत्साहन मिला।'[81] यह भलीभांति स्पष्ट है कि उन्नीसवी शताब्दी के अंतिम कुछ दशको मे यूरोप में इंग्लैंड तक में जिसे डायसी अहस्तक्षेपी नीति का स्वाभाविक स्थल मानता है इस नीति का महत्व कम हो रहा था।[82]

जिस समय जर्मनी के ऐतिहासिक विचारधारा वाले अर्थशास्त्री अहस्तक्षेपी नीति सिद्धांत अथवा स्मिथवाद (जर्मनी मे अहस्तक्षेपी नीति सिद्धांत को स्मिथवाद उपनाम प्रदान किया गया था)[83] पर प्रहार कर रहे थे, उस समय इंग्लैंड मे भी परंपरागत अहस्तक्षेपवाद के विरुद्ध एक वैचारिक धारा चल रही थी। यूनिवर्सिटी कालिज, लंदन के राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्रोफेसर जे० ई० कैरनीज ने 1870 मे अपने प्रारंभिक व्याख्यान में कहा था कि 'अहस्तक्षेपी नीति सिद्धांत सार्वजनिक मामलों मे बाधा एवं कंटक बन गया है।[84] सैद्धांतिक आधार पर भी वह इस मत का विरोधी था कि सपूर्ण राजनीतिक अर्थशास्त्र का सार अहस्तक्षेपी नीति है।'[85] इसी समय इस विचार को कि पश्चिमी यूरोप के विकसित देशों मे क्रियाशील सिद्धांत उन देशो के लिए अनुपयुक्त थे जो ऐतिहासिक विकास में पिछड़ गए थे, अधिकाधिक मान्यता मिल रही थी। बेजहाट तथा लैजली की रचनाओं में सर हेनरी मेन के पुरातन समाज एव समुदायों के अध्ययनों का प्रभाव देखा जा सकता है।[86] वाल्टर बेजहाट ने जोरदार ढंग से कहा था कि 'भारत उन देशों मे से है जिनकी सभ्यताओ का विकास अवरुद्ध हो गया है।'[87] यहा का समाज

धीरे-धीरे 'प्राक् आर्थिक अवस्था से उस समय विकसित हुआ था जब राजनीतिक अर्थशास्त्र की मान्यताओं का अस्तित्व ही नही था और जब इसके नियमों का पालन अनर्थकारी भी हो सकता था।'[88] थामस लैंजली के अनुसार प्रारंभिक क्लासिकी अर्थशास्त्रियो की सामान्य एवं निगमनिक रीतियो पर निर्भरता ठीक नही थी।[89] रोशर के प्रभाव से[90] लैंजली ने सामाजिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं मे आर्थिक ढाचे से संबधित अंतर के अध्ययन की आवश्यकता पर जोर दिया।[91] विचार करने का यह ढंग संभवतः *पाश्चात्य तथा गैर पाश्चात्य ऐतिहासिक अनुभव एवं सामाजिक स्थिति मे अंतर से* सबधित चेतना का परिणाम था। आर्थिक विश्लेषण में ऐतिहासिक विचारधारा के प्रतिपादकों ने इस धारणा को बहुत स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर लिया था कि आर्थिक सिद्धात सभी कालो और सभी स्थानो पर समान रूप से लागू होते है। इस प्रकार उन्होने अहस्तक्षेपी नीति के सिद्धात की जड़ खोदी। इस जर्मन विचारधारा को विशेष रूप से उसके *अहस्तक्षेपी नीति पर तीखे प्रहार के लिए ही स्मरण किया जाता है।* परंतु दो जर्मन अर्थशास्त्री फ्रेडरिक लिस्ट तथा कार्ल मार्क्स आर्थिक हितों के आधार पर अहस्तक्षेपी नीति दर्शन की व्याख्या की दिशा मे बहुत आगे चले गए। ईस्ट इडिया कपनी के शासन काल में 1853 मे मार्क्स ने लिखा कि कुलीन तत्रीय शासकों को भारत के विकास में कोई *दिलचस्पी नही थी और उन्होने इस तथ्य की उपेक्षा की कि भारत में कृषि कार्य 'पूर्ण प्रतियोगिता के ब्रिटिश सिद्धात, अहस्तक्षेपी नीति तथा स्वच्छंदता के अनुसार नही चल सकता था।'*[92] 'जैसे-जैसे भारतीय बाजारों पर (ब्रिटिश) औद्योगिक हितों की निर्भरता बढ़ती गई, वैसे-वैसे ही शासक वर्ग ने भारत मे नई उत्पादक शक्तियों के विकास की आवश्यकता को समझा।'[93] अत. जहां शासक वर्ग का कंपनी के शासन काल मे भारत की प्रगति मे अल्पकालिक तथा आपवादिक हित था, वही इसके विपरीत औद्योगिक हित, *जिन्हें मार्क्स ने मिलवाद कहा है,* भारत को विकसित करने और *अन्य देशो के साथ* उसके व्यापारिक सबध स्थापित करने के लिए इच्छुक थे।[94] मुक्त व्यापार के पक्ष में अहस्तक्षेपी नीति तर्को की फ्रेडरिक लिस्ट द्वारा की गई आलोचना बहुत जानी मानी है और ऐसा लगता है कि उसने भारतीय संरक्षणवादियों को और विशेष रूप से एम० जी० रानाडे को काफी प्रभावित किया है।[95] एक औद्योगिक देश द्वारा अपने उपनिवेश पर *मुक्त व्यापार को थोपने का प्रयत्न,* वास्तव मे *उस सीढी को हटाने के प्रयास की भांति है, जिस पर होकर वह स्वयं ऊपर उठा है ताकि अन्य देश उसी सीढी के द्वारा उसका* अनुगमन न कर सकें। इस सबंध में अधिक संदेह नही किया जा सकता कि आर्थिक दृष्टि से पिछड़े देशों के विकास के लिए राजकीय हस्तक्षेप को लिस्ट द्वारा दिए गए समर्थन और जर्मनी में सरकार की उद्योगों को प्रोत्साहन देने की नीति की सफलता का भारत मे प्रारंभिक राष्ट्रवादियो की आर्थिक विचारधारा पर प्रभाव पड़ा था।

जिस काल का हम यहा अध्ययन कर रहे हैं उसमे भारतीय वित्त नीति से संबंधित विवादो में भाग लेने वाले व्यक्ति प्रायः अस्पष्ट प्रयोजनों एवं हितों को तर्कसंगत बनाने के लिए अर्थशास्त्रियों अथवा राजनीतिक सिद्धांत शास्त्रियो से घिसे-पिटे शब्दो को बहुधा ले लिया करते थे। हितों और विचारों मे सघर्ष के बीच जटिल अतक्रिया का

अध्ययन करते हुए हमारे सामने अनेक समस्याएं आती है। हितवद्ध समूहो को पहचान पाना कठिन कार्य है। कुछ हितबद्ध गुट विधिवत सगठित किए गए थे और इसलिए उन्हे सहज ही पहचाना जा सकता था (उदाहरणार्थ, ब्रिटेन तथा भारत मे चेंबर आफ कामर्स, या मेनचेस्टर काटन सप्लाई एसोसिएशन), परंतु बहुतो का गठन विधिवत नही हुआ था और उनको पहचान सकना कठिन था। हितबद्ध गुटों तथा वित्तीय नीति से संबंधित मामलों पर निर्णयो के बीच प्रत्यक्ष संबंध स्थापित कर पाना सदैव सभव नहीं है। कभी-कभी तो कोई संबंध होता ही नही था और कभी ऐसे भी अवसर आए जब अभिजात वर्गीय शासकों (जैसे कैनिंग और मेयो) तथा इनकी ही प्रजाति के भारत मे व्यापारिक समुदाय में परस्पर सहानुभूति के अभाव के कारण भारी कटुता रही। यह भी मान लेना भूल होगी कि सभी के हित एक ही जैसे थे हालाकि प्रत्येक हितबद्ध गुट अधिक लोगो तक पहुंचने और उन्हें सन्तुष्ट कर अपने समर्थन मे भारी लोकमत तैयार करने के लिए अपने वर्गीय हित को 'राष्ट्रीय हित' के रूप मे प्रस्तुत करता था। आगे आने वाले पृष्ठो मे बार-बार यह स्पष्ट होगा कि किस प्रकार ऊंची आय वाले वर्गों ने जिनमे जमीदार और व्यापारी भी थे, सरकार से जनसाधारण पर करो (उदाहरणार्थ, नमक कर) को बढ़ाने का आग्रह किया जिससे अभिजात वर्गो को कर-भार (विशेष रूप से आयकर जिसका भार अपेक्षाकृत ऊंची आय वाले व्यक्तियो पर पड़ता था) से मुक्ति मिल सके; किस प्रकार भारत मे रहने वाला ब्रिटिश व्यापारी समुदाय सरकारी व्यय को घटाने पर जोर देता था जिससे उस पर कर-भार मे कमी हो सके जबकि ब्रिटिश नौकरशाह तथा सैनिक अधिकारी व्यय मे कमी के विरुद्ध थे और उन्होने साम्राज्य को बनाए रखने के लिए अपना प्रतिफल बढाने का प्रयास किया; किस प्रकार भारतीय व्यापारी और व्यावसायिक वर्गों को इस बात पर रोष था कि उनकी अर्जित 'जीवन-आय' पर कर की वही दर थी जो सपत्ति (विशेष रूप से स्थाई बंदोबस्त के अंतर्गत जमीदारों की सपत्ति) से प्राप्त अनर्जित आय पर थी; और किस प्रकार प्रांतीय ईर्ष्या के कारण कुशल केंद्रीय नियंत्रण मे बाधा उपस्थित हुई। कभी-कभी हितों मे अंतर अस्थाई और ऊपरी किस्म के होते थे और इसलिए अंत मे उनका समाधान निकल आता था। ब्रिटिश व्यापारियो तथा नौकरशाहों का कुछ समस्या पर मतभेद हो सकता है परंतु साम्राज्य को बनाए रखने तथा इससे संबंधित खर्चो के प्रश्न पर अथवा दूसरों का साम्राज्य स्थापित करने का अवसर देने की समस्या पर गहरा मतभेद नही था। हितों मे इस प्रकार की भिन्नता और आधारभूत संघर्षो में, जिनकी ओर दादाभाई नौरोजी ने ध्यान आकर्षित किया था, भेद करना आवश्यक है। हितबद्ध गुटो के प्रतिनिधि अपना प्रभाव डालने में सफल हो सकते थे यदि वे इस दिशा में विधिवत प्रयास करते। परंतु प्रभावशाली बनने के लिए आवश्यक नियम नौरोजी के 'संघटकों' के विपरीत थे। नीति-निर्धारक एक हद तक, आंतरिक हितबद्ध गुटों से प्रतिक्रियाशील थे। प्रतिक्रिया क्या होगी यह डाले जाने वाले दबाव, ब्रिटिश सरकार के अधिकारियो के दृष्टिकोण, प्रचलित लोकाचारो, तथा अन्य अनेक कारणो जैसे निर्णयकर्ता अधिकारियों की व्यक्तिगत अभिरुचियो (यद्यपि अतिम घटक सीमात व असाधारण स्थितियों मे ही निर्णायक होता था) आदि पर निर्भर होती

थी। निर्णय अधिकारियों की सीमाएं समग्र वित्तीय स्थिति पर निर्भर होती थीं जो यह निर्धारित करती थी कि रियायतें दी जा सकेंगी अथवा नहीं, लोकमत पर निर्णयों का प्रभाव क्या होगा, परंपरागत रास्ते से सरकार न हटे इसकी ओर नौकरशाही का झुकाव, आदि। हमारा उद्देश्य उन नियमों का अध्ययन है जिनका इस प्रक्रिया में पालन किया गया।

संदर्भ

1. विल्सन से वुड को, 11 जुलाई, 1859, वेरिंगटन, II, 171। 'डिक्शनरी आफ नेशनल बायोग्राफी', जिल्द 21, पृ० 571-73। सी० ई० बकलैंड, 'डिक्शनरी आफ इंडियन बायोग्राफी' (लंदन, 1906) पृ० 456। वाल्टर बेजहाट, 'लिटरेरी स्टडीज' (लंदन 1879) जिल्द 1, परिशिष्ट। 'लोम्बार्ड स्ट्रीट' का लेखक बेजहाट विल्सन का दामाद था और उसके बाद 'इकानामिस्ट' का संपादक बना था।
2. विलियन डी० ग्रैम्प, 'दि मेनचेस्टर स्कूल आफ इकानामिक्स', (स्टेनफोर्ड, 1960) पृ० 13।
3. ए० के० केर्नक्रास, 'होम एंड फोरेन इन्वेस्टमेंट' 1870-1913 (कैंब्रिज, 1953) पृ० 244। रावर्ट लिंक, 'इंग्लिश थिअरीज आफ इकानामिक फ्लक्चुएशंस' 1815-48 (न्यूयार्क, 1959)। जे० एम० केंस, इंडियन करेंसी एंड फाइनेंस (लंदन, 1913) पृ० 38।
4. देखिए एल्मर वुड, 'इंग्लिश थिअरीज आफ सेंट्रल बैंकिंग' 1819-1858 (कैंब्रिज, मैसाचूसेट्स 1939)।
5. पत्र मुद्रा के संबंध में भारत मंत्री के प्रेषण पर जे० विल्सन का मेमो० दिनांक 25 दिसंबर, 1859। वित्त कार्य विवरण जनवरी, 1860। लेखा शाखा, संख्या 1।
6. जे० विल्सन से लार्ड कैनिंग को 25 अगस्त, 1859, ई० वैरिंगटन, पूर्वोद्धृत, पृ० 181-83।
7. देखें, आगे अध्याय 2।
8. डब्ल्यू० बेजहाट, पूर्वोद्धृत, पृ० 400-401।
9. जेम्स विल्सन, 'फाइनेंशियल स्टेटमेंट' (कलकत्ता, 1860) पृ० 9। वी० जी० काले, 'डान आफ माडर्न फाइनेंस इन इंडिया' (पूना, 1922) पृ० 87-89 पर विल्सन के मत के समर्थन में मनु 7, 128, 130 और गौतम 10, 24-30 से उद्धरण।
10. सी० ट्रैवीलियन से सी० वुड को, प्रतिलिपि डब्ल्यू० बेजहाट को प्रेषित, 2 दिसंबर, 1862। ई० वैरिंगटन, पूर्वोद्धृत, II, पृ० 259।
11. 'फ्रैंड आफ इंडिया', 2 फरवरी, 1860, 1 मार्च, 1860, 23 अगस्त, 1860। 'बंगाल हरकारू' (एंड दी इंडिया गजट) 21 फरवरी, 1860, 23 फरवरी, 1860। 'टाइम्स आफ इंडिया', 25 दिसंबर, 1863। रावर्ट नाइट का विचार था कि विल्सन से बहुत भारी भूलें हुईं जैसे, भारतीय ऋण की साम्राज्य द्वारा गारंटी का विरोध, भारत के लिए स्वर्ण मुद्रा की अस्वीकृति, सभी वित्तीय कठिनाइयों के समाधान के लिए आय कर को अचूक उपाय मानकर उसमें आस्था रखना। 'दि इंडियन इकानामिस्ट' 10 मार्च, 1870, पृ० 231।

12 'फ्रेंड आफ इंडिया', 25 अक्टूबर, 1860।
13. सी० ई० बकलैंड, पूर्वोद्धृत, पृ० 156।
14 बी० फ्रेर से मेजर एफ० मैरियट को 11 अगस्त, 1860, मार्टिन्यू, पूर्वोद्धृत I, पृ० 312।
15. बी० फ्रेर से सी वुड को, 23 नवंबर, 1860, मार्टिन्यू, पूर्वोद्धृत I, पृ० 313।
16 बी० फ्रेर से सर जी० क्लार्क को, 9 मई, 1860, मार्टिन्यू, पूर्वोद्धृत I, पृ० 308।
17. बी० फ्रेर से सी० वुड को, 23 नवंबर, 1860, मार्टिन्यू, पूर्वोद्धृत I, पृ० 313।
18. 'डी० एन० बी०' जिल्द 22 (परिशिष्ट) पृ० 948-50। रेल आयोग का सदस्य (1845); लंदन, ब्राइटन एंड साउथ कोस्ट रेलवे कंपनी का चेयरमैन और प्रबंध संचालक। ट्रेजरी (वित्त मंत्रालय) का फाइनेंशियल सेक्रेटरी (1860)। 1861 में उस पर एक छोटा सा कलंक लगा था। उस पर हैमिल्टन एंड टोरंटो रेलवे कंपनी (कनाडा) के साथ साठ-गांठ के सौदों में शामिल होने का आरोप लगाया गया था। आरोप शायद गलत था और सिद्ध नहीं हो सका 'फ्रेंड आफ इंडिया' 11 अप्रैल, 1861।
19. 'फ्रेंड आफ इंडिया' 1 जनवरी, 1863, 17 अप्रैल, 1862। जब लैंग ने वुड के साथ बार-बार झगड़ों के कारण त्यागपत्र दे दिया तो उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करने के लिए कलकत्ता के अंग्रेज व्यापारियों ने एक सभा की थी। 'फ्रेंड आफ इंडिया', 11 सितंबर 1862।
20. 'डी० एन० बी०' जिल्द 19, पृ० 1135-36। ई० ह्यूजेज सर चार्ल्स ट्रेवेलियन एंड सिविल सर्विस रीफार्म 'ई० एच० आर०', 1949 भाग 1 व 2, पृ० 53, 206। टी० बी० मैकाले से टी० एफ० एलिस को, 15 दिसंबर, 1834। जी० एम० ट्रेवेलियन पूर्वोद्धृत, पृ० 23।
21. फ्रेंड आफ इंडिया', 14 अप्रैल, 1864, वही 22 सितंबर, 1864।
22. 'फ्रेंड आफ इंडिया' 6 अप्रैल, 1865, 27 अप्रैल, 1865, 18 मई, 1865।
23. 'डी० एन० बी०' जिल्द 13, पृ० 7। 'डी० एन० बी०' में एक महत्वपूर्ण भूल है जिसके अनुसार वह सालफोर्ड के स्थान पर 1863 तक बैठता रहा। 1863 में उसने भारत सरकार में वित्त सदस्य के रूप में सेमुअल लैंग का स्थान ग्रहण किया और इस पद पर उसने 1868 तक कार्य किया। वास्तव में लैंग का उत्तराधिकारी ट्रेवेलियन था न कि मैसी और मैसी 1865 में परिषद का सदस्य बना था न कि 1863 में।
24. 'दि इंग्लिशमैन' 11 अप्रैल, 1866। 'फ्रेंड आफ इंडिया' (29 मार्च, 1866) ने उसे विश्वस्त व्यक्ति माना है जो प्रतिभाशाली नहीं था।
25. सी० ई० बकलैंड पूर्वोद्धृत, पृ० 418। टेंपिल, 'दि स्टोरी आफ माई लाइफ,' I, पृ० 199।
26. देखें ओ० टी० बर्नी, 'ए फ्यू लैटर्स…' (शिमला, 1877) पृ० 159। बर्नी कहता है कि मेयो उसके (टैंपिल के) सतही गुणों को समझता था और जान स्ट्रेची तथा वित्त सचिव चैपमैन पर अधिक निर्भर रहता था। मेयो ने अपनी वसीयत (दिनांक 12 अक्तूबर, 1868) में इच्छा प्रकट की थी कि उसके निजी पत्र व्यवहार में ऐसी कोई भी चीज प्रकाशित नहीं की जानी चाहिए, जो किसी भी जीवित व्यक्ति को आघात पहुंचाए, अथवा नाराज करे। (वही, पृ० 4) अतः यह स्वाभाविक है कि हंटर द्वारा लिखी गई मेयो की जीवनी में मेयो और टैंपिल के दुर्भाग्यपूर्ण संबंधों पर बहुत कम ध्यान दिया गया है।

27. मेयो से आरगाइल को 22 मार्च, 1870, मेयो कागजात, बंडल 35, संख्या 81।
28. मेयो से आरगाइल को 14 जुलाई, 1870, मेयो कागजात, बंडल 40, संख्या 202।
29. *पूर्वोक्त स्थल।*
30. आरगाइल से मेयो, 1 नवंबर, 1871, मेयो कागजात, बंडल 49, जिल्द 19।
31. पूर्वोक्त स्थल।
32. मेयो से आरगाइल को 14 जुलाई, 1870, मेयो कागजात, बंडल 40, संख्या 202।
33. 'दि इंग्लिशमैन', 6 जुलाई, 1870।
34. सी० ई० बकलैंड, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 407।
35. कर्नल आर० स्ट्रैची ने 1836 में बंबई इंजीनियर्स में नौकरी शुरू की थी; 1862 में लोक निर्माण विभाग में सचिव के पद पर उनकी नियुक्ति हुई और 1866 में इंस्पेक्टर जनरल आफ इरीगेशन के रूप में। सी० ई० बकलैंड, पूर्वोद्धृत, पृ० 407।
36. वित्त कार्य विवरण, अक्तूबर, 1867, लेखा शाखा संख्या 23। कर्नल आर० स्ट्रैची का नोट 17 *अगस्त, 1867। देखें अध्याय 2, अनुच्छेद दो।*
37. मेयो से डब्ल्यू० ग्रे को, 20 अगस्त, 1869, मेयो कागजात, बंडल 36, संख्या 205।
38. मेयो से बी० फ्रेर को, 6 दिसंबर, 1869, मेयो कागजात, बंडल 37, संख्या 345।
39. मेयो से विस्काउंट हैलीफैक्स, 4 अक्तूबर, 1869, मेयो कागजात, बंडल 37, संख्या 270।
40. सर जी० ट्रैवीलियन, 'दि कंपटिशन वाला' (लंदन, 1895 : प्रथम संस्करण 1864) पृ० 238।
41. वित्त कार्य विवरण मार्च, 1864, अवकाश और पेंशन, संख्या 33 सर सी० ई० ट्रैवीलियन का नोट 28 अक्तूबर, 1863।
42. बी० फेर से सी० वुड को 10 अप्रैल, 1861। संपूर्ण पत्र काफी दिलचस्प है। मार्टिन्यू पूर्वोद्धृत जिल्द 1, पृ० 336-41।
43. टी० जे० होवेल थर्लो, 'दि कंपनी एंड दि क्राउन', (लंदन, 1866 पृ० 239)।
44. भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त संख्या 144, 29 जून, 1860। यह मसौदा लगभग निश्चित रूप से स्वयं जेम्स विल्सन ने तैयार किया था। प्रारूप (मसौदा) के प्रत्येक पृष्ठ पर उनके लघु हस्ताक्षर हैं।
45. एल० एच० जेंक्स, 'माइग्रेशन आफ ब्रिटिश कैपिटल टु', 1875 (न्यूयार्क, 1927)। जार्ज पैश 'ग्रेट ब्रिटेंस कैपिटल इन्वेस्टमेंट इन अदर लैंड्स जर्नल्स' आफ दि रायल स्टैटिस्टीकल सोसाइटी' जिल्द 52, सितंबर, 1909, पृ० 465-80, और 'ग्रेट ब्रिटेंस कैपिटल इन्वेस्टमेंट इन इंडीविजुअल कॉलोनियल एंड फोरेन कंट्रीज' जे० आर० एस० एस० जिल्द 54, जनवरी, 1911, पृ० 167-87।
46. देखें अध्याय 4 आगे। डी० ई० वाचा, 'ए फाइनेंशियल चैप्टर इन दि बांबे' सिटी (बंबई, 1910) पृ० 1-26। 'रिपोर्ट आफ दि रायल कमीशन आन दि बैंक आफ बांबे', (बंबई, 1869) पृ० 8-14।
47. जी० बी० हर्टज 'दि मैनचेस्टर पालिटीशियन' 1750-1912 (लंदन, 1912) पृ० 75।
48. वही, पृ० 79।
49. सी० आर० फे, 'ग्रेट ब्रिटेन इकानामिक एंड सोशल' ... इन दि ... आफ इकानामिक ...,

1600-1900 (आक्सफोर्ड, 1934) पृ० 177। सव्यसाची भट्टाचार्य 'लेसे फेअरे इन दि इंडिया' 'इंडियन इकानामिक सोशल हिस्ट्री रिव्यु,' जिल्द 2, संख्या 1। 1 जनवरी, 1965, पृ० 1-22।

50 हेनरी फासट, 'इंडियन फाइनेंस', (लदन, 1880)। एच०एम० हिंडमैन, 'दि बैंकरप्सी आफ इंडिया' (लंदन, 1886)।

51, जे० डिकिंसन, 'इंडिया : इट्स गवर्नमेंट अडर ए ब्यूरोक्रैसी', (लदन, 1853)। वह इंडिया रीफार्म सोसाइटी (1853) जिसने इंडियन रीफार्म ट्रैक्ट्स का प्रकाशन किया था, का सस्थापक था। देखें ई० बैल (सपादक) 'लास्ट कासिल्स आफ एन अननोन कामिलर, जान डिकिंसन' (लदन, 1877) पृ० 13-14।

52. मेजर विंगेट, 'अवर फाइनेंशियल रिलेशन विद इंडिया', (लदन, 1859)।

53 मेजर ई० बैल 'ट्रस्ट ऐंज दि बेसिस आफ इपीरियल पालिसी' 'जर्नल आफ दि ईस्ट इंडिया एसोसिएशन', जिल्द 6, पृ० 145-75। (यह लेख 18 जून, 1872 के दिन ई० आई० ए० की एक गोष्ठी मे पढ़ा गया था)।

54. आर० नाइट, इंडिया : 'ए रिव्यू आफ इग्लैंड्स फाइनेंशियल रिलेशन देअर विद' (लदन, 1868) 'नाइट इंडियन इकानामिस्ट' तथा 'टाइम्स आफ इंडिया', का सस्थापक था।

55. डब्ल्यू० डब्ल्यू० हटर, 'सम आस्पेक्ट्स आफ इंडियन फाइनेंस', 12 दिसबर, 1879 के दिन वर्मिंघम चेंबर आफ कामर्स मे भाषण (1880)।

56 सी० आर० फे, 'ग्रेट ब्रिटेन फ्राम एडम स्मिथ टु दि प्रजेंट डे', (लदन, 1932), पृ० 74-78। जे० ए० शुपीटर, 'हिस्ट्री आफ इकानामिक एनेलिसिस' (न्यूयार्क, 1954) पृ 402-5।

57. डी० आर० गाडगिल, 'दि इडस्ट्रियल एवोल्युशन आफ इंडिया' (ओ० यू० पी० 1945), पृ० 205। प्रारंभिक अवधि मे (प्रथम विश्व युद्ध तक) राज्य का दृष्टिकोण पूरी तरह अहस्तक्षेपी ही था। (पृ० 323)।

58. बी० बी० मिश्र, 'दि इंडियन मिडिल क्लासेज देअर ग्रोथ इन मार्डर्न टाइम्स' (लदन, 1961) पृ० 214-359।

59. मारिस डी० मारिस, 'टुवर्ड्स ए रिइंटरप्रेटेशन आफ नाइंटीथ सेंचुरी इंडियन इकानामिक हिस्ट्री' 'जर्नल आफ इकानामिक हिस्ट्री', जिल्द 23, 1963। 'ब्रिटिश राज अपने आपको रात्रि प्रहरी की निष्क्रिय भूमिका मे देखता था।' (पृ० 615)। वह बार-बार राज्य की रात्रि प्रहरी नीतियो (पृ० 616) और सरकार के रात्रि-प्रहरी उद्देश्यो (पृ० 611), का उल्लेख करता है।

60. जे० एस० मिल 'प्रिंसिपल्स आफ पोलिटिकल इकानामी', 1848 मे पहली बार प्रकाशित (लदन, 1902), पुस्तक 5, पृ० 590-91। हमे यह स्मरण रखना चाहिए कि मिल एक पिछड़ी अर्थ-व्यवस्था की असाधारण स्थिति की व्याख्या करता है। 'उसने क्लासिकी अर्थशास्त्र मे सशोधन किए हैं, परतु वह इस धारणा से विमुख नही हुआ कि आर्थिक मामलों मे सरकारी निरीक्षण व नियत्रण से व्यक्तिगत उद्यम श्रेष्ठ है।' जार्ज डी० बीअर्स, 'ब्रिटिश एटीच्यूड्स टुवर्ड्स इंडिया 1784-1885 (ओ० यू० पी० 1961) पृ० 286। मिर्डाल के अनुसार मिल आर्थिक उदार-वाद मे संकट को स्पष्ट करता है। गुन्नार मिर्डाल, 'दि पोलिटिकल एलीमेंट इन दि डैवलपमेंट इकानामिक थिअरी' कैंब्रिज मैसाचूसेट्स 1961) पृ० 127 और आगे।

61. देखें जे० एस० मिल, 'रिप्रेजेंटेटिव गवर्नमेंट', पहली बार प्रकाशित 1861 (लदन, 1912)

पृ० 190-211 ।

62 जोजफ स्पैंगलर, 'जोन स्टुअर्ट इकानामिक डैवलपमेंट' वर्ट एफ० होजलिट्ज (सपादक) 'थिअरीज आफ इकानामिक ग्रोथ', (1960), पृ० 144 यत्र-तत्र ।

63 बेंथम और मैकुला के राज्य सबधी विचारो के विवेचन के लिए देखें लायनल रोबिंस, 'दि थिअरी आफ इकानामिक पालिसी इन इग्लिश क्लासिकल पोलिटिकल इकानामी', (लंदन, 1961) पृ० 39 और आगे ।

64 अहस्तक्षेपी नीति का सिद्धात कुछ क्षेत्रों मे पूरी तरह विश्वसनीय है, परतु कुछ अन्य क्षेत्रों मे वह बिलकुल लागू नही होता, और हर मौके पर उसका उल्लेख करना तोते की रट जैसी लगती है किसी राजनीतिज्ञ अथवा दार्शनिक की नीति जैसी नही । ट्रीटाइज आन दी मर्क्सेशन टु प्रापर्टी वेकेंट बाई डैथ (1848) पृ० 156 । रोबिंस, पूर्वोद्धृत, पृ० 39 ।

65 जान स्ट्रैची, 'इडिया इट्स ऐडमिनिस्ट्रेशन एड प्रोग्रेस' (लदन, 1903), पृ० 209 ।

66 जे० एफ० स्टीफन का 'दि टाइम्स' को पत्र, 1 मार्च, 1883, जे० स्ट्रैची के 'इडिया . इट्स ऐडमिनिस्ट्रेशन एड प्रोग्रेस' (लदन, 1903) में पृ० 209 पर उद्धृत ।

67 ऐरिक स्टोक्स, 'दि इग्लिश यूटीलिटेरियस एड इडिया' (आक्सफोर्ड, 1959), अध्याय 4, यत्र तत्र ।

68 जे० स्ट्रैची, पूर्वोद्धृत पृ० 209 ।

69 रुडयार्ड किपलिंग, 'रिसैशनल' और 'दि ईयन', 'कलैक्टड वर्स आफ किपलिंग' (लंदन, 1912), पृ० 325, 422 ।

70 ऐनन, 'हाउ वी टैक्स इडिया' (लदन, 1857) पृ० 37 ।

71. आर० किपलिंग, 'दि ह्वाइटमैस बर्डन' (1899) पूर्वोद्धृत, पृ० 320 । टी० एस० इलियट ने पिर्कलिंग पर एक अनुबोधक लेख मे स्पष्ट किया है कि किपलिंग 'किमी ऐसे तत्व के अस्तित्व के बारे मे चेतना प्रसारित करना चाह रहा था जिसके विषय में उसे ऐसा लगता था कि अधिकाश लोगो मे अपर्याप्त जानकारी है । निश्चय ही यह गौरव के प्रति चेतना थी, परतु उससे भी कही अधिक यह उत्तरदायित्व के बारे में चेतना थी ।' 'ए च्वायस आफ किपलिंग्स वर्स' (लदन, 1944) पृ० 25 ।

72 जी० एम० यग, 'विक्टोरियन इग्लैंड : पोट्रट आफ एन एज' (लदन, 1960) पृ० 54 ।

73. फ्रेडरिक क्लेअर मौंट, 'इकानामिक लिबरलिज्म एड अंडर डैवलपमेंट' (बबई, 1960), पृ० 126 । ऐली एफ० हैक्शर, 'मर्केंटाइलिज्म', ई० एफ० सोडरलड संस्करण (लदन, 1955), जिल्द 2, पृ० 338 । वाणिज्यवाद का लक्षण उपनिवेश और शासक देश के मध्य नियत्रित बाजार का एक ऐसा सबध था जो व्यापार की शर्तों को उपनिवेश के विरुद्ध और शासक देश के पक्ष मे कर देता था । व्यापार के द्वारा शोषण का लक्षण आधुनिक साम्राज्यवाद मे भी विद्यमान है 'मारिस डाब, पोलिटिकल इकानामी एड कैपिटलिज्म (लदन, 1960) पृ० 229 ।

74 जे० बी० ब्रेबनर, 'लेस्से फेअरे एड स्टेट इटरवेंशनिज्म इन नाइटींथ सेंचुरी ब्रिटेन', 'जर्नल आफ इकानामिक हिस्ट्री', 1948, जिल्द 7, पृ० 59 । ब्रेबनर स्पष्ट करता है कि इग्लैंड मे नए उद्यमकर्त्ताओं ने राज्य से नई स्वतत्रताओं के साथ-साथ नई सेवाएं भी प्राप्त कीं । अहस्तक्षेपी नीति 'एक राजनैतिक एव आर्थिक मिथक' अथवा 'एक नारा थी जिसे नए किस्म के उद्यमकर्त्ताओं

ने सामंती कुलीनतंत्र के विरुद्ध अपनी राजनीतिक व आर्थिक लड़ाई में इस्तेमाल किया था।'

75. कहीं-कहीं खंडन-मंडन की त्रुटि के बावजूद आर० सी० दत्त के उत्कृष्ट ग्रंथ 'इकानामिक हिस्ट्री आफ इंडिया इन विक्टोरियन एज' (लंदन, 1903) में टैरिफ नीति का सबसे अधिक विस्तृत विश्लेषण मिलता है।
76. देखें बी० एम० भाटिया, 'फैमीस इन इंडिया' (बंबई, 1966) पृ० 105-108, 182-83।
77 विधान परिषद में जेम्स विल्सन का भाषण, 14 अप्रैल, 1860, विधान परिषद कार्यविवरण 1860 (पुरानी सीरीज, जिल्द 6) पृ० 376।
78. एम० डी० मोरिस पूर्वोद्धृत, पृ० 615-16, देखें अध्याय 3 आगे।
79. एस० के० सेन, 'स्टडीज, इन इंडस्ट्रियल पालिसी एंड डेवलपमेंट इन इंडिया' (कलकत्ता, 1964)। 'अहस्तक्षेपी नीति के कारण औद्योगिक प्रतिष्ठानों में सार्वजनिक पूंजीनिवेश में तगी···।' (पृ० 158) अध्याय 8, यत्र-तत्र।
80 जे० ए० शुंपीटर, 'हिस्ट्री आफ इकानामिक एनेलिसिस (न्यूयार्क, 1959) पृ० 761।
81, लिलैंड एच० जैक्स 'दि माइग्रेशन आफ ब्रिटिश कैपिटल' (लंदन, 1938) पृ० 230-31।
82. ए० वी० डायसी, 'लैक्चर्स आन दी रिलेशन बिटवीन ला एंड पब्लिक ओपिनियन इन इंग्लैंड ड्यूरिंग दि नाइंटीथ सेंचुरी' (लंदन, 1962) पृ० 175।
83. 'रात्रि प्रहरी' राज्य के विषय में लतीफे के लिए जर्मन जिम्मेदार नहीं है। ऐसा लगता है कि रात्रि प्रहरी की उपमा लैंजली ने दी थी और कार्लाइल ने 'सिपाही सहित अराजकता' शब्दों के आधार पर अहस्तक्षेपी नीति का उपहास किया था।
84 जे० ई० कैरनीज, ऐसेज इन पोलिटिकल इकानामी : थिअरिटिकल एंड ऐप्लाइड' (लंदन, 1873)। भाषण का शीर्षक 'पोलिटिकल इकानामी एंड लेस्से फेअरे', पृ० 252।
85 वही पृ० 188। कैरनीज ने आयरलैंड में कृषि संबंधों में विधाई हस्तक्षेप के विरुद्ध अहस्तक्षेपी नीति पर आधारित कूटनीतिक तर्कों की निंदा की है। 'वही' पृ० 202, 'पोलिटिकल इकानामी एंड लैंड' पर लेख (फोर्टनाइटली रिव्यू, जनवरी, 1870) यह लेख रोबर्ट नाइट की पत्रिका 'दि इंडियन इकानामिस्ट' में फिर प्रकाशित हुआ था (जुलाई, 1874)।
86 दोनों ही मेन के प्रति काफी आभार प्रकाशित करते है। डब्ल्यू० बेजहाट 'फिजिक्स एंड पालिटिक्स आर थाट आन दि ऐप्लिकेशन आफ दि प्रिंसिपिल्स आफ नेचुरल सिलेक्शन एंड इन हैरिटेंस टु पोलिटिकल सोसाइटी' (लंदन, 1872) पृ० 12, 22। टी० ई० सी० लैंजली, 'ऐसेज इन पोलिटिकल इकानामी' (डबलिन, 1888) पृ० 93। लैंजली के मतानुसार मेन की 'एंशेंट ला एंड विलेज कम्युनिटीज इन दि ईस्ट एंड वैस्ट' के विषय में कृतिया अर्थशास्त्री के दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण थी। लैंजली ट्रिनिटी कालिज, डबलिन में मेन का विद्यार्थी रहा था।
87. डब्ल्यू० बेजहाट, पूर्वोद्धृत, पृ० 54।
88. वही, पृ० 11।
89 टी० ई० सी० लेजली, पूर्वोद्धृत 189।
90 वही पृ० 175 तुलनीय 'दि हिस्ट्री आफ जर्मन पोलिटिकल इकानामी' (फोर्टनाइटली रिव्यू, जुलाई, 1875 से पुनः मुद्रित)।
91 वही, पृ० 83।

92 के० मार्क्स 'ब्रिटिश रूल इन इंडिया' 'न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून' 25 जून, 1853। 'दि फर्स्ट इंडियन वार आफ इंडिपेंडेंस' (मास्को, तिथि नहीं) पृ० 17।

93. के० मार्क्स, 'दि ईस्ट इंडिया कंपनी इट्स हिस्ट्री एंड रिजल्ट्स' एन० यू० डी० टी०, 11 जुलाई 1863 पूर्वोद्धृत, पृ० 30।

94. के० मार्क्स पूर्वोद्धृत, पृ० 34, 36।

95 पी० जे० जागीरदार, 'स्टडीज इन दि सोशल थाट आफ एम० जी० रानाडे, पृ० 123।

वित्तीय नियंत्रण प्रणाली

भारत सरकार की वित्तीय-प्रशासन प्रणाली बेतरतीब ढग से 'हाथो-हाथ विकसित' होती गई। इस प्रणाली का युक्तिकरण तथा अनेक संस्थागत परिवर्तनो का प्रवर्तन कुछ ऐसे गणमान्य व्यक्तियो की उपलब्धि था जिन्होने सैन्य-विद्रोह के ठीक बाद के दशक में इस कार्य मे अपने आपको लगाया था। सैन्य-विद्रोह द्वारा उत्पन्न वित्तीय संकट से ऐसा आघात लगा कि इस कार्य की ओर ध्यान गया। और 1858 में सत्ता के हस्तातरण से संरचनात्मक परिवर्तनो के लिए अवसर मिला। इन परिवर्तनो का अध्ययन करने और विकासमान प्रणाली को समझने के लिए ससद द्वारा बनाए गए अधिनियमों या भारत सरकार के कानूनों की जाच कर लेना पर्याप्त नही है। हमे यह मालूम करने के लिए कि वित्तीय शक्ति का प्रयोग किस प्रकार होता था, इस प्रणाली के क्रियान्वयन पर विस्तार के साथ विचार करना चाहिए।

हम भारत मंत्री की शक्तियो (अनुच्छेद I) और भारतीय वित्त मंत्री, जिसे उस समय वित्त सदस्य कहते थे, के कार्यो (अनुच्छेद II) का अध्ययन करेंगे। इस अध्ययन के बाद वित्तीय मामलों पर विधान मंडल की तुलना मे कार्यांग अर्थात सपरिषद गवर्नर जनरल की स्थिति पर (अनुच्छेद III) विचार करना होगा। वित्त-विभाग (अनुच्छेद IV) और बजट-प्रणाली (अनुच्छेद V) के विकास के सशक्त वित्तीय निरीक्षण और नियंत्रण की व्यापक प्रणाली की व्यवस्था हो गई। केंद्र सरकार से राज्य सरकारों को वित्तीय शक्तियों के हस्तातरण की नीति के विश्लेषण (अनुच्छेद VI) के साथ ही उत्तर-सैन्य-विद्रोह कालीन पुनर्निर्माण के अंतर्गत वित्तीय नियंत्रण की प्रणाली के विकास का हमारा यह अध्ययन पूर्ण हो जाता है।

I

1858 के गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट के अनुसार वित्तीय मामलों मे संवीक्षण (छानबीन) और नियंत्रण का अधिकार भारत मंत्री के हाथ मे रखा गया। इससे भारत मंत्री को भारत सरकार के ऊपर पर्याप्त नियंत्रण मिल गया। आरगाइल ने मेयो को एक अपने व्यक्तिगत पत्र मे लिखा था कि वित्त एक 'व्यापक विषय है और इसके द्वारा प्रत्येक विभाग तक पहुचा जा सकता है।'[1] गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट, 1858 की धारा XLI के शब्दों मे, 'भारत के राजस्व से किए जाने वाले व्यय पर चाहे वह भारत मे हो या अन्यत्र, भारत मंत्री का नियंत्रण रहेगा, और इस राजस्व से अथवा इस अधिनियम

की बदौलत सपरिषद भारत मंत्री के कब्जे में आने वाली किसी संपत्ति के किसी भी भाग का अनुदान या विनियोग परिषद काउंसिल की बैठक में बहुमत द्वारा सहमति के बिना नहीं किया जाएगा।' इसके अलावा धारा 53 के अनुसार यह आवश्यक था कि जो वित्त वर्ष अभी पूरा हुआ है उसके ठीक पूर्व के वर्ष के आय-व्यय के ब्योरों सहित पिछले वर्ष का अद्यतन प्राक्कलन संसद में प्रस्तुत किया जाए। भारत मंत्री का यह भी उत्तरदायित्व था कि वह भारत की आय से चुकाए जाने वाले ऋणों और दायित्वों के प्राक्कलन भी संसद में पेश करे।[2]

इंडिया आफिस में कठोर नियंत्रण की परंपरा संभवत: कुछ इस आकस्मिक कारण से थी कि पहला भारत मंत्री सर चार्ल्स वुड बना जो, जैसा कि डलहौजी ने अपने एक वैयक्तिक पत्र में लिखा है, बेचैन और दस्तंदाज प्रकृति का था।[3] वह 1858 के नए अधिनियम के अंतर्गत प्राप्त होने वाले वित्तीय नियंत्रण एवं निरीक्षण के अपने अधिकारों के विषय में विशेष रूप से दृढ़ था। यदि सपरिषद गवर्नर जनरल द्वारा भारत मंत्री को बराबर सूचना देते रहने और संवीक्षण हेतु लेखों व प्राक्कलनों को इंडिया आफिस भेजने में असावधानी होती थी तो भारत मंत्री द्वारा कड़ी फटकार पड़ती थी। उदाहरणार्थ, 26 मार्च, 1860 के प्रेषण में वुड ने भारत सरकार का ध्यान आकर्षित करते हुए लिखा कि 'आपकी सरकार द्वारा जो सूचना मेरे पास भेजी गई है वह इस देश के ही सार्वजनिक समाचार पत्रों के संपादकों तथा व्यक्तियों को मिलने वाली जानकारी से कहीं पुरानी है···यह सरकार की ऐसी भूल है जो भविष्य में दुबारा नहीं होनी चाहिए।'[4] 12 जनवरी और 26 मई के वित्तीय प्रेषणों में भी इसी प्रकार की शिकायतें की गई थीं।[5] प्रथम वित्त सदस्य जेम्स विलसन ने वैयक्तिक पत्र-व्यवहार के द्वारा वुड के साथ संपर्क रखने का प्रयत्न किया था और कैनिंग ने भारत मंत्री को यह विश्वास दिला रखा था कि बिना उसकी पूर्व सम्मति के वित्तीय उपकरण 'कानून नहीं बनेंगे'।[6] विलसन के उत्तराधिकारी सेमुअल लैंग को इंडिया आफिस को वित्तीय प्राक्कलन न भेजने और कलकत्ता गजट में भारत मंत्री के पास भेजे गए प्राक्कलनों से भिन्न प्राक्कलन प्रकाशित करने के लिए कड़ी फटकार मिली थी।[7] भारत मंत्री ने आदेश दिया था कि संसद के लिए भारत सरकार द्वारा तैयार किए गए लेखों तथा प्राक्कलनों में भारत मंत्री को पूर्व सूचना दिए बिना कोई परिवर्तन नहीं होने चाहिए।[8]

भारत और इंग्लैंड के बीच संचार के साधनों में सुधार हो जाने पर भारत मंत्री का शासन की बागडोर पर नियंत्रण और अधिक कठोर हो गया। भारत मंत्री ने 17 मार्च, 1864 के प्रेषण में वेतन वृद्धि व गृह अधिकारियों को पहले सूचना दिए बिना पद सृजन को रोकते हुए कहा 'कि भारत सरकार और इंग्लैंड के बीच संचार व्यवस्था अधिक तेज हो जाने से अब इस संबंध में स्वीकृति के लिए पहले से कम महत्वपूर्ण कारण रह गया है।'[9] सपरिषद गवर्नर जनरल की ओर से तर्क दिया गया था कि नए नियम (जिसके द्वारा भारत सरकार को नए पद सृजित करने अथवा वेतन बढ़ाने से रोका गया था) के अनुसार विधान द्वारा नए पद के निर्माण पर प्रतिबंध लगाने से इंडियन काउंसिल एक्ट द्वारा निर्धारित विधान मंडल की शक्तियों को अवैध ढंग से सीमित कर दिया गया

है।[10] किंतु भारत मंत्री ने ठीक ही स्पष्ट किया कि इंडियन काउंसिल एक्ट की 22वीं धारा के अंतर्गत भारतीय विधान मंडल को ऐसे कानून बनाने से स्पष्ट रूप मे रोका गया है जो गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट (21 तथा 22, विक० सी० 106) के किन्ही भी उपबंधों को प्रभावित करते हैं। इससे वित्तीय मामलों पर भारत मंत्री का पूरा नियन्त्रण स्थापित हो गया। 'इस प्रतिबंध से स्पष्ट प्रमाण मिल जाता है कि सपरिपद गवर्नर जनरल को कानून बनाने के संबध मे जो शक्तिया दी गई थीं वे व्यापक होते हुए भी, जहां तक राजस्व संबंधी शक्ति के प्रयोग का सवाल था, भारत मत्री के नियंत्रण मे रहते हुए प्रयोग की जानी थी।[11] भारत सरकार को आशका थी कि पूर्व स्वीकृति प्राप्त करने मे जो समय लगेगा उससे होने वाली देरी सार्वजनिक हित के प्रतिकूल होगी। परतु भारत मंत्री का विचार था यदि भारत सरकार व्यय सबंधी कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर डालती है तो भारत मंत्री के कार्यालय के अधिकारियो के लिए उन्हें अस्वीकार कर पाना कठिन होगा। इससे भारत सरकार की कार्यवाही की अस्वीकृति का संकेत मिलेगा।[12] कुछ भी हो, स्थलीय केबिल (1868) स्वेज नहर (1869) तथा समुद्री केबिल (1870) के रूप में संचार व्यवस्था के विकास से भारत के वित्तीय मामलों पर भारत मत्री का नियन्त्रण बढ गया। मेयो तथा आरगाइल प्राय: तार से बात कर लेते थे।[13]

यद्यपि सिद्धात रूप मे वित्तीय निरीक्षण और नियत्रण का अधिकार भारत मंत्री को ही मिला हुआ था, तथापि उसकी परिषद तथा ससद वित्तीय नीति पर प्रभावपूर्ण नियंत्रण नही रख सकी। 1858 के गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट के द्वारा भारत मंत्री को कुछ मामलो में अपनी परिषद के निर्णयो को अस्वीकार कर देने की शक्ति प्राप्त हो गई थी परंतु संपत्ति से आय के विनियोग, मुद्रा की प्राप्ति के लिए प्रतिभूतियो के निर्गमन, अनुबंधो, वेतन-दर में परिवर्तन आदि के विषय मे वह ऐसा नही कर सकता था। 1869 मे सर सी० वुड के उत्तराधिकारी लार्ड क्रेनबोर्न ने परिषद की शक्तियो को सीमित करने का प्रस्ताव रखा। उसके विचार से परिषद व्यय के सबंध मे अपनी शक्ति के आधार पर भारत मंत्री के विरुद्ध भी सामान्य-नीति को नियंत्रित करने के लिए अपने अधिकार का दावा कर सकती थी।[14] यद्यपि परिषद की शक्तियो मे पुन: कमी नही की गई, तथापि 1869 के विधान (32 तथा 33 विक० सी० 97) द्वारा जब भारत मंत्री को इंडिया काउंसिल मे रिक्त स्थानो पर नियुक्ति करने का अधिकार मिला तो उसके हाथ अधिक मजबूत हुए। परिषद के सदस्यो का कार्य काल 'सदाचरण काल' के बजाय दस वर्ष कर दिया गया। सर सी० वुड ने अपने अनुभव से समझा कि इंडिया काउंसिल 'किसी भी देश की सरकार द्वारा कभी भी खोजे गए यंत्रों मे सबसे अधिक दुर्वहनीय यत्र था।'[15] वुड का कथन है कि परिषद से आशा की गई थी कि वह 'समस्त भारत के विषय मे एकत्रित ज्ञान' के आधार पर भारत मंत्री को सहायता देगी।[16] परंतु असैनिक तथा सैनिक सेवाओ से निवृत्त व्यक्तियो ने जो भी अनुभव प्राप्त किया था और उनके जो विचार थे, वे सभी शीघ्र ही पुराने हो गए।[17] एक बार व्यावहारिक अनुभव रखने वाले व्यक्तियो को परिषद में लाने की दृष्टि से प्रस्ताव रखा गया कि व्यावसायिक वर्ग के कुछ सदस्य और कुछ असैनिक अधिकारियों को 'सीधा जिलो से' परिषद मे लाया जाना चाहिए, परंतु यह

प्रस्ताव अस्वीकार हो गया।[18] परिषद के अधिकाश सदस्य भारतीय वित्त की तकनीकी बारीकियों को समझ पाने मे असमर्थ थे और ऐसा प्रतीत होता है कि इंडिया आफिस के वित्त-विभाग का सचिव भारत मत्री का वित्तीय मामलो पर सबसे प्रमुख सलाहकार होता था। फिर भी, भारत मंत्री की दृष्टि से परिषद आवरण की भाति उपयोगी थी। प्राय: भारत मंत्री अपने आपको परिषद रूपी शिखंडी की आड़ में कर लेता था। नार्थकोट ने जान लारेंस को लिखा था कि 'मुझे लगता है कि मैं आदम की भाति हूं जो अपनी समस्त भूलों को हौवा पर मढने के लिए तत्पर है। मैं परिषद रूपी हौवा के दिए हुए फल खा गया हूं।'[19]

1858 के गवर्नमेंट आफ इडिया एक्ट के उपबधो का पालन करने के उद्देश्य से हर साल भारत मंत्री संसद मे वित्त-विवरण रखता था परंतु प्राय: अधिवेशन के अंत में रखे जाने वाले इन विवरणो पर अधिक ध्यान नही दिया जाता था और कुछ थोड़े से सदस्य ही जानकारी के आधार पर आलोचना कर पाने मे समर्थ होते थे।[20] इसके विपय मे सामान्य रूप से लोगो को पता था और भारतीय मामलो की इस उपेक्षा के लिए यहा के समाचार पत्रों मे प्राय: आलोचनात्मक टीका-टिप्पणी होती थी।[21] यद्यपि भारतीय मामलो की ओर सामान्यत: अधिक ध्यान नही दिया जाता था (सैन्य-विद्रोह जैसे संकट के मौको को छोड़कर), लेकिन ससद मे कुछ ऐसे गुट थे जो भारत की आर्थिक और वित्तीय नीति में विशेप रुचि रखते थे। इस प्रकार का एक गुट सूती-वस्त्र उद्योग के हितों के प्रति उदार संसद सदस्यों (काटन एम० पीज) का था जो भारत से कपास की आपूर्ति बढाने के लिए भारत मत्री के माध्यम से भारत सरकार पर दबाव डालते थे। यह गुट विशेप रूप से संयुक्त राज्य अमरीका से गृह-युद्ध काल मे कपास की आपूर्ति रुक जाने के कारण लंकाशायर मे कपास के अभाव के समय सक्रिय था।[22] कुछ संसद सदस्य अफीम विरोधी आदोलन से संबधित थे जो अधिकारियो को अफीम का व्यापार (आय की दृष्टि से इस स्रोत का महत्व मालगुजारी के बाद ही था) बद करने के लिए रजामंद करने तथा उन्हे प्रभावित करने का प्रयत्न करते थे।[23] यह भी लोकविदित है कि व्यावसायिक हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले दबाव गुट भारत सरकार की टैरिफ नीति पर ध्यान रखते थे।[24]

कंपनी के शासन काल मे भारतीय मामलों का समय-समय पर पुनर्विलोकन होता रहता था। 1870 मे भारतीय वित्त के ऐसे ही पुनर्विलोकन का प्रस्ताव रखा गया। इस संबंध में गवर्नर जनरल और भारत-मंत्री के बीच का पत्र-व्यवहार बहुत मनोरंजक है क्योंकि इससे इस बात का संकेत मिलता है कि मेयो निश्चित रूप से संसदीय जाच के विरोध मे था और आरगाइल को इस संबंध में कोई उत्साह नही था। मेयो को आशंका थी कि भारतीय वित्त के संबंध मे प्रस्तावित प्रवर समिति से भारत की जनता की यह धारणा बनेगी कि भारत सरकार को राजा और इंग्लैंड की सरकार का विश्वास प्राप्त नही है। उसने कहा था कि 'अज्ञान और दुर्भाव की उत्पत्ति को निगलने के लिए लंदन मे शेर का मुंह खोलने से—पुरानी भ्रांतियों और नई गलतियों के बचाव से कोई लाभ नही होगा।[25] मेयो का विचार था कि संसद सदस्यों द्वारा की गई जाच से कोई परिणाम

नही निकलेगा क्योंकि वे भारत की तत्कालीन स्थिति से पूर्ण अनभिज्ञ थे। 'लदन में ऐसे कलाप्रेमी भारतीय राजनीति के मर्मज्ञो और पुराने ऐंग्लो इंडियनो की भीड़ लगी है जो पन्द्रह-बीस वर्ष पुराने भारत को ही जानते हैं। उनके पास ऐसी तीलिया है जिनमें से नब्बे प्रतिशत बहुत पहले ही जल चुकी है। आशंका इस बात की है कि ये पुनः न सुलगाई जाए।'[26] मेयो जांच के विस्तार-क्षेत्र को सीमित रखना चाहता था। उसने आरगाइल को लिखा था कि 'मुझे जरा भी संदेह नही है कि यदि इसका (ससद की प्रवर समिति का) कोई परिणाम निकलना है तो वह अच्छा नही होगा···मुझे आशा है कि आप जांच को कुछ विशेष मामलों के स्पष्टीकरण तक ही सीमित कर सकेंगे।'[27] मेयो को डर था कि भारत सरकार अपना बचाव कर पाने मे सफल नही होगी, विशेषकर इस कारण से भी कि उसके वित्तीय-सुधार सफल नही हुए थे।[28] प्रवर समिति की कार्यवाही को देखकर वित्त-सदस्य टैंपिल इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि उसके कुछ प्रमुख सदस्य और विशेष रूप से प्रोफेसर एफ० फासट भारत सरकार के प्रति पूर्वग्रह रखते थे।[29] परंतु भारत मंत्री ने स्पष्ट रूप से कहा था कि प्रवर समिति यद्यपि 'एक मुसीबत' है, फिर भी उसकी अपनी उपयोगिता है। उसने मेयो को लिखा था कि 'मुझे इस बात पर आश्चर्य नहीं है कि आपको एक ससदीय समिति पर एतराज है। भारत सरकार ने सदैव ही उनका विरोध किया है और यह उनके लिए स्वाभाविक ही है। परंतु जैसा आपको विदित है, पुराने जमाने मे भी शासन-पत्र (चार्टर) के प्रत्येक नवीकरण के समय ये जाच अनिवार्य रूप से होती थीं और यह अस्वाभाविक नही है कि नवीन शासन में ससद भारतीय मामलो पर अपने विचारों को रखने के लिए अवसर चाहे। व्यक्तिगत रूप से तो इस प्रकार की समिति यहां पर हम सभी के लिए एक मुसीबत ही है।'[30] ऐसा लगता है कि गवर्नर जनरल, भारत मंत्री तथा वित्त सदस्य सभी संसदीय जाच के बारे मे अधिक उत्साही नही थे। भारत सरकार ऐसे लोगो से जिन्हे मेयो ने डिजरायली को अपने एक पत्र मे 'भारतीय शिकायतबाज' कहा है, डरती थी। इन शिकायतबाजों मे 'अतिवादी थे जिनकी भारत सरकार के प्रतिकूल सभी प्रस्तावो का समर्थन करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति थी।'[31] संसद का हस्तक्षेप ऐसा लगता है कि एक मुसीबत तो थी ही, साथ ही इससे साम्राज्य के सरक्षकों के मस्तिष्क मे असुरक्षा की भावना भी उत्पन्न होती थी।

II

अब हम भारत मे चालू व्यवस्था की ओर ध्यान देंगे। उत्तर सैन्य-विद्रोह काल मे गवर्नर जनरल की परिषद मे वित्त-सदस्य वित्तीय व्यवस्था का कर्णधार था। गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद मे जेम्स विल्सन के शामिल होने से पहले कोई भी सदस्य वित्त-विभाग का कार्यभारी नही होता था। उन्नीसवी शताब्दी के छठे दशक मे प्रचलित व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए रिचर्ड टैंपिल लिखता है, 'उन दिनों मे आज की भांति (1880 मे) गवर्नर जनरल तथा उसकी परिषद के सदस्यो के बीच काम का विभाजन बहुत थोड़ा या बिलकुल ही नही था। आज की व्यवस्था मे तो भारत सरकार

कुछ-कुछ ब्रिटिश मंत्रि परिषद की भांति ही काम करती है।...उस समय वित्त से सरकार के किसी एक सदस्य का संबंध न होकर सभी सदस्यों का संबंध समान रूप से था।'[32] जब जेम्स विल्सन से सर चार्ल्स वुड ने भारत जाकर गवर्नर जनरल की परिषद मे एक रिक्त स्थान ग्रहण करने का आग्रह किया तो उसे विश्वास दिलाया गया था कि उसका पद 'भारत के वित्त मंत्री, (चांसलर आफ एक्सचेकर) का होगा।'[33] शासकीय रूप से उसका ओहदा गवर्नर जनरल की परिषद में 'चौथे साधारण सदस्य' का था। वह सामान्यतः 'वित्तीय-सदस्य' के रूप मे जाना जाता था और उसे नौकरशाही पिरामिड मे 'कानूनी विषयों के सदस्य' तथा 'सैनिक मामलों के सदस्य' के साथ शीर्ष स्थान प्राप्त था।

कैनिंग के निर्देशन मे गवर्नर जनरल की कार्यकारी परिषद मे काम के बंटवारे के लिए सविभागीय व्यवस्था का विकास हुआ।[34] 1860 के इंडियन काउंसिल एक्ट की धारा 8 के आधार पर गवर्नर जनरल को अपनी परिषद के कार्य संचालन के लिए नियम बनाने का अधिकार दिया गया। वित्त सदस्य की नियुक्ति विशिष्टीकरण और कार्यों के बटवारे की दिशा मे कदम था। वित्त संबंधी तकनीकी बारीकियों का विशेषज्ञ होने के कारण वित्त सदस्य को परिषद के अन्य सदस्यों की तुलना में अधिक सुविधाजनक स्थिति प्राप्त थी। विशेष रूप से उन वित्त सदस्यों (जैसे कि जेम्स विल्सन तथा सेमुअल लैंग) को जो इग्लैंड से भेजे गए थे, सिविल सेवा से पदोन्नति प्राप्त कर वायसराय की परिषद का सदस्य बनने वाले लोगो की तुलना मे अधिक सम्मान प्राप्त होता था। 1870 मे भारत मंत्री आरगाइल ने लिखा था 'यदि इग्लैंड मे कोई अच्छा सार्वजनिक व्यक्ति उपलब्ध हो तो इस (वित्त सदस्य के) पद पर उस की नियुक्ति के अनेक लाभ हैं। सिविल-सेवा का कोई भी व्यक्ति अपनी ही श्रेणी के दूसरे व्यक्तियों की ईर्ष्या से बच नही पाता है, जबकि इग्लैंड से जाने वाले व्यक्ति को भारतीय सिविल-सेवा से आने वाले व्यक्ति की तुलना मे यूरोपीय तथा भारतवासी दोनो ही लोग, अधिक आदर की दृष्टि से देखते है।'[35] जेम्स विल्सन को मिली असाधारण सफलता से यह धारणा बन गई कि इग्लैंड से भेजे जाने वाले व्यक्ति विशेष रूप से यदि उनके पास विल्सन की भांति राजकोष का अनुभव हो तो वे अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते है। 'गृह अधिकारियों' ने अनुभव किया कि भारतीय वित्त संगठन के लिए 'एक ऐसे नए व्यक्ति की आवश्यकता है जो ब्रिटिश राजकोष के दृष्टिकोण से भारतीय-वित्त पर विचार करे...'[36] तथापि भारत मे सिविल-सेवा के लोगो मे प्रचलित मत इग्लैंड से आने वाले 'बाहरी व्यक्तियों' की वायसराय की कार्यकारी परिषद के सदस्यो के रूप मे नियुक्ति के विरुद्ध था। उदाहरण के लिए सर बार्टल फ्रेर का विचार था कि वित्त मंत्रियों के इग्लैंड से आयात करने का प्रयास करना निरर्थक था, 'इसकी लागत की तुलना में लाभ कम है; क्योंकि जो भी व्यक्ति यहा आता है वह सोचेगा कि रोमन वाणिज्य दूत की भांति उसे एक ही वर्ष मे या अधिक से अधिक दो-तीन वर्षों मे ख्याति प्राप्त करनी है और वह अपने पूर्वाधिकारियो की नीति का ईमानदारी के साथ पालन करने से ही संतुष्ट नही होगा।'[37] बार्टल फ्रेर ने सर चार्ल्स वुड को लिखा था कि भारत को 'वित्त संबंधी

मर्मज्ञता के चमत्कारों' के लिए ब्रिटिश सरकार की ओर नही देखना चाहिए। ठेठ भारतीय सिविल-सेवा के व्यक्ति की भांति बार्टल फ्रेर कहता है कि भारत सरकार के वित्त विभाग के लिए केवल कठोर परिश्रम, व 'अधिक उपयोगी चाकरी' और 'सैकड़ों छोटी-छोटी बातों मे अच्छे प्रबंध' की आवश्यकता है।'[38] यही भारत की सिविलियन पार्टी का मत था। 'हिंदू पेट्रिअट' ने, जो प्रबुद्ध भारतीय लोकमत को अभिव्यक्त करता था, सिविलियन पार्टी की प्रतारणा करते हुए कहा, 'हमे वित्त मंत्री के पद के लिए वित्त-मर्मज्ञ की आवश्यकता है, न कि ऐसे 'व्यक्ति की जो केवल प्रशासक हो और भारतीय सिविल-सेवा से आने वाले व्यक्ति कितने ही कुशल प्रशासक क्यो न हों वे साधारणतया वित्त-मर्मज्ञ नही होते।'[39] 'हिंदू पेट्रिअट' ने भारत के वित्त-प्रबंध का उत्तरदायित्व सिविल-सेवा मे आने वाले व्यक्तियों को सौंपने की पुरानी नीति की निंदा की, क्योंकि ये व्यक्ति 'नासमझ और अप्रगतिशील' रहे है (यथावत) और इन पर नवीन ब्रिटिश विचारों का स्वस्थ प्रभाव न होने के कारण वे वित्त संबंधी कठिन समस्याओं का ठीक समाधान खोजने में असमर्थ रहे है।'[40] कुछ भी हो, वित्तीय मामलों के अंग्रेज विशेषज्ञों (जैसे एस० लैंग) तथा सार्वजनिक व्यक्तियो (जे० विल्सन)[41] की सेवाएं प्राप्त कर पाना कठिन था, अत वायसराय की परिषद में रिक्त स्थानो की पूर्ति उन सिविल-सेवा अधिकारियों से की गई जिन्हे इंग्लैंड (जैसे सर सी० ट्रैवीलियन) तथा भारत (सर आर० टैंपिल) में वित्त संबंधी अनुभव प्राप्त था।

प्रस्तुत अध्ययन की कलाविधि मे जिस व्यवस्था का विकास हुआ वह कुछ बातों मे ब्रिटिश मंत्रि परिषद की व्यवस्था की भांति थी। प्रथम भारतीय वित्त सदस्य की नियुक्ति की हाउस आफ कामंस मे घोषणा करते हुए सर चार्ल्स वुड ने कहा था कि वित्त-सदस्य 'गवर्नर जनरल का अंतरंग मित्र नही होगा और वह अकेला ही देश के वित्त के लिए उत्तरदाई नही होगा। वह गवर्नर जनरल की परिषद का सदस्य होगा और वह वित्त विभाग का कार्य संभालेगा, परंतु गवर्नर जनरल और उसकी परिषद उसके कार्यों के लिए उत्तरदाई होंगे क्योंकि वह उनकी स्वीकृति तथा सहमति के बिना कुछ भी नही कर सकता।'[42] भारत मंत्री ने सपरिषद गवर्नर जनरल को अपने प्रेषणों में वित्त सदस्य की स्थिति और उसके उत्तरदायित्वों की सीमाएं सतर्कतापूर्वक समझाई। भारत मंत्री ने लिखा कि परिषद के चौथे साधारण सदस्य का कार्य 'आपके समक्ष विचार और निर्णय के लिए वित्तीय उपायो के बारे में अपनी सिफारिशों के साथ प्रस्ताव रखना होगा'' श्री विल्सन केवल उन्ही अधिकारों का प्रयोग कर सकेंगे जो परिषद के अन्य सदस्यो को प्राप्त है और आपकी सरकार द्वारा किए गए सभी निश्चयो के लिए आपको ही उत्तरदाई ठहराया जाएगा।'[43] वित्त विवरण अथवा वित्त सदस्य के बजट भाषण मे समूची सरकारी नीति का वर्णन होना चाहिए। भारत मंत्री ने एक अन्य प्रेषण मे लिखा 'यद्यपि यह तो असंभव है कि आपकी सरकार को आपकी परिषद के सदस्य (वित्त सदस्य) के सभी कार्यों के लिए उत्तरदाई ठहराया जाए, तथापि वित्त-विवरण की प्रमुख बातों में सरकारी विचारधारा का विवरण भी अवश्य होना चाहिए, और भारत सरकार वित्त सदस्य द्वारा तैयार किए गए विवरणो तथा प्रस्तावों के लिए उत्तरदाई होगी, क्योंकि

इन मामलो मे वह सरकार के अंग के रूप में ही कार्य करता और वक्तव्य देता है।'[44]

'मंत्रि परिषद के नियमों' के अनुसार परिषद के सदस्यों को 'मंत्री परिषद की गोपनीय बातें प्रकट करने का अधिकार नही था। वे परिषद द्वारा निर्णीत विषयो के संबंध मे मतभेदो पर खुलेआम विचार-विनिमय नही कर सकते थे। एक बार सैनिक मामलो के सदस्य सर विलियम मैन्सफील्ड को मेयो ने सार्वजनिक रूप से ऐसे वक्तव्य देने पर गुप्त रूप से फटकारा था जिससे 1866-69 के बजट पर परिषद में गंभीर मतभेद का पता लग गया था।[45] मैन्सफील्ड इस बात से दुखी था कि परिषद के सदस्यों को 'सार्वजनिक रूप से उन बातो का समर्थन करना आवश्यक था जिन्हे गुप्त बैठको में वे निश्चित रूप से अस्वीकार करते थे और उनका विरोध करते थे।'[46] परंतु उसने इस सिद्धात को स्वीकार किया कि परिषद मे होने वाली बहस को बाहर नही लाना चाहिए और उसने उन वित्तीय उपायो का विधान परिषद मे समर्थन किया तथा उनके पक्ष में मत दिया जिनका कार्यकारी परिषद मे उसने विरोध किया था।[47] परिषद मे सर्वसम्मति वाछनीय थी और लगभग हमेशा हो भी जाती थी। भारत मंत्री को भेजे जाने वाले प्रेषणों पर परिषद के सभी सदस्यों के हस्ताक्षर होते थे। यदि कोई सदस्य सहमत नही होता था तो उसे अपनी विसम्मति-टिप्पणी लिख कर ही संतुष्ट हो जाना पड़ता था। इस संदर्भ मे 'कुछ करने की उमंग जिसे वे अपने मत को लिपिबद्ध कराना चाहते थे' (जिससे मेयो के धैर्य की परीक्षा हुई) समझी जा सकती है।'[48] कार्यवृत लिखने की आदत सैन्य-विद्रोह के पहले से चली आ रही थी। उस समय सरकार के उच्च अधिकारियो के बीच अधिकांश विचार विनिमय कार्यवृत तथा नोट लिख कर होता था जो काले संदूको में धीरे-धीरे घूमते रहते थे और जिनके गभीर अनुशीलन के साथ-साथ उन पर टिप्पणी होती थी जिसके बाद ही कोई निर्णय लिया जाता था।[49] एक बार भारत मंत्री नोर्थकोट ने यह प्रस्ताव रखा था कि परिषद मे मतभेद से उत्पन्न समस्याओं का निराकरण करने के लिए परिषद की तुलना मे गवर्नर जनरल की शक्तिया बढ़ा दी जानी चाहिए। नोर्थकोट ने गवर्नर जनरल जान लारेंस को अपने एक व्यक्तिगत पत्र मे लिखा था कि 'गवर्नर जनरल को अधिक स्वतंत्र स्थिति प्रदान करने की मेरे मन मे बडी अभिलाषा है और मैं चाहता हूं कि वह अपनी परिषद के सदस्यो को मनोनीत करे तथा जब उपयुक्त समझे उनके मत की अवहेलना भी कर सके और प्रेषणो पर उसी के हस्ताक्षर हो (न कि संपूर्ण परिषद के)।'[50] तथापि नोर्थकोट को अपना यह विचार छोडना पडा, क्योकि उसे पता लगा कि हाउस आफ कामस मे प्रचलित मत इस पक्ष में नहीं था कि गवर्नर जनरल को ये शक्तियां दी जाए।[51]

III

1853 के एक्ट (16 तथा 17 विक्ट० सी० 95) के अतर्गत विधान परिषद अपना कार्य इस प्रकार करती थी जो ऊपरी तौर से किसी भी ससदीय सस्था की कार्यविधियों से मिलता-जुलता था।[52] न केवल सभी विषयो पर विधान परिषद के सदस्यो को मत देने का अधिकार था, वल्कि विधान परिषद के कार्य वितरण जनसाधारण के

सामने पेश किए जाते थे और उन्हे प्रकाशित भी किया जाता था। गवर्नर जनरल और उसकी कार्यकारी परिषद को सैन्य विद्रोह द्वारा उत्पन्न वित्तीय संकट पर नियंत्रण पाने के लिए जो कराधान संबंधी विविध उपाय करने पडे थे उन्हे विधान परिषद के सामने रखना पड़ा था। विधान परिषद के 1859-60 के कार्य विवरण से स्पष्ट है कि जब इस वर्ष में आय कर संबंधी विविध प्रस्तावो पर बहस हुई तो विधान परिषद के अनुभवी सरकारी सदस्य इस स्थिति मे थे कि गवर्नर जनरल और उसकी परिषद की आलोचना कर सकें और उन्हें प्रभावित भी कर सकें।[53] विधान परिषद के सामने पहला बजट 18 फरवरी, 1960 को जेम्स विल्सन द्वारा प्रस्तुत किया गया था। वार्टल फ्रेर के अनुसार इस बात ने, और 'कराधान की आवश्यकता ने' 'उसके कार्य विवरण की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया था।'[54] विधान परिषद की भूमिका के विषय मे भिन्न-भिन्न मत है। सर चार्ल्स वुड का मत था कि विधान परिषद ने वह भूमिका अपना ली थी जो उसको सौंपी नही गई थी। वह सार्वजनिक बहस के लिए एक मंच बन रही थी और वह कार्यकारिणी के कार्यों की जांच करने के लिए बहुत इच्छुक थी।[55] उसके विरोधियो का मत था कि विधान परिषद उपयोगी कार्य कर रही थी। उदाहरण के लिए सर बार्टल फ्रेर ने वुड को लिखा था 'लार्ड डलहौजी ने परिषद को विचार विमर्श सभा का रूप दिया था और 1857 के सैन्य विद्रोह ने उसके लिए नए कर लगाना आवश्यक कर दिया। परिणामत. भारत सरकार के लिए पहले से अधिक कठिनाई हो गई है, परंतु परिणाम कुछ भी हो, मेरा विचार यह है कि अब पीछे हटना असंभव है और अब मुझे कानून बनने से पहले होने वाले इस प्रकार के विचार विमर्श के बिना करों के बढाने में भारी खतरा दिखाई देता है।'[56] तथापि, सर चार्ल्स वुड ने स्पष्ट किया कि विधान-परिषद (1853 के एक्ट के अनुसार) मे भारतीयों का कोई प्रतिनिधित्व नही है। उसके ही शब्दों में, 'मैं इस संभावना से कि भारतीय प्रजा (शासितों) के लिए भारत में बसने वाले अंग्रेज (यथावत) कानून बनाएंगे, निश्चित नही हूं ..'[57]

1861 के इंडियन काउंसिल एक्ट (24 व 25 विक्ट० सी० 67) के द्वारा विधान-परिषद की शक्तियों में परिवर्तन हुआ। परिषद मे गैर सरकारी प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गई और यद्यपि इस विषय मे वैधानिक व्यवस्था तो नहीं की गई थी, तथापि हाउस आफ कामस मे यह आश्वासन दिया गया था कि गैर सरकारी सदस्यो मे भारतीयो को सम्मिलित किया जाएगा।[58] कोई भी नया उपाय जो सरकारी राजस्व या ऋण को प्रभावित करता था उसके लिए गवर्नर जनरल की स्वीकृति आवश्यक होती थी (धारा 19)। तकनीकी तौर पर विधान परिषद में बजट पर बहस नही हो सकती थी क्योकि परिषद की शक्तिया केवल विधि निर्माण तक ही सीमित थी (निस्संदेह विधेयक प्रस्तुत करने की अनुमति के लिए प्रस्तावो पर विचार हो सकता था)। फिर भी 1861 से 1872 की अवधि मे प्रति वर्ष वित्त सबंधी वक्तव्य विधान-परिषद मे दिए गए, क्योंकि हर वर्ष नए वित्त संबंधी विधान की आवश्यकता होती थी। अत: नवीन कराधान-विधेयको के पेश होने के समय परिषद मे वित्त के पुर्नविलोकन या बजट पर वक्तव्य और थोड़े से विचार विमर्श के लिए अवसर मिल जाता

था। जब किसी नए वित्तीय विधान की आवश्यकता नहीं होती थी (जैसे 1873-76 की अवधि में) तो परिषद में वित्त संबंधी वक्तव्य के स्थान पर सरकार भारत के गजट में वित्त-विवरण प्रकाशित करती थी। 1892 के इंडियन काउंसिल एक्ट (55 व 56 विक्ट० सी० 14) पास होने तक विधान परिषद को वार्षिक वित्त विवरण पर बहस करने तथा उसके संबंध में प्रश्न करने का अधिकार नहीं था।[59]

भारतीय जनता के एकमात्र मुखर और सुलझे हुए विचारों वाले शिक्षित मध्यम वर्ग की ओर से ऐसी व्यवस्था की मांग की गई जिसमे विधान परिषद के माध्यम से लोक वित्त के ऊपर कुछ तो सार्वजनिक नियंत्रण हो। जैसा कि हम आगे देखेंगे, प्रमुख 'स्वदेशी' अखबार तथा ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन जैसी संस्थाएं तत्कालीन व्यवस्था से बहुत असंतुष्ट थी।[60] सर चार्ल्स ट्रैवीलियन के शब्दों में यह व्यवस्था 'लोकप्रिय विधान सभा के बाह्य रूप एवं कार्यविधियों की बनावटी नकल' मात्र थी और इसमें भारतीय जनता का वास्तविक प्रतिनिधित्व नहीं था।[61] तथापि भारत सरकार संतुष्ट थी कि तत्कालीन व्यवस्था कुशल प्रशासन की दृष्टि से सबसे अधिक उपयुक्त थी। 1867 में भारत मंत्री ने सपरिषद् गवर्नर जनरल को लिखा था 'जो व्यवस्था वार्षिक बजट (परिषद में) पेश करते समय से धीरे-धीरे कायम हो गई है वह सामान्य बुद्धि, सुविधा तथा देश की परिस्थितियों पर आधारित है।'[62] विधान परिषद से, जिसके सदस्यों में अनुभवी अफसर, गैर अफसर, यूरोपीय व्यापारी और भारतीय अभिजात वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले कुछ मनोनीत सदस्य होते थे, आग्रह किया जाता था कि उसके पास भेजे गए प्रस्ताव सरकार की जिम्मेदारी पर, और उसके द्वारा दिए गए इस आश्वासन पर कि आपूर्तियां वास्तव में आवश्यक ही थी, अपेक्षाकृत अल्प विचार विमर्श के बाद ही स्वीकार कर लिए जाए। सरकार का विचार था कि तत्कालीन परिस्थितियों में विधाई संस्था की स्वीकृति प्राप्त करने की यह सबसे कुशल रीति थी। भारत सरकार को 'इसमे प्रायः भारी असुविधा हो सकती थी, यदि बजट प्रणाली मे आवश्यक वित्तीय व्यवस्था संबंधी कानून कार्य-संचालन के नियमो के अंतर्गत कर दिया जाता।' भारत जैसे बड़े देश में सरकारी कामों मे कुछ देरी अनिवार्य थी। परंतु यदि सामान्य विधिकरण के लिए निर्धारित सभी नियमों के पालन को राजस्व-विधान के निर्माण के लिए भी आवश्यक कर दिया जाता है तो और अधिक विलंब आवश्यक हो जाएगा और नए करो से वित्तीय साधनों का संग्रह कुछ महीनो के लिए स्थगित हो जाएगा जिसके परिणाम वार्षिक बजट प्रणाली के लिए वास्तव में घातक होंगे।'[63] 'स्वदेशी' समाचार पत्र तथा समुदाय (इस संबंध में) राजनीतिक अधिकारों की बात करते थे, जबकि नौकरशाही के दिमाग के लिए यह केवल प्रशासनिक सुविधा का प्रश्न था।

IV

1843 में स्थापित वित्त विभाग का सर्वोच्च अधिकारी प्रारंभ में भारत सरकार का मुख्य वित्त सचिव चीफ फाइनेंशियल सेक्रेटरी होता था। प्रारंभ में इस विभाग का अधिकांश कार्य व्यय नियंत्रण से संबंधित था जबकि राजस्व संग्रह शाखा में बहुत सारे

वित्तीय क्रिया कलाप का प्रभारी गृह विभाग था। सितंबर, 1859 में सर चार्ल्स वुड ने गुप्त रूप से गवर्नर जनरल को प्रचलित व्यवस्था पर अपना असंतोष व्यक्त किया था। उसने लिखा था, 'राजस्व संबंधी कार्य जैसे, करों का निर्धारण तथा संग्रह, जहा तक भारत सरकार द्वारा संपन्न एवं नियंत्रित होता है, एक सचिव (गृह सचिव) द्वारा किया जाता है और वही संबंधित बातों को गवर्नर जनरल के सामने रखता है, जबकि वित्त-विभाग जिसके पास सारे राजस्व की प्राप्ति के बाद उसके नियंत्रण तथा दिशा निर्धारण का उत्तरदायित्व है, एक अन्य सचिव (वित्त सचिव) के द्वारा संचालित होता है और यही सचिव विभागीय बातो को गवर्नर जनरल के सामने रखता है।'[64] भारत मंत्री का मत था कि यह प्रणाली इंग्लैंड में प्रचलित वैसी ही प्रणाली से कम कुशल थी जो इस सिद्धात पर आधारित थी कि साधनों को भी जुटाना उसी विभाग का उत्तरदायित्व है जो व्यय पर नियंत्रण रखता है। 1859 के अंत में जब जेम्स विल्सन ने वित्त विभाग संभाला तो उस समय कैनिंग व उसकी परिषद और भारत मंत्री गृह तथा वित्त विभागों[65] को एक में मिलाने की योजना पर विचार विमर्श कर रहे थे। कैनिंग द्वारा अपनी परिषद में प्रारंभ की गई 'विभाग प्रणाली' (पोर्टफोलियो सिस्टम) के कारण स्वाभाविक रूप से कार्यों का अधिक व्यवस्थित बंटवारा और वित्त संबंधी कार्य का विल्सन के विभाग में केंद्रीयकरण हो गया। मार्च, 1861 में स्टाम्प तथा सीमा शुल्क से संबधित सभी कार्य गृह विभाग से वित्त विभाग को दे दिए गए।[66] अल्प समय को छोड़ कर (मार्च, 1862 से अक्तूबर, 1863 तक जब प्रशासनिक सुविधा के कारण इन शाखाओं पर गृह सचिव का नियंत्रण बना रहने दिया गया था)[67] राजस्व की इन शाखाओ पर वित्त विभाग का नियंत्रण था।[68] अक्तूबर, 1863 में राजस्व की नमक, अफीम तथा आबकारी शाखाएं भी गृह विभाग से लेकर वित्त विभाग को सौंप दी गईं।[69] अस्तु, चार्ल्स वुड का यह उद्देश्य बहुत सीमा तक पूरा हो गया कि आय का निर्धारण, संग्रह तथा व्यय एक ही विभाग के नियंत्रण में होना चाहिए।

वित्त विभाग ने अन्य विभागों पर व्यय के संबध में कठोर नियंत्रण रखा। उत्तर सैन्य विद्रोह काल मे सेना में से छटनी के समय सैन्य विभाग का व्यय सैन्य वित्त आयोग (जून, 1859 में नियुक्त) के निरीक्षण में था,[70] जिसे बाद मे सैन्य वित्त विभाग (जून, 1860) में बदल दिया गया और अंत में समाप्त ही कर दिया गया (अप्रैल 1864)। इसने सेना में कमी करने का उपयोगी कार्य किया था परंतु सैन्य विभाग मे लेखा परीक्षण एवं नियंत्रण का एक पृथक और स्वतंत्र विभाग रखना सार्थक नही था।[71] सैन्य विभाग के अकाउंटेंट जनरल को जो कंट्रोलर जनरल आफ मिलिटरी ऐक्सपैंडीचर कहलाता था, सैन्य वित्त विभाग का कार्य सौंपा गया।[72] सेना पर व्यय के प्राक्कलन की तैयारी का निरीक्षण कंट्रोलर जनरल करता था। ये प्राक्कलन अंत में वित्त विभाग के सामने रखे जाते थे। स्थाई रूप से प्राधिकृत व्यय मे कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाता था, किंतु अस्थाई आकस्मिक व्ययों की काफी छानबीन की जाती थी और वर्ष विशेष मे सैन्य विभाग द्वारा व्यय के प्राक्कलन पूर्व अनुमति के बिना नहीं बढ़ाए जा सकते थे।[73] गृह विभाग में न्यायिक, निर्माण, पुलिस, राजस्व, नौसेना, शिक्षा, गिरजाघरों

संबंधी, डाक तथा अन्य शाखाओं द्वारा व्यय की संवीक्षा वित्त विभाग द्वारा की जाती थी।[74] प्रशासन की इन सभी और अन्य शाखाओं मे वेतन क्रमों मे संशोधन तथा नए पदों के सृजन के लिए सभी प्रस्ताव वित्त विभाग को भेजने होते थे और इस विभाग से होकर ये प्रस्ताव भारत मंत्री के पास पहुचते थे।[75] लोक निर्माण विभाग में जिसकी स्थापना डलहौजी ने 1854 मे की थी, वित्तीय नियंत्रण की व्यवस्था विशेष रूप से विस्तृत थी। यदि सिंचाई एव लोक निर्माण कार्यों मे एक निश्चित राशि से अधिक व्यय आवश्यक होता था तो उसके लिए प्रेसीडेंसी लोक निर्माण विभागों को केंद्रीय लोक निर्माण एव वित्त विभागों के पास भेजे गए बजट प्राक्कलनों के आधार पर पूर्व अनुमति प्राप्त कर लेना आवश्यक होता था। फ्लोरेंस नाइटेंगल के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप अधिकारियों में 'स्वच्छता संबधी चेतना' आने से उन्नीसवीं शताब्दी के छठे दशक मे सैनिक लोक निर्माण विभाग द्वारा बड़े पैमाने पर जो सैनिक निर्माण कार्य प्रारंभ हुआ था, उस पर वित्त विभाग का नियन्त्रण था। केवल रेलों के निर्माण मे वित्त विभाग का नियंत्रण ढीला था और रेल कंपनियों के साथ संयुक्त परामर्श की प्रणाली के द्वारा व्यय में कमी करने के उसके प्रयत्न असफल रहे।[76] लोक निर्माण, गृह और सैन्य विभागों के अतिरिक्त इस संबंध में जिस विभाग का उल्लेख किया जाना चाहिए, वह राजस्व, कृषि एव वाणिज्य विभाग है। इस विभाग की स्थापना जून, 1871 मे कृषि को प्रोत्साहन देने, खनिज संपत्ति के दोहन, तथा 'औद्योगिक ज्ञान के प्रसारण' के लिए की गई थी।[77] मालगुजारी सर्वेक्षण बंदोबस्त, कृषि एव व्यापार सबधी आंकड़ों, वन आदि से सबधित कार्य इस विभाग को हस्तांतरित कर दिए गए। 1872 के बाद राजस्व विभाग की कुछ शाखाएं भी इस विभाग को दे दी गई।

वित्त विभाग को विविध व कठोर कार्यों के कुशलतापूर्वक सपादन के लिए योग्य तथा समर्थ कर्मचारियों की आवश्यकता थी। ये सहज ही उपलब्ध नही थे। 1857 मे सेवा मे एक पृथक वित्तीय शाखा बनाई गई। इस शाखा में वे ही अनुबंधित (कावेनेंटेड) अफसर नियुक्त किए गए जो एक परीक्षा पास कर सके जिसके विषय थे, बहीखाता, राजकोष का प्रबंध, तथा भारतीय राजस्व प्रणाली के सिद्धांत। मई, 1862 मे वित्त विभाग की सेवा के लिए युवकों को प्रशिक्षण देने के लिए एक परिवीक्ष्यमाण (प्रोवेशनर) अफसरों का वर्ग बनाया गया। इसी समय वित्तीय मामलों के सदस्य एस० लैंग ने घोषित किया कि अनुबंधित अफसरों तथा गैर अनुबंधित अफसरों मे आगे कोई भेद नही किया जाएगा और पदोन्नति केवल योग्यता के आधार पर होगी।[78]

भारत मे तरुण अफसरों को प्रशिक्षण देने की योजना असफल रही और भारत मंत्री से यह आग्रह किया गया कि वह सिविल सेवा आयोगों की सहायता से भारतीय वित्त सेवा में नियुक्ति के लिए बहीखाते के काम में प्रवीण युवकों की इंग्लैंड में भर्ती करे।[79] भारत मंत्री को भारत जाने के लिए उत्सुक पर्याप्त प्रशिक्षण प्राप्त और अनुभवी लोगों की भर्ती मे कठिनाई हुई। अत: उसने गवर्नर जनरल से अनुरोध किया कि वह भारत मे ही इस कार्य के लिए योग्य व्यक्तियों की खोज करे।[80] ब्रिटिश राजकोष के एक अफसर श्री फौस्टर वित्त विभाग के सलाहकार बनकर एक विशेष मिशन पर भारत

आए थे। उनके अनुसार ब्रिटिश राजकोप द्वारा दिए जाने वाले ऊंचे पारिश्रमिक के कारण इग्लैंड में सबसे अधिक योग्य व्यक्ति लोक सेवा मे चले जाते थे और भारत मे नीचे वेतनमान पर्याप्त रूप से आकर्षक नही थे। 'अनुभव से स्पष्ट होता है कि प्रारंभिक वेतन नीचा निर्धारित करने से होने वाली बचत के दोष ये हैं कि केवल व्यापारियों के दफ्तरों में अस्वीकृत और सरकारी पेंशन के अलावा दूसरे प्रकार से जीविकोपार्जन मे अयोग्य व्यक्तियों के वर्गों को ही राज्य के वित्तीय व्यवसाय के संपादन का उत्तरदायित्व दे दिया गया है।'[81] परंतु चार्ल्स ट्रैवीलियन (जो इंग्लैंड मे प्रसिद्ध ट्रैवीलियन नोर्थ-कोट सुधारों के समय से सिविल सेवा मे भर्ती के विषय पर विशेषज्ञ माना जाता था) वेतनमान में संशोधन करने के लिए अनिच्छुक था, क्योंकि सरकार की वित्तीय स्थिति सदैव ही घाटे के पास रहती थी और ऐसी स्थिति में सरकार के लिए वित्त विभाग मे खर्च बढ़ा पाना संभव नही था।[82]

वित्त विभाग में सुधार करने के लिए यह भी सुझाव दिया गया था कि भारी संख्या मे अनुबंधित अफसरों की नियुक्ति की जानी चाहिए।[83] 1862 से वित्त विभाग में वित्त सचिव तथा अकाउंटेंट जनरल केवल दो ही अनुबंधित अफसर थे अत: जिम्मेदारी के अनेक पद गैर अनुबंधित अफसरों को दिए गए। वित्त विभाग में थोडे ही अनुबंधित अफसर आना चाहते थे क्योंकि दूसरे विभागो की तुलना मे इस विभाग मे पदोन्नति और अधिक पारिश्रमिक के अवसर कम ही थे।[84] 1865 मे वित्त सचिव ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि विभाग की अकुशलता का एक कारण यह है कि ऊचे पदों पर गैर अनुबंधित अफसर हैं 'जिनकी आयु कुछ नया सीख सकने की दृष्टि से अधिक है' और जो मातहती में दीर्घकाल तक कार्य करने से 'दूसरों पर सही प्रभाव डाल सकने की दृष्टि से अनुपयुक्त हो गए हैं।'[85] सर चार्ल्स ट्रैवीलियन ने इस मत पर आपत्ति की। उसने स्पष्ट किया कि 1862 से पहले जब विभाग मे कई अनुबंधित कर्मचारी थे तो कार्य-कुशलता का स्तर ऊंचा नही था। उसका विचार था कि गैर अनुबंधित अफसरो को शिक्षा दी जा सकती है और वे अनुबंधित अफसरों से इस दृष्टि से भिन्न हैं कि प्राय: वित्त विभाग में ही बने रहते है जहा उनकी पदोन्नति की संभावना अन्य स्थानो से अधिक है। कुछ भी हो, सरकार के लिए वित्त विभाग मे भारी संख्या में अनुबंधित अफसरों की नियुक्ति कर पाना संभव नही था।[86]

वित्त विभाग मे अकुशलता के मुख्य कारण यह थे कि अधीनस्थ कर्मचारी वर्ग की शिक्षा अपर्याप्त थी और उनका पारिश्रमिक कम था और सिविल सेवा के अफसरों के पास यद्यपि शिक्षा तो काफी अच्छी थी तथापि वे विशेष रूप से वित्त प्रबंध के लिए प्रशिक्षित नही थे। जिस प्रकार के कर्मचारी ब्रिटिश राजकोष के पास थे वैसे व्यक्तियों को आकर्षित करने के लिए पदोन्नति की सभावनाएं वित्त विभाग में नही थी। इंग्लैंड से विल्सन के आने के दस वर्ष बाद 1869 मे भी यह अनुभव किया जाता था कि विभाग 'कर्मचारियों की दृष्टि से अशक्त' है।[87] सैन्य अथवा प्रशासनिक सेवाओ के समान कुशल वित्तीय सेवा के विकास की प्रक्रिया बहुत धीमी थी।

V

सैन्य विद्रोह के बाद संस्थागत नव प्रवर्तनों में सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन बजट प्रणाली थी। 1860-61 के वित्तीय वर्ष तक का साम्राज्यिक आय-व्यय का वार्षिक बजट न होने के कारण वित्तीय वर्ष में अलग-अलग समयो पर तैयार किए जाने वाले 'प्रत्याशित प्राक्कलनों' 'खाका प्राक्कलनो' तथा 'नियमित प्राक्कलनों' की जटिल पद्धति के द्वारा विविध व्ययों तथा भावी आवश्यकताओं का पता लगाना होता था।[88] वित्तीय वर्ष प्रारंभ होने से ढाई माह पहले प्रत्याशित प्राक्कलन स्थानीय लेखाकारों द्वारा सर्वोच्च सरकार के पास जाते थे। इन प्राक्कलनों मे तुलना की दृष्टि से समानांतर कालमों मे पिछले दो वर्षों की प्राप्तियां और खर्चे दिए रहते थे। वित्तीय वर्ष के चार माह बीत जाने पर 'खाका प्राक्कलन' तब तक के संशोधनों सहित स्थानीय लेखाकारों द्वारा भेजने होते थे। तीन माह और बीत जाने पर 'नियमित प्राक्कलन' भेजे जाते थे। इनमें पहले छः महीनों की वार्षिक प्राप्तिया और व्यय, जो उस समय तक मालूम होते थे, और वित्तीय वर्ष के शेष भाग के लिए प्राक्कलन दिखाए जाते थे। प्रत्येक प्रेसीडेंसी अथवा प्रात मे स्थानीय लेखाकार प्रत्येक असैनिक, सैनिक, लोक निर्माण, आदि विभागों के व्यय अधिकारियो से उनकी वित्तीय आवश्यकताओ के विषय में मासिक या साप्ताहिक विवरणी प्राप्त करता था। प्रत्याशित, खाका तथा नियमित प्राक्कलनों के अतिरिक्त भारत सरकार के पास स्थानीय लेखाकारों से रोकड़ शेष की मासिक विवरणियां भी आती थीं। धन राशि के आवंटन के लिए भारत सरकार के वित्त सचिव के द्वारा प्राक्कलित या वास्तविक प्राप्तियो तथा व्ययों की तुलना कर (विभिन्न विभागो की) आवश्यकताओं का अनुमान लगाया जाता था। वास्तविक व्यय का लेखा परीक्षण विभाग द्वारा व्यापक लेखा परीक्षण किया जाता था। व्यय प्रायः दो भागो मे विभक्त किए जाते थे, स्थिर व्यय (जैसे, लोक ऋण पर ब्याज, असैनिक अव्यवस्था एवं वेतन, सेना पर व्यय आदि) तथा अस्थिर व्यय जिनमें परिवर्तन होते रहते थे (जैसे, स्टोर की लागत, बट्टा, आकस्मिक व्यय, आदि)। यह नियम था कि किसी भी विभाग के द्वारा बिना विशिष्ट मंजूरी के कोई भी स्थिर व्यय नही किया जा सकता। परिवर्ती व्यय सामान्य रूप से प्रमाणित नियमो के अनुसार अथवा विशिष्ट मंजूरी के द्वारा ही किए जा सकते थे। विभागीय अफसरों के लिए अनुमानो मे स्वीकृत कुल राशियों के भीतर ही व्यय करना होता था। इस सीमा के भीतर भी उन्हे, अभाव की स्थिति में भी, विशिष्ट अनुदान को किसी अन्य बात पर व्यय करने के लिए बहुत थोड़ी स्वतंत्रता दी गई थी।[89]

जेम्स विल्सन को अपने आपको इस जटिल तथ अनोखी वित्तीय व्यवस्था से अवगत कराना पड़ा। विल्सन ने बेजहाट को लिखा था कि 'भारत का वित्त विभाग एक विशाल यंत्र है और इसके सामने इंग्लैंड का अर्थ-विभाग जटिलता, विविधता, तथा कार्य व्यापार के बिंदुओ में दूरी की दृष्टि से कुछ भी नही है।'[90] इस जटिल यंत्र का वैज्ञानिक पुनर्गठन उसका प्रधान कार्य था। 7 अप्रैल, 1860 को भारत सरकार ने बजट

पद्धति अपनाने का निश्चय किया था। इससे पहले 18 फरवरी, 1860 को जेम्स विल्सन ने विधान परिषद में प्रारंभिक प्राक्कलन के आधार पर बजट विवरण पेश किया। विल्सन को इस प्रकार भारत में बजट प्रणाली का प्रवर्तक माना जा सकता है। तथापि मई, 1859 मे सर चार्ल्स ट्रैवीलियन ने भारत के लिए बजट प्रणाली की एक योजना तैयार कर विल्सन से पहले ही इस दिशा मे पहल की थी।[91]

7 अप्रैल, 1860 के प्रस्ताव में यथासंभव इंग्लैंड जैसी प्रणाली के प्रवर्तन की सिफारिश की गई थी। इस प्रणाली का सक्षेप मे निम्नलिखित शब्दो मे वर्णन किया गया था, 'प्रत्येक शासकीय वर्ष के प्रारंभ होने से पहले सर्वोच्च सरकार को आगामी वर्ष में साम्राज्य की प्रत्याशित आय और प्रस्तावित व्यय के सतर्कतापूर्वक तैयार किए गए प्राक्कलनों की आवश्यकता होगी। विभिन्न लक्ष्यो पर उनकी निष्पत्ति के लिए आवश्यक साधनों और स्रोतों के सदर्भ में विचार कर; प्रस्तावित व्ययो की पिछले वर्षों के व्ययों से तुलना कर; विभिन्न कार्यपालक सरकारो एवं विभागाध्यक्षों की सिफारिशों पर विचार कर सर्वोच्च सरकार सेवा की प्रत्येक शाखा और प्रत्येक शाखा की विविध मदो के लिए निश्चित राशियो का आवंटन करेगी। विभिन्न कार्यपालक सरकारों तथा विभागों पर उपर्युक्त विनियोग अधिनियम के आधार पर स्वीकृत धनराशियों के उचित उपयोग का उत्तरदायित्व होगा।'[92]

प्रस्ताव मे इस प्रकार की प्रणाली के वर्तमान पद्धति की तुलना मे लाभ स्पष्ट किए गए थे। सर्वप्रथम, इस प्रणाली में आगामी वर्ष मे प्रत्याशित आय तथा होने वाले व्यय के पूरे पुनर्विलोकन की व्यवस्था थी। 'वर्ष प्रारम्भ होने से पहले ही जब पुनर्विलोकन होता है तो यह पूर्वज्ञान का पुनर्विलोकन होता है न कि अनुभव का क्योंकि पुनर्विलोकन अधिकारी उन योजनाओं का निर्णायक होता है जो अभी पूरी होकर तथ्य नही बन सकी है।' द्वितीय, नई प्रणाली मे व्ययो का समय-समय पर सर्वेक्षण होगा, और प्रत्याशित व्यय राशि की तुलना में इस प्रकार के व्यय के लिए साधन और स्रोत की व्यवस्था की रीतियों पर विचार किया जाएगा। इस प्रकार भविष्य की आय और व्यय में अपेक्षाकृत अच्छा सतुलन आ सकेगा। इसके अलावा, नई प्रणाली के द्वारा व्यवस्थित लेखा परीक्षण तथा लेखा प्रणाली की आधारशिला रखी गई। प्रत्येक कार्यपालक सरकार तथा प्रत्येक विभाग के नाम साम्राज्यिक बजट द्वारा स्वीकृत राशि जमा कर दी जाएगी और उसके आधार पर सर्वोच्च सरकार के वित्त विभाग द्वारा वास्तव में दी गई राशि नाम में डाल दी जाएगी। व्यय विशिष्ट स्वीकृतियों मे अधिक नहीं होगा। अस्तु, इस व्यवस्था के द्वारा सामान्यत. 'आर्थिक कार्य कुशलता' मे वृद्धि अर्थात किफायत होगी।[93]

चूंकि नई प्रणाली को एक साथ लागू कर सकना सभव नही था, अत: यह निश्चय किया गया कि इसे 1860-61 के वित्तीय वर्ष मे आंशिक रूप से लागू किया जाए (जबकि कुछ समय के लिए वर्तमान संगठन तथा रीतियो को बनाए रखा जाए) जिससे 1861-62 के वित्तीय वर्ष तक यह पूरी तरह व्यवहार में लाई जा सके। बजट प्रणाली से संबद्ध अनेक वित्तीय सुधार (उदाहरणार्थ, केन्द्रीय रेवेन्यू बोर्ड की स्थापना, साम्राज्यिक लेखा परीक्षण विभाग का पुनर्गठन, प्रत्याशित, रूपरेखीय, तथा नियमित अनुमानों के फार्मों के

स्थान पर बजट फार्मों के प्रयोग के लिए इनको तैयार करना)[94] विल्सन के जीवन काल में पूरे नहीं हो सके। बजट प्रणाली के कुशल कार्यान्वियन के लिए आधारभूत प्रशासनिक संरचना तैयार करने का कार्य लैंग तथा ट्रैवीलियन पर पड़ा जो विल्सन के उत्तराधिकारी थे।

इंग्लैंड की लेखा पद्धति तथा लेखा परीक्षण प्रणाली को भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल बनाकर उन्हें यहां पर लागू करने की एक विस्तृत योजना तैयार करने के लिए एक समिति नियुक्त की गई। इसके सदस्य थे ई० ड्रमंड (भारत का अकाउटेंट जनरल), सी० एच० लशिंगटन (भारत सरकार का वित्त सचिव), और रिचर्ड टैंपिल (सिविल सेवा से इसे विल्सन के निजी सचिव के रूप में काम करने का अनुभव होने के कारण समिति का सदस्य नियुक्त किया गया था)[95] समिति ने सिफारिश की कि वित्त संबंधी कार्य दो विभागों मे बांटे जाने चाहिए—प्रथम, लेखा तथा लेखा परीक्षण विभाग जिसमे दो भिन्न वर्ग के अफसर होने चाहिए। इनमे एक वर्ग का कार्य केवल व्ययों का निरीक्षण और दूसरे का केवल लेखे का निरीक्षण करना होना चाहिए। अकाउंटेंट जनरल आफ इंडिया ही आडिटर जनरल भी होना चाहिए और इस प्रकार वित्तीय सेवा के दोनों पक्षों में एकता स्थापित हो जाएगी।[96] 1860 की बजट समिति द्वारा विनियोग लेखा परीक्षण की रीति संबंधी एक आधारभूत महत्त्व का सुधार किया गया। भारत मे 1860 से पहले की प्रणाली मे प्रधान दोष यह था कि वर्ष विशेष के प्रत्येक सेवा के लिए विशिष्ट स्वीकृतियों के बजट प्राक्कलन नहीं होते थे। विल्सन ने पुरानी प्रणाली के स्थान पर बजट प्रणाली को प्रारंभ कर, जिसका उद्घाटन 18 फरवरी, 1860 के बजट वक्तव्य के साथ हुआ था, उपर्युक्त दोष को दूर कर दिया। परंतु प्रत्याशित व्यय विवरण (अर्थात् बजट) के साथ-साथ वास्तविक व्यय की प्राक्कलित व्यय से तुलना कर सकने के लिए भी व्यवस्था विकसित करनी थी जिससे वास्तविक व्यय प्राक्कलन से अधिक न होने पाए और सेवा की प्रत्येक शाखा को आवंटित राशि किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग मे न लाई जाए। व्यय की माहवार प्रगति (सेवा की अलग-अलग शाखाओं में और समग्र प्रशासन में) पता लगा सकने के लिए इंग्लैंड की व्यवस्था की रूपरेखा के आधार पर विनियोग लेखा परीक्षण प्रारभ किया गया।[97] बजट समिति के सुझावों को भारत सरकार ने स्वीकार कर लिया और उन्हें लागू किया। नई प्रणाली में अकाउंटेंट एंड आडिटर जनरल आफ इंडिया के पास मातहत लेखाकारों तथा लेखा परीक्षकों से सेवा की प्रत्येक मद पर होने वाले व्यय का मासिक सारांश आता था जो अंतिम विनियोग लेखा परीक्षण के बाद समस्त भारत मे व्यय पर मासिक रिपोर्ट के रूप में वित्त विभाग के पास भेजा जाता था।[98]

बजट समिति का प्रस्ताव था कि धनराशि के विशिष्ट विनियोग का क्षेत्र (1) सेवा के वर्गों, (2) वर्ग विशेष में प्रत्येक विभाग द्वारा व्यय की मदों, तथा (3) प्रत्येक विभाग में प्रत्येक अनुभाग द्वारा व्यय की मदों तक विस्तृत होगा। भारत मंत्री ने सेवा की प्रत्येक शाखा द्वारा व्यय की विस्तार के साथ दी गई मदों तक विनियोग विस्तार के औचित्य के प्रति संदेह प्रकट किया। उसका विचार था कि व्यय की छोटी मदों के ऊपर

धनराशि के व्यय के बारे में कुछ स्वतंत्रता दी जा सकती है।[99] भारत मंत्री की सलाह के अनुसार ही विशिष्ट विनियोग उपर्युक्त पहली दो श्रेणियों (सेवा की शाखाओं और प्रत्येक वर्ग के विभाग की व्यय की मदें) तक ही सीमित रखा गया और उसे और अधिक विस्तृत मदो मे नही तोड़ा गया।[100] बजट समिति द्वारा तैयार किए गए बजट तथा अनुमानो के फार्म इस सिद्धात के अनुरूप थे।[101]

एक अन्य समस्या पर जो प्रकट रूप से कम महत्व की थी, हमारे इस अध्ययन के काल मे काफी ध्यान दिया गया। समस्या यह थी कि वित्तीय वर्ष कब प्रारभ होना चाहिए.? 1865 तक वित्तीय वर्ष 1 मई से प्रारंभ होता था।[102] अधिकारी इस बात से अवगत थे कि भारत मे यह भावना बन गई थी कि चूकि भारतीय लेखे प्राय. ससद के सत्रात मे पेश किए जाते हैं इसलिए किसी भी सदन में 'इस महान साम्राज्य के मामलो पर इनके महत्व के अनुरूप लोगों की दिलचस्पी नही बन पाती।'[103] अत. यह वांछनीय समझा गया कि वित्तीय वर्ष पहले प्रारभ कर दिया जाए जिससे भारतीय लेखे संसद के सत्र के शुरू मे ही पेश हो सकें। भारतीय लेखा जाच आयोग (7 सितंबर, 1864) की सिफारिशो के अनुसार 1866-67 से वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल से प्रारभ होने लगा।[104] वित्तीय वर्ष और भी पहले, यदि सभव हो सके तो 1 जनवरी से, प्रारंभ करने के प्रस्तावो पर विचार विमर्श किया गया[105], परंतु यह भारत मे फसल काटने के समय (जो राजस्व संग्रह से संबंधित थे) की दृष्टि से असुविधाजनक था।[106]

विल्सन तथा बजट समिति के प्रयत्नों से वार्षिक बजट प्रणाली बिना किसी अड़चन के प्रारभ की जा सकी। तथापि बजट स्वीकृतियो की सीमा में ही व्ययों को रखना और भविष्य में व्ययो के लिए सही प्राक्कलन तैयार करना कठिन कार्य थे। प्रारभ मे लेखा परीक्षकों तथा लेखाकारों द्वारा तैयार किए गए स्थानीय प्राक्कलनों और वास्तविक व्ययो मे भारी अंतर पाए गए।[107] अधीनस्थ सरकारें बहुधा अपनी भावी आवश्यकताओं के बारे में प्राक्कलन समय पर नही भेजती थी, अतः भारत सरकार के वित्त वभाग द्वारा तैयार किए गए प्राक्कलन कुछ-कुछ अटकलबाजी जैसे ही होते थे।[108] प्राक्कलन से अधिक खर्च को हतोत्साहित किया जाता था और सामान्यतः आबटित राशि से अधिक व्यय नही होता था।[109] 'साम्राज्य की वित्तीय स्थिति और लोक सेवा की न्यायोचित आवश्यकताओं को देखते हुए' जो बजट आबंटन किए जाते थे उनके ऊपर धनराशि की स्वीकृति के लिए सामान्यतः कोई भी आवेदन स्वीकार नही किया जाता था।[110] बजट में स्वीकृत अनुदान यदि वित्तीय वर्ष समाप्त होने तक व्यय नही हो पाते थे तो उन्हे निश्चय ही समाप्त मान लिया जाता था।[111]

1864 मे भारतीय लेखा जांच आयोग द्वारा लेखा पद्धति में कुछ छोटी-मोटी बातों में सुधार किए गए। आयोग के सदस्य थे फास्टर तथा व्हिफन। इनमें पहला असिस्टेंट पे मास्टर जनरल तथा दूसरा इंग्लैंड के युद्ध विभाग का डिपुटी अकाउंटेंट जनरल था। भारत मे पुरानी लेखा पद्धति 'बहीखाते की वाणिज्यिक पद्धति' पर आधारित थी और 'इसका उद्देश्य वाणिज्यिक अर्थ में सरकार की लाभ-हानि पता करना था।'[112] इस प्रणाली मे सुधार करने के उद्देश्य से सर चार्ल्स ट्रैवीलियन ने भारत मत्री से कुछ अंग्रेज

अफसरों की सेवाओं को प्राप्त करने का आग्रह किया। ग्लैड्स्टन तथा सर जार्ज ल्युइस से परामर्श कर ट्रैवीलियन ने फास्टर तथा व्हिफिन को चुना।[113] फास्टर तथा व्हिफिन ने अपने मुआयने (1864-65) में भारतीय लेखाओं को ब्रिटिश रूपरेखा के आधार पर सुधारने के अनेक सुझाव दिए। वित्तीय प्रशासन संबंधी छोटी-मोटी बातों के विषय में उनके सुझावों से वित्त विभाग की कुशलता में सुधार हुआ।[114]

हमारे सिंहावलोकन की अवधि में बजट प्रणाली के प्रारंभ तथा लेखा परीक्षण एवं लेखा प्रणाली को नया रूप देने से नवीन वित्तीय प्रणाली का आधार तैयार हो गया। और, कोई कारण नहीं है कि मेयो द्वारा नई प्रणाली के संस्थापकों की प्रशंसा के प्रति असहमति प्रकट की जाए। मेयो ने कहा था : 'हमारी वित्त व्यवस्था का उत्तरदायित्व जिन लोगों पर डाला गया था वे बहुत विषम स्थिति में एक श्रेष्ठ व समर्थ प्रणाली को यद्यपि वह काफी जटिल थी, अपनाने के कठिन कार्य में संलग्न थे। उन्हें बिना किसी बुनियाद से वित्त प्रशासन की प्रणाली विकसित करनी थी।'[115] ऐसी परिस्थितियों में उन्हें कमाल की सफलता प्राप्त हुई।

VI

प्रस्तुत अध्ययन के लिए निर्धारित कार्य में केंद्रीय या सर्वोच्च सरकार तथा स्थानीय या अधीनस्थ सरकारों के मध्य वित्तीय संबंधों में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। 1858 से 1861 तक वित्तीय नियंत्रण की प्रवृति केंद्रीकरण की दिशा में थी। 1862 तथा 1868 के मध्य वित्त के विकेंद्रीकरण के विचार को काफी स्वीकृति मिली और इस संबंध में कई योजनाए तैयार की गईं यद्यपि इन योजनाओं में से कोई भी पूरी तरह संतोषजनक न थी। तृतीय अवस्था में 1869 से 1872 तक वित्त के विकेंद्रीकरण की योजना मेयो द्वारा तैयार कर लागू की गई। इस कार्य में जान स्ट्रैची ने उसकी योग्यतापूर्वक सहायता की।

सैन्य विद्रोह के समय सर्वोच्च सरकार की तुलना में स्थानीय सरकारों (बंबई तथा मद्रास प्रेसीडेंसी की गवर्नरी भी शामिल है) की मातहती की स्थिति स्पष्ट थी। संसद के विधान द्वारा 'स्थानीय' अथवा प्रांतीय सरकारों को बिना सपरिषद गवर्नर जनरल की पूर्व स्वीकृति के नए पद बनाने अथवा वेतन या उपदान (ग्रैच्युटी) देने का अधिकार नहीं था।[116] यह सिद्धांत बना हुआ था कि सर्वोच्च सरकार की पूर्व स्वीकृति के बिना स्थाई कर्मचारियों की संख्या, उनके पदों अथवा वेतनमानों में परिवर्तन नहीं किए जा सकते थे।[117] तथापि जब विलसन भारत आया तो उसने पाया कि 'सर्वोच्च और अधीनस्थ सरकारों में सुनिश्चित एवं स्पष्ट संबंध नहीं हैं और अधीनस्थ सरकारें अपने अधिकारों के अतिक्रमण का और सर्वोच्च सरकार अपने अधिकारों को बनाए रखने का प्रयत्न करती है जिससे वित्तीय प्रशासन में काफी जटिलता है।[118] स्थानीय और सर्वोच्च सरकारों के बीच संबंध असंतोषजनक थे क्योंकि सर्वोच्च सरकार को व्यय संबंधी छोटी से छोटी बात पर नियंत्रण रखने का अधिकार था। परंतु, चूंकि बजट प्रणाली नहीं थी और लेखा परीक्षण तथा लेखा पद्धति कमजोर थी, अतः सपरिषद

गवर्नर जनरल के लिए प्रभावी ढंग से वित्तीय नियंत्रण की शक्ति का प्रयोग कर पाना संभव नहीं था। प्रांतीय सरकारों की वित्तीय शक्तियों का विस्तार तथा सीमाएं भी ठीक से परिभाषित नहीं थी। अस्तु, भारत सरकार पर ऐसे कार्य का भार था जिसे करने के लिए उसके पास साधन नहीं थे और स्थानीय सरकारों को जिनके पास कोई वित्तीय उत्तरदायित्व नहीं था, अपव्यय रोक कर बचत करने के लिए कोई प्रेरणा नही थी।

जेम्स विल्सन का उद्देश्य सर्वोच्च सरकार के वित्तीय नियंत्रण को प्रभावपूर्ण बनाना था। बजट प्रणाली से, जिसका 1860 के प्रारंभ में उद्घाटन हुआ था, विशिष्ट स्वीकृतियों (सेवा की प्रत्येक शाखा और प्रत्येक शाखा की हर छोटी से छोटी मदों के लिए) की व्यवस्था हो गई और यह भी निश्चित हो गया कि स्थानीय सरकारें सपरिषद गवर्नर जनरल की पूर्व अनुमति के बिना निर्धारित राशि से अधिक व्यय नही करेंगी। इस सिद्धांत को बजट समिति ने अधिक विस्तार के साथ प्रतिपादित किया। विनियोग लेखा परीक्षण की रीति तथा नवीन लेखा पद्धति ने व्यय के ऊपर सर्वोच्च सरकार का नियंत्रण अधिक दृढ़ कर दिया। जिस नियम के अंतर्गत स्थानीय सरकारें वेतन क्रम मे परिवर्तन तथा स्थाई कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि नहीं कर सकती थी उस पर पुन-विचार किया गया, लेकिन विभाग के भीतर ही व्ययों के वितरण मे मामूली परिवर्तन कर सकने की स्वीकृति इस शर्त पर दी गई कि जब भी ऐसा किया जाए तो सर्वोच्च सरकार को इस संबंध में तत्काल सूचना दी जाए।[119] 1861 मे इंडियन काउंसिल एक्ट द्वारा बंबई तथा मद्रास सरकारों को विधि निर्माण का वह अधिकार पुन: मिल गया जो उनसे 1833 के चार्टर एक्ट द्वारा छीन लिया गया था। परंतु प्रांतीय विधान परिषदों को गवर्नर जनरल की बिना पूर्व स्वीकृति के भारत के लोक ऋण, सीमा शुल्क, सर्वोच्च सरकार द्वारा लगाए जाने वाले अन्य कर, करेंसी, बिल, नोट आदि को प्रभावित करने वाले कानून या अधिनियम बनाने अथवा उन पर विचार करने का अधिकार नहीं दिया गया था।[120] इस प्रकार 1860-61 में विल्सन द्वारा बनाए गए वित्तीय तंत्र से सज्जित होकर भारत सरकार अधीनस्थ सरकारों को वित्तीय दृष्टि से नियंत्रित करने लगी। भारत सरकार प्रकट रूप से वित्तीय केंद्रीकरण की नीति से प्रतिबद्ध नहीं थी। परंतु वित्तीय नियंत्रण की कड़ाई को अधीनस्थ सरकारों ने इसी रूप मे लिया, जिन्हें संभवत: पहली बार दृढ़ एवं कुशल केंद्रीय नियंत्रण की कठोरता का अनुभव हुआ था। जेम्स विल्सन की ख्याति 'केंद्रीकरण के प्रतिपादक' के रूप मे ही थी।[121]

मद्रास का गवर्नर सर चार्ल्स ट्रैवीलियन केंद्रीकरण की नीति का कड़ा विरोधी था। ट्रैवीलियन का विचार था कि प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से अत्यधिक केंद्रीकरण अवांछनीय है। 1853 मे भारतीय राज्य क्षेत्रों पर बनी प्रवर समिति के सामने अपने साक्ष्य में ट्रैवीलियन ने वित्तीय मामलों मे, केंद्रीय सरकार के सामान्य पर्यवेक्षण अधीन, प्रेसीडेंसियों को उचित स्वतन्त्रता एवं आत्म निर्णय का अधिकार देने के पक्ष में तर्क दिए थे। 1859 मे यद्यपि उसने स्वीकार किया कि प्रांतीय सरकारें बजट आबंटन से अधिक व्यय नही कर सकतीं, तथापि उसने एक बार पुन. इन सरकारो को आत्मनिर्णय का थोड़ा सा अधिकार देने की आवश्यकता पर जोर दिया। वह हर छोटी बड़ी मद के लिए

विशिष्ट स्वीकृति का विरोधी था जिसके कारण अधीनस्थ सरकारों को 'अपमानजनक अनिवार्यता का सामना करना होता था, क्योंकि उन्हें जब भी कोई नया व्यय, वह कितना ही नगण्य क्यों न हो, करना होता था, तभी एक अलग आवेदन पत्र कलकत्ता भेजना होता था।[122]

12 मई, 1860 के अपने नोट मे भारतीय रेवेन्यू प्रणाली की विविधताओं और एक ही केंद्र से दूर-दूर के प्रदेशों पर शासन कर सकने की कठिनाई को स्पष्ट करते हुए उसने अपने मत का सार इस प्रकार प्रस्तुत किया : *'यह एकीकरण न होकर असंगत* कार्यों का अव्यवस्थित ढेर मात्र है। यह सिर मे रक्तसंकुलता की और अन्य अंगों में पक्षाघात जैसी स्थिति है।'[123]

ये एतराज प्रशासनिक सुविधा के आधार पर किए गए थे। ट्रैवीलियन ने इससे आगे बढ़कर संवैधानिक पहलू का भी उल्लेख किया था। उसने प्रश्न उठाया कि 'क्या प्रेसीडेंट (अर्थात सपरिषद गवर्नर जनरल) के लिए स्थानीय सरकारों से बिना कोई सलाह मशविरा किए हुए ही कोई प्रस्ताव अचानक प्रख्यापित कर ब्रिटिश भारत के संविधान मे मूलभूत परिवर्तन करना, जैसा कि अभी हुआ है, उचित है ?' जिस समय तक भारत मंत्री ने प्रत्येक प्रेसीडेंसी मे विधान परिषद के निर्माण और अपना कार्य करने के बारे मे उसे स्वतंत्रता देने के विषय मे सरकार के इरादे की घोषणा की तब तक विल्सन ने थोड़ा सा केंद्रीकरण कर दिया था जिससे प्रांतीय सरकारो की केंद्रीय सरकार पर निर्भरता बढनी स्वाभाविक थी। इसका कारण यह है कि वित्तीय केंद्रीकरण का अर्थ होता है कि सभी प्रभावकारी सत्ता केंद्रीय सरकार के हाथ मे है। ट्रैवीलियन के ही शब्दो मे . 'चूंकि सरकार के सभी तत्वो मे वित्त, सबसे अधिक सबल है, इसलिए अन्य सभी तत्त्वो का इसमे आत्मसात हो जाना और इसके ही अनुरूप ढल जाना स्वाभाविक है···ऐंग्लो इंडियन सरकारो के गठन के महत्वपूर्ण प्रश्न को वित्त प्रबंध की महत्वहीन घटना मानकर चुपचाप नही निपटाया जाना चाहिए।'[124]

सर चार्ल्स ट्रैवीलियन द्वारा उठाए गए प्रश्न यद्यपि महत्वपूर्ण थे तथापि उसने अपने पक्ष के समर्थन मे जिस प्रकार से तर्क दिए तथा गोपनीय सरकारी कागजात प्रकाशित किए, और उसके 'विद्रोह' से जो उत्पात शुरू हो गया उनसे उसकी भूल सिद्ध हो गई। *उसके द्वारा उठाए गए प्रश्न को संकीर्ण ईर्ष्या की अभिव्यक्ति समझ लिया गया।* गवर्नर जनरल ने 'वर्गीय सिद्धांतो एवं दावो' को अस्वीकार कर दिया। लार्ड कैनिंग जेम्स विल्सन के साथ संपूर्ण रूप से सहमत था। उसने विल्सन को लिखा, 'भारत मे समस्त वित्त को एक ही केंद्रीय नियंत्रण मे लाने के लिए आप जो कुछ भी कहते है, मैं उससे पूर्णतया सहमत हूं।'[125] उसका पक्का इरादा था जिसे स्पष्ट करते हुए उसने एक अन्य पत्र मे विल्सन को लिखा था कि 'मैं यह तो नही कहूंगा कि मैं भूलो से पूर्ण रूप से मुक्त हो सकूंगा, परंतु मैं विवाद को यथासाध्य रोकने का प्रयत्न करूंगा।'[126] सर चार्ल्स वुड ने ट्रैवीलियन के कार्यों की ओर, विशेषकर, सरकारी कार्यवृत्त के प्रकाशन को 'पूर्ण रूप से विद्रोही' कार्य बतलाकर, निंदा की।[127] ट्रैवीलियन को इंग्लैंड वापस बुला लिए जाने पर यह विवाद कुछ समय के लिए समाप्त हो गया।

1861 में वित्तीय विकेंद्रीकरण की एक योजना सेमुअल लैंग द्वारा, जो गवर्नर जनरल की परिषद में वित्त सदस्य के पद पर विलसन का उत्तराधिकारी था, तैयार की गई थी। साम्राज्य के प्रत्येक भाग में लोक निर्माण के क्षेत्र में कार्य और लोक निर्माण कार्यों पर व्यय संबंधी छोटी-छोटी बातों में केंद्र द्वारा अत्यधिक हस्तक्षेप को समाप्त करने की वांछनीयता काफी अनुभव की गई। भारत सरकार के लोक निर्माण विभाग से संबंधित सचिव ने 'देश में वित्त के प्रांतीयकरण' की सिफारिश की थी और लैंग ने प्रांतीय सरकारों को भेजे गए गोपनीय परिपत्र में इस उद्देश्य के लिए अपनी योजना की रूपरेखा भेजी थी।'[128] लैंग ने स्पष्ट किया कि लोक निर्माण कार्यों के विकास के अतिरिक्त भी विकेंद्रीकरण के लाभ होंगे। प्रांतीय सरकारों को अपने नियंत्रण की मदों में बचत करने के लिए प्रेरणा मिलेगी और इससे 'स्थानीय स्वावलंबन की भावना को प्रोत्साहन मिलेगा।' 1860-61 के नियमित प्राक्कलनों से मार्च, 1861 तक स्पष्ट हो गया कि भारत सरकार अपनी आय से 6 करोड़ रुपये अधिक व्यय कर रही थी।[129] इसका एक ही समाधान था कि नमक कर में तत्काल वृद्धि की जाए और प्रांतीय सरकारों को लोक निर्माण के लिए दिए जाने वाले अनुदानों में कमी की जाए। इस कमी से लोक निर्माण कार्यों के विकास में काफी बाधा आनी थी। अत., स्थानीय कराधान के लिए कुछ विषय प्रांतीय सरकारों को दे देने का प्रस्ताव रखा गया जिससे स्थानीय लोक निर्माण कार्यों के लिए केंद्रीय अनुदानों में कुछ कमी हो तो उसे पूरा करने के लिए स्थानीय स्तर पर कुछ आय प्राप्त की जा सके। इस प्रकार लैंग के प्रस्ताव के मुख्य प्रयोजनों में एक प्रयोजन यह भी था कि सर्वोच्च सरकार के वित्त पर लोक निर्माण के भारी खर्चों में कमी करके भार को थोड़ा हल्का किया जाए और इस भार के एक अंश को प्रांतीय सरकारों पर डाल दिया जाए। यद्यपि प्रांतीय सरकारों को नए प्रांतीय करों से धन संग्रह की योजनाएं तैयार करने में बहुत कठिनाइयां हुईं फिर भी लैंग की योजना के प्रति उनकी प्रतिक्रिया प्रतिकूल नहीं थी।[130] परंतु योजना को तत्काल लागू नहीं किया गया। भारत सरकार ने उस समय तक प्रतीक्षा करने का निश्चय किया जब तक कि 1861 के इंडियन काउंसिल एक्ट के अंतर्गत प्रांतीय विधान परिषदों की स्थापना न हो। 1862-63 में व्यय पर आय का आधिक्य 1.8 करोड़ रुपये था। अगले वर्ष थोड़ा सा ही आधिक्य रहा। इसलिए थोड़े समय के लिए कुछ खर्चों को प्रांतीय सरकारों पर डालने के उपाय को स्थगित कर दिया गया।

1866 में वित्त सदस्य डब्ल्यू० एन० मैसी ने इस योजना को पुनर्जीवित किया। 1866-67 में भारत सरकार का व्यय उसकी आय से 2.5 करोड़ रुपये अधिक था। अगले दो वर्षों में लगभग 1.6 करोड़ रुपये और 4.14 करोड़ रुपये के घाटे थे। इस संकट में भारत सरकार ने एक बार पुनः विकेंद्रीकरण योजना को पुनर्जीवित किया जिससे प्रांतीय सरकारें सर्वोच्च सरकार के साथ वित्तीय भार को उठाने में भागीदार रह सकें। दो योजनाएं तैयार की गईं। प्रथम योजना डब्ल्यू० एन० मैसी ने तैयार की थी जिसमें प्रस्ताव रखा गया था कि प्रांतीय सरकारों पर कुछ व्ययों की मदों का उत्तरदायित्व डाला जाएगा (जो तब तक साम्राज्यिक आय से किए जाते थे) और इसके लिए वे स्थानीय

करों के द्वारा आय की व्यवस्था करेंगी और इस संबंध में उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता रहेगी। दूसरी योजना 1867 में कर्नल आर० स्ट्रैची द्वारा दिए गए सुझावों पर आधारित थी। इसमें न केवल कुछ व्यय की मदों बल्कि कुछ आय की मदों के भी हस्तांतरण का प्रस्ताव रखा गया था।

पहली योजना व्यय की कुछ मदों, उदाहरणार्थ : शिक्षा, पुलिस, जेल, लोक निर्माण से बचने का उपाय मात्र थी और इस प्रकार इसका उद्देश्य साम्राज्यिक व्यय में 1.2 करोड़ रुपये की कमी करना था।[131] बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर सेसिल बीडन ने स्पष्ट किया कि जहां स्थानीय सुधार करने के लिए स्थानीय कराधान वांछनीय है वहां साम्राज्यिक वित्त पर भार में कमी लाने के लिए स्थानीय कराधान स्थानीय सरकारों के बीच लोकप्रिय होने की संभावना नहीं है।[132] बंबई से सर बार्टल फ्रेर ने अपने सामान्य स्पष्टवादी ढंग से मैंसी को लिखा कि वह इस शर्त पर व्यय की मदों के हस्तांतरण के लिए सहमत होगा कि आय की मदों का भी हस्तांतरण हो। उसके ही शब्दों में : 'परंतु उस समय बात दूसरी होगी जब उत्तरदायित्व का हस्तांतरण इस प्रकार बढ़े हुए व्यय को पूरा करने के लिए न केवल साम्राज्यिक कराधान के किसी भी अंश का हस्तांतरण किए बिना कर दिया जाए, वरन यह भी आदेश हो कि धनराशि जो अब तक स्थानीय कार्यों के लिए उपयोग में आती थी, उसका प्रयोग अब साम्राज्यिक उद्देश्यों के लिए किया जाए।'[133] पश्चिमोत्तर प्रांत के लेफ्टिनेंट गवर्नर ई० ड्रमंड तथा मद्रास के गवर्नर डब्ल्यू टी० डेनिसन का कहना था कि मैंसी योजना में बिना भारत की स्थिति पर विचार किए हुए ही इंग्लैंड की स्थानीय वित्त प्रणाली को अपना लिया गया है।[134] पंजाब तथा मध्य प्रांत की सरकारों को छोड़ कर सभी स्थानीय सरकारें उन सभी व्ययों के लिए, जो अब तक साम्राज्यिक आय से किए जाते थे, स्थानीय कर लगाने के लिए अनिच्छुक थीं। सपरिषद गवर्नर जनरल ने भारत मंत्री के सामने यह स्वीकार किया कि 'यदि अधिक कड़ा शब्द प्रयोग न किया जाए' तो व्ययों को पूरा करने के लिए आवश्यक साधनों के हस्तांतरण के बिना खर्चों के हस्तांतरण पर 'लगभग सर्वत्र हिच-किचाहट है।'[135] अतः मैंसी की योजना को वापस ले लिया गया और अगले वर्ष सरकार ने एक नई योजना प्रस्तुत की।

दूसरी योजना लोक निर्माण विभाग से संबद्ध कर्नल आर० स्ट्रैची ने तैयार की थी। मैंसी ने विकेंद्रीकरण की योजना केवल साम्राज्यिक सरकार के भार को थोड़ा कम करने के उद्देश्य से तैयार की थी।[136] स्ट्रैची ने बिना इस बात का ध्यान दिए हुए ही कि भारत सरकार साम्राज्यिक आय से अपने खर्चों को पूरा कर सकेगी या नहीं, विकेंद्रीकरण की वांछनीयता के कारणों को स्पष्ट किया। (क) प्रांतीय और सर्वोच्च सरकारों के मध्य तत्कालीन वित्तीय संबंध प्रांतीय सरकारों के लिए 'हतोत्साहित करने वाले' हैं। 'लोक आय का वितरण विकृत होकर छीना-झपटी जैसी चीज बन जाता है जिसमें जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली बात होती है और औचित्य की ओर ध्यान नहीं दिया जाता।'[137] स्थानीय सरकारें साम्राज्यिक आय में से यथासंभव अधिक अंश पाने के लिए शोर मचाती हैं, साम्राज्यिक आय बढ़ाने में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं होती और

प्रांतीय स्तर पर मितव्ययता बरतने के लिए कोई प्रेरणा नही होती। वित्त के विकेंद्रीकरण से उनमे कुछ जिम्मेदारी की भावना आएगी क्योंकि उन पर ही कुछ विशिष्ट खर्चों के लिए साधनों की व्यवस्था करने का उत्तरदायित्व होगा। (ख) प्रांतीय तथा सर्वोच्च सरकारों के मध्य सद्भावपूर्ण संबंधों के लिए थोडा सा विकेंद्रीकरण वाछनीय था। प्रांतीय सरकारों द्वारा किए जाने वाले छोटे-बड़े व्ययों में सर्वोच्च सरकार द्वारा लगातार हस्तक्षेप तथा इस हस्तक्षेप के प्रति स्थानीय सरकारों की अप्रसन्नता से दोनो के बीच झगड़ा होता था।[138] यह सबसे अधिक लोक निर्माण विभाग में होता था जिसमे स्ट्रैंची काम करता था।[139] (ग) अंत मे स्ट्रैंची ने 'उन हितों के विस्तार में होने वाले असाधारण परिवर्तनो की ओर' ध्यान आकर्षित किया 'जिनसे पिछले 10-15 वर्षों मे भारत सरकार का संपर्क रहा था।' सरकार के कार्य क्षेत्र मे विस्तार तथा आय और व्यय में भारी वृद्धि से केंद्रीय नियंत्रण की पुरानी व्यवस्था अप्रचलित हो गई।

स्ट्रैंची ने लिखा है कि 'मुझे कल्पना करनी चाहिए कि केंद्रीय अधिकारी की वित्तीय स्थिति सामान्य रूप से सयुक्त राज्य की केंद्रीय सरकार की भांति मात्राओं को आत्मसात करने की होनी चाहिए, परंतु निस्संदेह उसके पास पृथक स्थानीय प्रशासन के वित्त के ऊपर सामान्य ढंग के निरीक्षण एवं नियंत्रण का अधिकार भी होना चाहिए··।'[140] स्ट्रैंची का प्रस्ताव था कि प्रारंभ मे व्यय की कुछ मदें (विधि एवं न्याय, पुलिस, शिक्षा, चिकित्सा, लेखन सामग्री तथा मुद्रण) तथा साम्राज्यिक आय के कुछ स्रोत प्रांतीय सरकारों को हस्तांतरित किए जा सकते है।[141] प्रातीय सरकारें इन हस्तांतरित खर्चो को पूरा करने के लिए स्वयं ही उत्तरदाई होंगी। इस उद्देश्य के लिए स्थानीय कर लगा कर अतिरिक्त आय की जा सकती है। यह आशा की गई थी कि भविष्य में खर्चो की हस्तांतरित मदो से बढने वाले व्यय को आय की हस्तांतरित मदो और अतिरिक्त स्थानीय करों से पूरा किया जा सकेगा। मैसी ने स्पष्ट किया कि हस्तांतरित व्यय तथा आय की राशियां लगभग समान हैं।[142] योजना की इस विशेषता के कारण प्रांतीय सरकारों ने इस पर अपनी सहमति दे दी जबकि मैसी की पहली योजना (आय के एक अंश के हस्तातरण के बिना ही खर्चों का हस्तातरण) के विषय मे वे उत्साहित नही थे। मद्रास सरकार को छोड़कर सभी स्थानीय सरकारों ने विकेंद्रीकरण योजना का स्वागत किया।[143] ऐसा लग रहा था कि विकेंद्रीकरण की बहुचर्चित योजना शीघ्र ही लागू कर दी जाएगी।

परंतु गवर्नर जनरल, उसकी परिषद के सेना संबंधी मामलो के सदस्य, मद्रास के गवर्नर तथा कुछ अन्य अधिकारियों ने विकेंद्रीकरण योजना का कडा विरोध किया। उनके एतराजों का सार चार श्रेणियों में रखा जा सकता है: (क) इस बात की आशंका थी कि विकेंद्रीकरण के द्वारा भारत सरकार का नियंत्रण शिथिल हो जाएगा। यह नियंत्रण चाहे 'कष्टप्रद' ही क्यों न हो आवश्यक था। मेजर जनरल सर एम० एम० ड्यूरेंड का विश्वास था कि वर्तमान प्रणाली कितनी ही अरुचिकर क्यों न हो 'विघटन' से श्रेष्ठ है।[144] (ख) एक अन्य एतराज यह था कि इस योजना को अपना लेने से भारतीय पंजी निवेशो मे ब्रिटिश पूंजीपतियों के विश्वास में कमी हो जाएगी। साम्राज्य

के विकास के लिए फिर ब्रिटिश पूंजी नहीं मिल सकेगी।[115] मद्रास के गवर्नर लार्ड नैपियर आव मर्किस्टन ने स्पष्ट किया कि इंग्लैंड के मुद्रा बाजार में (भारत की) सर्वोच्च सरकार की साख की मात्रा करीब-करीब वही है जो फ्रांस या संयुक्त राज्य अमरीका की है।' वित्त के 'संघीयकरण' की स्थिति में यह साख जोखिम में पड़ सकती है।[116] (ग) इस बात की आशंका थी कि प्रांतीय सरकारें साम्राज्यिक हितों की उपेक्षा करें। 'संपूर्ण साम्राज्य के वित्तीय स्रोतों का प्रबंध करने वाली और प्रांतीय रेवेन्यू बोर्ड द्वारा अच्छे परिकलन से कहीं ऊंचे कानून से अनुप्राणित' केंद्रीय सरकार द्वारा कठोर नियंत्रण की आवश्यकता थी।[117] लारेंस ने विकेंद्रीकरण के परिणामों का अंधकारपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया था। 'प्रत्येक स्थानीय सरकार तथा प्रशासन डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग-अलग पकाने लगेगी और हर वर्ष इनकी प्रणालियों में अंतर बढ़ता जाएगा।'[118] यदि सर्वोच्च सरकार अपने वित्तीय नियंत्रण को छोड़ देती है तो उसे अन्यत्र भी अपने नियंत्रण को छोड़ना पड़ेगा। लगभग प्रत्येक प्रशासनिक निर्णय जब व्यवहार में लागू किया जाता है तो उसके वित्तीय उलझाव होते हैं और यदि स्थानीय सरकारों को इसके लिए स्वीकृति लेना आवश्यक न हो तो वे इन मामलों को केंद्रीय सरकार के पास ही नहीं भेजेंगे। (घ) अंत में, योजना के आलोचकों का कहना था कि भारत की तत्कालीन राजनीतिक प्रणाली में वित्त का संघीयकरण संयुक्त राज्य अमरीका की संघीय वित्त व्यवस्था से पूर्णतया भिन्न था। संयुक्त राज्य अमरीका की भांति भारत में लोकतंत्रीय प्रतिनिधि संस्थाएं नहीं थी जो प्रांतीय सरकारों पर नियंत्रण रख सकती।[119] करदाताओं को इसमें अधिक अंतर नहीं पड़ता था कि कर केंद्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार द्वारा एकत्रित किए जाते हैं। जैसा कि मद्रास के बोर्ड आफ रेवेन्यू ने अर्थपूर्ण ढंग से कहा कि यह मान लेना गलत होगा। कि किसी भी कर को 'साम्राज्यिक' के स्थान पर 'स्थानीय' कह देने मात्र से वह लोगों की दृष्टि में कर नहीं रहेगा अथवा उसमें स्वीकृति अथवा आरोपण में सुविधा का कोई विशेष गुण उत्पन्न हो जाएगा।'[150]

इन आधारों पर वित्त विकेंद्रीकरण की योजना अस्वीकृत कर दी गई। मद्रास के गवर्नर तथा गवर्नर जनरल की परिषद के सेना संबंधी मामलों के सदस्य के विचारों की उपेक्षा नहीं की जा सकी। यद्यपि स्थानीय सरकारों तथा परिषद सदस्यों का बहुमत इस योजना के पक्ष में था, तथापि गवर्नर जनरल ने स्ट्रैची तथा मैंसी द्वारा बनाई गई योजना लागू न करने का निश्चय कर लिया। गवर्नर जनरल लारेंस (जो संभवतः सैन्य विद्रोह के अनुभव से बहुत प्रभावित था) थोड़े से भी विकेंद्रीकरण को मान कर केंद्रीय सत्ता को दुर्बल करने के लिए अनिच्छुक था। जब तक 1870 में मेयो ने इस प्रश्न को फिर नहीं उठाया, तब तक इस दिशा में कुछ भी नहीं हुआ।

1870 में मेयो ने सर एस० फिट्जेराल्ड को लिखा था : 'मुझे आशा है कि अब वित्त के विकेंद्रीकरण की भयानक निंदा समाप्त हो जाएगी।'[151] वह नए प्रयोग के प्रति अरुचि ही थी। मेयो वित्तीय विकेंद्रीकरण की नीति से पूर्णतया प्रतिबद्ध था लेकिन उसने 'स्थानीय वित्त' शब्द को अधिक पसंद किया क्योंकि उसका विचार था कि 'विकेंद्रीकरण' शब्द से नियंत्रण में शिथिलता की ध्वनि है। अपने स्थानीय वित्त संबंधी उपाय

लागू कर देने के बाद उसने 1871 मे लिखा कि 'हम यह नही मानते कि हमने वित्त का विकेंद्रीकरण किया है अथवा कुशल नियंत्रण का लेश मात्र भी परित्याग किया है…।'[152]

अपने आगमन के कुछ ही महीनों में मेयो को समझ मे आ गया कि विशुद्ध रूप से स्थानीय मामलों मे भी सर्वोच्च सरकार का हस्तक्षेप बहुत अधिक है।[153] दूसरी ओर प्रांतीय सरकारों ने, और विशेष रूप से बबई सरकार ने, 'नियत्रण के विरुद्ध काफी अधैर्य' और 'संघर्ष का शोचनीय झुकाव' दिखाए।[154] प्रांतीय सरकारो के अधिकारी 'इंग्लैंड मे रहने वाले अपने मित्रो को पत्र लिखते थे तथा क्लबो मे खीझ दिखाते और बड़बडाते थे।'[155] प्रांतीय सरकारो और सर्वोच्च सरकार में अच्छे संबध नही थे। ऐसी स्थिति मे मेयो ने 'टकराव को कम करने और आपसी भावनाओ मे सुधार करने', प्रांतीय सरकारों को अधिक उत्तरदायित्व देने तथा पत्र व्यवहार मे कमी करने के लिए' एक योजना तैयार करने की आवश्यकता महसूस की।[156]

मेयो का विश्वास था कि इस प्रकार की योजना राजकोषीय दृष्टि से लाभदायक होगी। प्रांतीय अधिकारी यह निर्धारित करेंगे कि 'लोगों की बढती हुई आवश्यकताओं के लिए किस प्रकार व्यवस्था अधिक सुविधापूर्वक होगी।'[157] मेयो ने नैपियर के नाम एक पत्र मे वित्तीय हस्तांतरण पर सहमति के लिए उसे राजी करने के लिए लिखा : 'यह सभी को दिखाई देता है कि हमारी बढी हुई आवश्यकताओं के लिए कराधान मे वृद्धि होनी चाहिए, और अच्छा यही होगा कि यह बढी हुई स्थानीय स्वतंत्रता एवं उत्तरदायित्व के साथ स्थानीय अंशदान के रूप मे प्राप्त हो, न कि साम्राज्यिक अंशदान के रूप में'।[158] इसके अलावा स्थानीय वित्त प्रणाली से मितव्ययता बढ़ेगी। मेयो का इरादा था कि स्थानीय सरकारों के लिए अपने बजटो का प्रकाशन तथा वार्षिक वित्तीय विवरणो को सर्वोच्च सरकार के साथ-साथ प्रांतीय विधान परिषद (जहां पर इस प्रकार की परिषद का निर्माण हो गया था) के पास भेजना अनिवार्य कर दिया जाए।[159] मेयो ने फिट्जेराल्ड को लिखा 'मेरा विचार है कि स्थानीय बजटों के प्रचार और लोगों मे इस भावना के जागरण से कि वे अपनी ही धनराशि व्यय कर रहे हैं, ऐसे नियत्रण की स्थापना होगी जो गवर्नर जनरल द्वारा रखे जाने वाले नियंत्रण की अपेक्षा अधिक कड़ा होगा।'[160] सड़कों, छोटी इमारतो व जेलों के निर्माण, शिक्षा, पुलिस आदि व्यय की शाखाओ में अपव्यय हो रहा था और इसे स्थानीय सरकार के अलावा कोई अन्य सत्ता कुशलतापूर्वक नियंत्रित नही कर सकती थी।

राजनीतिक कारणो से भी स्थानीय वित्त की प्रणाली केंद्रित प्रणाली की अपेक्षा श्रेष्ठ थी। मेयो के शब्दों में 'हमे इस देश की सरकार में यहां के निवासियों को अपना सहयोगी बना लेना चाहिए। हमने इसकी बहुत उपेक्षा की है…। यह समय की बात हो सकती है। जिस तरह अन्य देशो में स्थानीय शासन की संस्थाओं का उद्गम और विकास सामान्यत: स्वशासन की शक्तियों के विकास में ढूंढा जा सकता है, कि भारत में हमे प्रशासन में सर्वश्रेष्ठ सहायता यहां के मूल निवासियों से ही मिलेगी…। इसके और जो भी शक्तियां हस्तांतरित की जा सकती हैं वे हमें स्थानीय अधिकारियों को [illegible]

होगी और उन्हे उनके जिलो के प्रबंध के विषय में आदेश देने होंगे'''।[161] मेयो 'स्वदेशी स्वशासी पालिक संस्थाओं'[162] का निर्माण करना और 'स्थानीय वित्त के प्रबंध मे' भारतीयो को 'अधिक हिस्सा' देना चाहता था।[163] स्थानीय शासन की नई रूपरेखा तैयार करने मे समय लगना था, अत: तत्काल साम्राज्यिक विधान परिषद में जिस प्रकार बजट प्रस्तुत किया जाता था ठीक उसी प्रकार प्रांतीय विधान परिषदों (जहां पर भी ये थी) में वार्षिक विवरणों के प्रस्तुतीकरण की व्यवस्था की जा सकती थी।[164]

मौलिकता की दृष्टि से ये विचार असाधारण नही थे। विकेंद्रीकरण के लाभों पर लैंग, स्ट्रैची, मैंसी तथा कुछ अन्य लोगों ने भी प्रकाश डाला था। परंतु जहा मेयो को सफलता मिली वहां अन्य लोग असफल रहे। मेयो को मालूम था कि सुधार के रास्ते में 'प्रांतीय ईर्ष्या तथा संकीर्ण विचारधारा' बाधक हैं।[165] उसने सरकार के सभी सर्वोच्च अधिकारियों तथा अन्य महत्वपूर्ण अफसरों को अपने पक्ष में करने मे बहुत सावधानी से काम लिया। वह काफी पत्र लिखता था और उसके निरंतर समझाने-बुझाने और दबाव डालने से सारा विरोध अंतत. समाप्त हो गया। इसके द्वारा लार्ड नैपियर आव मर्किस्टन, सर फिटजेराल्ड, सर डब्ल्यू० म्योर, सर बी० फ्रेर, डब्ल्यू० आर्बुथनाट के साथ किए गए पत्र व्यवहार मे अधिकाश, जिससे कुछ उद्धरण ऊपर दिए गए है, विकेंद्रीकरण के प्रश्न से ही संबंधित थे।

मेयो को अपनी परिषद के वित्त सदस्य सर आर० टैंपिल से अधिक सहायता नही मिली। टैंपिल ने 1868 मे एक योजना तैयार की थी जिसमें उसने राज्य सरकार के छोटे-छोटे मामलों के बारे मे सर्वोच्च सरकार के नियंत्रण को ढीला करने का प्रस्ताव रखा था और मद्रास तथा बंबई की सरकारों को बहुत थोड़ी स्वतन्त्रता देनी चाही थी।[166] मेयो ने आरगाइल को बतलाया था कि टैंपिल की योजना 'के द्वारा वास्तव मे नाम भर का परिवर्तन होना था न कि यथार्थ।'[167] मेयो टैंपिल के सुझावों के आधार पर कार्य नही करना चाहता था और उसने इस मामले को कुछ समय के लिए स्थगित हो जाने दिया। 1870 मे मेयो ने अपनी योजना तैयार की और परिषद मे टैंपिल द्वारा कड़े विरोध के बावजूद यह योजना, छोटे-मोटे सशोधनों के बाद, स्वीकार कर ली गई।[168]

मेयो की योजना को, जिसकी रूपरेखा उसने जून, 1870 के अपने कार्यवृत्त मे दी थी, वित्त सचिव ने प्रांतीय सरकारों को अगस्त, 1870 मे भेजे गए अपने परिपत्र में विस्तार के साथ स्पष्ट किया था। इसे 14 दिसम्बर, 1870 के सपरिषद गवर्नर जनरल के प्रस्ताव द्वारा अंतिम रूप देकर स्वीकार किया गया।[169] योजना की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित थी : प्रशासन के कुछ विभाग प्रांतीय सरकारों को हस्तांतरित कर दिए गए ये विभाग थे : जेल, पुलिस, रजिस्ट्रीकरण, शिक्षा, चिकित्सा सेवाएं (चिकित्सा प्रतिष्ठानो को छोडकर) मुद्रण, सड़क, असैनिक भवन, तथा प्रकीर्ण सार्वजनिक सुधार। इन सभी विषयों पर व्यय पूरा करने के लिए प्रांतीय सरकारों की आय के स्रोत थे : (क) इन मदों से विभागीय प्राप्तियां, (ख) इन प्रांतीय सेवाओं के लिए वार्षिक साम्राज्यिक आय से स्थाई रूप से दिए जाने वाले निश्चित एक मुश्त राशियों मे अनुदान, (ग) और

यदि कमी पड़े तो स्थानीय कराधान।[170] साम्राज्यिक बजट मे प्रांतीय सेवाओ के नाम से दिखाए जाने वाले आबंटन प्रांतीय सरकारो के अधिकार में होगे और इनकी राशियां निश्चित होंगी और उनमे कोई परिवर्तन नही हो सकेगा। प्रातीय सरकारों पर कुछ शर्तें लगाई गई थी। ऐसी कुछ शर्तों का उद्देश्य था कि अपव्यय या धनराशि के अनुचित व्यय को रोकने की दृष्टि से लेखाओं तथा प्राक्कलनों की जाच और उनके प्रकाशन की निश्चित व्यवस्था। प्रांतीय सरकारो के लिए अपने वार्षिक प्राक्कलनों तथा लेखाओ को प्रांतीय गजटों मे प्रकाशित करना और जिस प्रकार साम्राज्यिक बजट विधान परिषद में पेश किया जाता था उसी प्रकार प्रांतीय विधान परिषदों (जहा पर ये संस्थाए थी) मे साम्राज्यिक बजट जैसा एक वित्त विवरण पेश करना आवश्यक था। प्रातीय सरकारों से यह भी अपेक्षा की गई कि वे भारत सरकार को वार्षिक लेखे व प्राक्कलन भेजेंगी। एक अन्य प्रकार की शर्तो के द्वारा सर्वोच्च सरकार के हाथ मे सामान्य वित्तीय नियंत्रण का अधिकार सुरक्षित रखा गया। ऐसे सभी मामलो मे, जिनका संबंध किसी भी श्रेणी मे आने वाले अफसरों के वेतनमानो मे परिवर्तन, 250 रुपये से अधिक वेतन के पदों के सृजन, अवकाश तथा भत्ते संबधी साम्राज्यिक सेवा के नियमो में परिवर्तन तथा सार्वजनिक खजाने मे मुद्रा के निवेश से होता था, सर्वोच्च सरकार की पूर्व अनुमति लेना आवश्यक था। सपरिषद गवर्नर जनरल ने भारत सरकार की सामान्य नीति से विचलन (प्रांतीय सरकारो का) अथवा शर्तों के उल्लंघन को समाप्त करने के लिए हस्तातरित विषयो के प्रशासन और हस्तांतरित धनराशियों के संवितरण मे हस्तक्षेप कर सकने का अधिकार अपने पास रखा। प्रातीय सरकारो ने इस व्यवस्था के बारे मे अपनी स्वीकृतियां दे दी यद्यपि इस वास्तविकता के कारण कि साम्राज्यिक आय से आबंटन छोटे थे और स्थाई रूप से निश्चित थे, उन्हे इसके संबंध मे कुछ संदेह बने रहे।[171]

विकेंद्रित वित्त की योजना 1871-72 के वित्तीय वर्ष से व्यवहार मे आ गई। अगले कुछ वर्षो के अनुभव से मेयो द्वारा तैयार की गई योजना के दोष प्रकट हो गए। प्रांतीय सरकारो को हस्तांतरित खर्चो को पूरा करने के लिए निश्चित राशियां आबंटित हुई थी। जैसे ही हस्तांतरित विभागों (विशेष रूप से शिक्षा, सड़कों, पुलिस, तथा सार्वजनिक सुधार) के खर्चों मे वृद्धि हुई, प्रातीय सरकारो के लिए व्ययो को पूरा कर पाना अधिकाधिक कठिन हो गया। अतः विकेंद्रीकरण द्वारा केंद्रीय सरकार के लिए अपने व्यय मे तो कमी कर पाना सभव हुआ, परंतु इससे स्थानीय सरकारों पर स्थानीय करो से अतिरिक्त आय प्राप्त करने का कठिन कार्य आ गया। मेयो का विश्वास था कि 'यदि लोग यह देख सकेंगे कि अतिरिक्त कराधान केवल उन्ही के लाभ के लिए किया जा रहा है तो उनके 'एतराज कम होने लगेंगे।'[172] तथापि प्रातीय सरकारों को ऐसे करो के स्रोत तलाश करने मे बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ा जिनसे खजाने को पर्याप्त आय होती। लोकमत करो की संख्या बढ़ाने के विरुद्ध था। आरगाइल ने ठीक ही कहा था कि स्थानीय करो के साम्राज्यिक करो से अधिक लोकप्रिय होने की संभावना उस समय तक नही थी जब तक दोनों ही प्रकार के कर 'सरकार द्वारा लोगो की भावनाओ और उनके विचारों को समझे बिना लगाए जाए।'[173] ऐसा प्रतीत होता है कि 1871-72 मे

प्रस्तावित स्थानीय करों : जैसे बबई नगर मे चुगी तथा गृह कर, बंगाल मे मालगुजारी पर सड़क और शिक्षा उपकर (सेस) तथा पश्चिमोत्तर प्रात मे विविध स्थानीय करो के विरुद्ध लोकमत की कड़ी प्रतिक्रिया हुई।[174]

भारत सरकार की कुल आय के दसवें भाग से भी कम आय प्रांतीय सरकारों को दी गई। *केंद्रीय और स्थानीय आयो में उचित अनुपात बनाए रखने के लिए कोई व्यवस्था* नहीं की गई। प्रातीय सरकारों के मध्य धनराशि के वितरण में अनौचित्य से बहुत ईर्ष्या व मनोमालिन्य था। जब मद्रास के गवर्नर नेपियर ने इस संबंध में शिकायत की तो मेयो ने लिखा. 'यदि इस प्रश्न को मद्रास की ओर से उठाया गया है तो आपको निश्चय ही भारत में एक भी ऐसा प्रात नहीं मिलेगा जो, अपने विचार से, अधिक धनराशि के लिए *उतना ही अच्छा पक्ष प्रस्तुत करने में समर्थ न हो जितना कि मद्रास द्वारा किया गया है।* सभी प्रांत पूर्णतया सतुष्ट होकर अपने-अपने ढंग से यह दिखा सकेंगे कि अन्य प्रांतो को बहुत अधिक धन दिया जा रहा है।'[175] यह सत्य था परंतु, साथ ही, यह भी यथार्थ था कि विभिन्न प्रातों को आवंटन का वितरण पुराने लिखित प्रमाणों के आधार पर किया गया था न कि वर्तमान अथवा भविष्य की आवश्यकताओं के आधार पर।

इसके *अलावा, प्रांतीय सरकारों को प्रशासन की वे शाखाएं : जैसे सामान्य* प्रशासन, मालगुजारी तथा उत्पाद शुल्क : नही दी गई जिनमे उनकी प्राथमिक रूप से दिलचस्पी थी। 'उनकी अपनी वर्तमान आय मे पर्याप्त वृद्धि करने में कोई दिलचस्पी नही थी, क्योकि इस वृद्धि से केवल भारत सरकार का ही लाभ होना था।'[176] सर चार्ल्स *ट्रेवीलियन का विचार था कि मेयो योजना के प्रति यह निर्णायक आपत्ति थी। उसका कहना था कि स्थानीय सरकारो के कार्य दृढता के साथ परिभाषित नही किए जा सके।* परंतु भारत सरकार के पास साम्राज्यिक हितों को प्रभावित करने वाले कुछ कार्य थे। जिनका संबंध सेना, वैदेशिक संबंध, लोक ऋण, डाक सेवा, आदि विभागो से था। इन कार्यों का ठीक प्रकार से सीमांकन होना चाहिए था और इनमे वार्षिक विनियोजन की *राशि निर्धारित की जानी चाहिए थी। इस प्रकार शेष कार्य और आय का शेष भाग* प्रातीय सरकारों के लिए बच रहता।[177]

मेयो ने मान लिया था कि वित्त के विकेंद्रीकरण द्वारा स्वशासन मे प्रशिक्षण की *व्यवस्था होगी और प्रातीय एवं स्थानीय संस्थाओं में यूरोपीय लोगो के संपर्क मे आकर भारतीयों को स्वशासन की शिक्षा मिलेगी। भारत मंत्री की यह धारणा थी कि सरकार* 'स्थानीय समुदायों की ओर से जो भी कदम उठाएगी उन पर स्थानीय लोगों की सामान्य रूप से सहमति प्राप्त कर लेगी।'[178] वास्तव मे 1871-72 के उपायो का अर्थ आय और व्यय की कुछ मदो का प्रातीय सरकारों को हस्तातरण मात्र था। विकेंद्रीकरण के साथ *नगरपालिकाओ तथा स्थानीय बोर्डों (लोकल बोर्डों) के माध्यम से वास्तविक स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था नहीं हुई।* 1871 तक नगरपालिकाओं मे निर्वाचित तत्व नहीं थे। स्थानीय निकायों मे सरकारी सदस्य बड़ी संख्या मे होते थे।[179] सर चार्ल्स ट्रेवीलियन ने स्पष्ट किया था कि वास्तविक विकेंद्रीकरण अंत मे 'प्रतिनिधि प्रणाली' का रूप ले लेता है। 'जब यह उद्देश्य प्राप्त हो गया हो तो देश को बिना कोई हानि पहुंचाए हुए सरकार

तथा शिक्षकों को चले जाने देना चाहिए।'[180] इन शब्दों की दबी प्रतिध्वनि दबी हुई आवाज मे भारतीयों के प्रतिनिधि संगठन ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन द्वारा पेश किए गए स्मरण पत्र में सुनाई पड़ती हैं।[181] स्मरण पत्र दाताओं का विचार था कि 'प्रत्येक प्रांत को एक सपूर्ण राज्य माना जाना चाहिए' और 'लोगों को प्रशासन मे यथासंभव व्यावहारिक हिस्सा लेने के लिए आमंत्रित किया जाना चाहिए।' कुछ साम्राज्यिक खर्चों जैसे सेना; लोक ऋण तथा गृह खर्चों को पूरा कर लेने के बाद शेष आय प्रांतीय सरकारों के लिए छोड़ दी जानी चाहिए और केंद्रीय सरकार को केवल सामान्य निरीक्षण अपने पास रखना चाहिए। परतु ऍंग्लो इडियन तथा स्वदेशी समाचार पत्रों ने अधिक विकेंद्रीकरण के लिए हो-हल्ला मचाया।[182] ऐसा अनुभव किया गया कि मेयो योजना सही दिशा मे उठाया गया कदम है, परतु वह बहुत प्रगतिशील न थी। वह संघीकृत वित्त प्रणाली की दिशा मे प्रगति की एक अवस्था मात्र थी। प्रतिनिधि प्रणाली जिसकी चर्चा ट्रैवीलियन ने की थी, साम्राज्य के अधिकांश प्रशासकों की दृष्टि से एक दूरस्थ सभावना थी। साम्राज्यवाद के मध्याह्न काल में ट्रैवीलियन जैसा व्यक्ति एक हल्की छाया मात्र था।

संदर्भ

1. आरगाइल से मेयो को, 6 जनवरी, 1871। मेयो कागजात, बडल 49, सख्या 1।
2. एच० डोडवेल के अनुसार 'सभवत 1858, मे होने वाला सबसे महत्वपूर्ण सवैधानिक परिवर्तन भारत मत्री के हाथ मे वित्तीय शक्तियो का केंद्रीयकरण था। हेनरी डोडवैल, 'ए स्कैच आफ हिस्ट्री आफ इडिया' 1858-1918'(लदन 1925), पृ० 32।
3. डलहौजी से जार्ज कूपर को, 23 सितबर, 1854। जे० जी० ए० बेअर्ड (सपादक) 'प्राइवेट लैटर्स आफ दि मारक्वेस आफ डलहौजी' (लदन, 1910), पृ० 321।
4. भारत मत्री से भारत सरकार को वित्त प्रेषण सख्या 43, 26 मार्च, 1860।
5. भारत मत्री से भारत सरकार को वित्त प्रेषण सख्या 1, 12 जनवरी, 1860; सख्या 85, 26 मई 1860।
6. सर आर० मोंटगोमरी, लेफ्टिनेंट गवर्नर, पंजाब से लार्ड कैनिंग को जिसमे कैनिंग द्वारा सी० वुड को लिखे गए पत्र को उद्धृत किया गया था, 25 अप्रैल, 1860। ई० आई० वैरिंगटन 'सर्वेंट आफ आल' II, पृ० 26। जे० विल्सन से सी० वुड को 11 जुलाई, 1859, वही, पृ० 171। सी० वुड से जे० विल्सन को 26 मार्च, 1860, वही पृ० 238।
7. भारत मत्री से भारत सरकार को, वित्त प्रेषण सख्या 122, 2 अगस्त, 1861। भारत सरकार से भारत मत्री को, वित्त प्रेषण सख्या 170, 23 सितबर, 1861।
8. भारत मत्री से भारत सरकार को वित्त प्रेषण सख्या 196, 16 दिसबर, 1861।
9. वही, 63, 17 मार्च, 1864।
10. वही, 63, 26 मई, 1864।
11. वही, 227, 26 सितंबर 1864। सदस्य सी० ट्रैवीलियन ने एक अन्य बात उठाई थी कि

दूसरी औपनिवेशिक सरकारों पर इस प्रकार का कोई नियंत्रण नहीं था। भारत मंत्री ने स्पष्ट किया था कि ब्रिटिश सरकार की औपनिवेशिक सेवा के नियमों की धारा 346 और 367 द्वारा औपनिवेशिक सरकारो (जहा पर प्रतिनिधि विधान सभाए नही थी) पर लगाए गए प्रतिबंध समान रूप से कठोर थे।

12 पूर्वोक्त स्थल।

13. तेज संचार व्यवस्था का एक परिणाम यह हुआ था कि प्रेस और व्यापारियो को जल्दी ही समाचार मिल जाते थे, जब कि बोझिल सरकारी संचार प्रणाली पीछे रह जाती थी। मेयो से आरगाइल को, 13 नवबर, 1870, मेयो कागजात, बडल 41, सख्या 311।

14. लार्ड क्रैनबोर्न 'हसार्ड', तृतीय सीरीज, C x C iv, 1074, C X C iv, 700 उद्धृत, ए० बी० कीथ, 'ए कास्टीट्यूशनल हिस्ट्री आफ इंडिया' (लदन, 1936) पृ० 168। सर सी० इल्बर्ट, 'दि गवर्नमेंट आफ इडिया' (आक्सफोर्ड, 1922) पृ० 105।

15. सी० वुड से लार्ड कैनिंग को, 9 जनवरी, 1861। वुड कागजात, आई० ओ० एल० जिल्द 6, पृ० 14 उद्धृत सी० एच० फिलिप्स (सपादक) 'दि एवोल्यूशन आफ इण्डिया एड पाकिस्तान' 1858-1947-सिलैक्ट डोक्युमेट्स' (लदन, 1962) पृ० 11-12।

16. सी० वुड से बी० फ्रेर को, 17 सितबर, 1860। जे० मार्टिन्यू, 'दि लाइफ एड कारेस्पाडेंस आफ सर बार्टल फ्रेर' (लदन, 1895), I पृ० 353।

17. *यह कैनिंग और बार्टल फ्रेर का निश्चित मत था, जिन्हे किसी भी प्रकार अति उग्रवादी नही कहा* जा सकता। बी० फ्रेर से सर सी० वुड को 22 अक्तूबर, 1860, वही, पृ० 355, लार्ड कैनिंग से सर सी० वुड को 24 अक्तूबर, 1860, पृ० 358।

18. मेयो से आरगाइल को 22 जुलाई, 1870। मेयो कागजात, बडल 40 सख्या 208। मेयो ने टिप्पणी करते हुए कहा कि यद्यपि यह प्रस्ताव बहुत ही अच्छा है, तथापि 'मेरा विचार है कि 25 वर्ष *के अनुभवी जिला अधिकारी को, जिसका जीवन तंबुओ और ताजा चेरियो पर बीता* है, लेफ्टिनेंट गवर्नरों और विभिन्न श्रेणियो मे आने वाले भूतपूर्व प्रभावशाली व्यक्तियों के समकक्ष स्थान देना मानसिक दृष्टि से आघातपूर्ण होगा•••।'

19. एम० नोर्थकोट से जे० लारेंस को 9 फरवरी, 1868। लारेंस कागजात, भारत मंत्री से जे० लारेंस को जिल्द, V संख्या 5।

20. हेनरी फासट, ससद सदस्य, कैंब्रिज विश्वविद्यालय में राजनीतिक अर्थशास्त्र का प्रोफेसर, 'इंडियन फाइनेंस' (लदन, 1880) पृ० 115। *भारतीय वित्त के विषय मे सामान्य ससद सदस्य की* अज्ञानता के बारे मे देखें, मेयो से नोर्थकोट के नाम पत्र, 3 मार्च, 1871, मेयो कागजात, बंडल 48 सख्या 61।

21. 'हिंदू पैट्रियट' (31 अगस्त, 1868) ने टिप्पणी की थी कि भारतीय वित्त के विषय में बहस 'प्रहसनमात्र' थी; 1868 के वित्त विवरण पर बहस के समय ससद के 630 सदस्यों मे केवल 30 उपस्थितथे'। इग्लिशमैन' (3 अगस्त, 1870) ने घोषणा की कि चूकि भारतीय वित्त से संबधित प्रश्नो की ससद मे उपेक्षा होती है, अत भारत का शासन वहीं से चलाया जाना चाहिए। यह नारा कि 'भारत का शासन भारत से ही होना चाहिए' सदैव लोकप्रिय रहा है (फ्रेंड आफ इण्डिया', 11 सितबर, 1862)।

22. देखें सव्यसाची भट्टाचार्य 'लेस्ने फेअरे इन इंडिया', 'दि इंडियन इकानामिक एंड सोशल हिस्ट्री रिव्यू' जिल्द 11 सख्या 1, जनवरी, 1965, पृ० 1-22।
23. देखें, आगे अध्याय 3।
24. वही।
25. मेयो से एम० नोर्थकोट को, 16 नवबर, 1870, मेयो कागजात, बडल 41, सख्या 315।
26. पूर्वोक्त स्थल, भूतपूर्व ऐंग्लो इडियन अपने नौकरो को 'कोई है' कहकर आवाज देते थे।
27 मेयो ने आरगाइल को 18 जनवरी, 1871, मेयो कागजात, बडल 42, सख्या 24।
28. मेयो से एम० नोर्थकोट को, 16 नवबर, 1870, मेयो कागजात, बडल 41, सख्या 315।
29 आर० टैंपिल से ओ० टी० बर्नी को 25 जुलाई, 1871 मेयो कागजात, बडल 61 (सख्या नही दी है)। प्रवर समिति मे भारत सरकार के सदस्यो और कर्मचारियो से पूछे गए प्रश्नो की भाषा 'उद्धत व आपत्तिजनक थी श्री एफ० (फासट) के तथाकथित प्रश्न वास्तव मे प्रश्न न होकर भारत सरकार पर अप्रत्यक्ष रूप से प्रहार थे।'
30 आरगाइल से मेयो को, 16 दिसबर, 1870, मेयो कागजात, बडल 48, सख्या 34।
31. मेयो से बी० डिजरायली को, 9 मई 1871, मेयो कागजात, बडल 49, सख्या 10।
32. रिचर्ड टैंपिल, 'मैन एड ईवेंट्स आफ माई टाइम इन इडिया', (लंदन, 1892) पृ० 187।
33. जे० विल्सन से एलिजा विल्सन को, 21 जुलाई, 1859 और जे० विल्सन से लार्ड कैनिंग को 25 अगस्त, 1859, ई० बैरिंगटन, पूर्वोद्धृत जिल्द 11, पृ० 181।
34. ए० बी० रुद्रा, 'दि वायसराय एड गवर्नर जनरल आफ इंडिया' (ओ० यू० पी०, 1940) पृ० 64-65।
35 आरगाइल के अनुसार यह ग्लैड्स्टन और सर चार्ल्स वुड (लार्ड हैलीफाक्स) का भी मत था। आरगाइल से मेयो को, 1 अक्तूबर, 1870, मेयो कागजात, बडल 48, सख्या 26।
36 आरगाइल से मेयो को 1 नवबर, 1871, मेयो कागजात, बडल 49, सख्या 19।
37. बी० फ्रेर से लार्ड कैनिंग को, 11 जून, 1861। मार्टिन्यू, पूर्वोद्धृत, I, पृ० 326-27। मेयो का भी यही मत था. 'मेरे विचार मे इग्लैंड से भेजे जाने वाले सदस्यो (एक को छोड़कर) को कोई विशेष सफलता नही मिली।' मेयो से आरगाइल को, 14 जुलाई, 1870, मेयो कागजात, बडल 40, सख्या 202।
38 बी० फ्रेर से सी० वुड को, 23 नवबर, 1860, मार्टिन्यू, पूर्वोद्धृत, I, पृ० 313।
39. 'हिंदू पेट्रिअट', 16 फरवरी, 1868, सपादकीय का शीर्षक था 'नया वित्त मत्री।'
40 'पूर्वोक्त स्थल', 1872 मे 'हिंदू पेट्रिअट' ने सुझाव दिया था कि किसी हिंदू को वित्तीय मामलो का सदस्य नियुक्त किया जाना चाहिए। 'यदि आप चाहें तो लोगो के स्वभाव, उनके जीवन के ढग तथा उनके पूर्वाग्रहों के विषय मे पूर्ण जानकारी से अनुपयुक्त, असह्य व अनुत्पादक करो की सभावना को रोका जा सकेगा।' 'हिंदू पेट्रिअट' 16 दिसबर, 1872।
41. आरगाइल से मेयो को, 1 नवबर 1871, मेयो कागजात, बडल 49, सख्या 19।
42. 'हाउस आफ कामस' मे सी० वुड का भाषण, 9 अगस्त, 1859। 'फाइनैंशियल स्टेटमेंट्स रिलेटिंग टु इडिया'' रिप्रिंटेड फ्राम हसार्ड्स पालियामेंटरी डिबेट्स', पृ० 281।
43. भारत मत्री से भारत सरकार को, वित्त सख्या 96, 30 सितबर, 1859।

44. भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त सख्या 83, 8 जून, 1862।
45. मेयो से सर डब्ल्यू० मैंसफिल्ड को, 11 मार्च, 1869, मेयो कागजात, वडल 34, सख्या 89।
46. वित्त कार्यविवरण, अक्तूबर, 1868। पृथक राजस्व सख्या 32, डब्ल्यू० आर० मेन्सफिल्ड द्वारा मेमो०, 28 अगस्त, 1868।
47. वित्त कार्यविवरण, अप्रैल, 1868, लेखा शाखा सख्या 82, डब्ल्यू० आर० मैंसफील्ड द्वारा मेमो० 5 अप्रैल, 1868।
48. मेयो से आरगाइल को, 9 जनवरी, 1871, मेयो कागजात, वडल 42, सख्या 13।
49. *देखें, सपादकीय, शीर्षक 'दि काउसिल विकम्स ए कैबिनेट फ्रैंड आफ इडिया', 1 अगस्त, 1861।*
50 एस० नोर्थकोट टु जे० लारेंस, 9 जनवरी, 1868, लारेंस कागजात, भारत मत्री से पत्र, जिल्द V, संख्या I।
51. एस० नोर्थकोट टु जे० लारेंस, 9 फरवरी, 1868, लारेंस कागजात, भारत मत्री से पत्र, जिल्द V, सख्या 5।
52. *सर कोर्टेन इल्वर्ट, 'दि गवर्नमेंट आफ इडिया', (लदन, 1922), पृ० 90-92।*
53. देखें आगे अध्याय 3।
54. बार्टल फ्रेर से सर सी० वुड को 10 अप्रैल, 1861। मार्टिन्यू, 'पूर्वोद्धृत 1, पृ० 336।
55. सर सी० वुड से बी० फ्रेर को 9 जून, 1861 और 18 फरवरी, 1861। मार्टिन्यू द्वारा उद्धृत, पूर्वोद्धृत, 1, पृ० 330-36। विधान परिषद मे मैसूर के राजकुमारो को अनुदान के विषय मे हुई आलोचना से सरकार को लज्जापूर्ण उलझन का सामना करना पड़ा था। विधान परिषद कार्यविवरण (पुरानी सीरीज) जिल्द VI, 1860, पृ० 1343-1402।
56 बी० फ्रेर से सी० वुड को 10 अप्रैल, 1861, मार्टिन्यू, पूर्वोद्धृत, I, 336।
57. सी० वुड से बी० फ्रेर को 17 अगस्त, 1861, मार्टिन्यू, पूर्वोद्धृत, I, 343।
58. 'विधि निर्माण के लिए गवर्नर जनरल की परिषद मे सदस्यो की सख्या को बढाया गया। सख्या कम से कम छ और अधिक से अधिक बारह हो सकती थी और इनकी नियुक्ति गवर्नर जनरल द्वारा दो वर्ष के लिए की जाती थी। इन अतिरिक्त सदस्यो मे कम से कम आगे गैर सरकारी अफसर अर्थात ऐसे व्यक्ति होते थे जो राज्य की सैनिक अथवा सिविल सेवा मे न हो।' सी० इल्बर्ट, पूर्वोद्धृत, पृ० 100।
59. सी० इल्बर्ट, पूर्वोद्धृत, पृ० 107।
60 देखें 'लोकमत' से सवधित अध्याय। 'हिंदू पेट्रिअट' 5 सितबर, 1860, 6 मार्च, 1868, 6 अप्रैल, 1868, 21 फरवरी, 1870, 11 जुलाई, 1870, 10 अप्रैल, 1871। 'सोम प्रकाश', 9 मार्च, 1868। आर० एन० पी० (बगाल) 1868, पृ० 107। 'जामे जमशेद', 15 फरवरी, 1869, 10 मार्च, 1869। आर० एन० पी० बबई (1869) पृ० 94, 133। वित्त कार्यविवरण जुलाई, 1860, सख्या 26। सचिव, ब्रिटिश इडिया एसोशिएशन से सचिव, बगाल सरकार को *3 फरवरी, 1868। 'वही, सख्या 35। ब्रिटिश इडिया एसोशिएशन से* भारत मत्री को याचिका, 1 फरवरी, 1868।
61. सी० ट्रैवीलियन द्वारा मेमो०, 20 मार्च, 1860, पी० पी० एच० सी० 1860, जिल्द 49, पृ०

112। यह ध्यान रखना चाहिए कि ट्रैवीलियन इंडियन काउंसिल एक्ट पारित होने से पहले की स्थिति के विषय मे कह रहा है।

62. वित्त कार्यविवरण 1867। राजस्व सख्या 21, भारत सरकार से भारत मत्री को 20 अप्रैल, 1867।
63. पूर्वोक्त स्थल।
64. भारत मत्री से भारत सरकार को, वित्त प्रेषण संख्या 96, 30 सितबर 1859।
65. भारत सरकार से भारत मत्री को, वित्त प्रेषण 26 नवबर, 1859, भारत मत्री से भारत सरकार को वित्त सख्या 33, 24 फरवरी, 1860।
66. गृह कार्यविवरण · सार्वजनिक 11 मार्च, 1861, सख्या 55। भारत सरकार द्वारा प्रस्ताव 11 मार्च, 1861।
67. गृह कार्यविवरण सार्वजनिक 11 मार्च, 1862 सख्या 7। भारत सरकार द्वारा प्रस्ताव 11 मार्च, 1861।
68. गृह कार्यविवरण . सार्वजनिक 6 नवंबर, 1863 सख्या 14—इसके द्वारा मार्च, 1862 के आदेश को रद्द किया गया और गृह विभाग के सचिव को आदेश दिया गया कि वह 'स्टाम्प' और 'सीमा शुल्क' शाखाओं को अपने नियत्रण मे लें।
69. पूर्वोक्त स्थल। सितबर, 1864 तक कुछ प्रातो पजाब, अवध, मध्य प्रात और ब्रिटिश बर्मा मे ये परिवर्तन नही हुए। डाकघर, तारघर और मालगुजारी पहले की भाति गृह विभाग के नियत्रण मे बने रहे।
70. भारत मत्री से भारत सरकार को, वित्त सख्या 1, 8 जनवरी 1863, भारत सरकार से भारत मत्री को, सैन्य विभाग प्रेषण सख्या 132, 19 मार्च, 1864।
71. भारत मत्री से भारत सरकार को, वित्त सख्या 156, 30 जून, 1864।
72. भारत मत्री से भारत सरकार को, वित्त संख्या 161, 30 जून, 1865।
63. गृह कार्यविवरण सार्वजनिक, दिसबर, 1867 सख्या 78 सचिव, सैन्य विभाग, एच डब्ल्यू० नोरमन 20 सितबर, 1867।
74. गृह कार्यविवरण सार्वजनिक, दिसबर, 1867, सख्या 60। ई० सी० बेले, सचिव, गृह विभाग।
75. भारत मत्री से भारत सरकार को, वित्त सख्या 96, 15 अप्रैल, 1865।
76. गृह कार्यकिवरण सार्वजनिक, दिसबर, 1857 सख्या 62। कर्नल सी० एच० डिकिंस, सचिव, लोक निर्माण विभाग का नोट 21 नवबर, 1867।
77. मेयो से आरगाइल को, 6 अप्रैल, 1870, मेयो कागजात, बडल 39, सख्या 100। ठीक वही 22 जुलाई, 1870, मेयो कागजात बडल 40, संख्या 208।
78. वित्त कार्यविवरण अप्रैल, 1865, व्यय सख्या 81। ई० एच० लशिंगटन, सचिव, वित्त विभाग का नोट, 18 फरवरी, 1865, फ्रैंड आफ इडिया, 15 मई, 1862।
79. भारत सरकार से भारत मत्री को, वित्त सख्या 55, 20 मार्च, 1865। 1862-65 की अवधि मे वित्त विभाग मे केवल एक कर्मचारी की परिवीक्षा पर नियुक्ति हुई। वित्त कार्यविवरण अप्रैल, 1865, व्यय सख्या 81। सचिव, विभाग का नोट 18 फरवरी, 1865।
80. भारत मत्री से भारत सरकार को, वित्त सख्या 141, 16 जून, 1865।

81. वित्त कार्यविवरण, अप्रैल, 1865, व्यय संख्या 82 । ई० एच० फास्टर का नोट, 20 फरवरी, 1865 ।
82. एडवर्ड ह्यूजेज. 'सर चार्ल्स ट्रैवीलियन एंड सिविल सर्विस रीफार्म्स' 1853-55' 'दि इंग्लिश हिस्टारिकल रिव्यू', जिल्द L XIV, 1949 खंड 1 पृ० 53, खंड 11 पृ० 206 । वित्त कार्यविवरण अप्रैल, 1865, व्यय संख्या 83, सी० ई० ट्रैवीलियन द्वारा मेमो०, 23 फरवरी, 1865 ।
83 वही, संख्या 81, ई० एच० लशिंगटन, सचिव, वित्त विभाग का नोट, 1865 ।
84. पूर्वोक्त स्थल ।
85. पूर्वोक्त स्थल ।
86. वित्त कार्यविवरण, अप्रैल, 1865, व्यय संख्या 83, सी० ई० ट्रैवीलियन द्वारा मेमो, 23 फरवरी, 1865 ।
87 मेयो से बी० फ्रेर को, 6 दिसंबर 1869, मेयो कागजात, बंडल 27, संख्या 345, मेयो से आरगाइल को 2 अक्तूबर, 1869, मेयो कागजात, बंडल 37, संख्या 265।
88 वित्त कार्यविवरण, 17 अगस्त, 1860, लेखा शाखा संख्या 93 (ए) ।
89 पूर्वोक्त स्थल ।
90. जे० विल्सन से डब्ल्यू० बेजहाट को, 19 जुलाई, 1860, डब्ल्यू० बेजहाट द्वारा उद्धृत, 'लिटरेरी स्टडीज' (लंदन, 1879), जिल्द I, पृ० 401 । सैन्य विद्रोह द्वारा पुरानी प्रणाली की वित्तीय दुर्बलताएं प्रकट हो गई थी। सैन्य विद्रोह ने 'यह भी स्पष्ट कर दिया कि एक अभिज्ञ एवं दूरदर्शी पद्धति और भविष्य में व्यय के . विशेष रूप से सैन्य विभाग से संबंधित विश्वसनीय प्राक्कलनों के निर्माण में अधिक प्रगति नहीं हुई थी'''फलत. उनमें (1860 से पहले के प्राक्कलनों में) उस स्थिति में जब कि व्यय की दर में निरंतर परिवर्तन हो रहे थे, सदैव ही त्रुटियां रहती थी । सैन्य विद्रोह द्वारा उत्पन्न गड़बड़ी में ये त्रुटियां और अधिक बढ़ गईं ।
91. वित्त कार्यविवरण दिसंबर, 1860, मद्रास के गवर्नर सी० ई० ट्रैवीलियन का मेमो०, 12 मई, 1860 । अपने 25 मई, 1859 तथा 13 जुलाई, 1859 के मेमो० में ट्रैवीलियन ने सुझाव दिया था कि ब्रिटिश बजट प्रणाली भारतीय वित्त संगठन में अपनाई जानी चाहिए; ब्रिटिश वित्त विभाग में अपने लंबे अनुभव के कारण ट्रैवीलियन भी विल्सन की भांति वहां की वित्त प्रणाली से परिचित था ।
92. वित्त कार्यविवरण, 4 मई, 1860, संख्या 13 । वित्त विभाग में भारत सरकार का प्रस्ताव, 7 अप्रैल 1860 ।
93. वही ।
94. वही, वित्त कार्यविवरण, 4 मई, 1860, संख्या 14, अकाउंटेंट जनरल से वित्त विभाग के सचिव के नाम स्मरण पत्र ।
95. वित्त कार्यविवरण, 11 मई, 1860; संख्या 26 । भारत सरकार द्वारा प्रस्ताव, 11 मई, 1860 ।
96. वित्त कार्यविवरण, 18 अगस्त, 1860, संख्या 93 (ए) । बजट समिति की रिपोर्ट 30 जुलाई, 1860 ।

97. पूर्वोक्त स्थल ।
98. वही । वित्त विभाग में भारत सरकार द्वारा प्रस्ताव, 18 अगस्त, 1860 । संपूर्ण भारत में लेखा परीक्षक प्रारंभिक विस्तृत लेखा परीक्षण और आडिटर जनरल अंतिम विनियोग लेखा परीक्षण करेंगे, स्थानीय लेखाकारों पर लेखाओं के मिलान और समायोजन का उत्तरदायित्व होने के साथ-साथ आडिटर जनरल को अंतिम लेखा परीक्षण के लिए विविध विवरण भेजने की जिम्मेदारी होगी । सिविल लेखा परीक्षक अपनी अपनी स्थानीय सरकारों के वेतनाधिकारी (पे मास्टर) भी होंगे और विभिन्न राजकोषों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए धन के हस्तांतरण का नियमन करेंगे । प्रत्येक वेतनाधिकारी वित्त विभाग के प्रति और प्रत्येक सवितरक अधिकारी अथवा विभाग वेतन अधिकारी के प्रति उत्तरदाई होता था ।
99. भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त संख्या 140, 14 सितंबर, 1860 ।
100. भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त 208, अक्तूबर, 1860; भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त 52, 8 अप्रैल, 1861 ।
101. वित्त कार्यविवरण, 14 नवंबर 1860 । बजट समिति की रिपोर्ट (छठी), 27 अक्तूबर, 1860 । वित्त विभाग मे भारत सरकार का प्रस्ताव, 15 नवंबर, 1860 । यद्यपि भारतीय लेखाओं के लिए प्राक्कलन फार्मों के परिवर्तन किए गए, तथापि भारत मंत्री के विरोध के कारण लेखे जिस रूप मे पेश किए जाते थे, उसमे अधिक परिवर्तन नही किए जा सके । भारत मंत्री व्ययों के वर्गीकरण को यथासंभव पुराने ही रूप मे बनाए रखना चाहता था जिससे कि पिछले वर्षों के आंकड़ो की तुलना हो सके । भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त संख्या 171, 25 सितंबर, 1861 । भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त संख्या 68, 8 मई, 1862 और वित्त संख्या 31, 25 फरवरी, 1863 । गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट 1858 के अंतर्गत सपरिषद गवर्नर जनरल के लिए भारत मंत्री के पास लेखा भेजना आवश्यक था । 1860 से इस लेखा के अलावा सपरिषद गवर्नर जनरल भारत मंत्री के पास नियमित रूप से अपने प्रेषण मे उन उपकरणों को स्पष्ट करता था जिनकी वजह से राजस्व और व्यय की अनुमति और वास्तविक राशियों मे अंतर होता था । यह संसद के सामने पेश किए जाने वाले लेखा संबंधी विवरणों की भांति प्रकाशित नही किया जाता था । भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त संख्या 80, 4 अप्रैल, 1860 ।
102. एक विचारधारा के अनुसार यह सुविधाजनक था क्योंकि अप्रैल के अंत मे दक्षिण पश्चिम मानसून के आते ही नौ परिवहन का मौसम समाप्त हो जाता था ।
103. भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त संख्या 223, 27 सितंबर, 1870 ।
104. वही, 89, 19 अप्रैल, 1866 ।
105. वही, 154, 25 जून, 1868; भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त संख्या 413, 14 जून, 1869, भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त संख्या 87, 29 मार्च, 1870 ।
106. आरगाइल जब वित्तीय वर्ष को 'प्राकृतिक वर्ष के अनुरूप' बनाने की बात करता है तो संभवत: वह फसल काटने के समय के आधार पर निर्धारित होने वाले वर्ष की ओर संकेत करता है । आरगाइल से मेयो को, 9 अगस्त, 1870, मेयो कागजात, बंडल 48, संख्या 23 ।
107 वित्त कार्यविवरण जून, 1865 । लेखा शाखा संख्या 83 । वित्त विभाग, भारत सरकार से

आडिटर एड अकाउटेंट जनरल आफ इंडिया तथा स्थानीय लेखाकारो के नाम परिपत्र, 9 जून, 1865 ।

108. वित्त कार्यविवरण, जनवरी, 1869 । लेखा शाखा संख्या 14, ई० एच० लशिगटन, सचिव, वित्त विभाग से सभी अधीनस्थ सरकारो के महालेखाकारो को, 21 अक्तूबर, 1869 । यदि भारत सरकार को किसी स्थानीय सरकार के बजट प्राक्कलन, जिस वर्ष के लिए बजट तैयार किया जाना होता था, उससे पिछले वर्ष की 1 जनवरी तक प्राप्त नही होते थे तो भारत सरकार का वित्त विभाग स्वय उस स्थानीय सरकार के बजट प्राक्कलन तैयार करता था ।

109. स्थानीय महालेखाकार बजट आवटन से विचलन को रोकते थे और इसके विषय मे उच्चतम सरकार को सूचना देते थे । वित्त कार्यविवरण, मई, 1869, लेखा शाखा, संख्या 55 । सचिव, वित्त विभाग, भारत सरकार से महालेखाकार को, 25 मई, 1869 ।

110 वित्त कार्यविवरण, मई, 1869, पृथक राजस्व संख्या 34, गवर्नर-जनरल आफ इंडिया से सभी स्थानीय सरकारो के प्रधानो को, 13 मई, 1869 ।

111. वित्त कार्यविवरण, मई, 1863, संख्या 15 । सचिव, वित्त विभाग से भारत सरकार के आडिटर जनरल को, 6 मई, 1863 ।

112. वित्त कार्यविवरण, अप्रैल 1868, लेखा शाखा 26, कंप्ट्रोलर जनरल आफ अकाउट्स द्वारा पत्रक, 25 मार्च, 1867 ।

113. वित्त कार्यविवरण, मार्च, 1863, प्रकीर्ण संख्या । सी० ई० ट्रैवीलियन द्वारा मेमो०, 11 फरवरी, 1863, भारत सरकार से भारत मत्री को वित्त संख्या 32, 4 मार्च, 1863 । भारत मत्री से भारत सरकार को, वित्त संख्या 131, 25 जुलाई, 1863 ।

114. वित्त कार्यविवरण, मई, 1865, लेखा शाखा संख्या 113, वित्त विभाग मे भारत सरकार द्वारा प्रस्ताव, 20 सितंबर, 1865 । वित्त कार्यविवरण, जून, 1865 । व्यय संख्या 246 । एम० एच० फास्टर से सचिव, वित्त विभाग को, 27 मई, 1865 । 1866 मे रेल विभाग मे लेखा परीक्षण की नई व्यवस्था प्रारंभ की गई । बगाल, बबई तथा मद्रास मे रेल विभाग के लेखा परीक्षण के लिए तीन रायल इजीनियर अफसर तथा कुछ मातहत कर्मचारी नियुक्त किए गए । अतिम लेखा परीक्षण केंद्रिय लोक निर्माण एव वित्त विभाग द्वारा किया जाता था । भारत सरकार से भारत मत्री को, वित्त संख्या 215, 28 सितंबर, 1866 । रेल विभाग के लेख के सबध मे विनियोजन लेखा परीक्षण का प्रारभ 1867 मे हुआ था । भारत सरकार से भारत मत्री को, वित्त संख्या 9, 8 जनवरी 1867 । मेयो को रेल विभाग मे लेखा परीक्षण का सुधार करने की दिशा मे अपने प्रयत्नो मे सफलता नही मिली । भारत सरकार से भारत मत्री को वित्त संख्या 75, 29 अप्रैल, 1871 ।

115. मेयो से बार्टल फ्रेर को, 6 दिसबर, 1869, मेयो कागजात, बडल 37, संख्या 345 ।

116. 3 व 4 विल IV, कैप 85, अनुच्छेद 59 ।

117. 1804 का विनियम, अनुच्छेद 23 ।

118. जे० विल्सन से डब्ल्यू० बेजहाट को, 19 जुलाई, 1860 । बैरिंगटन, पूर्वोद्धृत, II, पृ० 303 ।

119. वित्त कार्यविवरण, 8 मई, 1861, संख्या 7; 23 जुलाई, 1861, संख्या 158, गृह कार्यविवरण, 30, 1862, सार्वजनिक (बी) संख्या 211-13 ।

120. 24 व 25 विक्टो० चैप० 67 अनुच्छेद 42।
121. 'फ्रेंड आफ इंडिया' 2 मई, 1861।
122. वित्त कार्यविवरण, दिसंबर, 1860, पृ० 3089, सर सी० ई० ट्रैवेलियन द्वारा मेमो०, 13 जुलाई, 1859।
123 वित्त कार्यविवरण, दिसंबर, 1860, लेखा शाखा संख्या, सर सी० ई० ट्रैवेलियन का मेमो०, 12 मई, 1860।
124 पूर्वोक्त स्थल।
125. कैनिंग से जे० विल्सन को, 23 अप्रैल, 1860, बैरिंगटन, पूर्वोद्धृत, जिल्द II, पृ० 263।
126. कैनिंग से जे० विल्सन को, 24 जुलाई, 1860, बैरिंगटन, पूर्वोद्धृत', जिल्द II, पृ० 301।
127. भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त संख्या 74, 10 मई, 1860।
128. वित्त कार्यविवरण, 16 मार्च, 1861, लेखा शाखा संख्या 198-204।
129. वित्त कार्यविवरण, 16 मार्च, 1861, लेखा शाखा संख्या 197, सी० एच० लशिंगटन, सचिव वित्त विभाग, भारत सरकार से सचिव, बंगाल सरकार को, 16 मार्च, 1861।
130. पी० एन० बनर्जी, 'प्राविंशियल फाइनेंस इन इंडिया', (लंदन, 1929) पृ० 23-27। इस पुस्तक में जे० एन० सिलने द्वारा एकत्रित प्रलेखों, 'हिस्ट्री आफ प्राविंशियल अरेंजमेंट्स', (कलकत्ता, 1887) से उदाहरण दिए गए हैं।
131. वित्त कार्यविवरण, अक्तूबर, 1867, लेखा शाखा संख्या 22। डब्ल्यू० एन० मेसी से गवर्नर, लेफ्टिनेंट गवर्नरों और चीफ कमिश्नरों को 21 फरवरी, 1866।
132. वही लेखा शाखा संख्या 22, सी० बीडन से डब्ल्यू० एन० मेसी को, 8 मार्च, 1867।
133. वही बी० फ्रेर, बंबई का गवर्नर, मेमो० दिनांक 15 नवंबर, 1866।
134 वही ई० ड्रमंड, पश्चिमोत्तर प्रांत का लेफ्टिनेंट गवर्नर से डब्ल्यू० एन० मेसी को 8 मार्च, 1866। डब्ल्यू० टी० डेनिसन, मद्रास का गवर्नर, का मेमो० 23 मार्च, 1866।
135. भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त संख्या 209, 19 सितंबर, 1867।
136. डब्ल्यू० एन० मेसी से जान लारेंस को, 10 फरवरी, 1866, ठीक वही, 12 फरवरी, 1866। लारेंस कागजात, परिषद के सदस्यों से पत्र, जिल्द 2, 1866, संख्या 8 और 8 (ए)।
137. वित्त कार्यविवरण, अक्तूबर, 1867, लेखा शाखा संख्या 23, कर्नल आर० स्ट्रैची का नोट, 17 अगस्त, 1867।
138. इस प्रकार के मतभेदों का एक उदाहरण बंबई के गवर्नर बी० फ्रेर और गवर्नर जनरल की परिषद के सदस्य सी० ट्रैवेलियन के बीच बंबई में लोक निर्माण से संबंधित व्यय पर झगड़ा था। उस समय भारत मंत्री सी० वुड ने टिप्पणी करते हुए लिखा था कि 'मेरा विचार है कि भारत सरकार का वित्त पर कठोर 'सामान्य' नियंत्रण होना चाहिए' परंतु उसे हर कहीं छोटे-छोटे कार्यों में अपने आपको नहीं उलझा लेना चाहिए। सी० वुड से जे० लारेंस को, 17 अक्तूबर, 1864। लारेंस कागजात, भारत मंत्री से पत्र, जिल्द 1, संख्या 56। तथापि तत्कालीन कानूनी प्रतिबंधों के होते हुए उच्चतम सरकार का निरंतर हस्तक्षेप आवश्यक था।
139. गृह कार्यविवरण, दिसंबर, 1867 सार्वजनिक संख्या 62, कर्नल सी० एच० डिकिंस, सचिव, लोक निर्माण विभाग का नोट, 21, नवंबर, 1867। नियमानुसार स्थानीय सरकार को व्यय

की छोटी से छोटी मद के लिए सपरिषद गवर्नर जनरल की पूर्व अनुमति लेनी होती थी। ये नियम बजट और लेखा परीक्षण की नई प्रणाली लागू करने से पहले बनाए गए थे और नियंत्रण की दृष्टि से आवश्यक थे, परंतु कालांतर में वे कटक बन गए।

140. वित्त कार्यविवरण, अक्तूबर, 1867, लेखा शाखा 23, कर्नल आर० स्ट्रैची का नोट, 17 अगस्त, 1867।

141. राजस्व से प्रांतीय सरकारों को हस्तांतरित किया जाने वाला भाग था, मालगुजारी का सोलहवां हिस्सा, आय कर से प्राप्ति का चौथा हिस्सा, और लाइसेंस कर का चौथा हिस्सा। स्ट्रैची योजना के अनुसार स्थानीय सरकारों को हस्तांतरित खर्चों की राशि 76 लाख पौंड और हस्तांतरित राजस्व की राशि 88 लाख पौंड थी। इस प्रकार स्थानीय लोक निर्माण कार्यों के लिए लगभग 12 लाख पौंड बच रहते थे।

142. वित्त कार्यविवरण, अक्तूबर, 1867, लेखा शाखा संख्या 26, डब्ल्यू० एन० मैसी द्वारा मेमो० 17 अगस्त, 1867।

143. वित्त कार्यविवरण, अप्रैल, 1868, लेखा शाखा संख्या 36। चीफ कमिश्नर मध्य प्रांत के सचिव से भारत सरकार के वित्त विभाग के सचिव को, 22 अक्तूबर, 1867। वही संख्या 39, पश्चिमोत्तर प्रांत के लेफ्टिनेंट गवर्नर का कार्यवृत्त⋯भारत सरकार को संप्रेषित दिनांक 21 नवंबर, 1867। 'वही' संख्या 40, 44 व 45। ब्रिटिश बर्मा, अवध और पंजाब की सरकारों से पत्र। अधिकांश स्थानीय सरकारों का विचार था कि योजना ठीक थी, परंतु अधिक आगे नहीं जाती थी।

144. वित्त कार्यविवरण, अक्तूबर, 1867, लेखा शाखा संख्या 74, एच० एम० ड्यूरेंड 7 अक्तूबर, 1867।

145. पूर्वोक्त स्थल।

146. वित्त कार्यविवरण, अप्रैल, 1868, लेखा शाखा संख्या 48, फोर्ट सैंट जार्ज के अध्यक्ष का मेमो०, 15 फरवरी, 1868।

147. पूर्वोक्त स्थल।

148. वित्त कार्यविवरण, अक्तूबर, 1867, लेखा शाखा संख्या 73, गवर्नर जनरल द्वारा मेमो,० 27 सितंबर, 1867।

149. वित्त कार्यविवरण, अक्तूबर, लेखा शाखा संख्या 73, गवर्नर जनरल द्वारा मेमो०, 27 सितंबर, 1867।

150. वित्त कार्यविवरण, अप्रैल, 1868, लेखा शाखा संख्या 48, बोर्ड आफ रेवेन्यू के सचिव से फोर्ट सैंट जार्ज की सरकार के मुख्य सचिव को, 27 जनवरी, 1868।

151. मेयो से एच० फिट्ज़ेराल्ड को, 20 अगस्त, 1870, मेयो कागजात, बंडल 40, संख्या 239।

152. मेयो से डब्ल्यू० आर्बुथनाट को, 15 मार्च, 1871, मेयो कागजात, बंडल 42, संख्या 68।

153. वही, 13 सितंबर, 1868, मेयो कागजात, बंडल 33, संख्या 6।

154. मेयो से आरगाइल को, 31 जनवरी, 1869, मेयो कागजात, बंडल 34, संख्या 23।

155. मेयो से बी० फेर को, 6 फरवरी, 1869, मेयो कागजात, बंडल 37, संख्या 345।

156. मेयो से सर एस० फिट्ज़ेराल्ड को, 16 नवंबर, 1869, मेयो कागजात, बंडल 37, संख्या 313।

157. वित्त कार्यविवरण, जनवरी, 1871, लेखा शाखा सख्या 22, गवर्नर जनरल का मेमो०, 23 जून, 1870।
158. मेयो से लार्डर नेपियर आफ मकिस्ट्रन को, 13 मार्च, 1870, मेयो कागजात, बडल 35, सख्या 74।
159 वित्त कार्यविवरण, जनवरी, 1871, लेखा शाखा सख्या 22, गवर्नर जनरल का मेमो०, 23 जून, 1870।
160. मेयो से एस० फिट्जेराल्ड को, 5 जनवरी, 1870 को, मेयो कागजात, बडल 42, सख्या 10।
161. मेयो से एच० ड्यूरेंड को, 29 अप्रैल, 1870, मेयो कागजात, बडल 39, संख्या 107।
162 पूर्वोक्त स्थल।
163 मेयो से सर डब्ल्यू० म्योर को, 2 सितबर, 1870, मेयो कागजात, बडल 40, सख्या 255।
164. पूर्वोक्त स्थल।
165 मेयो से आरगाइल को, 10 अप्रैल, 1871, मेयो कागजात, बडल 43, सख्या 91।
166 टैंपिल ने सुझाव दिया था (7 नवबर, 1868 का कार्यवृत्त) कि मद्रास और बवई की सरकारो को साम्राज्यिक खर्चों के प्रति अशदान को बचाकर इनके अधिकार क्षेत्र मे आने वाले बाकी राजस्व और व्ययो के सबध मे स्वतत्रता दी जा सकती है। प्रतिष्ठानो के ऊपर केंद्रीय नियत्रण शिथिल किया जाना था, परतु ऊचे वेतनो और सामान्य वेतनमानों के सबध मे 'नियत्रण' रहना था। वास्तव मे योजना का उद्देश्य यही था कि प्रेसीडेंसी सरकारो को राजस्व का छठा भाग दिया जाय (भारत सरकार के सामान्य नियत्रण के साथ) और कुल राजस्व के छ: समान हिस्सों मे से पाच पर भारत सरकार का पूर्ण नियत्रण रहे।
167. मेयो से आरगाइल को, 1 फरवरी, 1869, मेयो कागजात, बडल 34, सख्या 24।
168 वही, 19 अगस्त, 1870, मेयो कागजात, बडल 40, सख्या 237।
169 वित्त कार्यविवरण, जनवरी, 1871, लेखा शाखा सख्या 22, गवर्नर जनरल का मेमो० (23जून, 1870)। वही, सख्या 25 और आगे। आर० चैपमैन, सचिव, वित्त विभाग से स्थानीय सरकारो को पत्र, 17 अगस्त, 1870। वही, सख्या 48, गवर्नर जनरल इन काउसिल द्वारा प्रस्ताव, 14 दिसबर, 1870। वही, सख्या 49, भारत सरकार से भारत मत्री को, वित्त सख्या 265, 14 दिसबर, 1870। योजना तैयार करने मे टैंपिल और जान स्ट्रैची (रिचर्ड स्ट्रैची का भाई) की भूमिकाए महत्वपूर्ण थी। वही सख्या 20, टैंपिल का मेमो०, 23 जून, 1870; वही सख्या 21, जे० स्ट्रैची का मेमो०, 15 जुलाई, 1870।
170 प्रारभ मे मेयो ने सुझाव दिया था (मेमो०, 23 जून, 1870) कि हस्तातरिक विभागो का खर्च पूरा करने के लिए उत्पादन शुल्क से प्राप्त राजस्व प्रातीय सरकारो को हस्तातरित कर दिया जाना चाहिए, परतु बाद मे यह विचार छोड दिया गया। 1871-72 के बाद प्रातीय सेवाओ के लिए केंद्रीय बजट से एक मुश्त दिया जाने वाला अनुदान 46,88,711 पौंड था। प्रातीय सरकारो मे इनका विभाजन इस प्रकार था : बगाल, 11,68,592 पौंड; बवई, 8,80,075 पौंड; मद्रास, 7,39,488 पौंड; पजाब, 5,16,221 पौंड; पश्चिमोत्तर प्रात, 6,40,792 पौंड, बर्मा, 2,75,332 पौंड; मध्य प्रात, 2,61,263 पौंड; अवध, 2,06,948 पौंड। विभिन्न प्रातो मे पिछले वित्तीय वर्ष अर्थात 1870-71 मे इन्ही सेवाओ पर व्यय के आधार पर

आवटन का अनुपात निर्धारित हुआ था। 1871-72 मे इन सेवाओ के लिए कुल आवटन पिछले वर्ष मे व्यय की तुलना मे कम था। इस प्रकार साम्राज्यिक राजस्व मे 3,30,800 पौंड की बचत कर ली गई थी। वित्त कार्यविवरण, जनवरी, 1871, लेखा शाखा संख्या 48, भारत सरकार का प्रस्ताव, 14 दिसंबर, 1871।

171. मद्रास, बबई और पश्चिमोत्तर प्रात की सरकारो ने अधिक धनराशि के आवटन की आवश्यकता और भविष्य मे बढने वाले खर्चों को पूरा करने के लिए राजस्व कुछ निरंतर बढती आय देने वाले स्रोतो के हस्तांतरण की वाछनीयता के सबध में आग्रह किया। वित्त कार्यविवरण जनवरी, 1871, लेखा शाखा सख्या 37, सचिव, फोर्ट सेंट जार्ज सरकार से सचिव, *वित्त विभाग को, 27 सितबर, 1870; वही, सख्या 40, बबई के गवर्नर का मेयो,* 1 अक्तूबर, 1870, वही, सख्या 33, सचिव, एन० डब्ल्यू० पी० सरकार से सचिव, वित्त विभाग को 15 सितंबर, 1870। वही, संख्या 43, पजाब के लेफ्टिनेंट गवर्नर के मेमो०, 22 नवबर, 1870 और 10 जून, 1870। फिर भी कुल मिलाकर योजना का प्रातीय सरकारो ने हार्दिक स्वागत किया।

172. मेयो से नेपियर आफ मकिस्ट्रन को 4 जनवरी, 1870, मेयो कागजात, बडल 42, सख्या 7।

173. आरगाइल से मेयो को, 3 मार्च, 1871, मेयो कागजात, बडल 49, संख्या 5।

174. चूकि हमारा विषय प्रातीय वित्त अध्ययन नही है इसलिए हमारे लिए स्थानीय करो के इतिहास मे जाना आवश्यक नही है। चुगी शुल्क (मेयो से जे० स्ट्रैची को 20 नवबर, 1870, मेयो कागजात, बडल 41, सख्या 321) और गृह कर (देखें 'इडियन इकानामिस्ट', 21 सितबर, 1871) बबई मे अलोकप्रिय थे। 'टाइस आफ इडिया' सपादक के नाम जे० एम० मिल का पत्र, 'इंडियन इकानामिस्ट' 21) अक्तूबर 1871, पृ० 63 में उद्धृत) बहुत दिलचस्प है, मिल का विचार था कि जहा गृह कर पूर्ण रूप से न्यायोचित था, वहा जनसाधारण के उपभोग की वस्तुओ पर चुगी शुल्क आपत्तिजनक था, *'मैं यह तो नही कहता कि भारत जैसे देश मे जहा* उन करो को लगा पाना कठिन है जिनके लोग आदी नही हैं, वित्तीय आवश्यकता के समय भी इन्हें न्यायोचित नही ठहराया जा सकता, परतु मेरा यह निश्चित मत है कि यह परम सकट की स्थिति मे ही किया जाना चाहिए। मालगुजारी पर शिक्षा और सडक उपकर (सेस) को राजस्व के स्थाई बदोबस्त की व्यवस्था का उल्लघन माना गया था (सड़क उपकर विधेयक के विषय मे देखे, 'हिंदू पेट्रियट', 5 जून, 12 जून और 19 जून, 1871, शिक्षा तथा सड़क उपकर लगाकर जमीदारो पर किए जाने वाले अन्याय के लिए देखें, वही, 23 जनवरी, 1871। 6 फरवरी, 1871, 10 जुलाई, 1871)। सरकारी मत के अनुसार सडक उपकर के रूप मे जमीदारो पर वही भार डाला गया था जिससे वे 1793 से बचते आ रहे थे। (देखे सर जी० कंपबैल, 'मेमोरीज आफ माई इंडियन कैरियर' लदन 1893, जिल्द II, पृ० 210)। पश्चिमोत्तर प्रात के विषय मे देखें, वित्त कार्यविवरण, जनवरी, 1871, सख्या 47, एन० डब्ल्यू० पी० की स्थानीय कराधान समिति की रिपोर्ट, 12 नवबर, 1870।

175. मेयो से नेपियर को, 4 जनवरी, 1871, मेयो कागजात, बडल 42, सख्या 7।

176 डब्ल्यू० एम० मेयर, *'मेमोरेंडम आन दि फाइनेंशियल पावर्स आफ दि गवर्नमेंट आफ इंडिया एड* प्राविशियल गवर्नमेंट्स, फार दि रायल कमीशन आन डिसेंट्रलाइजेशन' (शिमला, 1907),

आवटन का अनुपात निर्धारित हुआ था । 1871-72 मे इन सेवाओ के लिए कुल आवंटन पिछले वर्ष मे व्यय की तुलना मे कम था । इस प्रकार साम्राज्यिक राजस्व मे 3,30,800 पौंड की बचत कर ली गई थी । वित्त कार्यविवरण, जनवरी, 1871, लेखा शाखा सख्या 48, भारत सरकार का प्रस्ताव, 14 दिसबर, 1871 ।

171. मद्रास, बबई और पश्चिमोत्तर प्रात की सरकारो ने अधिक धनराशि के आवटन की आवश्यकता और भविष्य मे बढने वाले खर्चों को पूरा करने के लिए राजस्व कुछ निरतर बढती आय देने वाले स्रोतो के हस्तांतरण की वाछनीयता के सबध में आग्रह किया । वित्त कार्यविवरण जनवरी, 1871, लेखा शाखा सख्या 37, सचिव, फोर्ट सेंट जार्ज सरकार से सचिव, वित्त विभाग को, 27 सितबर, 1870; वही, सख्या 40, बबई के गवर्नर का मेमो, 1 अक्तूबर, 1870, वही, सख्या 33, सचिव, एन० डब्ल्यू० पी० सरकार से सचिव, वित्त विभाग को 15 सितबर, 1870 । वही, सख्या 43, पजाब के लेफ्टिनेंट गवर्नर के मेमो०, 22 नवबर, 1870 और 10 जून, 1870 । फिर भी कुल मिलाकर योजना का प्रातीय सरकारो ने हार्दिक स्वागत किया ।

172. मेयो से नेपियर आफ मर्किस्टन को 4 जनवरी, 1870, मेयो कागजात, बडल 42, सख्या 7 ।

173. आरगाइल से मेयो को, 3 मार्च, 1871, मेयो कागजात, बडल 49, सख्या 5 ।

174. चूकि हमारा विषय प्रातीय वित्त अध्ययन नही है इसलिए हमारे लिए स्थानीय करो के इतिहास मे जाना आवश्यक नही है । चुगी शुल्क (मेयो से जे० स्ट्रैची को 20 नवबर, 1870, मेयो कागजात, बडल 41, सख्या 321) और गृह कर (देखें 'इडियन इकानामिस्ट', 21 सितबर, 1871) बबई मे अलोकप्रिय थे । 'टाइस आफ इडिया' सपादक के नाम जे० एम० मिल का पत्र, 'इडियन इकानामिस्ट' 21) अक्तूबर 1871, पृ० 63 मे उद्धृत) बहुत दिलचस्प है; मिल का विचार था कि जहा गृह कर पूर्ण रूप से न्यायोचित था, वहा जनसाधारण के उपभोग की वस्तुओं पर चुगी शुल्क आपत्तिजनक था, 'मैं यह तो नही कहता कि भारत जैसे देश मे जहा उन करो को लगा पाना कठिन है जिनके लोग आदी नहीं हैं, वित्तीय आवश्यकता के समय भी इन्हे न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता, परतु मेरा यह निश्चित मत है कि यह परम सकट की स्थिति मे ही किया जाना चाहिए । मालगुजारी पर शिक्षा और सड़क उपकर (सेस) को राजस्व के स्थाई बदोबस्त की व्यवस्था का उल्लघन माना गया था (सडक उपकर विधेयक के विषय मे देखें, 'हिंदू पेट्रिअट', 5 जून, 12 जून और 19 जून, 1871, शिक्षा तथा सडक उपकर लगाकर जमीदारो पर किए जाने वाले अन्याय के लिए देखें, वही, 23 जनवरी, 1871 । 6 फरवरी, 1871, 10 जुलाई, 1871) । सरकारी मत के अनुसार सडक उपकर के रूप मे जमीदारो पर वही भार डाला गया था जिससे वे 1793 से बचते आ रहे थे । (देखें सर जी० कैंपबैल, 'मेमोरीज आफ माई इडियन कैरियर' लदन 1893, जिल्द II, पृ० 210) । पश्चिमोत्तर प्रात के विषय मे देखें, वित्त कार्यविवरण, जनवरी, 1871, सख्या 47, एन० डब्ल्यू० पी० की स्थानीय कराधान समिति की रिपोर्ट, 12 नवबर, 1870 ।

175. मेयो से नेपियर को, 4 जनवरी, 1871, मेयो कागजात, बडल 42, सख्या 7 ।

176 डब्ल्यू० एम० मेयर, 'मेमोरेंडम आन दि फाइनेंशियल पावर्स आफ दि गवर्नमेंट आफ इडिया एड प्राविंशियल गवर्नमेंट्स, फार दि रायल कमीशन आन डिसेंट्रलाइजेशन' (शिमला, 1907),

व्यय की प्रवृत्तियां

व्यय की मदों मे सबसे अधिक महत्वपूर्ण मद सेना थी जिस पर उन्नीसवी शताब्दी के सातवें दशक मे भारत सरकार के कुल व्यय का लगभग एक तिहाई होता था। सैन्य विद्रोह के बाद दो वर्षों मे भारत मे सेना मे भारी वृद्धि हुई और सेना पर व्यय मे भी समानुपातिक वृद्धि हुई। सातवे दशक में प्रतिरक्षा व्यय मे कटौती और घटौती के कुछ छिटपुट प्रयत्न किए गए, परंतु सैन्य विद्रोह के अनुभव से (शासको को) ऐसा मानसिक आघात पहुंचा था कि नौकरशाही के भीतर से ही सेना में छंटनी के विचार का कडा विरोध हुआ। लोक निर्माण कार्यो पर होनेवाला व्यय (कुल व्यय का लगभग 15 प्रतिशत) अंशतः साधारण निर्माण कार्यों पर होता था जो वर्ष मे होने वाली आय से पूरा किया जाता था और अंशतः असाधारण निर्माण कार्यों पर होता था जिसके लिए वित्त की व्यवस्था ऋणों से की जाती थी।[1] सिविल प्रशासन के खर्च बजट में विभिन्न शीर्षकों मे वर्गीकृत शीर्षक थे। सर्वप्रथम, बजट तथा लेखों मे सामान्य प्रशासन नामक शीर्षक व्यय रहता था जिसके अतर्गत गवर्नर जनरल, उसकी कार्यकारिणी एवं विधान परिषद के सदस्यों, गवर्नरो, लेफ्टिनेंट गवर्नरो तथा चीफ कमिश्नरों, भारत सरकार के सचिवो, लेखा, व लेखा परीक्षण तथा करेंसी आदि विभागों के अधिकारियों के वेतन आते थे। इस शीर्षक पर होने वाला व्यय कुल व्यय का 2 से 4 प्रतिशत तक होता था। द्वितीय मे न्याय प्रशासन का व्यय था जिसमे न्यायालयो अथवा न्याय विभाग, जेल इत्यादि पर होने वाला खर्च सम्मिलित होता था। इसे विधि एव न्याय नामक शीर्षक मे दिखाया जाता था (कुल व्यय का लगभग 5 प्रतिशत)। तृतीय मे सभी राजस्व सग्रह के माध्यमो जैसे कि सीमा शुल्क, उत्पादन शुल्क तथा वन संरक्षण विभाग, बगाल तथा मालवा की अफीम एजेंसियां, नमक शुल्क लगाने के लिए अतर्देशीय सीमा शुल्क कर्मचारी, दस्तावेजो के पजीकरण तथा स्टाम्प की बिक्री के लिए कर्मचारी, आय कर निर्धारण तथा संग्रह के लिए समय-समय पर भर्ती किए जाने वाले कर्मचारीगण पर होने वाले स्थापन खर्च आते थे जिन्हें एक मे समूहबद्ध कर राजस्व संग्रह पर व्यय नामक शीर्षक मे दिखाया जाता था।[2] इस शीर्षक के अंतर्गत व्यय में काफी कमीवेशी होती रहती थी, परंतु सामान्यतः यह कुल व्यय का 17 से 20 प्रतिशत तक रहता था। नागरिक प्रशासन संबंधी इन व्ययों के अलावा सेवा निवृत्ति तथा अनुकपा भत्तों (जो सरकार के यूरोपीय तथा भारतीय कर्मचारियों को दिए जाते थे) और अवकाश भत्तों तथा अनुपस्थिति भत्तो पर जो (भारतीय सिविल सेवा के अधिकारियों को दिए जाते थे) छठे दशक के एक सामान्य वर्ष मे कुल व्यय का एक तिहाई से भी अधिक

व्यय होता था।[3] व्यय की अन्य मदों मे एक महत्वपूर्ण मद था राजनीतिक एजेंसिया। इसके अतर्गत विविध प्रकार के व्यय आते थे जैसे देशी रियासतो मे राजनीतिक एजेंसियो तथा रेजिडेंसियों के अनुरक्षण पर व्यय, सीमात प्रदेशो में सेना रखने का व्यय, फारस तथा काबुल मे वाणिज्यिक दूतावास पर खर्च, अदन मे सैनिक अड्डा रखने की लागत (जिसमे ब्रिटिश सरकार भी हाथ बटाती थी), सीमात प्रदेशों मे जनजातियों के सरदारों को दी जाने वाली आर्थिक सहायता या रिश्वत, आदि। ब्याज प्रभार के अंतर्गत ईस्ट इडिया कंपनी के शेयर धारकों को या जाने वाला लाभांश सम्मिलित कर लेने पर इस मद का प्रभार कुल व्यय का लगभग 10 प्रतिशत होता था। उन्नीसवी शताब्दी मे नौकरशाही की विशिष्ट शब्दावली मे गृह खर्च (होम चार्जेज) का अर्थ वास्तव मे विदेशी खर्च अर्थात इंग्लैंड मे स्टर्लिंग में किए जाने वाले खर्च से होता था। इस मद के अंतर्गत इग्लैंड मे लिए गए ऋणो पर ब्याज, भारत के लिए स्टोर का व्यय, भारत स्थित ब्रिटिश सेना की सेवाओं के लिए गृह खर्च, सेना के भारत, आने और इग्लैंड वापस लौटने पर परिवहन व्यय, सेना के अधिकारियों की पेंशन तथा वार्षिकी प्रभार और गारंटी शुदा रेल कपनियों को दिए जाने वाले ब्याज आते थे। जब हम उत्तर सैन्य विद्रोह काल में नीति संबंधी मामलों पर विचार करते है तो स्थिति के स्वरूप के बारे मे इन मोटे-मोटे तथ्यों को ध्यान में रखना उपयोगी होगा।

I

उन्नीसवी शताब्दी के सातवें दशक मे सेना पर खर्चो का कुल व्यय के साथ औसत अनुपात 30 से 35 प्रतिशत तक था। अत: व्यय की मदो में सबसे बडी मद सेना थी। इंग्लैंड की साम्राज्यवादी योजना मे भारतीय सेना की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण थी। सेना पर व्यय सबंधी नीति केवल भारत की प्रतिरक्षा संबंधी आवश्यकताओं के आधार पर निर्धारित नही की गई थी। क्या प्रतिरक्षा पर भारी व्यय उचित था? क्या भारत सरकार की ब्रिटिश सरकार के साथ सेना संबधी व्यवस्था भारत के राजस्व तथा संपति को यहा से ले जाने का माध्यम थी? हम इन प्रश्नो का उत्तर देने का प्रयत्न करेंगे।

सैन्य विद्रोह से स्वभावत: सेना पर भारत सरकार के व्यय मे भारी वृद्धि हो गई। यह व्यय 11.49 करोड रुपये (1856-57) से बढ कर 15 57 करोड रुपये (1857-58) हो गया। वृद्धि की यह प्रवृत्ति 1858-59 (21 करोड रुपये) तथा 1859-60 (29.9 करोड़ रुपये) मे जारी रही। एक बार जब सेना तथा पुलिस मे स्थानीय भर्ती तथा सैन्य दलो को इंग्लैंड से भारत भेजने का कार्य शुरू हो गया तो उसे अकस्मात रोक पाना सभव नही रहा।[4] भारत आने वाले सैनिको की कुल संख्या 1859-60 मे सर्वाधिक रही। 1857 मे यूरोपीय सेना का भारतीय सेना के साथ अनुपात 1 : 6 था जो 1858-60 मे बढकर लगभग 1 : 2 हो गया। ब्रिटेन में भारतीय सेना संबधी खर्च (मिलिटरी होम चार्जेज) 3,40,000 पौंड 1856-57) से बढकर 18 लाख 20 हजार पौंड (1860-61) हो गया। सैन्य विद्रोह के बाद नीति के तौर पर सेना मे यूरोपीय नस्ल के सैनिको की सख्या मे वृद्धि की गई। गोलदाज फौज में जहा पहले मुख्य रूप से हिंदुस्तानी ही हुआ

करते थे वहा अब इसमें केवल यूरोपीय नस्ल के सैनिको को ही रखा गया। सैनिकों की संख्या मे वृद्धि के साथ ही हिंदुस्तानी सैनिको की तुलना मे यूरोपीय सैनिकों पर अधिक खर्च होने के कारण प्रति सैनिक व्यय की दर मे बहुत भारी वृद्धि होने लगी। 1859 मे भारत मंत्री ने गवर्नर जनरल से सेना संबंधी व्यय पर सतर्कतापूर्वक ध्यान रखने का आग्रह किया, साथ ही सेना व्यवस्था तथा सैन्य भंडारों की आपूर्ति मे कृपणता न करने के लिए भी कहा।[5] उसने भारत सरकार को चेतावनी देते हुए कहा कि सरकार की सामान्य आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए ऋण प्रणाली जारी रखने की नीति काफी असंतोषजनक है।[6] सपरिषद गवर्नर जनरल ने वादा किया कि मौजूदा भारी युद्ध व्यय में जैसे ही और जिस निरापद सीमा तक कमी कर सकना संभव हुआ[7] वहां तक इसमें कटौती कर दी जाएगी। परंतु उसी समय कटौती करना असंभव था।[8] भारत मंत्री का विचार था कि चूंकि शांति पुन: स्थापित हो गई है, अत: हिंदुस्तानी सैन्य टुकड़ियों को समाप्त किया जा सकता है।[9] उसने यह भी सुझाव दिया कि हाल मे भर्ती हुए पुलिस दल को वे कार्य सौंपे जा सकते है जो पहले हिंदुस्तानी सैन्य टुकड़ियों के पास थे और उनकी सख्या मे तेजी के साथ कमी की जानी चाहिए।[10] इसके साथ-साथ उसने यह भी सुझाव दिया कि बैरको में पड़े कुछ अन्य रेजिमेंट यथाशीघ्र ब्रिटेन लौटा दिए जाने चाहिए।[11] भारत मंत्री भारत में पुन: वित्तीय संतुलन स्थापित करने के उद्देश्य से खर्चों में कमी करने के लिए उत्सुक था। उसने भारत सरकार को लिखा, जिस असाधारण संकट से आप (भारत सरकार) अभी हाल में गुजर चुके है उसके लिए प्रत्येक छूट दी जानी चाहिए, और इस देश (भारत) को वित्त की आपूर्ति का निश्चित स्रोत समझ कर इसकी ओर देखने की मनोवृत्ति को काफी जोरदार ढंग से नापसंद भी नही किया जा सकता।[12]

भारत मंत्री के द्वारा दिए गए सुझावों के आधार पर सैन्य व्यय मे कमी प्रारंभ हुई। सैन्य वित्त आयोग ने जिसका अध्यक्ष कर्नल बालफोर था, 1859 में सेना पर व्यय मे काटछाट प्रारभ की। सैन्य भंडारो पर व्यय में कमी के लिए उसके द्वारा की गई सिफारिशो से सेना रसद विभाग के खर्चो मे कमी आई।[13] द्वितीय, हिंदुस्तानी फौज की सख्या 2,13,000 (1859-60) से घटाकर 1,84,000 (1860-61) कर दी गई।[14] भारत मंत्री ने हिंदुस्तानी सेना मे कमी करने के लिए आग्रह किया। उसने लिखा हिंदुस्तानी सेना में कमी करके ही बड़ी संख्या मे यूरोपीय सैनिकों के लिए साधनों की व्यवस्था हो सकेगी।[15] अत: हिंदुस्तानी सिपाहियों की संख्या में भारी कमी की गई और 1862-63 मे उनकी संख्या 1,21,000 रह गई। यह स्वीकार किया गया कि भारत में यूरोपीय सैनिकों को सैन्य विद्रोह से पहले के उनके परंपरागत अनुपात से अधिक अनुपात मे रखना एक राजनीतिक आवश्यकता थी, तथापि भारत मंत्री की इच्छा थी कि उनकी संख्या उससे अधिक नही होनी चाहिए जितनी हमारे उपनिवेशों की पूर्ण सुरक्षा के लिए अत्यंत आवश्यक है।[16] सर सी० वुड व्यय मे कटौती की प्रगति से संतुष्ट नही था।[17] वास्तव मे भारत सरकार ने व्यावहारिक कटौती की अपेक्षा अधिक की आशा दिलाई थी, परंतु व्यय मे कटौती की प्रक्रिया धीमी रही।[18] इसके अलावा सेना संबंधी लेखे की अव्यवस्था के कारण अनेक व्यय के खर्चे अप्रकट बने रहे।[19] तथापि 1862-63 तक

यूरोपीय सैनिकों की संख्या घटाकर 76,000 कर दी गई। तात्पर्य यह कि पांच वर्षों (1858-59 से 1862-63 तक) में इनकी संख्या में लगभग 13 000 की कमी हुई।

कटौती के विविध उपायों से सेना पर व्यय, जो सैन्य विद्रोह के समय असाधारण रूप से बढ़ गया था, कम हो गया। 1858-60 में सेना पर व्यय 20.9 करोड़ रुपए था। 1863-64 तक यह घटाकर 14.5 करोड़ रुपये कर दिया गया। इसका श्रेय सर सी० वुड और सैन्य वित्त आयोग के अध्यक्ष कर्नल बालफोर को था जिसने बिना किसी समझौते की भावना के साथ व्यय में कमी करने का अलोकप्रिय कार्य अपने ऊपर ले लिया।[20] सैन्य वित्त आयोग (नियुक्ति जून, 1859 विकसित होकर हर दृष्टि से एक विभाग बन गला (जुलाई, 1860)। अप्रैल 1824 में इसे समाप्त कर दिया गया और सैन्य व्यय पर नियमित नियंत्रण सैन्य व्यय के कंट्रोलर जनरल को सौंप दिया गया।[21]

1864-65 से 1870-71 की अवधि में सेना पर व्यय लगभग 16 करोड़ रुपए के आस-पास स्थिर रहा। वायसराय पद पर लारेंस के कार्यकाल में सेना पर होने वाले व्यय में वृद्धि की थोड़ी सी प्रवृत्ति दिखाई दी। लारेंस ने सेना का व्यय कम रख पाने में कठिनाई अनुभव की।[22] सैन्य व्यय में वृद्धि आंशिक रूप से भूटान युद्ध के खर्चों और आंशिक रूप से कीमतों और मजदूरियों में सामान्य वृद्धि के कारण हुई।[23] भारत सरकार एक उभय संकट में फंसी हुई थी। भारत मंत्री क्रेनबोर्न ने इसे थोड़ी सेना अथवा अधिक कर के बीच चुनाव करने की समस्या कहा है।[24] लारेंस सेना पर व्यय में कमी करने के लिए उत्सुक था, परंतु वुड को जैसी आशंका थी, परिषद के सैन्य सदस्यों ने मितव्ययता के उपायों का विरोध किया।[25] कुशलता के नाम पर उन्होंने लारेंस के सामने ऐसे उपायों की सिफारिश रखी जिनसे खर्चों में वृद्धि हो।[26]

जनवरी, 1869 में भारत मंत्री ने गवर्नर जनरल का ध्यान पिछले पांच वर्षों में सैन्य व्यय में वृद्धि की ओर दिलाते हुए एक लंबा पत्र लिखा। पत्र में बतलाया गया था कि यूरोपिय सेना के प्रति व्यक्ति खर्च में काफी वृद्धि हो गई है, सेना के रसद विभाग में विशेष कमी नहीं हुई है, रिसाले में खर्च तथा कर्मचारियों (स्टाफ) नियुक्तियों तथा संगठन पर व्यय भार में वृद्धि हो गई है और आशा के विपरीत पुलिस की नई व्यवस्था से सेना पर व्यय में कमी नहीं हो सकी।[27] मेयो ने कटौती का कार्य अपने ऊपर ले लिया। उसने मैंडहर्स्ट को लिखा था कि सैन्य खर्चों को 12 करोड़ रुपये तक कम कर पाना संभव है। वास्तव में यह बालफोर की भी सिफारिश थी यद्यपि कटौती संबंधी उसकी सभी सिफारिशें पूर्ण रूप से लागू नहीं की जा सकती थी।[28]

मेयो ने देखा कि भारत में सेना में आराम की नौकरी करने वाले अफसर, निरीक्षण अधिकारी जिनके पास या तो निरीक्षण के लिए बहुत थोड़ा या बिलकुल ही काम नहीं था, और कर्तव्यपरायण अफसर जिनके पास कोई भी काम नहीं था, बडी सख्या में है।[29] मेयो ने अनुभव किया कि सैन्य विद्रोह के समय से राजनीतिक वातावरण में काफी परिवर्तन हो गया है। उसने आरगाइल को लिखा कि, 'मुझे संदेह है कि इंडिया आफिस में भारत के सैन्य मामलों के क्षेत्र में होने वाले असाधारण परिवर्तन पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है···सुसंगठित पुलिस और जितनी ब्रिटिश सेना इस समय भारत

में है ठीक उतनी ही सेना दक्षिण भारत के लिए चाहिए।[30] किंतु राजनीतिक खतरा खास तौर से दक्षिण में नहीं था इसलिए हिंदुस्तानी सेना की कोई आवश्यकता नहीं थी। बैरक निर्माण रसद विभाग इत्यादि पर व्यय में कटौती के लिए समस्त लाछन मेयो को मिला।[31] वह सैन्य खर्चों को कम कर पाने में सफल हो गया। परंतु जब उसने सैनिकों की संख्या में कमी करने का प्रस्ताव रखा तो उसे अनेक दिशाओं से कड़े विरोध का सामना करना पड़ा।[32]

मेयो ने 20 रेजिमेंट कम करने का क्रांतिकारी प्रस्ताव रखा। कटौती मुख्य रूप से मद्रास प्रेसीडेंसी की सेना में की गई। उसके कुछ परामर्शदाताओं (जैसे ड्यूरेंड मैंसफील्ड) का मत था कि मद्रास ही में कुछ और रेजिमेंटें खत्म की जा सकती है।[33] मेयो का विचार था कि मद्रास की सेना कमजोर और अनुशासन की दृष्टि से ठीक नहीं थी।[34] *मद्रास प्रेसीडेंसी में रखी जाने वाली सेना उसकी आवश्यकताओं के मुताबिक* पूर्णतया अनुपातहीन थी[35] और उसे समाप्त कर देना अधिक उपयुक्त था क्योंकि ,उसकी ब्रिटिश शासन की दृष्टि से विशेष उपयोगिता नहीं थी।[36] उसने इस बात का खंडन किया कि मद्रास की सेना के प्रति बंगाल में कोई द्वेष भावना है।[37] कर दाताओं पर भार डाल कर वहा ऐसी सेना रखना अन्यायपूर्ण था जिसकी कोई उपयोगिता नहीं थी।[38]

आरगाइल की इच्छा थी कि सैन्य विभाग की प्रशासनिक शाखाओं, सामान्य कर्मचारी वर्ग, रिसाला, रसद विभाग इत्यादि के व्यय में कटौती की जाए,[38a] परंतु वह सैनिकों की संख्या में कमी नहीं करना चाहता था।[38b] सेना में कमी करने के प्रस्ताव का अनेक अप्रत्याशित दिशाओं से विरोध हुआ। मेयो ने बार्टल फ्रेर को लिखा 'मैं मानता हूं कि मुझे इस बात पर हंसी आती है कि उन सभी क्षेत्र में, जहा व्यय में कमी करने के लिए सबसे अधिक होहल्ला था, वहां इस संबंध में जो कुछ किया गया है उसकी छोटी-छोटी बातों की आलोचना की मनोवृत्ति दिखाई देती है।[38c] मुझे यह सुनकर कुछ-कुछ निराशा हुई है कि ''कुछ लोग जो मितव्ययता की माग जोरदार शब्दों में कर रहे थे और अनावश्यक खर्चों की निंदा कर रहे थे कटौतियों के बाद असहमति में सिर हिलाते है और कोई अन्य प्रस्ताव न रखते हुए भी उसके लिए जल्दबाजी, निर्दयतापूर्ण'''अनावश्यक आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं।[39] मैंगडला के लार्ड नेपियर ने कटौती के प्रस्तावों का विरोध किया था। मेयो ने आरगाइल को क्षोभ के साथ लिखा कि 'लार्ड नेपियर समझता है कि यह उसका कर्तव्य है कि वह उन सभी प्रस्तावों का विरोध करे जिनसे धन के अपव्यय में कमी की जा सकती है''।[40] मेयो यह जानकर बहुत चिढ़ा कि नेपियर ने लंदन स्थित इंडिया काउंसिल के सदस्यों और आरगाइल को कुछ कागजात भेजे थे। खुला विवाद टालने के लिए मेयो ने कागजी युद्ध नहीं चलाया और नेपियर अपनी अति-कर्तव्यनिष्ठा का लाभ उठा रहा था।[41] मेयो ने आरगाइल को शिकायत की कि सेनाध्यक्ष के साथ उसके संबंध अच्छे नहीं थे। सेनाध्यक्ष असहयोग करता था और कटौती संबंधी निर्णय को रोके रहने के उद्देश्य से संबंधित कागजात को तीन माह तक अपने पास रखे रहा।[42] अंततोगत्वा मामला यहा तक बढ़ गया कि गवर्नर जनरल की परिषद की बैठकों में सेनाध्यक्ष की अनुपस्थिति में ही बार-बार के विस्फोट रुक सके।[43] सेना के हितों के

प्रतिनिधि सर एच० एम० ड्यूरेंड ने प्रतिशोधात्मक उपाय के रूप में प्रस्ताव रखा कि असैनिक व्यय में कमी की जानी चाहिए।[44] यह प्रस्ताव निस्संदेह गवर्नर जनरल द्वारा अस्वीकार कर दिया गया। गवर्नर जनरल ने स्पष्ट किया कि सैन्य व्यय बजट में सबसे बड़ी मद था।[45] मेयो चाहता था कि सेनाध्यक्ष को यह स्पष्ट रूप से समझा दिया जाना चाहिए कि वित्त संबंधी मामलों में उसे न केवल भारत सरकार की अपितु राज्य की अपेक्षाओं के भी अधीन रहना है।[46]

सैन्य व्यय में कमी के विरोध में सेनाध्यक्ष अकेला नहीं था। स्वयं आरगाइल भी प्रस्तावित कटौती पर अपनी स्वीकृति देने के पक्ष में नहीं था।[47] कैंब्रिज का ड्यूक काफी चिंतित था कि कहीं कटौती से सेना की कार्यक्षमता में बाधा न पड़े।[48] इंडिया काउंसिल के लगभग सभी सदस्य सेना की संख्या में कमी करने के विरुद्ध थे। सैन्य विद्रोह के बाद काफी कटौती संभव थी परंतु आरगाइल तथा उसकी परिषद के सदस्यों के विचार से और अधिक कटौती न तो सुरक्षित थी और न वांछनीय ही।[49] आरगाइल ने फरवरी, 1871 में मेयो को सूचना दी कि चूंकि इंडिया काउंसिल गवर्नर जनरल के प्रस्ताव का विरोध करती है इसलिए इस मामले पर मंत्री परिषद में विचार किया जाएगा।[50] मंत्री परिषद ने मेयो के विरुद्ध निर्णय दिया और तदानुसार आरगाइल ने सेना में कटौती से संबंधित भारत सरकार के प्रस्तावों पर अपनी स्वीकृति नहीं दी।[51]

इस घटना की व्याख्या हमने कुछ विस्तार के साथ की है क्योंकि इससे सैन्य व्यय में कटौती के बीच आने वाली मुख्य बाधाएं···विशेष रूप से गवर्नर जनरल की परिषद में सैन्य अधिकारियों का दबाव·· स्पष्ट हो जाती है। मेयो को आशंका थी कि उसकी कटौती योजना रद्द कर दी जाएगी। उसने 1870 में बड़ी कटुता के साथ आरगाइल को लिखा, स्वार्थ को पराजित कर सकना कठिन है। काफी अधिक पाने वाले अयोग्य व्यक्तियों को हमेशा ही बहुत सारे समर्थक मिल जाते है। लोक सेवा गौण है...और सदस्य खुलकर व्यय में ऐसी कमी का जो उचित होने के साथ-साथ सहज ही संभव है, समर्थन करने के स्थान पर जनता पर भार बढ़ाने के लिए प्रस्ताव रखते हैं।[52] जैसा कि हम ऊपर देख चुके है कि मेयो इस बात का कायल था कि वित्तीय मामलों में सेनाध्यक्ष को गवर्नर जनरल तथा उसकी परिभाषा के मातहत रखा जाना चाहिए। इस संबंध में आरगाइल ने अपना मत मेयो को लिखे एक वैयक्तिक पत्र (जिस पर गोपनीय शब्द लिखा था) में व्यक्त किया था, "मेरी आशंका है कि आपका उद्देश्य परिषद में उस विशिष्ट प्रभाव को समाप्त करना है जो अनावश्यक सैन्य व्यय के पक्ष में है। आपका विचार है कि यह प्रभाव सेनाध्यक्ष में केंद्रित है ··।[53] परंतु आरगाइल का विचार था कि भारत में सेनाध्यक्ष का स्थान, 'युद्ध मंत्री को नहीं दिया जा सकता था क्योंकि यदि सेनाध्यक्ष सेना संबंधी किसी भी कार्यवाही का विरोध करता है तो बाधा डालने की उसकी शक्ति संभवत परिषद के बाहर भी अधिक नहीं तो उतनी प्रबल तो होगी ही जितनी कि परिषद के भीतर है।'[54] आरगाइल ने आगे कहा कि' चूंकि भारत में ब्रिटिश सेना पर व्यय सदैव ही सर्वाधिक रहना है, अत. हमें इससे विशेष रूप से संबंधित सैन्य अधिकारियों को अपने साथ रखने की सर्वोत्तम रीति का ध्यान रखना चाहिए।'[55]

सैन्य व्यय मे कटौती संबधी 1869-71 के विवाद से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि सैन्य अधिकारी जो सत्ता मे थे (विशेष रूप से जो गवर्नर जनरल की परिषद के सदस्य थे) मितव्ययता संबधी उपायों मे बाधा डाल रहे थे। साथ ही यह भी लगता है कि ब्रिटिश सरकार के अधिकारी भारत मे सेना मे कमी करने के बारे मे बहुत सतर्क थे। (यह लारेंस जिसने ब्रिटिश सरकार द्वारा बाधा डालने की नीति के विषय में शिकायत की थी)[56] का अनुभव था और यही अनुभव मेयो (जिसे इंडिया आफिस से भारी कटौती के प्रस्ताव पर अनिच्छा के साथ मामूली समर्थन मिला था) का भी था।[57] यह स्वाभाविक ही था क्योंकि भारतीय सेना की शक्ति के प्रश्न पर सदैव ही इंग्लैंड के व्यापक साम्राज्यिक हितो के संदर्भ में विचार होता था।[58]

II

भारतीय तथा ब्रिटिश सरकारो के मध्य वित्तीय लेन-देन ब्रिटिश सरकार पर भारत सरकार की निर्भरता, ब्रिटिश सरकार को किए जानेवाले भुगतान, भारत मे रखी जाने वाली ब्रिटिश सेना की जो लागत भारतीय करदाता को चुकानी पड़ती थी उसके अध्ययन से हमारे द्वारा उठाए गए दूसरे प्रश्न का उत्तर मिल सकेगा। प्रश्न है—क्या भारत ब्रिटिश सरकार के साथ तत्कालीन सैन्य व्यवस्था के अंतर्गत ब्रिटेन के व्यापक साम्राज्यिक हितों के लिए अपनी जेब से भुगतान कर रहा था?

ब्रिटिश सरकार के सेना विभाग तथा इडिया आफिस के बीच हुए एक समझौते के आधार पर ईस्ट इंडिया कंपनी इग्लैड नरेश की सेनाओं की सेवाओं के लिए भुगतान करती थी। सैन्य विद्रोह के वर्ष तक इग्लैड मे भर्ती, प्रशिक्षण, डिपो व्यवस्था तथा बैरक आवास पर होने वाले खर्च क्रमश. भारतीय और ब्रिटिश सगठनो में सैनिको की संख्या और उनको दिए गए वेतन इत्यादि के अनुपात मे बांटे जाते थे।[59] सैन्य विद्रोह के समय भारत स्थित ब्रिटिश सेनाओ के खर्च सहसा बढ गए। ब्रिटेन से और अधिक आने वाली सेना पर व्यय भारत सरकार की आय से किया गया। इस प्रकार भेजी गई सेना जिस समय से इंग्लैंड से चली तब से उसका पूरा खर्च भारत सरकार से लिया गया। भारत में स्थानीय सेवा के लिए एक पृथक यूरोपीय सेना रखने का भारत सरकार का अधिकार 1860 मे निरस्त कर दिया गया।[60] 1861 के सेना समामेलन अधिनियम के द्वारा ब्रिटिश सरकार की सेना में स्थानीय यूरोपीय सेनाओं का विलय कर दिया गया।[61] इसका परिणाम हुआ कि भारत स्थित ब्रिटिश सेनाओं के खर्चों के लिए सेना विभाग को किए जाने वाले भुगतानो मे स्थाई रूप से वृद्धि हो गई।

इन खर्चों का, जिन्हें नियमित खर्च (अर्थात भारत स्थित इंग्लैंड की सेना का चालू खर्च) कहा जाता था, सर ए० टुलाक समिति द्वारा पुनर्विलोकन किया गया जो इंडिया आफिस, सेना विभाग तथा खजाने (वित्त विभाग) के बीच लेखा संबंधी मामले तय करने के लिए नियुक्त की गई थी। इस समिति की सिफारिश के अनुसार एक अतरिम व्यवस्था पर सहमति हो गई जिसके अंतर्गत भारत सरकार को सभी प्रकार के प्रति 1,000 सैनिकों एवं अधिकारियो पर 10,000 पौंड वार्षिक देना था। तात्पर्य यह है

कि प्रति व्यक्ति वार्षिक दर 10 पौंड निर्धारित हुई। यह राशि 12 महीनों की उपस्थिति नामावली की औसत संख्या पर चुकाई जानी थी। इस भुगतान में भर्ती, और वस्त्र, शस्त्र, अन्य साज-सामान, तथा परिवहन की लागत को छोडकर सेना के भारत आने के समय तक उसके भरण-पोषण का खर्च सम्मिलित था।[62] सर सी० वुड का विचार था कि ये खर्च अत्यधिक थे।[63] परंतु प्रारंभ में अतरिम रूप से की गई व्यवस्था को समय-समय पर बढाया जाता रहा और वह व्यवहार में 1861-62 से 1869-70 तक बनी रही।

सेना विभाग इस समझौते से सतुष्ट न था। नए रंगरूट सैनिकों के भारत आने के लिए पोतारोहण तक की लागत तथा डिपो खर्चों मे वृद्धि हो गई थी और सेना विभाग का दावा था कि प्रति व्यक्ति 10 पौंड की दर से भुगतान भारत आने वाले सैनिकों के ऊपर किए जाने वाले व्यय के लिए पर्याप्त नही था। सेना विभाग ने माग की कि समझौते का आधार 10 रुपए प्रति व्यक्ति की कामचलाऊ औसत दर न होकर वास्तविक व्यय होना चाहिए। 1869 मे सीकोंब समिति नियुक्त हुई जिसका काम समस्या की जांच कर प्रति व्यक्ति दर में सशोधन करना था।[64] नई व्यवस्था के अनुसार निम्नलिखित दरें तय हुई : 136 पौंड 13 शिलिंग 11 पैंस अश्वारोही सेना (रिसाला); 63 पौंड 8 शिलिंग 5 पैंस पैंदल सेना, 78 पौंड 14 शिलिंग 8 पैंस शाही घुड़सवार गोलंदाज सेना, 59 पौंड 2 शिलिंग 10 पैंस शाही गोलंदाज सेना, आरोहित; तथा 58 पौंड 9 शिलिंग 3 पैंस शाही गोलंदाज सेना के लिए।

इंडिया आफिस का तर्क था कि प्रचलित व्यवस्था बहुत खर्चीली है और वास्तविक खर्चो मे और अधिक वृद्धि करना भारत के साथ अन्याय होगा। 1861 के सेना समामेलन अधिनियम का उल्लेख करते हुए भारत मत्री आरगाइल के ड्यूक ने लिखा, 'भारत मे स्थानीय यूरोपीय सेना का समापन साम्राज्यिक नीति के विचार से आवश्यक उपाय था, परतु यह संदेहास्पद है कि यदि यह पूरी तरह मालूम होता कि इसका भारत सरकार पर कितना अधिक अतिरिक्त भार पड़ेगा तो क्या यह उपाय सहज ही कर सकना संभव होता।'[65] भर्ती और प्रशिक्षण की प्रणाली अनावश्यक रूप से अपव्ययी थी और गृह डिपो में आवश्यकता से अधिक कर्मचारी थे। आरगाइल ने इसे न तो 'नीतिकुशलता' और न ही 'न्यायपूर्ण' माना कि भारत की आय पर रंगरूटों की पूर्ति के लिए संगठन की लागत को थोप दिया जाए। यह संगठन भारत की आवश्यकता या उसकी आर्थिक क्षमता की अपेक्षा कही बड़ा था।

ब्रिटिश सेना मंत्री कार्डवेल का दावा था कि भारत सरकार पर डाले गए वास्तविक खर्च अन्याय पूर्ण न होकर बहुत मामूली थे। सेना विभाग ने तर्क दिया कि इंग्लैंड की सेना रिजर्व के रूप में कार्य करती है जिससे भारत सरकार आपातकालीन स्थिति मे कुमक मगा सकती है। रिजर्व सेना के रहने कारण भारत सरकार के लिए अपनी सेना मे कमी कर पाना संभव हुआ है। कार्डवेल के मतानुसार, 'इन उपलब्ध रिजर्व सेनाओं का अनुरक्षण ब्रिटिश सरकार की आय के वास्तविक व्यय मे एक महत्वपूर्ण मद था जिसके पुनर्भुगतान का उत्तरदायित्व भारतीय राजस्व का है...'[66] अत: नए रंगरूट भर्ती करने के तंत्र की लागत और रिजर्व मे रहने वाले प्रशिक्षित सैनिकों के खर्चों

का आनुपातिक भाग देना भारत की जिम्मेदारी था।[67]

कार्डवैल के पत्र के उत्तर मे भारत का पक्ष प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया।[68] सेना परिपक्ष विभाग का दावा था कि भारत सरकार इग्लैंड में ब्रिटिश सेना में ही एक रिजर्व सेना तैयार रखती है जिसे भारत की आवश्यकताओं के लिए प्रयोग किया जा सकता है। इस सिद्धात के आधार पर प्रत्येक ब्रिटिश प्रतिष्ठान अथवा संस्था, चाहे वह किसी भी प्रकार की क्यों न हो यदि उससे भारत सरकार का व्यापारिक या रोजगार की दृष्टि से संबध है तो उसकी लागत का एक भाग भारत पर थोपा जा सकता है। असलियत यह है कि इग्लैंड ने भारतीय सेनाओ को ही अपना रिजर्व समझा था। 'यह कहना अधिक ठीक है कि साम्राज्यिक सरकार भारत मे वहा के राजस्व के बल पर अपनी सेना का उतना वडा भाग रखती है जो उसके विचार से वहा पर अपना साम्राज्य वनाए रखने के लिए आवश्यक है। सेना के इस भाग को साम्राज्यिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्वभावतः रिजर्व के रूप मे लिया जाता है। यूरोपीय रेजिमेंट साम्राज्यिक युद्धों मे भाग लेने के लिए समान रूप से भारत की प्रतिरक्षा सेना से अलग कर दिए गए है ·· और भारत की हिंदुस्तानी सेना का भी अनेक बार भारत के वाहर ऐसे युद्धों के लिए, जिनसे भारत का कोई संबंध नही था, प्रयोग किया गया है, जब कि इसके अनुरक्षण मे साम्राज्यिक सरकार का कोई योगदान नही था।' केवल असाधारण सैन्य विद्रोह के मामले से, सेना विभाग के तर्क मे कुछ सत्याभास होता था, परतु उस समय ब्रिटिश सेना के खर्च का भार भारतीय करदाताओ ने उठाया था। सेना विभाग के अनुसार इंग्लैंड मे भर्ती और प्रशिक्षण की लागत अधिक हो गई थी। परंतु लागत मे यह वृद्धि एक कृत्रिम खर्च की प्रणाली के कारण हुई थी जिसके आधार पर ऐसे व्ययो को भी सम्मिलित कर लिया गया था जिनका प्रशिक्षण की लागत से कोई सबंध नही था और जो पूर्ण रूप से इग्लैंड की गृह रक्षक सेना के सगठन से संबंधित थे। इन व्ययों का भारत की आवश्कताओ से भी कोई संबंध नही था। भारत सरकार ने आरगाइल के पास भेजे गए अपने प्रतिवेदन मे यही वात रखी थी।[69]

गृह खर्चों के अतर्गत आने वाली मदो मे सैन्य खर्च प्रमुख थे। विभिन्न मदें निम्नलिखित थी · भारत स्थित ब्रिटिश सेना के लिए ब्रिटिश सरकार को दी जाने वाली राशिया; सेना के यातायात पर खर्च, शस्त्रीकर व्यय; इंग्लैंड मे भर्ती पर व्यय तथा डिपो खर्चे, एडिस्कोब स्थिति सैनिक कालेज के लिए प्रभार, अफसरों को छुट्टी और सेवा निवृत्ति वेतन तथा पेंशन।[70]

अब तक हम सेना के नियमित खर्चों पर विचार विमर्श करते रहे हैं। गैर नियमित खर्चे अर्थात सेवा निवृत्ति के वाद सैनिको को दी जाने वाली पेंशन भारतीय सैन्य वजट की एक वडी मद थी।[71] 1823 से पहले भारत स्थिति ब्रिटिश सेनाओ के लिए गैर नियमित खर्चों के निमित्त सेना विभाग को कोई भुगतान नही किया जाता था। 1823 के वाद कोर्ट आव डायरेक्टर्स ने गैर नियमित खर्चो के निमित्त 60,000 पौंड की स्थिर राशि वार्षिक देने के लिए अपनी सहमति दे दी। 1858 मे इस समझौते मे सशोधन करने के लिए सेना विभाग की ओर से माग की गई क्योंकि 1823 की तुलना में भारत

स्थित शाही सेना बढ़ गई थी।[72] 1859 में गैर नियमित खर्चों का अनुमान करने के लिए नियुक्त की गई समिति ने निर्णय किया कि भारत स्थित 30,000 सेना के लिए 2,000,000 पौंड वार्षिक दिए जाना चाहिए।[73] समिति के इंडिया आफिस से संबंधित सदस्यों ने इस अनुमान को अत्यधिक समझकर अपनी असहमति प्रकट की। एक अन्य समिति नियुक्त की गई और उसने सिफारिश की (3 जनवरी, 1861) कि सभी प्रकार के फौजियों के लिए गैर नियमित खर्चों के निमित्त प्रति 1,000 व्यक्तियो पर 3,500 पौंड वार्षिक का भुगतान होना चाहिए। यह सुझाव स्वीकार कर लिया गया और मार्च, 1861 से पहले एक वर्ष के लिए, और फिर वाद मे पाच वर्ष के लिए, व्यवहार में आ गया।[74] प्रारंभ मे इसे अस्थाई व्यवस्था के रूप में रखने का इरादा था। सीकोंब समिति की सिफारिश पर भारत सरकार द्वारा सेना विभाग को दिए जाने वाले गैर नियमित खर्चो का अपेक्षाकृत अधिक सही अनुमान 1870 में लागू किया गया। अप्रैल, 1870 से गैर नियमित खर्चों का अनुमान एक नए सिद्धांत के आधार पर होने लगा। यह सिद्धात था "स्वीकृत पेंशनो की राशि पता लगाकर उसमें से भारतीय हिस्से का पूजीकरण करना (जीवनाकिक सारणियों के आधार पर)। यह प्रणाली 1883 तक प्रचलन मे रही।

कुल सैन्य व्यय को अलग-अलग कर देखने पर स्पष्ट होता है कि समस्त व्यय का पाचवा भाग इंग्लैंड मे नियमित, गैर नियमित मदो तथा युद्ध सामग्री पर हुआ। इसका काफी बड़ा अनुपात प्रशासनिक कर्मचारियों तथा संगठन (रसद व्यवस्था, वैरको, चिकित्सा इत्यादि) पर व्यय किया गया; सामग्री पर होने वाला व्यय काफी बड़ा था; और इंग्लैंड मे गैर नियमित खर्च सदैव ही भारत मे इस प्रकार के खर्चो से अधिक रहते थे।

भारतीय लेखे मे व्यय की मदों मे नौसेना का उल्लेख नही रहता था, क्योंकि 1862 के बाद से भारत की अपनी नौसेना नही थी। ईस्ट इंडिया कंपनी की नौसेना को 1862 मे शाही भारतीय समुद्री वेड़े (रायल इडियन मेरीन) नामक गैर लड़ाकू दल मे परिवर्तित कर दी गई। इस पर भारतीय सागर में सेना के यातायात, प्रकाश स्तभ, समुद्री सर्वेक्षण इत्यादि का उत्तरदायित्व था। भारतीय लेखे में समुद्री खर्च अलग से दिखाए जाते थे। यह व्यय प्रति वर्ष आधे से एक करोड़ तक रहता था। सामान्य समुद्री प्रतिरक्षा का कार्य शाही नौसेना को सौंप दिया गया था। इस सेवा के लिए 1862 से 1869 तक नौसेना विभाग को कोई भुगतान नहीं किया गया, परंतु 1869 के वाद इस उद्देश्य के लिए रखे जाने वाले छ: जलपोतों के खर्चो को पूरा करने के लिए 70,000 पौंड वार्षिक दिए गए। 'भारतीय प्रयोजन' पद को व्यापक अर्थ में लिखा गया और वस्तुत: शाही नौसेना के पोत हिंद महासागर में ब्रिटिश व्यापार की रक्षा करते थे। गवर्नर जनरल लारेंस ने 1868 में अपने एक कार्यवृत्त मे लिखा था कि यदि इंग्लैंड भारत को समुद्र में संरक्षण प्रदान करता है तो इसके पीछे उसकी स्वार्थ दृष्टि है। उसके शब्दों मे : 'मैं समझता हू कि यह ऐसा कार्य है जिसे वह वाणिज्य से मिलने वाले वार्षिक लाभ के वदले जो दसियो लाख के होते हैं,... (और) अपने व्यापार को वनाए रखने के लिए करता है।'[75] मेयो ने नौसैनिक सहायता के लिए थोपे जाने वाले प्रभार के खिलाफ विरोध प्रकट करते हुए आरगाइल को लिखा था, 'आशा है आप हमें साम्राज्यिक सरकार को प्रति वर्ष 70,000 पौंड

का भुगतान करने के लिए बाध्य नही करेंगे···सच जिसे हम सभी समझते है यह है कि इस विषय मे हमे पूरी तरह 'समाप्त' कर दिया गया है और यह एक घोर लुटेरेपन का कार्य है।'[76]

भारत की सीमा के बाहर भारतीय सेना का प्रयोग विरले नही होता था। गवर्नमेंट आव इंडिया एक्ट 1858 के अंतर्गत संसद की स्वीकृति के बिना भारत सरकार की आय, देश की सीमा के बाहर, विदेशी आक्रमण को रोकने के अलावा किसी अन्य सैनिक कार्यवाही के खर्चों को पूरा करने के लिए नही की जा सकती थी।[77] इससे भारत के हितों की थोडी रक्षा हुई। भारत की सीमा के बाहर सैनिक कार्यवाही के फलस्वरूप असाधारण खर्चों (जैसे अफसरो व सैनिकों को दिए जाने वाले सामान्य वेतन तथा भत्तों के अतिरिक्त प्रभार) का भार ब्रिटिश राजकोष ने उठाया। भारत सरकार इस सिद्धात से पूर्णतया संतुष्ट नही थी। जब भी इंग्लैंड से भारत को सैनिक दस्ते भेजे जाते थे तो इन सैनिक दस्तों का समस्त वेतन और असाधारण खर्च भारत को उस समय से देने पडते थे जब से वे ब्रिटिश समुद्र तट छोडते थे। परंतु सामान्यत. भारत के बाहर फौजी कार्यवाही के क्षेत्र मे भारतीय सेना से सामान्य खर्चो (जैसे, वेतन तथा भत्तो) का भुगतान ब्रिटिश राजकोप से नही किया जाता था। विदेशी युद्धों में प्रयोग किए जाने वाले भारतीय सैनिक दस्तों के सामान्य खर्चों का भुगतान ब्रिटिश राजकोप से न करने का कोई औचित्य नही था। 1872 मे इडिया आफिस से संबद्ध सेना सचिव ने लिखा था 'यह निश्चित है कि ये सभी युद्ध साम्राज्यिक सरकार द्वारा थोपे गए थे और इन सभी के निर्धारक तत्व थे, ब्रिटिश वाणिज्यिक हित, ब्रिटिश व्यापारियो की शिकायत, ब्रिटिश नरेश की प्रतिष्ठा, इत्यादि।'[78] भारतीय सेना का प्रयोग चीन मे 1842 तथा 1859-60 मे, क्रीमिया में 1855 में, ईरान में 1856-57 मे, न्यूजीलैंड मे 1860 मे, तथा अबीसीनिया में 1867 मे किया गया था। 1878 मे जब भारतीय सेना माल्टा भेजी गई तो यह पैरोडी बन गई : 'युद्ध नही हम करना चाहे, स्वयं न रणक्षेत्र मे जाएं; पर साम्राज्यवाद जब बाध्य करे तो हिंदू सैनिक वहा पठाएं।'[79]

1867 का अबीसीनिया युद्ध, जिसके कारण एक छोटा सा वित्तीय सकट उत्पन्न हो गया था, एक अच्छा उदाहरण था।[80] अबीसीनिया में भारतीय सेना के असाधारण खर्चों का भुगतान तो ब्रिटेन ने किया, परंतु सामान्य खर्च भारत ने ही किए। इस विषय पर गवर्नर जनरल लारेंस ने एक कमाल का कार्यवृत्त लिखा : 'इस युद्ध मे भारत का कोई प्रत्यक्ष हित न था।···निस्संदेह इस निर्णय के समर्थन में पिछले उदाहरणों का उल्लेख किया जा सकता है परतु वास्तविक प्रश्न यह है कि क्या ये उदाहरण न्याय अथवा औचित्य पर आधारित हैं ? क्या इंग्लैंड जब अपनी सेना भारत भेजता है तो वह इसी सिद्धांत के आधार पर कार्य करता है ? भारत ने केवल भारत स्थित ब्रिटिश सेना का खर्च देता है, अपितु सैनिको की भर्ती और उन्हे कार्यक्षम रखने के लिए उनके भरण-पोषण पर आने वाले व्यय का भी भुगतान करता है। ब्रिटिश सेना के भारत और इंग्लैंड के बीच आने जाने का खर्च भी भारत देता है'[81]···यदि दूसरे देशों मे सैन्य कार्यवाही मे संलग्न भारतीय सेना के सामान्य खर्च भारत से लेने का सिद्धात नही बदला जाता

'तो भारत के लोग यह सोच सकते है कि इग्लैंड के लिए एक सिद्धांत और भारत के लिए दूसरा सिद्धात अपनाया गया है और ये दोनो ही सिद्धात भारत के प्रतिकूल है।'[82] इस प्रकार की भर्त्सना भारतीय राष्ट्रवादियों तक के लेखो मे बिरले ही मिलेगी। लारेंस की भाति मेयो भी इस बारे मे भारतीयो के मन मे उठने वाले विचारो के विषय मे चिंतित था। उसने लिखा, 'इससे यहा पर असतोष उत्पन्न होगा जिसे शात कर पाना कठिन होगा और यह बहुत खतरनाक सिद्ध हो सकता है।'[83]

1867 मे मार्क्विस आव सेलिसबरी ने कहा था कि भारत को 'पूर्वी समुद्र मे इग्लैंड की बैरक' नही समझा जाना चाहिए।[84] इतना सब होने पर भी व्यवहार मे भारत स्थित सेना को रिजर्व सेना ही समझा जाता था। ब्रिटिश सेना भारत मे रखी जाती थी और उसका खर्च भारत को देना होता था। सर चार्ल्स डिल्के के अनुसार 'भारत सरकार के साथ की गई व्यवस्था के आधार पर इग्लैंड के लिए भारतीय खर्चे पर उन 70,000 ब्रिटिश सैनिको को रख पाना संभव था जो साम्राज्य पर सकट के समय उपयोग के लिए उपलब्ध हो सकते थे।'[85] इस प्रकार भारत सरकार से सेना का खर्च लिया जा सकता था और साथ ही सरकार ससद द्वारा बनाए गए कानूनों के विधिक प्रतिबंधो तथा वित्तीय प्रतिबंधों से मुक्त थी।[86] अत: भारत के सैन्य वित्त के प्रश्नों पर निर्णय केवल भारतीय हितों को ध्यान मे रखकर नही किए जाते थे। भारत की तात्कालिक स्थिति और आवश्यकताओ से अलग 'सामान्य बातों' को भी ध्यान मे रखा जाता था।[87] 1874 मे हाउस आव कामन्स की भारतीय वित्त से संबधित प्रवर समिति को 'आभास हुआ ''कि कहीं-कहीं जो खर्च इग्लैंड को करने चाहिए थे वे भारत के ऊपर थोप दिए गए है। तथापि इस समिति को अनेक साक्षियो ने आश्वासन दिलाया है कि ब्रिटिश सरकार के विभिन्न विभागो मे यह भावना आम तौर पर व्याप्त है कि भारत पर कोई भी खर्च अनुचित ढग से नही लादा जाना चाहिए।'[88] इग्लैंड के शासक भारत के साथ हर मामले मे अन्याय नही करते थे, परतु जैसा गवर्नर जनरल लारेंस का कहना था, 'इग्लैंड मे करदाताओं पर भार हलका करने के लिए उनके मन मे एक स्वभाविक पूर्वग्रह' था।[89] वे अपने साम्राज्य के लिए खतरा उत्पन्न किए बिना सैन्य व्यय मे कमी करना चाहते थे और सेना की भर्ती तथा उसके वित्त के बारे में ईस सिद्धात को सही मानते थे कि भारत के हित इंग्लैंड के व्यापक साम्राज्यिक हितों के सामने गौण है।

III

भारत में रेलों का विकास भारत मे राज्य द्वारा सहायता प्राप्त उद्यम का दिलचस्प उदाहरण है। 1849 में निर्धारित सविदा की शर्तों के अंतर्गत भारत सरकार ने रेल कपनियो को भूमि दी जिसके लिए उन्हे कोई मूल्य नही देना पड़ा।[90] सरकार ने समादत्त पूजी (पेड अप कैपिटल) पर 99 वर्षो तक एक न्यूनतम ब्याज जो प्राय: 5 प्रतिशत था, देने की गारंटी दी। कार्य संचालन, अनुरक्षण, तथा आरक्षित निधि के लिए राशि निकाल लेने के बाद बचे हुए आधिक्य को पहले चालू 5 प्रतिशत ब्याज प्रभार चुकाने में लगाया जाता था (जिससे भारत सरकार अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो

सके)। शेष राशि भारत सरकार (अग्रिम रूप मे पहले दिए गए प्रत्याभूत (गारंटी शुदा ब्याज के पुनर्भुगतान के रूप मे) और रेल कपनी के बीच बाटी जानी थी। जब भारत सरकार को उसके अग्रिम का पूरा भुगतान हो जाए तो पूरा लाभ रेल कंपनी को ही जाना था। प्रत्येक रेल कंपनी को रेलवे लाइन तथा कारखाने सरकार को समर्पित कर लगाई गई पूजी के बदले मे पूरी क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार था। कोई भी कपनी 99 वर्ष के पट्टे की अवधि समाप्त होने से पहले ही इस अधिकार का प्रयोग कर सकती थी। 99 वर्ष का पट्टा समाप्त हो जाने के बाद रेलें और उनके कारखाने स्वाभाविक ढंग से सरकार की संपत्ति बन जाएंगे। सरकार को हस्तांतरण के संबंध मे उपर्युक्त अंतिम दो शर्तें परस्पर सगत नही थी। कोई भी कंपनी संविदा के लाभ, जिसमे प्रत्याभूत ब्याज भी सम्मिलित था, 98 वर्षों तक उठा सकती थी। उसके बाद वह 99 वर्ष पूरे होने से पहले, जबकि नियमानुसार सरकार का रेलवे सपत्ति पर (बिना क्षतिपूर्ति के) स्वाभाविक ढंग से अधिकार हो जाना था, रेलवे लाइन सरकार को समर्पित कर पूरी क्षतिपूर्ति का दावा कर सकती थी। सक्षेप मे, सविदा के द्वारा रेल कंपनियों को 5 प्रतिशत प्रत्याभूत (गारंटी शुदा) साथ-साथ 'अलाभकर शिशु को राज्य के पास संभालने के लिए छोड देने' और अपना हाथ खीच लेने की स्वतंत्रता मिली हुई थी।[91]

यह बहुत ठीक कहा गया है कि यह सार्वजनिक जोखिम के आधार पर निजी उद्यम का एक उदाहरण था। भारत मत्री आरगाइल के ड्यूक ने मेयो को लिखा कि 'प्रत्याभूत (गारंटी शुदा) कपनिया निजी उद्यम का प्रतिनिधित्व नही करती।'[92] ये कपनिया केवल वित्तीय साधन जुटाने और खर्च करने वाली संस्थाएं मात्र थी जबकि सारा का सारा उद्यम संबंधी जोखिम राज्य को उठाना था। 'यह महत्वपूर्ण है कि इंग्लैंड मे अहस्तक्षेपी नीति का गढ मैनचेस्टर के उद्योगपति तथा ससद सदस्य भारत मे रेलो के हामीदार (अंडरराइटर) के रूप मे सरकारी हस्तक्षेप के प्रमुख समर्थकों मे थे।'[93]

ऊपर से सच लगने वाला यह तर्क भी दिया जा सकता है कि प्रत्याभूत (गारंटी शुदा) सविदाओ की शर्तें यद्यपि अनुकूल नही थी, तथापि भारतीय अधिकारियों के सामने एकमात्र रास्ता यही था। डैनवर्स, चैंजनी, तथा स्ट्रैची का मत यही था।[94] उनका कहना था संयुक्त स्टौक कपनियों के काम मे लगाने से रेलों के लिए लगातार पूजी की प्राप्ति तथा उसका उपयोग निश्चित था। यदि भारत सरकार स्वय पूजी जुटाने का कार्य करती तो विशेष रूप से उत्तर सैन्य विद्रोह काल मे आर्थिक संकट के समय यह बहुत सभव था कि इस धनराशि का प्रयोग किसी अन्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए कर लिया जाता और रेलों के विकास में बाधा पड़ती। इसके अलावा पूंजी निवेश की दृष्टि से भारत नया क्षेत्र था और पूजी निवेशकों की यह प्रत्याशा स्वाभाविक थी कि सरकार ब्याज की कुछ ऊंची दर की गारंटी दे और उसके भुगतान का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले।[95]

उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे भारत आने वाली ब्रिटिश पूजी मे रेलो का अश महत्वपूर्ण था। अनुमान है कि 1854 से 1869 तक भारत मे 15 करोड़ पौड की ब्रिटिश पूजी का निवेश हुआ। इसमे से लगभग आधी पूजी रेलो मे लगाई गई। 1858 से 1869

तक 7,01,10,000 पौंड भारतीय रेलों पर व्यय किए गए।[96] इस प्रकार गारंटी प्रणाली निस्संदेह पूंजी को आकर्षित करने में सफल हुई।

परंतु गारंटी प्रणाली के स्पष्ट दोषों की उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। (क) 5 प्रतिशत प्रत्याभूत (गारंटी शुदा) ब्याज सरकारी प्रतिभूतियों (सिक्युरिटीज) पर ब्याज से 1 प्रतिशत अधिक था, अर्थात यदि भारत सरकार चाहती तो नीची ब्याज की दर पर ऋण ले सकती थी। इंग्लैंड भेजे गए ब्याज से गृह खर्चों की राशि बढ़ गई और जैसे-जैसे एक के बाद दूसरे वर्ष रेलों में लगाई गई पूंजी में वृद्धि हुई वैसे-वैसे प्रत्याभूत (गारंटी शुदा) ब्याज के रूप में व्यय की राशि बढ़ती गई। भारत सरकार की इस स्थिति से उत्पन्न चिंता को कम करने के लिए भारत मंत्री ने स्पष्ट किया कि 'इस ब्याज का स्वरूप निस्संदेह अन्य सभी से भिन्न है क्योंकि अंततोगत्वा इसका सरकार को भुगतान मिलना ही है।'[97] जैसे ही रेलों का विकास कार्य पूरा हो जाएगा, यातायात से शुद्ध प्राप्ति बढ़ जाएगी और भारतीय राजस्व पर इस प्रभार में कमी हो जाएगी। तथापि पुनर्भुगतान का समय बहुत दूर था और प्रत्याभूत ब्याज प्रभार का बोझ काफी था।

(ख) गारंटी शुदा संविदाओं के एक अन्य दोष के कारण भारत सरकार को भारी हानि हुई। संविदाओं में व्यवस्था थी कि रेलवे कंपनियों द्वारा जुटाई गई पूंजी बैंक आव इंग्लैंड में भारत सरकार के गृह विभाग के खाते में जमा की जाएगी और कंपनियों के अभिकर्ता (ऐजेंट) भारत सरकार के खजाने से 1 शि० 10 पैंस प्रति रुपए की स्थिर दर से रुपया ले सकेंगे। परंतु हमारे इस सर्वेक्षण की अवधि में भारत सरकार तथा इंडियन आफिस के बीच लेखाओं का समायोजन 2 शि० प्रति रुपये की दर से होता था। इस प्रकार रेलवे कंपनियों द्वारा भारतीय खजानों से निकाले जाने वाले रुपयों पर 2 पैंस प्रति रुपये के हिसाब से हानि हुई।[98] लेखे की इस हानि को विनिमय द्वारा हानि के रूप में दिखाया गया।[99] 1862-72 के दशक में इस हानि का औसत 1,42,000 पौंड वार्षिक था।[100] 1861 में भारत मंत्री से गवर्नर जनरल ने आग्रह किया कि जब तक यह आपत्तिजनक धारा हटाई नहीं जाती तब तक संविदाओं का न तो नवीकरण किया जाए और न ही नई संविदाएं की जाएं।[101]

भारत सरकार का तर्क था कि विनिमय द्वारा हानि के रूप में प्रभार का बोझ चालू वर्ष के राजस्व पर नहीं डाला जाना चाहिए। वायसराय की परिषद का वित्त सदस्य सैद्धांतिक आधार पर भारत की आय में से विनिमय द्वारा होने वाली हानि के भुगतान के विरोध में था।[102] परंतु भारत मंत्री सर सी० वुड ने जोर डाला कि यह प्रभार चालू राजस्व से ही निकाला जाना चाहिए।[103] बिना अधिकार के इस मद को 1861-62 के बजट से निकाल देने के लिए लैंग को कड़ी डांट-फटकार पड़ी। 'विनिमय द्वारा हानि' के रूप में प्रतिवर्ष आय की भारी हानि होती रही प्रत्याभूत (गारंटी शुदा) ब्याज तथा 'विनिमय द्वारा हानि' के अतिरिक्त भारत सरकार को रेलवे लाइनों के लिए भूमि तथा निरीक्षण का खर्च भी चुकाना पड़ा।

(ग) संविदा के अनुसार भारत में रेल कंपनियों द्वारा किए गए व्यय का लेखा-परीक्षण संयुक्त रूप से रेलवे अधिकारियों और सरकारी अफसरों द्वारा होना चाहिए

था। इस पुनर्विलोकन की व्यवस्था सरकार के हितों की रक्षा की दृष्टि से की गई थी। परंतु भारत मंत्री वुड ने भारत सरकार को आदेश दिया कि लेखा परीक्षण करते समय 'रेलवे कंपनियों के साथ आप उस उदार भावना के साथ व्यवहार करें जो इतने बड़े काम के नियंत्रण के लिए आवश्यक है।'[104] वास्तव में सरकार रेल कंपनियों के व्यय को नियंत्रित कर पाने में असफल रही। 1858 मे कैनिंग ने और 1861 मे सर डब्ल्यू० डेनिस ने स्पष्ट किया कि (सम्भवतः रेलवे तथा सरकार के अधिकारियों के बीच उत्तरदायित्व के विभाजन के कारण) रेल कंपनियों के अपव्यय को रोका नही जा सका।[105]1872 मे प्रवर समिति के सामने अपने साक्ष्य मे लार्ड लारेंस, सर आर्थर काटन, मेजर चेजनी, डब्ल्यू० एन० मैसी, विलियम थोर्नटन तथा कुछ अन्य लोग इस एक बात पर पूर्ण सहमत थे कि भारत में रेलो के निर्माण की लागत असाधारण रूप से अधिक रही है।[106] आरगाइल ने मेयो को लिखा कि 'यह स्पष्ट है कि हम 5 प्रतिशत की जो गारंटी करते है इससे मितव्ययता की प्रवृत्ति जो निजी उद्यम के लाभों में से एक है, बहुत कुछ समाप्त हो जाती है।'[107] आरगाइल के ड्यूक ने इस प्रकार रोग का ठीक निदान कर लिया था। परंतु रेल संबंधी संविदाओं के द्वारा स्थापित 'द्वैध शासन की असंगत प्रणाली' के बारे में कुछ भी नही किया जा सका।[108]

(घ) रेल कंपनियो के साथ सरकार के संबंधों से उत्पन्न एक अन्य समस्या पर ध्यान दिया जाना चाहिए। रेलों के निर्माण कार्य के लिए भारत सरकार सामान्यतः किसी भी रेल कंपनी को उस अवस्था मे भी अग्रिम देती रहती थी जब इसके द्वारा गृह-खजाने (होम ट्रेजरी) को भुगतान की गई राशि और इसके नाम जमा रकम से भी व्यय कही अधिक होता था। भारत मंत्री का यही आदेश था।[109] रेलवे कंपनिया बहुधा अपने द्वारा जमा की गई राशियों से अधिक रुपया निकाल लेती थी और भारत में सरकारी खजानों से हुई प्राप्तियों के बदले इंग्लैंड में तत्काल भुगतान नही कर पाती थी। इससे गभीर समस्याएं उत्पन्न हो गई। उदाहरण के लिए, 1860 मे भारत सरकार को रेलों को दी जाने वाली अग्रिम राशियो मे कमी करनी पडी जिससे कुछ रेलवे लाइनो को पूरा करने मे विलंब हुआ।[110] चूंकि रेलवे कंपनियां भारत मे उन्हें किए गए भुगतानों की राशि को चुकाने मे असमर्थ रही अत. भारत मंत्री ने 30 लाख पौंड का ऋण जुटाने के लिए ससद की अनुमति प्राप्त की।[111] फरवरी, 1861 में संकट गहरा हो गया और भारत सरकार द्वारा भारत मंत्री को चेतावनी दी गई कि सरकार रेल कंपनियों को भुगतान पूर्ण रूप से बंद कर सकती है।[112] 1861 मे भारत मंत्री ने ऋण लेने के लिए संसद द्वारा पहले ही दी गई अनुमति का लाभ उठाना चाहा। इससे भारत सरकार को संकट पर नियंत्रण पाने मे सहायता मिली।[113] रेलवे कंपनियों के अपने खाते में जमा राशि से अधिक रुपया निकालने के व्यवहार के कारण 1866-67 में सरकार पुनः कठिनाई मे फंस गई। भारत मे रोकड़-शेष बहुत कम थे और भारत मंत्री से अनुरोध किया गया कि वह रेल कंपनियों पर रकम चुकता करने के लिए और पूजी खाते मे उनके नाम राशि को बढाने के लिए जोर दे।[114] 1866-67 मे रेल कंपनियों को भारत में किए गए भुगतान इंग्लैंड मे इनसे होने वाली प्राप्तियों से 26,12,000 पौंड अधिक थे।[115]

ये उम तथाकथित गारंटी प्रणाली के प्रमुख दोष थे जिसके अंतर्गत भारतीय रेलो का निर्माण हुआ था। इन दोषो को दूर करने के लिए भारत सरकार ने-जो नीति अपनाई उसकी मुख्य बातें थी, (क) अपव्यय रोकने के लिए व्यय पर सरकारी नियंत्रण कड़ा किया गया; (ग) सरकार ने बिना किसी गारंटी के नई कंपनियों के द्वारा रेलवे लाइनों का निर्माण कराने का प्रयास किया और प्रचलित कपनियों के साथ पुरानी संविदाओं मे संशोधन करने का भी प्रयत्न किया; (ग) इसके अलावा सरकार ने अपने आप पूंजी जुटा कर अपने ही प्रबंध मे सरकारी रेलो के निर्माण का निश्चय किया।

(क) रेलवे कंपनियों द्वारा किए जाने वाले व्यय का लेखा परीक्षण सरकारी अधिकारियो के द्वारा किया जाता था। सर सी० वुड के अनुसार पुर्नविलोकन की यह प्रक्रिया सरकार एवं अंशधारियो के हित का सबसे अच्छा बचाव है और इसमे अशधारियो (शेयर होल्डरों) को तो किसी प्रकार की हानि होती ही नही है।[117] जब तक 1864 मे अन्य छोटे-छोटे सुधारो के साथ लोक निर्माण विभाग के अकाउटेंट जनरल के सुझाव पर विनियोजन लेखा परीक्षण को व्यवहार में नही लागू किया गया, तब तक यह निरीक्षण अधिक प्रभावपूर्ण नही था।[118] प्रत्येक रेलवे कपनी के कार्यालय से संबद्ध सरकारी लेखा परीक्षक मूल वाउचरों के आधार पर लेखे की जाच करते थे। आय और व्यय के नियतकालिक लेखे तैयार किए जाते थे और उन्हें सरकार के पास भेजा जाता था।[119] आरगाइल ने मेयो को लेखा परीक्षण तथा लेखा प्रणाली की कार्यक्षमता बढा कर गारंटीशुदा रेलवे लाइनो पर हानि रोकने की राय दी थी।[120] 1871 में भारत सरकार ने इस आशा से कि भारत मंत्री की स्वीकृति तो प्राप्त हो ही जाएगी, गारंटी-शुदा रेलो के लेखे के लिए लेखा परीक्षण कर्मचारियों की नियुक्ति की।[121] बाद में इसे भारत मंत्री की स्वीकृति मिल गई।[122]

रेलवे कंपनियों की अपने खातो मे जमा राशियों से अधिक रुपया निकालने की प्रवृत्ति के कारण भारत सरकार कभी-कभी कठिन स्थिति मे फंस जाती थी। भारत मे रेलवे कंपनियों को दी जाने वाली अग्रिम राशियों के वापस भुगतान मे शीघ्रता के लिए भारत सरकार ने रेल कंपनियों द्वारा किए गए भुगतानों से ऊपर की अग्रिम राशियों पर 5 प्रतिशत की दर से ब्याज लेने का प्रस्ताव रखा।[123] भारत मत्री नोर्थकोट ने स्वीकार किया कि चूकि संविदाओं मे इस प्रकार की अग्रिम राशियो की कोई व्यवस्था नही है अत. ब्याज का लेना न्योचित है। इस प्रकार की प्रभार्य राशि भविष्य मे रेलवे कंपनियो से वापस मिलने वाले प्रत्याभूत (गारंटीशुदा) ब्याज के साथ जोडी जाने की व्यवस्था की जाएगी।[124] इसके साथ-साथ रेलवे कंपनियों को भी भारतीय खजानों मे सरकार द्वारा अग्रिम राशियां दे देने के बाद बचने वाले उनके रोकड़ शेप पर ब्याज देना निश्चित हुआ।[125]

(ख) प्रत्याभूत (गारंटीशुदा) ब्याज प्रणाली की समस्याओं से बचने के लिए भारत सरकार ने गारंटी रहित कुछ छोटी संभरक (फीडर) रेलवे लाइनों का निर्माण कराने का प्रयास किया।[126] परंतु यह देखा गया कि 100 पौंड प्रति मील रेलवे लाइन के हिसाब से आर्थिक सहायता देनी पड़ी और यह सहायता भी पूंजी आकर्षित करने के लिए

अपर्याप्त थी।[127] आखिरकार पुराने प्रत्याभूत (गारंटीशुदा) ब्याज संबंधी संविदाओं की भांति ही सुविधाएं देनी पड़ी। तथापि ये नई संविदाएं विशेष रूप से विनिमय दरों तथा व्यय पर सरकार के अपेक्षाकृत अच्छे नियंत्रण की दृष्टि से भारतीय हितों के अनुकूल थे।[128]

प्रत्याभूत (गारंटीशुदा) ब्याज की संविदाओं में, जो 1849 और इसके बाद के वर्षों में की गई, 1869 में संशोधन किए गए। भारत मंत्री आरगाइल ने रेलवे कंपनियों से एक संशोधित संविदा स्वीकार करने का आग्रह किया जिसके अनुसार भारत सरकार को अतिरिक्त शुद्ध लाभ का आधा भाग भविष्य में सदा मिलना था। उसने सोचा कि भारत सरकार की दृष्टि से यह अच्छा सौदा है अतः बदले में वह रेलवे कंपनियों को दो सुविधाएं देने के लिए तैयार हो गया। प्रथम प्रत्याभूत (गारंटीशुदा) ब्याज के निमित्त भारत सरकार द्वारा दी गई अग्रिम राशियों का पूरा ऋण समाप्त कर दिया जाना था और कंपनी को यह ऋण नहीं चुकाना था। द्वितीय, आरगाइल ने यह भी आश्वासन दिया कि सरकार अगले 25 वर्षों में रेलवे लाइनों को नहीं खरीदेगी। अधिकांश रेलवे कंपनियों ने इन शर्तों को स्वीकार कर लिया।[129] गवर्नर जनरल ने इस व्यवस्था पर अपनी सरकार का असंतोष व्यक्त करते हुए भारत मंत्री को लिखा।[130] मेयो ने आरगाइल से अपने एक निजी पत्र में शिकायत की, जिसमें उसने सरकारी पत्र व्यवहार की तुलना में अपने विचारों को अपेक्षाकृत अधिक खुले रूप में व्यक्त किया। उसने लिखा कि रेलवे कंपनियों के साथ हाल की व्यवस्था से 'न केवल हमारे करदाताओं पर अनावश्यक एवं भारी प्रभार आ जाएगा, बल्कि इससे भारी मात्रा में, ब्रिटिश पूंजी लगभग अनिश्चित काल के लिए भारत से बंध जाएगी।'[131] आरगाइल यद्यपि गारंटी प्रणाली के गंभीर दोषों से अनभिज्ञ नहीं था, तथापि उसका विचार था कि गारंटी प्रणाली का आंशिक रूप से बना रहना न्यायसंगत है।[132] उसे आशा थी कि जब रेलवे लाइनों का निर्माण कार्य पूरा हो जाएगा तो यातायात से आय तथा शुद्ध लाभ में वृद्धि होगी और इस लाभ के आधे भाग से भारत सरकार की उस हानि की क्षतिपूर्ति हो सकेगी जो, उसे रेलवे कंपनियों को दिए गए अग्रिमों की बकाया राशि को छोड़ने से होगी।

(ग) गारंटी प्रणाली के बारे में भ्रम दूर हो जाने पर भारत सरकार ने उन्नीसवीं शताब्दी के छठे दशक के अंतिम वर्षों में सरकारी रेल पथ प्रारंभ करने का निर्णय लिया। इस निर्णय तक पहुंचने में सरकार ने काफी समय लगाया। यह नई दिशा में कार्य था। यह कोई अस्वाभाविक बात नहीं थी कि तथाकथित लोककल्याणकारी विचारधारा के अगुआ लार्ड लारेंस ने इस दिशा में पहला कदम उठाया। लैंग तथा फ्रेर जैसे कुछ लोग थे जो रेलों के विकास के लिए सरकारी माध्यम की बनिस्बत निजी माध्यम को पसंद करते थे।[133] परंतु लोक निर्माण के बारे में माने गए विशेषज्ञों में से अधिकांश जैसे थोर्नटन (इंडिया आफिस में लोक निर्माण विभाग का सर्वोच्च अधिकारी), चेजनी (लोक निर्माण विभाग का अकाउंटेंट जनरल), आ० स्ट्रैची (लोक निर्माण विभाग का सचिव) तथा लार्ड लारेंस निश्चित रूप से इस मत के थे कि सरकारी रेलपथ गारंटी व्यवस्था के अंतर्गत निर्मित रेलपथों से कतई सस्ते रहेंगे और उनका

प्रशासन भी अच्छा रहेगा।[134] तथापि, प्रारंभ मे इस विचार का कि रेलपथों के निर्माण मे सरकार प्रत्यक्ष रूप से भाग ले, विरोध था और लारेंस द्वारा 1867 में दिए गए सुझावो पर गृह अधिकारियो की अनुकूल प्रतिक्रिया नही थी।[135] तत्कालीन भारत मंत्री नोर्थकोट प्रचलित व्यवस्था को वदलना नही चाहता था यद्यपि उसने स्वीकार किया कि अलाभकारी 'राजनीतिक' रेलवे लाइनों (अर्थात जो सुरक्षा की दृष्टि से आवश्यक थी) का निर्माण राज्य द्वारा किया जाना चाहिए।[136] इसके कुछ समय बाद ही नोर्थकोट के पद पर आरगाइल और लारेंस के पद पर मेयो आए। सरकारी रेलपथों की योजना को आगे बढ़ाने मे आरगाइल और मेयो मे प्रतिस्पर्धा थी। आरगाइल ने मेयो को लिखा कि 'इस प्रणाली (गारंटी प्रणाली) के विरुद्ध जितने प्रवल मेरे विचार हैं उतने किसी दूसरे के नही है।' 'मैंने सरकार द्वारा सीधा निर्माण करने के प्रश्न को लारेंस द्वारा दिए गए समर्थन से वहुत पहले उठाया था…।'[137] आरगाइल ने सरकारी रेलपथों की अपनी योजना पर मन्त्रिपरिषद की स्वीकृति ले ली। मेयो भी विश्वास के साथ सरकारी निर्माण का समर्थन कर रहा था।[138] (उसने आरगाइल को लिखा) 'यह मान लेने के लिए कोई आधार नही है कि भारत सरकार उतना निर्माण कार्य नही कर सकती जिसके लिए पूजी उपलब्ध हो सकती है और आय से व्याज दे सकना सभव है।[139] भारत सरकार ने शासकीय ढग से पुनः सरकार द्वारा निर्माण का प्रश्न उठाया और इस वार उसकी दो रेलवे लाइनों के निर्माण से संवधित योजनाओं को स्वीकृति मिल गई।[140] सरकारी निर्माण के पक्ष में आरगाइल ने स्पष्ट प्रतिवेदन तैयार किया था। (उसके शब्दो मे) 'हम अपनी सीधी जमानत पर 4 प्रतिशत पर धन जुटा सकते है जवकि हम कपनियो को 5 प्रतिशत की गारंटी देते हैं और इसके अलावा हम सभावित अतिरिक्त लाभ पर अपना दावा भी छोड़ देते हैं…मैं देखना चाहता हूं कि वड़ा रेल विभाग बनाया जाए, रेलपथो के निर्माण कार्य के लिए अलग से ऋण जुटाए जाएं, कुशल इंजीनियरो के दल के नियंत्रण मे सविदा द्वारा धन का व्यय किया जाए और संचालको आदि के द्वैध शासन को, जो केवल वही कार्य कर सकता है जो हम अपेक्षाकृत अधिक अच्छी तरह करते है, पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया जाए।'[141] एक वहुत महत्वपूर्ण बात जो आरगाइल ने उठाई वह यह थी कि रेलवे कंपनियों द्वारा पूंजी जिस प्रकार जुटाई जाती थी, उससे केवल ब्रिटिश पूजी का ही निवेश होता था और भारतीय पूजी लगभग नही मिल पाती थी। (उसके ही शब्दो मे) 'यदि हम भारत के मूल निवासियों को अपने ऋणों में अधिक निवेश करने के लिए प्रेरित कर सकें तो एक महत्वपूर्ण राजनीतिक उद्देश्य की प्राप्ति हो सकेगी। मैं इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा कि हमारे लोक ऋण में इनका भाग अनवरत कम होता जा रहा है…जहां तक रेलपथों के निमित्त लिए जाने वाले ऋणो का प्रश्न है 8 करोड़ के निवेश मे हिंदुस्तानियों का भाग 10 लाख से अधिक नही है।[142] उसे आशा थी कि भारत सरकार द्वारा प्रवर्तित ऋण की ओर भारतीय पूजी आकृष्ट होगी। हाउस आफ लार्ड्स मे अपने वित्त विवरण मे आरगाइल ने कहा कि सरकारी माध्यम 'धन जुटाने और उसके व्यय की कम अपव्ययी रीति है।'[143] आरगाइल को जितना विरोध वास्तव मे हुआ उससे कही अधिक विरोध की आशा थी। सरकारी रेलों के निर्माण सवंधी आयोजन

की प्रारंभिक अवस्था मे उसने मेयो को इस संबंध में शांत रहने का सुझाव दिया था। (उसने लिखा 'इस समय इस मामले को बिलकुल गोपनीय रखना ठीक रहेगा, क्योंकि इस प्रस्ताव से अनेक हित भयभीत हो उठेंगे।'[144] परतु उसकी कुशल युक्ति तथा एक व्यावहारिक उपाय के रूप में इस प्रस्ताव के प्रस्तुतीकरण के कारण उसकी योजना सरलता से व्यवहार मे आ सकी। अस्तु, अहस्तक्षेपी नीति का परित्याग कर दिया गया। 1872 में भारतीय वित्त के बारे मे प्रवर समिति द्वारा जांच के समय किसी भी साक्षी ने रेल पथों के निर्माण मे सरकार की सीधी भागीदारी के फायदो के विषय में शका प्रकट नही की।

क्षेत्रीय विशेषीकरण, व्यापार की मात्रा मे वृद्धि, उद्यम तथा रोजगार के अवसरो में वृद्धि, जनसख्या के स्थानांतरण को प्रोत्साहन, कीमत और मजदूरी पर प्रभाव, इत्यादि के रूप में रेलवे के विकास का प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा था। विल्सन ने जो (इंडिया बोर्ड आफ कंट्रोल के सदस्य के रूप मे तथा बाद में भारत मे वित्त सदस्य के रूप मे) रेलवे के विकास की प्रक्रिया प्रारंभ करने मे सहायक था, घोषणा की कि 'इनके द्वारा जो लाभ मिलने चाहिए वे उससे कही अधिक है जो हमने अभी तक अनुभव किए हैं...।'[155] जैसा कि हम देख चुके है कि वित्तीय दृष्टिकोण से गारंटी प्रणाली, जिसके अंतर्गत रेलों का निर्माण हुआ था, भारत सरकार को हानि देने वाला स्रोत थी। परंतु अधिकारी वर्ग जैसा कि हम स्पष्ट कर आए है तर्कसंत आशावाद के साथ उस समय की ओर दृष्टि लगाए थे, जबकि रेलवे से लाभ की प्राप्ति होने लगेगी। यह आशा की जाती थी कि सरकार को लाभकारी रेलपथो से प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों ही प्रकार के लाभ होंगे। फ्रेनबोर्न ने जान लारेंस को लिखा था कि 'हर वर्ष इनमें (रेलवे मे) अकारण विलंब हो रहा है। इसका प्रभाव यह है कि भविष्य का भारतीय वित्तदाता अप्रत्यक्ष कराधान द्वारा बढी हुई आय से, जिसकी ओर खर्च में उत्तरोत्तर एवं अपरिहार्य वृद्धि पूरी करने के लिए उसकी दृष्टि होनी चाहिए, संक्षिप्त हो रहा है।'[146]

IV

1854 तक भारत में पृथक लोक निर्माण विभाग नही था। लोक निर्माण और उसके अनुरक्षण के लिए प्रत्येक प्रेसीडेंसी में एक सैन्य बोर्ड था जो निरीक्षण संस्था के रूप में कार्य करता था। यह व्यवस्था पर्याप्त थी क्योकि अधिकाश लोक निर्माण पर व्यय यद्यपि बहुत थोड़ा होता था, तथापि वह सैन्य निर्माण के लिए किया जाता था। 1854 मे डलहौजी के शासन काल मे पृथक लोक निर्माण विभाग की स्थापना हुई। यही से परिवर्तन प्रारंभ हुआ। लोक निर्माण सैन्य बोर्ड के नियंत्रण से निकल जाने पर सिविल निर्माण अर्थात असैनिक इमारत, सड़क, बाध, नहर तथा सिंचाई निर्माण की ओर अधिकाधिक ध्यान दिया गया। 1849-50 में लोक निर्माण के लिए दी जाने वाली राशि केवल 60 लाख रुपये थी। 1856-57 में लोकनिर्माण पर व्यय की राशि बढकर 2.25 करोड़ रुपये हो गई। अत: ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत में लगभग अपने संपूर्ण शासन काल में लोक निर्माण की उपेक्षा कर अंतिम तीन-चार वर्षों में इस दिशा मे आकस्मिक ढग से भारी कार्य किया।[147] कंपनी ने अपने उपनिवेश को ठीक उसी प्रकार समझा जैसे

कोई भी पूर्वी निरंकुश शासक अपनी रियासत को समझता था। कंपनी की दृष्टि में उपनिवेश विकसित करने के लिए न होकर शोषण करने के लिए होता था। पूर्वी निरंकुश शासक और कंपनी में एक ही आर्थिक अंतर था कि कंपनी रूपी यूरोपीय जमीदार अन्यत्रवासी था।[148]

सैन्य विद्रोह के समय उत्तरी भारत में रिकार्ड नष्ट हो जाने, प्रशासनिक नित्य-क्रम बिगड़ जाने, लेखे तैयार करने की ओर अपर्याप्त ध्यान दिए जाने के कारण 1857 और 1858 में लोक निर्माण पर होने वाले व्यय का सही अनुमान लगा सकना कठिन है। सैन्य विद्रोह के वर्ष और उसके तत्काल बाद की अवधि में असैनिक निर्माण परियोजनाओं में पूजी निवेश में भारी कमी कर दी गई। सातवें दशक में लोक निर्माण अनुदान धीरे-धीरे 1860-65 के औसत 4.3 करोड़ रुपये से बढ़कर दशक के उत्तरार्द्ध में 6.8 करोड़ रुपये हो गया। 1867-68 के बाद से लोक निर्माण पर आंशिक व्यय ऋणों से (जिन्हें 'असाधारण व्यय' कहा जाता था) और शेष अंश सरकारी आय (जिन्हें 'साधारण व्यय' कहा जाता था) से किया जाता था। 1871-72 में लोक निर्माण पर प्रति व्यक्ति व्यय का कामचलाऊ परिकलन सभव है क्योंकि इस वर्ष के लिए जनगणना पर आधारित जनांकिकी के कुछ आंकड़े उपलब्ध है। 'साधारण' लोक निर्माण पर प्रति व्यक्ति व्यय बंगाल (रु० 0.103), मद्रास (रु० 0.106) तथा पश्चिमोत्तर प्रात (रु० 0.19) में बहुत कम था और पंजाब (रु० 0.34) तथा बंबई (रु० 0.53) में थोड़ा सा अधिक था।[149]

सरकार की लोक निर्माण नीति के विषय में राष्ट्रवादी प्रवक्ताओं की मुख्य शिकायत यह थी कि गैर विकास व्यय में तो वृद्धि हो रही है और विकास के लिए व्यय किया जाने वाला राजस्व या तो स्थिर है या फिर घट रहा है। सरकार के राष्ट्रवादी अलोचकों ने मोटे और कामचलाऊ ढंग से सड़क, नहर, बाध, एनीकट, बंदरगाह इत्यादि पर हुए खर्च को विकास कार्यों पर व्यय माना है। इसके विपरीत सिविल इमारतें, जैसे अदालती इमारतें, जेल इत्यादि और सेना की बैरकें स्पष्टत: एक अलग श्रेणी में आती थी। हम आगे राष्ट्रवादी प्रवक्ताओं के द्वारा गैर विकास व्यय के प्राक्कलनों के आधार पर इस की व्याख्या करेंगे। तथापि यह एक दिलचस्प बात है कि वायसराय तथा उसकी परिषद को भी इस बारे में संदेह था। भारत मन्त्री को अपने एक प्रेषण में सपरिषद गवर्नर जनरल ने लिखा था कि छठे दशक के अंतिम वर्षों में हमारे सेना सबंधी निर्माण पर व्यय का अनुपात काफी बढा है और यह व्यय ऐसा है जो राष्ट्रीय संपत्ति की वृद्धि में प्रत्यक्ष रूप से योग नही देता...।[150]

भारत की विस्तृत आवश्यकताओं को देखते हुए सड़क तथा सिंचाई निर्माण के लिए साधनों की अपर्याप्तता से एक ही सुझाव मिलता था कि राजस्व की कमी को पूरा करने के लिए ऋण लिए जाने चाहिए। परंतु उन दिनों सरकार द्वारा ऋण लेने के विरुद्ध काफी पूर्वग्रह था। यह पूर्वग्रह सार्वजनिक और व्यक्तिगत उधार के बीच गलत समानता पर आधारित था। हेनरी फासट (जो कैंब्रिज में राजनीतिक अर्थशास्त्र का प्रोफेसर, और संसद सदस्य था तथा जिसकी ख्याति भारत के प्रति सहानुभूति रखने वाले पक्षधर के रूप में थी) का कथन विशिष्ट था, 'राज्य के साथ-साथ व्यक्ति के लिए भी सबसे बुरी

बात यह है कि वह अपने साधनों से अधिक व्यय करे और इस प्रकार अपने ऊपर ऋण का भार चढ़ा ले ।'[151] विक्टोरिया युग में रूढ़िवादी राजस्ववेत्ताओं का कहना था कि यदि सरकार ऋण लेने में यथासंभव कमी नहीं करती तो 'सरकार के दिवालियापन' का हौवा भयानक रूप से उपस्थित होगा ।[152] लंदन मुद्रा बाजार में भारत सरकार जिन शर्तों पर ऋण ले सकती थी वे अनुकूल थीं और यदि ब्रिटिश सरकार की गारंटी होती तो शर्तें और भी अच्छी हो सकती थीं। तर्क यह दिया गया कि जिस प्रकार किसी भी व्यापारिक इकाई अथवा व्यक्ति के लिए बाजार में अपनी साख को प्रभावित किए बिना भारी मात्रा में ऋण लेना संभव नहीं है, उसी तरह सरकार के लिए भी इस प्रकार का जोखिम उठाए बिना भारी मात्रा में ऋण ले सकना संभव नहीं है। उस समय प्रचलित मत यह था कि सरकार को ऋण से यथासंभव बचना चाहिए। यदि ऋण लेना ही पड़े तो उनका केवल 'लाभकारी' सिंचाई निर्माण कार्यों के निमित्त प्रयोग होना चाहिए जिससे ब्याज की राशि निकाली जा सके।

यह दृष्टिकोण 1864-65 में भारत सरकार और भारत मंत्री के बीच हुए पत्र व्यवहार से स्पष्ट है। अगस्त, 1864 में भारत मंत्री ने भारत सरकार से सिंचाई-साधनों के निर्माण की ओर उससे कहीं अधिक ध्यान देने का आग्रह किया जितना उत्तर सैन्य-विद्रोह काल में, वित्त के अभाव के कारण संभव हो सका था। भारत मंत्री ने स्पष्ट किया कि यदि आवश्यकता पड़ी तो वह ऋण लेने के लिए भी तैयार रहे।[153] भारत सरकार ने चार या पांच करोड़ स्टर्लिंग का ऋण लेने की योजना प्रस्तुत की। यह संपूर्ण राशि कई वर्षों में प्राप्त की जानी थी और देश के विभिन्न भागों में सिंचाई परियोजनाओं के बीच वितरित होनी थी।[154] इस योजना को भारत मंत्री की स्वीकृति नहीं मिली क्योंकि इसमें प्रस्तावित निर्माण कार्यों पर व्यय के सुनिश्चित प्राक्कलन नहीं दिए गए थे और वस्तुतः यह सुझाव दिया गया था कि इंग्लैंड में भारी मात्रा में ऋण लेकर उन्हें भारत सरकार के हवाले कर दिया जाना चाहिए।[155] भारत मंत्री ने घोषणा की कि वह सिंचाई के छोटे निर्माण कार्यों के लिए जिन पर थोड़ा धन व्यय (30,000 पौंड से कम) होना हो, अपनी स्वीकृति देने के लिए तत्पर है। अनुभव यह था कि सिंचाई की इन लघु परियोजनाओं से व्यय की गई राशि पर अच्छा प्रतिफल मिलता था। परंतु बड़ी परियोजनाएं जिन्हें पूरा करने में कई वर्ष का समय लगता और जिन पर लागत भी अधिक आती, वित्तीय मामलों की पूरी जांच के बिना प्रारंभ नहीं की जानी थीं। इस संबंध में भारत मंत्री ने एक महत्वपूर्ण सिद्धांत प्रतिपादित किया। यह सिद्धांत था कि 'सिंचाई के साधनों का निर्माण कार्य इस प्रकार से हो कि इनसे इतनी आय तो हो ही जाए जिससे इनके निर्माण पर व्यय की गई पूंजी पर दिए जाने वाले ब्याज का भुगतान हो सके। 'भारत की वर्तमान वित्तीय अवस्था में इन्हीं को ठीक से प्रारंभ किया जा सकता है। भारत मंत्री ने टिप्पणी करते हुए कहा कि भारत सरकार की यह सोचने में भूल थी कि सिंचाई के साधनों के निर्माण के लिए वित्तीय साधन जुटाने की समस्या का सरल समाधान ऋण लेना है। गृह अधिकारियों को कुछ अन्य बातों पर भी ध्यान देना आवश्यक था जैसे ब्याज प्रभार की मात्रा तथा लंदन मुद्रा बाजार की अवस्था। एक अनिश्चयात्मक टिप्पणी के साथ

अपने प्रेषण को भारत मंत्री ने इस प्रकार समाप्त किया, 'मैं यह कहने के लिए बिल्कुल तत्पर नही हूं कि इस अपेक्षित व्यय के एक अंग के निमित्त साधनों की व्यवस्था करने के लिए और अधिक कर नही लगाए जाने चाहिए। परंतु इस समय यह निर्धारित कर सकना हर प्रकार असंभव है कि अंततोगत्वा कितनी राशि ऋण के रूप मे ली जा सकेगी अथवा इसकी आवश्यकता कब होगी। मैं निश्चित रूप से न तो यह समझता हू कि इस समय मेरे द्वारा कोई भारी ऋण लिया जाना युक्तिसंगत होगा, और न ही मैं यह घोषणा करने के लिए तैयार हूं कि आगे आने वाले वर्षों में मैं ऋण लूंगा···।'

ये उद्धरण सरकार द्वारा ऋण लेने के प्रश्न पर गृह अधिकारियों के अनिश्चियात्मक तथा आवश्यकता से अधिक सतर्क दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए दिए गए है। 1865-66 के दुर्भिक्ष से, जो उडीसा में बहुत गंभीर था, भारी आकस्मिक आघात पहुंचा। भारत मंत्री क्रेनबोर्न ने वायसराय जान लारेंस को लिखा कि 'मुझे कोई संदेह नही है कि इस दुर्भिक्ष से अधिकांश लोगों की समझ मे यह तथ्य आ गया होगा कि इन अधिकाश निर्माण कार्यों में विलंब का अर्थ भारी सख्या में लोगों के जीवन और उनकी उत्पादन शक्ति की समय-समय पर हानि है।'[156] 'क्रेनबोर्न ने लारेंस से भारत को सिंचाई की सुविधाएं प्रदान करने और लोक 'निर्माण विभाग में अपनी 'समग्र शक्ति लगा देने' के लिए कहा। सड़क तथा सैन्य निर्माण के मुकाबले सिंचाई को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, क्योंकि इनमें से किसी की भी उतनी अधिक और तत्काल आवश्यकता नही है जितनी कि सिंचाई की है। सरकार यूरोपीय सैनिकों के लिए बैरको के निर्माण पर भारी धनराशि व्यय कर रही थी जबकि सिंचाई निर्माण कार्यों के लिए धनाभाव था। क्रेनबोर्न ने कहा कि 'भारी संख्या मे लोगों के जीवन की तुलना में अथवा, अधिक से अधिक यदि यह भी मान लिया जाए कि कई वर्षो तक कोई दुर्भिक्ष नही पड़ेगा तो भी, भूमि पर खेती की अत्यावश्यक अनिवार्यताओ की तुलना में सैनिको के आराम को प्राथमिकता देना अन्यायपूर्ण है।'

1866 से गृह अधिकारियों के दृष्टिकोण मे स्पष्ट परिवर्तन दिखाई देता है। चूंकि सिंचाई का 'भारत की प्रगति के लिए भारी महत्व था', अत: अगस्त, 1866 में भारत मंत्री ने उत्पादक निर्माण कार्यो के निमित्त ऋण लेने के लिए तत्परता दिखाई।[157] 1867-68 में भारत सरकार ने लोक निर्माण पर व्यय के लिए ऋण लेने का प्रस्ताव रखा और इस पर इंडिया आफिस ने अपनी अविलंब स्वीकृति दे दी।[158] क्रेनबोर्न ने समझा कि 'विकास का परित्याग कर उधार से बचने के लिए प्रयास' की तुलना में सिंचाई के साधनो के निर्माण के लिए ऋण लेना कही अधिक 'सच्ची बचत' है।[159]

भारत सरकार ने गृह अधिकारियों के दृष्टिकोण मे परिवर्तन का आभास पाकर प्रस्ताव रखा कि भविष्य मे सिंचाई के साधनों के निर्माण पर समस्त व्यय ऋणों से पूरा किया जाना चाहिए। भारत सरकार का प्रस्ताव था कि पुनरुत्पादी सिंचाई परियोजनाओं पर होने वाला व्यय चालू आय-व्यय वाले बजट मे नही दिखाया जाएगा। चूंकि ये खर्च ऋण लेकर किए जाएंगे, अत: इन्हे पूंजीगत खर्चो के रूप में लिया जाएगा और केवल ब्याज को बजट मे दिखाया जाएगा। इसके अलावा सैनिको के लिए बैरक, जेल, सडक इत्यादि विशिष्ट लोक निर्माण कार्यो पर भारी व्यय को असाधारण प्रभार के नाम से

दिखाया जाएगा जिसका एक अंश राजस्व से और दूसरा ऋणों से पूरा किया जाएगा।[160]

भारत मंत्री इस प्रस्ताव को पूरी तरह स्वीकार नहीं कर सका। उसका विचार था कि सिचाई के साधनों के निर्माण पर होने वाले व्यय को आय-व्यय लेखे से हटाकर ऋण में दिखाना बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं होगा। उसने भारत सरकार को आदेश दिया कि वह सिंचाई के साधनों के निर्माण पर होने वाले व्यय को अपने वार्षिक वित्तीय तलपट (बैलेंस शीट) में ट्रंक सड़कों, सैनिकों के लिए बैरकों इत्यादि पर 'असाधारण' प्रभारों के साथ ही 'असाधारण' प्रभार के रूप में दिखाए।[161] बाद में एक महत्वपूर्ण विषय पर क्रैनबोर्न का यह निर्णय उसके उत्तराधिकारी नोर्थकोट के द्वारा बदल दिया गया। नोर्थकोट का मत[162] था कि 'सामान्यत: उन निर्माण कार्यों को छोड़कर जिनके प्रत्यक्ष रूप से लाभकारी सिद्ध हो सकने की आशा हो, सभी निर्माण कार्य 'साधारण' माने जाने चाहिए। तात्पर्य यह कि ये अपनी लागत पर ब्याज के बाद लाभ देने मे समर्थ होने चाहिए...। चूंकि सैनिक बैरक सड़क, बांध और जेल लाभकारी श्रेणी मे नही रखी जा सकती अत: ये सभी 'असाधारण' लोक निर्माण की श्रेणी से अलग कर दिए गए। इन निर्माण कार्यों (सैन्य निर्माण, सड़क, जेल इत्यादि) पर व्यय वार्षिक आय से ही करना आवश्यक कर दिया गया। केवल सिंचाई के साधनों का निर्माण ऋण लेकर किया जा सकता था और इसे बजट में असाधारण लोक निर्माण के रूप मे दिखाना था।[163]

अत:, अंत में यह निर्णय हुआ कि (क) 'असाधारण निर्माण कार्य' नामक श्रेणी में आने वाले 'पुनरुत्पादी' अथवा लाभकारी सिंचाई के साधनों के निर्माण के लिए सरकार ऋण ले सकती है; (ख) और 'साधारण निर्माण' नामक श्रेणी में आने वाले अलाभकारी निर्माण जैसे, सैन्य निर्माण, सड़क, जेल, बांधों इत्यादि के लिए सरकार सामान्यत: ऋण नही ले सकती है। अलाभकारी निर्माण के निमित्त लिए जाने वाले ऋणों का एकमात्र उदाहरण 1867-68 का सैनिक बैरकों के निर्माण के लिए लिया गया 10 लाख पौंड का ऋण था।[164]

1867 मे लोक निर्माण विभाग की नवीन स्थापित सिंचाई शाखा के सर्वोच्च अधिकारी के रूप में कर्नल रिचर्ड स्ट्रैची की नियुक्ति हुई।[165] उसके अनुरोध पर 1869 में भारत मंत्री के पास भारत सरकार ने अगले वर्षों में कम से कम 30 करोड़ रुपये के प्रस्तावित व्यय की एक योजना भेजी। यह संपूर्ण राशि ऋणों के द्वारा जुटाई जानी थी और सिंचाई के साधनों के निर्माण पर व्यय की जानी थी।[166] यह वस्तुत: सामान्य प्राक्कलन था क्योंकि गवर्नर जनरल मेयो अपनी सरकार को भारी ब्याज प्रभार से लज्जास्पद उलझन मे नही डालना चाहता था।[167] भारत मंत्री ने मेयो को सतर्क किया कि वह लागत और लाभप्रदता के आंकड़ों के बिना बहुत बड़े पैमाने पर निर्माण प्रारंभ न करें।[168] आरगाइल नई सिंचाई परियोजनाओं में बाधा उपस्थित नहीं करना चाहता था, परंतु वह यह अवश्य चाहता था कि भारत सरकार तुलनात्मक रूप से कम खर्चीले और लाभकारी निर्माण कार्य करे।[169] उसने मेयो को साधारण लोक निर्माण पर व्यय में कमी करने की राय दी, क्योंकि 'असाधारण' निर्माण पर व्यय मे वृद्धि हो रही थी।[170] सरकार ने इस नीति का पालन किया यह इस तथ्य से प्रमाणित होता है कि साधारण

लोक निर्माण पर व्यय का कुल व्यय के साथ अनुपात जो 1868-69 में 12.3 प्रतिशत था, 1869-70 में 10 प्रतिशत, 1870-71 मे 8.2 प्रतिशत और 1871-72 मे केवल 5.3 प्रतिशत रह गया।

लोक निर्माण विभाग मे अपव्यय के कारण साधनों का अभाव बढ़ गया। 'दि फ्रैंड आफ इंडिया' में इस विभाग की तुलना ऐसे सड़े हुए नगर से की थी जो किसी प्रकार सुधार से बच गया था। हिंदुस्तानियों द्वारा निकाले जाने वाले देशी भाषाओं के समाचार पत्रों की शिकायत थी कि भारत सरकार और करदाताओं को अपने धन का उचित प्रतिफल नही मिल पा रहा है। आक्षेप यह था कि लोक निर्माण की धनराशि का बड़ा भाग अपव्यय के कारण नष्ट हो रहा है।[171] नीचे स्तर पर भ्रष्टाचार, ठेकों के विवरण मे भ्रष्टता तथा यूरोपीय इंजीनियरों द्वारा लापरवाही के साथ निरीक्षण के आरोप थे।[172] 1871 मे जब ईस्ट इंडिया वित्त प्रवर समिति ने अपनी जाच प्रारंभ की तो समिति का ध्यान इस समस्या की ओर आकर्षित करने के लिए बंबई एसोसिएशन की ओर से प्रतिवेदन दिए गए।[173] सातवें दशक की समाप्ति के आसपास अपव्यय रोकने के लिए जोरदार प्रयत्न किए गए। धन की अधिक बरबादी बिना पर्याप्त सर्वेक्षण तथा बिना आकड़े एकत्र किए ही निर्माण कार्य प्रारंभ कर देने से होती थी।[174] सितम्बर, 1869 मे एक प्रस्ताव में सपरिषद गवर्नर जनरल ने चिंता के साथ उल्लेख किया कि बिना स्वीकृति के अनियमित व्यय बढ गया है। सरकार ने अफसरो को आदेश दिया कि वे प्राक्कलनों की स्वीकृति के बिना अथवा पहले विनियोजन का प्रबंध किए बिना निर्माण कार्य प्रारंभ न करें।[175]

ऐसा प्रतीत होता है कि भारत मे स्थापन खर्च इग्लैंड की बनिस्बत चार-पाच गुना था। ऐसा मुख्यतः असैनिक निर्माण कार्यों के लिए ऊंचे वेतन पाने वाले सेना के अफसरों की नियुक्ति तथा निरीक्षणात्कक कार्यों के लिए, जिन्हें मातहत कर्मचारी भी कर सकते थे, यूरोपीय लोगों की नियुक्ति के कारण था।[176] उन्नीसवी शताब्दी के सातवें दशक में एक औसत वर्ष का स्थापन खर्च लोक निर्माण (साधारण) पर कुल व्यय के 10 प्रतिशत से अधिक था।

सैन्य विद्रोह के वर्ष से 1859-60 तक सैन्य निर्माण पर व्यय जो वैसे भी अधिक रहता था, असाधारण रूप से अधिक था। 1860 से 1865 तक औसत वार्षिक व्यय लगभग 0.72 करोड़ रुपये था जो अपेक्षाकृत कम था। दशक के उत्तरार्द्ध में सैन्य निर्माण पर औसत वार्षिक व्यय 1.59 करोड़ रुपये था। इस व्यय में आंशिक वृद्धि तो संपूर्ण भारत में सामरिक महत्व के स्थानों पर सेना की बैरकों के निर्माण से संबंधित योजना के कार्यान्वयन के कारण थी। सेना के स्वास्थ्य से संबधित शाही आयोग की सिफारिश पर भारत सरकार ने 1865 मे यूरोपीय सैनिकों के लिए नई बैरकों का निर्माण करने का निश्चय किया।[177] सैन्य विद्रोह के बाद भारतीय सेना मे भारी अनुपात में यूरोपीय सैनिकों को रखने के निर्णय (हिंदुस्तानी सैनिको के द्वारा एक दूसरे विद्रोह के विरुद्ध रक्षोपाय की दृष्टि से) के फलस्वरूप उनके लिए नई बैरकों का निर्माण आवश्यक हो गया। उस समय सफाई की धुन के कारण स्वच्छता एवं स्वास्थ्य रक्षा का स्तर ऊचा हो गया था

प्रश्न यह था कि 'क्या विशिष्ट एवं अस्थाई कराधान किया जाना चाहिए ···अथवा भार अगली पीढियों के साथ बांटा जाना चाहिए। दूसरा तरीका अपेक्षाकृत अच्छा था क्योंकि केवल सैन्य निर्माण से ही बजट मे घाटा रहता था।[185]

भारत सरकार ने एक अन्य सुझाव दिया। प्रस्ताव यह था कि सेना के लिए बैरक सहित सभी लोक निर्माण पर भारी व्यय को लेखे मे 'असाधारण' प्रभार के नाम से दिखाया जाए और इन्हें पूंजीगत प्रभार माना जाए। यह भी सुझाव दिया गया कि असाधारण प्रभार को वार्षिक आय-व्यय विवरण में सम्मिलित नही किया जाना चाहिए और इन्हें रोकड़ शेष के विवरण मे अलग से ऋण के रूप मे दिखाया जाना चाहिए।[186]

1867 में आखिरकार भारत मंत्री को 10 लाख पौंड का ऋण प्राप्त करने के लिए राजी किया गया। परंतु भारत सरकार के इस प्रस्ताव पर कि अगले दो वर्षों में भी इतनी ही राशि के और ऋण लिए जाएं, क्रेनबोर्न ने अपनी सरकार की ओर से कोई वचन नही दिया।[187] भारत मंत्री, क्रेनबोर्न 'असाधारण प्रभार' को चालू लेखे से हटाकर ऋण में रखने के लिए भी सहमत हो गया। उसने यह भी मान लिया कि सेना के लिए बैरकों के निर्माण पर खर्च 'असाधारण प्रभार' की श्रेणी में रखा जाना चाहिए।[188]

तथापि बाद में इन दोनो ही निर्णयों में थोड़ा सा संशोधन किया गया। इंडिया आफिस में क्रेनबोर्न के उत्तराधिकारी नोर्थकोट ने आदेश दिया कि सैन्य निर्माण कार्यों पर खर्च 'असाधारण' प्रभार की श्रेणी से निकाल दिए जाने चाहिए। केवल सिंचाई के साधनों के निर्माण को चालू लेखे से हटाकर ऋण मे रखना होगा। उसका मत था कि प्रत्येक वर्ष की आय से लोक निर्माण के लिए धन की व्यवस्था मे अनुचित रूप से कमी करके बैरकों तथा अन्य अलाभकर निर्माण कार्यों पर व्यय को अलग करने का उद्देश्य भारत सरकार की वास्तविक वित्तीय स्थिति के बारे मे गलत धारणाओ को प्रोत्साहन देना था।[189] अतः भारत सरकार ने सैन्य निर्माण कार्यों (सड़क, बाध इत्यादि) पर खर्चों को 'असाधारण प्रभार' की श्रेणी से 'साधारण प्रभार' (अर्थात वे खर्च जो चालू आय से किए जाने चाहिए) की श्रेणी में रख दिया।[190] इसके अलावा भारत मंत्री के आदेश पर वित्त सदस्य डब्ल्यू० एन० मैसी ने भारत सरकार की ओर से घोषणा की कि बैरकों के निर्माण के लिए व्यय चालू आय से किया जाएगा और इस उद्देश्य के लिए और अधिक ऋण नही लिए जाएंगे।

गवर्नर जनरल की परिषद के अनेक सदस्यों ने जिनमें सेना संबंधी मामलों का सदस्य और सेनाध्यक्ष भी थे, नीति में उलटाव का विरोध किया। सर डब्ल्यू० आर० मैंसफील्ड ने कहा कि अधिकारी समय के विपरीत चल रहे हैं क्योंकि यदि सैन्य निर्माण पर व्यय ऋण से न करके चालू आय से किया जाना है तो विकास पर व्यय मे कमी करनी होगी। ऋण लेने के विषय में इंकार करके सरकार अप्रचलित नीति को पुनः अपना रही थी जिसका अर्थ निर्माण कार्य मे विलंब था।[191] मेजर जनरल एच० एम० ड्यूरेंड ने स्पष्ट किया कि नोर्थकोट के *'घोर पश्चगामी'* निर्णय ने सरकार को अलोकप्रिय व्यवसाय कर को जिसे लाइसेंस अथवा सर्टिफिकेट कर कहा जाता था, बनाए रखने के लिए बाध्य किया। भारत सरकार ब्रिटिश पूंजी के स्वतंत्र एवं स्वस्थ प्रवाह को रोक

और सुख साधनों के बारे में आशाएं काफी बढ़ गई थीं। परंतु आधुनिक आधार पर सेना के लिए इमारतों का निर्माण करना और उन्हें बनाए रखना बहुत खर्चीला था। गृह अधिकारियों की ओर से तर्क दिया गया था कि 'इन उपायों को करने के लिए यदि सेना के कल्याण की स्वाभाविक इच्छा पर्याप्त कारण न हो तो भी यूरोपीय सैनिकों की कार्यक्षमता की अवस्था मे वृद्धि से सरकार को जो आर्थिक लाभ होगा उससे इस बढ़े हुए खर्च को अच्छी तरह युक्तिसंगत सिद्ध किया जा सकता है।[178] इन बैरकों के निर्माण की लागत का मूल प्राक्कलन 1 करोड़ पौंड था।[179] बाद में प्राक्कलन में संशोधन करके लागत बढ़ाकर 1 करोड़ 13 लाख 10 हजार पौंड कर दी गई। यह संपूर्ण व्यय पांच वर्षों (1865-66 से 1869-70) मे किया जाना था।[180] यह उस सरकार पर काफी भार था जिसके लिए न्यूनतम आवश्यकताओं को भी पूरा करने के लिए प्राय: साधन जुटा पाना कठिन होता था। सितंबर, 1868 मे सपरिषद गवर्नर जनरल ने भारत मंत्री को लिखा, 'यदि सैन्य निर्माण पर व्यय को निकाल दिया जाए तो अन्य साधारण लोक निर्माण जैसे सड़क, संचार साधन, सार्वजनिक इमारत इत्यादि पर व्यय मे वृद्धि होने के स्थान पर उसमे भारी कमी हुई है और वित्तीय कठिनाइयों के कारण हमें इन पर व्यय में कटौती करनी पड़ी है⋯।' भारत सरकार ने यह स्वीकार किया कि व्यय की इस प्रवृत्ति से देश के सामान्य विकास में कोई योगदान नही मिला है।[181] इस तथ्य ने सरकार को आलोचना का काफी शिकार बना दिया। भारतीय समाचार पत्रों ने इस संबंध मे शिकायत की कि यूरोपीय सैनिकों को आराम तथा विलासिता की सुविधाएं देने के लिए भारी धनराशि व्यय की जाती है जबकि लोकोपयोगी निर्माण के लिए धन का अभाव बनाए रखा जाता है।[182]

सरकार की आय का अपेक्षाकृत बड़ा अनुपात विकास कार्यों जैसे सड़क, नहर तथा लोकोपयोगी निर्माण पर लगाया जाना संभव हो सके; इस दृष्टि से सुझाव दिया गया कि सैन्य निर्माण पर व्यय को ऋण लेकर पूरा किया जाए। यह प्रश्न कि क्या सैनिक बैरकों के निर्माण के लिए सरकार को ऋण लेना चाहिए, गंभीर विवाद का विषय बन गया।

जनवरी, 1865 मे भारत सरकार ने भारत मंत्री को एक गोपनीय पत्र मे लिखा कि असैनिक लोक निर्माण, तथा पुराने असैनिक एवं सैन्य निर्माणों की देखभाल तथा मरम्मत और रेलों पर व्यय के ऊपर सैनिक बैरकों के निर्माण पर अतिरिक्त व्यय का भार असह्य है। कराधान मे वृद्धि किए बिना चालू आय से इन सब के लिए व्यवस्था कर पाना असंभव है। परंतु कराधान में वृद्धि से लोगो की संपन्नता एवं संतुष्टि में बाधा है।[183] और वर्तमान पीढ़ी पर इन निर्माण कार्यों का संपूर्ण भार डाल देना अन्यायपूर्ण है, जो भावी पीढ़ियों के लिए भी थे।

भारत सरकार ने अनेक बार यह सुझाव दिया कि भारत मंत्री को ऋण लेना चाहिए और सेना के लिए बैरकों की लागत का एक अंश ऋण से और शेष चालू आय से पूरा करना चाहिए।[184] 1865-66 में तीन बार भारत मंत्री से सैन्य निर्माण के लिए लगातार तीन वर्षों तक वार्षिक ऋण द्वारा 30 लाख पौंड जुटाने का अनुरोध किया गया।

प्रश्न यह था कि 'क्या विशिष्ट एवं अस्थाई कराधान किया जाना चाहिए···अथवा भार अगली पीढ़ियों के साथ बांटा जाना चाहिए । दूसरा तरीका अपेक्षाकृत अच्छा था क्योंकि केवल सैन्य निर्माण से ही बजट में घाटा रहता था ।[185]

भारत सरकार ने एक अन्य सुझाव दिया । प्रस्ताव यह था कि सेना के लिए बैरक सहित सभी लोक निर्माण पर भारी व्यय को लेखे में 'असाधारण' प्रभार के नाम से दिखाया जाए और इन्हें पूंजीगत प्रभार माना जाए । यह भी सुझाव दिया गया कि असाधारण प्रभार को वार्षिक आय-व्यय विवरण मे सम्मिलित नही किया जाना चाहिए और इन्हें रोकड़ शेष के विवरण में अलग से ऋण के रूप मे दिखाया जाना चाहिए ।[186]

1867 में आखिरकार भारत मंत्री को 10 लाख पौंड का ऋण प्राप्त करने के लिए राजी किया गया । परंतु भारत सरकार के इस प्रस्ताव पर कि अगले दो वर्षों में भी इतनी ही राशि के और ऋण लिए जाएं, क्रैनबोर्न ने अपनी सरकार की ओर से कोई वचन नहीं दिया ।[187] भारत मंत्री, क्रैनबोर्न 'असाधारण प्रभार' को चालू लेखे से हटाकर ऋण में रखने के लिए भी सहमत हो गया । उसने यह भी मान लिया कि सेना के लिए बैरकों के निर्माण पर खर्च 'असाधारण प्रभार' की श्रेणी मे रखा जाना चाहिए ।[188]

तथापि बाद में इन दोनों ही निर्णयों में थोड़ा सा संशोधन किया गया । इंडिया आफिस में क्रैनबोर्न के उत्तराधिकारी नोर्थकोट ने आदेश दिया कि सैन्य निर्माण कार्यों पर खर्च 'असाधारण' प्रभार की श्रेणी से निकाल दिए जाने चाहिए । केवल सिंचाई के साधनो के निर्माण को चालू लेखे से हटाकर ऋण मे रखना होगा । उसका मत था कि प्रत्येक वर्ष की आय से लोक निर्माण के लिए धन की व्यवस्था मे अनुचित रूप से कमी करके बैरको तथा अन्य अलाभकर निर्माण कार्यों पर व्यय को अलग करने का उद्देश्य भारत सरकार की वास्तविक वित्तीय स्थिति के बारे में गलत धारणाओं को प्रोत्साहन देना था ।[189] अत. भारत सरकार ने सैन्य निर्माण कार्यो (सडक, बांध इत्यादि) पर खर्चों को 'असाधारण प्रभार' की श्रेणी से 'साधारण प्रभार' (अर्थात वे खर्च जो चालू आय से किए जाने चाहिए) की श्रेणी में रख दिया ।[190] इसके अलावा भारत मंत्री के आदेश पर वित्त सदस्य डब्ल्यू० एन० मैसी ने भारत सरकार की ओर से घोषणा की कि बैरकों के निर्माण के लिए व्यय चालू आय से किया जाएगा और इस उद्देश्य के लिए और अधिक ऋण नही लिए जाएंगे ।

गवर्नर जनरल की परिषद के अनेक सदस्यों ने जिनमे सेना संबंधी मामलों का सदस्य और सेनाध्यक्ष भी थे, नीति में उलटाव का विरोध किया । सर डब्ल्यू० आर० मैंसफील्ड ने कहा कि अधिकारी समय के विपरीत चल रहे हैं क्योंकि यदि सैन्य निर्माण पर व्यय ऋण से न करके चालू आय से किया जाना है तो विकास पर व्यय मे कमी करनी होगी । ऋण लेने के विषय मे इंकार करके सरकार अप्रचलित नीति को पुन: अपना रही थी जिसका अर्थ निर्माण कार्य मे विलंब था ।[191] मेजर जनरल एच० एम० ड्यूरेंड ने स्पष्ट किया कि नोर्थकोट के 'घोर पश्चगामी' निर्णय ने सरकार को अलोकप्रिय व्यवसाय कर को जिसे लाइसेंस अथवा सर्टिफिकेट कर कहा जाता था, बनाए रखने के लिए बाध्य किया । भारत सरकार ब्रिटिश पूंजी के स्वतंत्र एवं स्वस्थ प्रवाह को रोक

और सुख साधनों के बारे में आशाएं काफी बढ़ गई थीं। परंतु आधुनिक आधार पर
के लिए इमारतों का निर्माण करना और उन्हें बनाए रखना बहुत खर्चीला था।
अधिकारियों की ओर से तर्क दिया गया था कि 'इन उपायों को करने के लिए यदि से-
के कल्याण की स्वाभाविक इच्छा पर्याप्त कारण न हो तो भी यूरोपीय सैनिकों की कार्य-
क्षमता की अवस्था में वृद्धि से सरकार को जो आर्थिक लाभ होगा उससे इस बढ़े हुए खर्च
को अच्छी तरह युक्तिसंगत सिद्ध किया जा सकता है।[178] इन बैरकों के निर्माण की लागत
का मूल प्राक्कलन 1 करोड़ पौंड था।[179] बाद में प्राक्कलन में संशोधन करके लागत
बढ़ाकर 1 करोड़ 13 लाख 10 हजार पौंड कर दी गई। यह संपूर्ण व्यय पांच वर्षों
(1865-66 से 1869-70) में किया जाना था।[180] यह उस सरकार पर काफी भार था
जिसके लिए न्यूनतम आवश्यकताओं को भी पूरा करने के लिए प्राय: साधन जुटा
कठिन होता था। सितंबर, 1868 में सपरिषद गवर्नर जनरल ने भारत मंत्री को लिख
'यदि सैन्य निर्माण पर व्यय को निकाल दिया जाए तो अन्य साधारण लोक निर्माण
सड़क, संचार साधन, सार्वजनिक इमारत इत्यादि पर व्यय में वृद्धि होने के स्थान
उसमें भारी कमी हुई है और वित्तीय कठिनाइयों के कारण हमें इन पर व्यय में
करनी पड़ी है...।' भारत सरकार ने यह स्वीकार किया कि व्यय की इस प्रवृत्ति
के सामान्य विकास में कोई योगदान नहीं मिला है।[181] इस तथ्य ने सरकार
चना का काफी शिकार बना दिया। भारतीय समाचार प
की कि यूरोपीय सैनिकों को आराम तथा विलासिता
धनराशि व्यय की जाती है जबकि लोकोपयोगी निर्माण
रखा जाता है।[182]

अनुपस्थिति भत्ते सम्मिलित थे। जिस अवधि का हमने अध्ययन किया है उसमें असैनिक खर्चों में लगातार वृद्धि हो रही थी। इसका एक कारण जिसका हम पहले भी कई बार उल्लेख कर चुके हैं, भारत मे कीमत और मजदूरी मे सामान्य वृद्धि थी। दूसरा कारण प्रशासन में सुधार की मांग था। 'आधुनिक धारणाओं के अनुरूप महान सभ्य प्रशासन के 'सभी उपकरणों' की व्यवस्था करनी थी।[197] अतः एक ओर तो नए विभाग खोले गए, पुराने स्थापनों का विस्तार किया गया, सेवा की शाखाओं का पुनर्गठन एवं विकास किया गया और दूसरी ओर पुराने वेतनमानों मे संशोधन किए गए, अफसरों (विशेष रूप से यूरोपीय अफसरों) की सुविधाएं बढा दी गई और कीमत तथा मजदूरी मे वृद्धि के कारण अनेक नए खर्चे किए गए।

हिंदुस्तानी न्यायाधीशों तथा न्यायालयों मे काम करने वाले मातहत हिंदुस्तानी अधिकारियों को बहुत थोडा वेतन मिलता था। औसत वेतन 250 रुपये वार्षिक से कम था और सबसे अधिक वेतन पाने वाले अफसरो को केवल 1800 रुपए प्रति वर्ष मिलता था। लारेंस के वायसराय काल में पहले बंगाल प्रेसीडेंसी मे और फिर अन्य प्रांतो मे न्यायिक सेवा मे वेतनो में संशोधन हुआ। यह जान स्ट्रैची की सहायता से (जिसने मामले की जांच कर वेतनों मे वृद्धि की सिफारिश की थी) लारेंस द्वारा किए जाने वाले विविध उपायों में से एक था।[198] गैर अनुबंधित न्यायिक सेवाओ के वेतनों मे वृद्धि से सभी गैर अनुबंधित कर्मचारियों के वेतनों मे उसी प्रकार के संशोधन करने पड़े। समाचार पत्रों मे इस प्रकार खबर थी कि मुद्रा की क्रय शक्ति में तेजी से कमी होने के कारण गैर अनुबधित कर्मचारियों को भारी कष्ट झेलना पड़ रहा है।[199] गैर अनुबंधित अफसरो ने सरकार को यह बताते हुए याचिका (अर्जी) भेजी कि योग्य व्यक्तियों को आकर्षित करने की दृष्टि से वेतनमान तथा पेंशन कम है, विशेष रूप से उस समय जबकि भारत मे लाभप्रद रोजगार के विविध क्षेत्र खुल रहे हैं।[200] सरकार इस बात से पूरी तरह परिचित थी कि वेतन का प्रश्न 'मजदूरी बाजार की वास्तविकताओं' के संदर्भ के बिना केवल पूर्वोदाहरणो के आधार पर तय नही हो सकता।[201] इस बात पर ध्यान दिया गया था कि अनेक योग्य अफसर सरकारी नौकरी छोड़कर वाणिज्यिक फर्मों तथा बैंकों मे जा रहे थे।[202] यथार्थ मे, 1863 से बंबई सरकार 200 रुपये से कम पाने वाले अफसरो को 'खाद्यान्न भत्ता' दे रही थी। जिसे आजकल महंगाई भत्ता कहा जाता है, संभवतः यह उसका सबसे पहला उदाहरण है।[203] 1865 से 1867 तक लगातार कई संशोधनो के द्वारा देश के लगभग सभी भागो मे सिविल मातहत कर्मचारियो के वेतनों मे वृद्धि हो गई।[204]

गैर अनुबधित सिविल सेवाओं मे भारी संख्या में यूरोपीय तथा यूरेशियाई लोग लगे हुए थे। ये पेंशन तथा अवकाश भत्ता मांगते थे जिससे सरकार का खर्च बहुत हो जाता था।[204] भारत मंत्री 'गैर अनुबधित सेवा के विकास को जिसमे सभी ऊंचे पदों को अंग्रेजों ने हथिया लिया (था)' रोकना चाहता था। 1868 के एक सर्वेक्षण के अनुसार (सिविल प्रशासन मे) सरकारी पदों पर 100 रुपये से अधिक पाने वाले भारतीयों की संख्या केवल 4,039 थी। इनमे से अधिकांश (3,898) को 500 रुपए अथवा उससे कम मिलता

; उस समय ऐसा करती है जब ब्रिटिश
कर भारत की सामान्य प्रगति को रोकती है'''वा खोज में है।'[193]
पूंजी सुरक्षित एवं लाभकारी निवेश के अवसर की स्ट्रैची और डब्ल्यू० एन० मैसी ने
गवर्नर जनरल लारेंस, गृह सदस्य जान किया। लारेंस का विचार था कि ऋण
नोर्थकोट के निर्णय का समर्थन करने का प्रयास है।'[193] जान स्ट्रैची इस मत से सहमत
लेने के लिए बाध्य होना निस्संदेह बड़ी बुरी बात लिए सरकार उसी अवस्था में ऋण ले
था। अलाभकारी निर्माणों जैसे बैरक इत्यादि केय पूरा कर पाना असभव हो अन्यथा
सकती थी जब चालू वर्ष की आय से इन पर व्य। ड्यूरेंड तथा मैंसफील्ड ने विसम्मति
नही।[194] यह विचारधारा अंत में स्वीकार की गई 'अनुसार वे उसी सरकार के सदस्य
टिप्पणी लिखी, परन्तु मंत्रि परिषद के सिद्धांतो विरोध प्रकट नही कर सकते थे।'[195]
होने के नाते भारत की जनता के सामने अपना वि सैन्य निर्माण पर व्यय जहा तक सभव
संक्षेप मे, भारत सरकार की नीति थी वि से अधिक ऋण न लिया जाए जिसके
हो चालू वर्ष की आय से ही किया जाए और उ ग ऋण, चालू वर्ष की आय से ही इन
बिना काम चला पाना संभव न हो। 1867-68 था। नोर्थकोट क्रेनबोर्न की भाति इस
खर्चो को पूरा करने के सिद्धांत से थोड़ा विचलन कि वह भारत सरकार को लाभकारी
नियम को ढीला करने के लिए तत्पर नही था क्यो ाज दे पाने मे समर्थ रहेंगे) के अलावा
सिंचाई निर्माण कार्यों (जो लगाई गई पूजी पर ब्य देने के लिए अनिच्छुक था। अतः
किसी अन्य बात के लिए ऋण लेने की अनुमति के लिए पूर्ण रूप से चालू वर्ष की आय
1868-69 से सरकार सैन्य निर्माण पर व्यय करने 868 के प्रेषण मे स्पष्ट किया है कि
पर ही निर्भर रही। जैसा कि भारत सरकार ने कर तथा आय कर के रूप मे विभिन्न
इस स्थिति के कारण उसे लाइसेंस कर, सर्टिफिकेट डा था। इसी प्रेषण मे परिषद गवर्नर
प्रकार के प्रत्यक्ष कर लगाने के लिए विवश होना प 'ऊपर से देखने पर यह लग सकता है
जनरल ने असामान्य स्पष्टता के साथ लिखा था, भी उतना ही कर रहे हैं जितना पहले
कि हम देश मे सामान्य विकास करने के लिए अब छ वर्षों मे सेना पर व्यय का अनुपात
कभी कर रहे थे। परंतु वास्तव मे'''हाल के कु बढाने मे प्रत्यक्ष रूप से सहायक नही
बहुत बढ गया है। यह व्यय राष्ट्र की संपत्ति को
है'''।'[196]

V

दिखाई जाने वाली प्रमुख मदो का
इस अध्याय के प्रारंभ मे लेखे के व्यय पक्ष मे खर्च भारत सरकार के कुल व्यय के
पुनरीक्षण करते हुए हमने देखा था कि सेना पर गभग 15 प्रतिशत थे। तात्पर्य यह है
लगभग एक तिहाई और लोक निर्माण पर व्यय ल र था। सिविल प्रशासन पर व्यय भी
कि लगभग आधा व्यय सेना और लोक निर्माण पु बधित तथा गैर अनुबंधित सरकारी
कुल व्यय का एक तिहाई था। इस श्रेणी मे अनेह खर्चे, 'विधि एवं न्याय' के अंतर्गत
अफसरो के वेतन तथा स्थापना खर्चे, राजस्व संग्रहो मे राजनीतिक एजेंसियो के खर्चे,
आने वाले व्यय; भारतीय रियासतों तथा दूसरे देशो को मिलने वाले अवकाश एवं
सेवा निवृत्ति तथा अनुकंपा भत्ते; और यूरोपीय

अनुपस्थिति भत्ते सम्मिलित थे। जि
खर्चों में लगातार वृद्धि हो रही थी।
उल्लेख कर चुके है, भारत में कीमत
प्रशासन में सुधार की माग था। 'आ
'सभी उपकरणों' की व्यवस्था करनी
पुराने स्थापनो का विस्तार किया गय
गया और दूसरी ओर पुराने वेतनमा
यूरोपीय अफसरो) की सुविधाएं बढ़
कारण अनेक नए खर्चे किए गए।

हिंदुस्तानी न्यायाधीशो तथा
अधिकारियो को बहुत थोडा वेतन मि
था और सबसे अधिक वेतन पाने वाले
था। लारेंस के वायसराय काल में
न्यायिक सेवा मे वेतनो मे सशोधन हुअ
की जाच कर वेतनो मे वृद्धि की सिफा
उपायो मे से एक था।[199] गैर अनुबंधि
अनुबंधित कर्मचारियो के वेतनो मे उ
इस प्रकार खबर थी कि मुद्रा की क्रय
कर्मचारियों को भारी कष्ट झेलना प
को यह बताते हुए याचिका (अर्जी)
दृष्टि से वेतनमान तथा पेंशन कम है,
रोजगार के विविध क्षेत्र खुल रहे हैं।
कि वेतन का प्रश्न 'मजदूरी बाजार
पूर्वोदाहरणो के आधार पर तय नहीं
कि अनेक योग्य अफसर सरकारी नौक
थे।[202] यथार्थ मे, 1863 से बबई स
'खाद्यान्न भत्ता' दे रही थी। जिसे आ
उसका सबसे पहला उदाहरण है।[203]
द्वारा देश के लगभग सभी भागो मे f
गई।[204]

गैर अनुबंधित सिविल सेवाओ
लगे हुए थे। ये पेंशन तथा अवकाश
जाता था।[205] भारत मत्री 'गैर अनुबं
अंग्रेजो ने हथिया लिया (था)' रोकना

स अवधि का हमने अध्ययन किया है उसमें असैनिक
इसका एक कारण जिसका हम पहले भी कई बार
और मजदूरी मे सामान्य वृद्धि थी। दूसरा कारण
धुनिक धारणाओं के अनुरूप महान सभ्य प्रशासन के
थी।[197] अतः एक ओर तो नए विभाग खोले गए,
,सेवा की शाखाओं का पुनर्गठन एवं विकास किया
नों में संशोधन किए गए, अफसरों (विशेष रूप से
आ दी गई और कीमत तथा मजदूरी में वृद्धि के

न्यायालयों में काम करने वाले मातहत हिंदुस्तानी
लता था। औसत वेतन 250 रुपये वार्षिक से कम
अफसरों को केवल 1800 रुपए प्रति वर्ष मिलता
हले बंगाल प्रेसीडेंसी में और फिर अन्य प्रांतों में
ा। यह जान स्ट्रैची की सहायता से (जिसने मामले
रिश की थी) लारेंस द्वारा किए जाने वाले विविध
त न्यायिक सेवाओं के वेतनो मे वृद्धि से सभी गैर
ी प्रकार के संशोधन करने पड़े। समाचार पत्रों में
क्ति में तेजी से कमी होने के कारण गैर अनुबंधित
ड़ रहा है।[199] गैर अनुबंधित अफसरों ने सरकार
भेजी कि योग्य व्यक्तियों को आकर्षित करने की
विशेष रूप से उस समय जबकि भारत मे लाभप्रद
[200] सरकार इस बात से पूरी तरह परिचित थी
र की वास्तविकताओं' के संदर्भ के बिना केवल
हो सकता।[201] इस बात पर ध्यान दिया गया था
ी छोड़कर वाणिज्यिक फर्मों तथा बैंकों मे जा रहे
कार 200 रुपये से कम पाने वाले अफसरों को
जकल महंगाई भत्ता कहा जाता है, संभवतः यह
1865 से 1867 तक लगातार कई संशोधनों के
सविल मातहत कर्मचारियों के वेतनो मे वृद्धि हो

मे भारी संख्या मे यूरोपीय तथा यूरेशियाई लोग
भत्ता मांगते थे जिससे सरकार का खर्च बहुत हो
प्रेत सेवा के विकास को जिसमें सभी ऊंचे पदों को
चाहता था। 1868 के एक सर्वेक्षण के अनुसार

था और संपूर्ण भारत मे केवल 15 व्यक्ति ऐसे पदों पर थे जिनका वेतन 1,000 रुपए अथवा अधिक था।[206] इन आंकडों से एक हद तक भारत मे नए शिक्षित मध्यम वर्ग का सरकार की रोजगार संबंधी नीति के प्रति रोप स्पष्ट हो जाता है। सरकार की रोजगार संबंधी नीति के आलोचक यह स्पष्ट करके कि ब्रिटिश प्रशासकों की नियुक्ति राज्य के लिए अत्यधिक महंगी पड रही थी, अपने मामले को अधिक पुष्ट बना रहे थे। सिविल अवकाश एवं अनुपस्थिति भत्ते नामक व्यय की मद केवल उन ब्रिटिश असैनिक अधिकारियों के कारण थी जिन्हे ऐसा कहा जाता था कि उष्ण कटिबंधीय जलवायु में कुछ समय तक नौकरी कर लेने के बाद स्वास्थ्य लाभ के लिए इंग्लैंड जाने की आवश्यकता पडती थी। 1863-64 में अवकाश भत्ते पर व्यय की राशि 72,000 पौंड थी जो कुछ समय मे दुगुनी हो गई और दस वर्षों में 10 लाख पौंड के लगभग बढ़ गई।

सरकारी नौकरी से अवकाश ग्रहण कर सेवा निवृत्ति एवं अनुकपा भत्ते पाने वालों में, संख्या की दृष्टि से, भारतीयों की प्रधानता थी, परंतु अधिकाश धनराशि यूरोपीय लोगों को मिल रही थी। पेंशन निस्संदेह सेवा काल मे वेतनमानों के अनुपात में दी जा रही थी। इस मद के अंतर्गत एक दशक (1863-64 से 1872-73 तक) में 5 लाख की वृद्धि असाधारण नहीं थी। संभवतः वृद्धि की मात्रा और भी अधिक रही होती यदि इंग्लैंड में अधि[illegible] गैर नियमि[illegible]निक व्यय में वृद्धि की

कठिन था जो उससे अपनी पेंशन में वृद्धि की मांग कर रहे थे।[214]

समय-समय पर नागरिक व्यय मे कमी करने के प्रयत्न किए गए। कैनिंग के वायसराय काल में एक नागरिक (सिविल) वित्त आयोग, जिसका अध्यक्ष आर० टैंपिल था, नियुक्त किया गया। एक काफी लंबी और विस्तृत जांच (जुलाई, 1860 से मार्च, 1862 तक) के बाद आयोग ने व्यय की विविध मदों में कटौती की सिफारिश की जिससे लगभग 1 करोड़ 20 लाख रुपये की बचत हो सकती थी। सभी कटौतियां सरकार को मंजूर नही थी परंतु लगभग 1 करोड रुपये की कटौती तो सभव थी ही।[215] अफसर वर्ग के बीच कटौती संबधी उपाय अधिक लोकप्रिय नही थे।[216] 1869-70 मे मेयो ने नागरिक खर्चों को कम करने का एक और प्रयत्न किया। उसने अनुभव किया कि 'किसी भी सार्वजनिक व्यक्ति के लिए सबसे अप्रिय कार्य जो हो सकता है वह है अपव्यय के विरुद्ध अभियान और 'स्वार्थों', अनावश्यक पदों तथा सामान्य रूप से बेकार व्यक्तियो पर प्रहार।'[217] अफसर वर्ग ने मितव्ययिता के उपायों का विरोध किया। सरकारी मत था कि यदि सरकार 'ब्रिटिश शासन के प्रति कर्तव्यों तथा शासन की आवश्यकताओं' की ओर ध्यान देती है तो नागरिक खर्चों में वृद्धि होना अपरिहार्य है।[218]

भारत सरकार के भारत और इंग्लैंड में ब्याज प्रभार कुल व्यय के 10 प्रतिशत से अधिक थे। ये खर्च विभिन्न प्रकार के ऋणों की वजह से थे। मोटे तौर पर ऋणों को तीन श्रेणियों मे विभक्त किया जा सकता था: (क) स्थायी ऋण, (ख) चल अथवा अस्थाई ऋण; तथा (ग) अनिधिवद्ध ऋण। अस्थाई ऋणों की श्रेणी में जनता को निर्गत राजकोष पत्र (ट्रेजरी बिल) अथवा कागजी मुद्रा रिजर्व आते थे। नियमानुसार राजकोष पत्र 1 वर्ष से कम अवधि के लिए होते थे, परंतु कभी-कभी इनका समय-समय पर नवीकरण होता था और कभी राजकोष पत्रो के धारकों को यह विकल्प होता था कि वे यदि चाहे तो उन्हें दूसरे शेयरों में बदल लें। इस प्रकार अस्थाई ऋण का स्थाई ऋण मे परिवर्तन हो जाता था।[219] विल्सन ने ऐसे ऋणों को, जिनका भुगतान अल्प और अनिश्चित समय पर करना पड़ सकता था, अंतिम रीति के प्रयोग द्वारा अधिक स्थाई स्वरूप के ऋणों में बदल लिया।[220] डाकघर नकदी पत्र तथा असैनिक एवं सैनिक सेवा निधियों के निक्षेप अनिधिवद्ध ऋण थे। अनिधिवद्ध ऋण और राजकोष पत्रों के रूप मे ऋण बहुत अधिक नही थे। अत. यहा पर हम मुख्य रूप से स्थाई ऋण पर ही विचार करेंगे।

लेखओं मे स्थाई ऋण सामान्यत: दो श्रेणियो मे विभक्त किया जाता था: (1) साधारण ऋण अथवा अनुत्पादक ऋण, तथा (2) उत्पादक ऋण। उत्पादक ऋणों मे सिंचाई, रेल तथा अन्य लोक निर्माण ऋण सम्मिलित किए जाते थे। ये इसलिए उत्पादक ऋण कहलाते थे क्योंकि यह आशा की जाती थी कि इन पर किए गए पूजी निवेश से आय (जल उपकर, रेल से प्राप्तियां इत्यादि) प्राप्त होगी जिसका प्रयोग उधार लेकर निवेश की गई पूजी पर ब्याज चुकाने के लिए किया जा सकेगा। 'साधारण ऋण' की श्रेणी मे ईस्ट इंडिया कंपनी से विरासत में मिले दायित्व तथा उत्तर सैन्य विद्रोह काल मे संचित अन्य ऋण थे।

कठिन था जो उससे अपनी पेशन मे वृद्धि की माग कर रहे थे।[214],

समय-समय पर नागरिक व्यय मे कमी करने के प्रयत्न किए गए। कैनिंग के वायसराय काल मे एक नागरिक (सिविल) वित्त आयोग, जिसका अध्यक्ष आर० टेंपिल था, नियुक्त किया गया। एक काफी लंबी और विस्तृत जांच (जुलाई, 1860 से मार्च, 1862 तक) के बाद आयोग ने व्यय की विविध मदों मे कटौती की सिफारिश की जिससे लगभग 1 करोड 20 लाख रुपये की बचत हो सकती थी। सभी कटौतियां सरकार को मंजूर नही थी परंतु लगभग 1 करोड रुपये की कटौती तो संभव थी ही।[215] अफसर वर्ग के बीच कटौती संबंधी उपाय अधिक लोकप्रिय नहीं थे।[216] 1869-70 में मेयो ने नागरिक खर्चों को कम करने का एक और प्रयत्न किया। उसने अनुभव किया कि 'किसी भी सार्वजनिक व्यक्ति के लिए सबसे अप्रिय कार्य जो हो सकता है वह है अपव्यय के विरुद्ध अभियान और 'स्वार्थों', अनावश्यक पदों तथा सामान्य रूप से वेकार व्यक्तियों पर प्रहार।'[217] अफसर वर्ग ने मितव्ययिता के उपायों का विरोध किया। सरकारी मत था कि यदि सरकार 'ब्रिटिश शासन के प्रति कर्तव्यों तथा शासन की आवश्यकताओं' की ओर ध्यान देती है तो नागरिक खर्चों में वृद्धि होना अपरिहार्य है।[218]

भारत सरकार के भारत और इंग्लैंड में ब्याज प्रभार कुल व्यय के 10 प्रतिशत से अधिक थे। ये खर्च विभिन्न प्रकार के ऋणों की वजह से थे। मोटे तौर पर ऋणों को तीन श्रेणियों मे विभक्त किया जा सकता था : (क) स्थायी ऋण, (ख) चल अथवा अस्थाई ऋण; तथा (ग) अनिधिबद्ध ऋण। अस्थाई ऋणों की श्रेणी में जनता को निर्गत राजकोष पत्र (ट्रेजरी बिल) अथवा कागजी मुद्रा रिजर्व आते थे। नियमानुसार राजकोष पत्र 1 वर्ष से कम अवधि के लिए होते थे, परंतु कभी-कभी इनका समय-समय पर नवीकरण होता था और कभी राजकोष पत्रों के धारकों को यह विकल्प होता था कि वे यदि चाहें तो उन्हें दूसरे शेयरो में बदल लें। इस प्रकार अस्थाई ऋण का स्थाई ऋण में परिवर्तन हो जाता था।[219] विल्सन ने ऐसे ऋणों को, जिनका भुगतान अल्प और अनिश्चित समय पर करना पड़ सकता था, अंतिम रीति के प्रयोग द्वारा अधिक स्थाई स्वरूप के ऋणो मे बदल लिया।[220] डाकघर नकदी पत्र तथा अनैतिक एवं सैनिक सेवा निधियों के निक्षेप अनिधिबद्ध ऋण थे। अनिधिबद्ध ऋण और राजकोष पत्रों के रूप मे ऋण बहुत अधिक नही थे। अत. यहा पर हम मुख्य रूप से स्थाई ऋण पर ही विचार करेंगे।

लेखों मे स्थाई ऋण सामान्यत: दो श्रेणियों मे विभक्त किया जाता था: (1)साधारण ऋण अथवा अनुत्पादक ऋण, तथा (2) उत्पादक ऋण। उत्पादक ऋणों मे सिंचाई, रेल तथा अन्य लोक निर्माण ऋण सम्मिलित किए जाते थे। ये इसलिए उत्पादक ऋण कहलाते थे क्योंकि यह आशा की जाती थी कि इन पर किए गए पूजी निवेश से आय (जल उपकर, रेल से प्राप्तिया इत्यादि) प्राप्त होगी जिसका प्रयोग उधार लेकर निवेश की गई पूजी पर ब्याज चुकाने के लिए किया जा सकेगा। 'साधारण ऋण' की श्रेणी मे ईस्ट इंडिया कपनी से विरासत मे मिले दायित्व तथा उत्तर सैन्य विद्रोह काल मे सचित अन्य ऋण थे।

कठिन था जो उससे अपनी पेंशन में वृद्धि की माग कर रहे थे।[214]

समय-समय पर नागरिक व्यय मे कमी करने के प्रयत्न किए गए। कैनिंग के वायसराय काल में एक नागरिक (सिविल) वित्त आयोग, जिसका अध्यक्ष आर० टैंपिल था, नियुक्त किया गया। एक काफी लंबी और विस्तृत जांच (जुलाई, 1860 से मार्च, 1862 तक) के बाद आयोग ने व्यय की विविध मदों मे कटौती की सिफारिश की जिससे लगभग 1 करोड 20 लाख रुपये की बचत हो सकती थी। सभी कटौतिया सरकार को मंजूर नही थी परंतु लगभग 1 करोड रुपये की कटौती तो सभव थी ही।[215] अफसर वर्ग के बीच कटौती संबंधी उपाय अधिक लोकप्रिय नही थे।[216] 1869-70 में मेयो ने नागरिक खर्चों को कम करने का एक और प्रयत्न किया। उसने अनुभव किया कि 'किसी भी सार्वजनिक व्यक्ति के लिए सबसे अप्रिय कार्य जो हो सकता है वह है अपव्यय के विरुद्ध अभियान और 'स्वार्थों', अनावश्यक पदों तथा सामान्य रूप से बेकार व्यक्तियो पर प्रहार।'[217] अफसर वर्ग ने मितव्ययिता के उपायो का विरोध किया। सरकारी मत था कि यदि सरकार 'ब्रिटिश शासन के प्रति कर्तव्यों तथा शासन की आवश्यकताओं' की ओर ध्यान देती है तो नागरिक खर्चों में वृद्धि होना अपरिहार्य है।[218]

भारत सरकार के भारत और इंग्लैंड में ब्याज प्रभार कुल व्यय के 10 प्रतिशत से अधिक थे। ये खर्च विभिन्न प्रकार के ऋणों की वजह से थे। मोटे तौर पर ऋणों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता था : (क) स्थायी ऋण, (ख) चल अथवा अस्थाई ऋण; तथा (ग) अनिधिवद्ध ऋण। अस्थाई ऋणों की श्रेणी मे जनता को निर्गत राजकोष पत्र (ट्रेजरी बिल) अथवा कागजी मुद्रा रिजर्व आते थे। नियमानुसार राजकोष पत्र 1 वर्ष से कम अवधि के लिए होते थे, परंतु कभी-कभी इनका समय-समय पर नवीकरण होता था और कभी राजकोष पत्रो के धारकों को यह विकल्प होता था कि वे यदि चाहे तो उन्हे दूसरे शेयरों में बदल लें। इस प्रकार अस्थाई ऋण का स्थाई ऋण में परिवर्तन हो जाता था।[219] विलसन ने ऐसे ऋणों को, जिनका भुगतान अल्प और अनिश्चित समय पर करना पड़ सकता था, अंतिम रीति के प्रयोग द्वारा अधिक स्थाई स्वरूप के ऋणों में बदल लिया।[220] डाकघर नकदी पत्र तथा अनैतिक एवं सैनिक सेवा निधियों के निक्षेप अनिधिवद्ध ऋण थे। अनिधिवद्ध ऋण और राजकोष पत्रों के रूप में ऋण बहुत अधिक नही थे। अतः यहा पर हम मुख्य रूप से स्थाई ऋण पर ही विचार करेंगे।

लेखओं में स्थाई ऋण सामान्यतः दो श्रेणियों में विभक्त किया जाता था : (1) साधारण ऋण अथवा अनुत्पादक ऋण, तथा (2) उत्पादक ऋण। उत्पादक ऋणों मे सिचाई, रेल तथा अन्य लोक निर्माण ऋण सम्मिलित किए जाते थे। ये इसलिए उत्पादक ऋण कहलाते थे क्योंकि यह आशा की जाती थी कि इन पर किए गए पूंजी निवेश से आय (जल उपकर, रेल से प्राप्तियां इत्यादि) प्राप्त होगी जिसका प्रयोग उधार लेकर निवेश की गई पूंजी पर ब्याज चुकाने के लिए किया जा सकेगा। 'साधारण ऋण' की श्रेणी में ईस्ट इंडिया कंपनी से विरासत मे मिले दायित्व तथा उत्तर सैन्य विद्रोह काल मे संचित अन्य ऋण थे।

था और संपूर्ण भारत मे केवल 15 व्यक्ति ऐसे पदों पर थे जिनका वेतन 1,000 रुपए अथवा अधिक था।[206] इन आंकडों से एक हद तक भारत मे नए शिक्षित मध्यम वर्ग का सरकार की रोजगार संबंधी नीति के प्रति रोष स्पष्ट हो जाता है। सरकार की रोजगार संबंधी नीति के आलोचक यह स्पष्ट करके कि ब्रिटिश प्रशासकों की नियुक्ति राज्य के लिए अत्यधिक महंगी पड रही थी, अपने मामले को अधिक पुष्ट बना रहे थे। सिविल अवकाश एवं अनुपस्थिति भत्ते नामक व्यय की मद केवल उन ब्रिटिश असैनिक अधिकारियों के कारण थी जिन्हें ऐसा कहा जाता था कि उष्ण कटिबंधीय जलवायु मे कुछ समय तक नौकरी कर लेने के बाद स्वास्थ्य लाभ के लिए इंग्लैंड जाने की आवश्यकता पड़ती थी। 1863-64 में अवकाश भत्ते पर व्यय की राशि 72,000 पौंड थी जो कुछ समय मे दुगुनी हो गई और दस वर्षों में 10 लाख पौंड के लगभग बढ गई।

सरकारी नौकरी से अवकाश ग्रहण कर सेवा निवृत्ति एवं अनुकपा भत्ते पाने वालों में, संख्या की दृष्टि से, भारतीयों की प्रधानता थी, परंतु अधिकांश धनराशि यूरोपीय लोगो को मिल रही थी। पेंशन निस्सदेह सेवा काल में वेतनमानो के अनुपात में दी जा रही थी। इस मद के अंतर्गत एक दशक (1863-64 से 1872-73 तक) में 5 लाख की वृद्धि असाधारण नही थी। संभवतः वृद्धि की मात्रा और भी अधिक रही होती यदि इंग्लैंड में अधिकारियों ने गैर नियमित असैनिक व्यय में वृद्धि की प्रवृत्ति का प्रबल विरोध न किया होता। 1868 में अनुबंधित सरकारी अफसरों ने तीन प्रेसीडेंसियों में एक आंदोलन प्रारंभ किया। भारत मंत्री को स्मरणपत्र भेजे गए जिनमें पेंशन बढाने की मांग की गई।[207] इन स्मरणपत्रों में प्रस्तावित परिवर्तनो का अर्थ था कि 78,000 पौंड से 1,53,000 पौंड तक प्रति वर्ष अतिरिक्त व्यय किया जाए। भारत सरकार ने जो इस आदोलन को समाप्त करना चाहती थी पेंशन भत्तो में वृद्धि की सिफारिश की।[208] परंतु भारत मंत्री ने, जिसे अपनी परिषद का समर्थन प्राप्त था इस संबंध में व्यय में वृद्धि के लिए अपनी स्वीकृति नही दी। भत्तों में वृद्धि के लिए कोई आधार नही था।[209] उसने भारत सरकार को लिखा कि 'साम्राज्य में और संभवतः विश्व में कोई भी सेवा ऐसी नहीं है जिसके साथ इतनी उदारता दिखाई जा रही हो।'[210] भारत मंत्री ने केवल एक रियायत दी कि सरकारी सेवा में जिन अनुबंधित अफसरो ने 25 वर्ष पूरे कर लिए थे और जो भारत में 21 वर्ष रह चुके थे, उन्हें सेवा से निवृत्त होने पर कम से कम 1,000 पौंड वार्षिक पेंशन देने की व्यवस्था की गई।[211] मेयो को लिखे गए अपने निजी पत्रों में आरगाइल ने सिविल सेवा के अफसरों द्वारा अपनी सुविधाएं तथा पेंशन बढ़वाने के लिए किए गए आदोलन पर अप्रसन्नता प्रकट की।[212] आरगाइल ने उन स्वार्थी प्रयोजनों की स्पष्ट रूप में निंदा की जिनके कारण भारत सरकार को अनुबंधित यूरोपीय अफसरो को अनेक खर्चीली सुविधाएं देनी पड़ी। उसने मेयो को लिखा 'वायसराय, सेनाध्यक्ष तथा विधि-सदस्य के अलावा सरकार (अर्थात गवर्नर जनरल की परिषद) का प्रत्येक सदस्य सिविल सेवा का अफसर है। ये सभी इस समस्या में व्यक्तिगत रूप से दिलचस्पी रखते हैं।'[213] इन सरकारी अफसरों में समूह भावना का असर होना स्वाभाविक था और गवर्नर जनरल के लिए संपूर्ण भारत में उन अपने अफसरों का विरोध कर पाना

कठिन था जो उससे अपनी पेंशन में वृद्धि की मांग कर रहे थे।[211]

समय-समय पर नागरिक व्यय मे कमी करने के प्रयत्न किए गए। कैनिंग के वायसराय काल मे एक नागरिक (सिविल) वित्त आयोग, जिसका अध्यक्ष आर० टैंपिल था, नियुक्त किया गया। एक काफी लबी और विस्तृत जांच (जुलाई, 1860 से मार्च, 1862 तक) के बाद आयोग ने व्यय की विविध मदों में कटौती की सिफारिश की जिससे लगभग 1 करोड 20 लाख रुपये की बचत हो सकती थी। सभी कटौतियां सरकार को मजूर नही थी परंतु लगभग 1 करोड़ रुपये की कटौती तो संभव थी ही।[215] अफसर वर्ग के बीच कटौती संबंधी उपाय अधिक लोकप्रिय नही थे।[216] 1869-70 मे मेयो ने नागरिक खर्चों को कम करने का एक और प्रयत्न किया। उसने अनुभव किया कि 'किसी भी सार्वजनिक व्यक्ति के लिए सबसे अप्रिय कार्य जो हो सकता है वह है अपव्यय के विरुद्ध अभियान और 'स्वार्थों', अनावश्यक पदों तथा सामान्य रूप से बेकार व्यक्तियों पर प्रहार।'[217] अफसर वर्ग ने मितव्ययिता के उपायों का विरोध किया। सरकारी मत था कि यदि सरकार 'ब्रिटिश शासन के प्रति कर्तव्यों तथा शासन की आवश्यकताओं' की ओर ध्यान देती है तो नागरिक खर्चों मे वृद्धि होना अपरिहार्य है।[218]

भारत सरकार के भारत और इंग्लैंड में ब्याज प्रभार कुल व्यय के 10 प्रतिशत से अधिक थे। ये खर्च विभिन्न प्रकार के ऋणों की वजह से थे। मोटे तौर पर ऋणों को तीन श्रेणियों मे विभक्त किया जा सकता था: (क) स्थायी ऋण, (ख) चल अथवा अस्थाई ऋण; तथा (ग) अनिधिवद्ध ऋण। अस्थाई ऋणों की श्रेणी में जनता को निर्गत राजकोष पत्र (ट्रेजरी बिल) अथवा कागजी मुद्रा रिजर्व आते थे। नियमानुसार राजकोष पत्र 1 वर्ष से कम अवधि के लिए होते थे, परंतु कभी-कभी इनका समय-समय पर नवीकरण होता था और कभी राजकोष पत्रों के धारकों को यह विकल्प होता था कि वे यदि चाहें तो उन्हें दूसरे शेयरों मे बदल लें। इस प्रकार अस्थाई ऋण का स्थाई ऋण में परिवर्तन हो जाता था।[219] विल्सन ने ऐसे ऋणो को, जिनका भुगतान अल्प और अनिश्चित समय पर करना पड़ सकता था, अतिम रीति के प्रयोग द्वारा अधिक स्थाई स्वरूप के ऋणों मे बदल लिया।[220] डाकघर नकदी पत्र तथा अनैतिक एवं सैनिक सेवा निधियों के निक्षेप अनिधिवद्ध ऋण थे। अनिधिवद्ध ऋण और राजकोष पत्रों के रूप में ऋण बहुत अधिक नही थे। अत यहां पर हम मुख्य रूप से स्थाई ऋण पर ही विचार करेंगे।

लेखओं में स्थाई ऋण सामान्यत: दो श्रेणियों मे विभक्त किया जाता था: (1) साधारण ऋण अथवा अनुत्पादक ऋण, तथा (2) उत्पादक ऋण। उत्पादक ऋणो मे सिंचाई, रेल तथा अन्य लोक निर्माण ऋण सम्मिलित किए जाते थे। ये इसलिए उत्पादक ऋण कहलाते थे क्योंकि यह आशा की जाती थी कि इन पर किए गए पूजी निवेश से आय (जल उपकर, रेल से प्राप्तियां इत्यादि) प्राप्त होगी जिसका प्रयोग उधार लेकर निवेश की गई पूजी पर ब्याज चुकाने के लिए किया जा सकेगा। 'साधारण ऋण' की श्रेणी मे ईस्ट इंडिया कंपनी से विरासत में मिले दायित्व तथा उत्तर सैन्य विद्रोह काल मे संचित अन्य ऋण थे।

1856 में भारत का 'साधारण ऋण' 4 करोड़ 92 लाख पौंड था। 1858 के 'एक्ट फार दि बैटर गवर्नमेंट आफ इंडिया' की धारा 42 के अनुसार ईस्ट इंडिया कंपनी के पूंजी शेयर और कंपनी के क्षेत्रीय व दूसरे ऋणों के साथ-साथ इंग्लैंड के सभी बंधपत्र (बांड) ऋण पत्र तथा अन्य ऋणों पर लाभांश भारत सरकार के राजस्व पर भार थे। सैन्य-विद्रोह काल में और उसके तत्काल बाद इस ऋण में बड़ी तेजी के साथ वृद्धि हुई। सरकार का इंग्लैंड और भारत में कुल मिलाकर ऋण 5 करोड़ 94 लाख पौंड (1857) से बढ़ कर 9 करोड़ 81 लाख पौंड (1860) हो गया।

विल्सन के आने के समय तक भारत सरकार सैन्य विद्रोह के कारण सेना पर, खर्चों से उत्पन्न वित्तीय संकट का सामना करने के लिए कोई वित्तीय नीति नहीं खोज पाई थी। विल्सन द्वारा प्रारंभ किए गए सुधारों का पूरा असर होने तक सरकार को अनेक बार ऋण लेना पड़ा। 1861-62 तक ऋण की राशि बढ़कर 10 करोड़ 75 लाख पौंड हो गई। 1863-64 में चार्ल्स ट्रेवीलियन के प्रयत्नों से यह प्रवृत्ति रुकी। अप्रैल, 1864 में भारत सरकार ने भारत मंत्री के पास ऋण का विवरण भेजकर बतलाया कि पिछले दो वर्षों में ऋण में 90 लाख पौंड की कमी हुई और यह मुख्यतः रोकड़ शेष में से हुई। इंग्लैंड में ईस्ट इंडिया कंपनी के कुछ बंधपत्र (बांड) (2,56,000 पौंड) चुका दिए गए, ईस्ट इंडिया कंपनी की प्रतिभूति पर लिए गए ऋण वापस कर दिए गए (15 लाख पौंड) और लगभग 55 लाख पौंड के ऋण पत्रों की भी चुकौती हो गई। भारत में रोकड़ शेष और बेकार भूमि की बिक्री से मिली धनराशि से 11 लाख पौंड की सरकारी प्रतिभूतियां खरीदी गई थीं। तंजौर ऋण, काश्मीर के राजा से लिए गए ऋण तथा अन्य अनेक दायित्व चुका दिए गए।[221] इसके अलावा, ऋण खाते की मदों की जांच पड़ताल की गई और विविध न्यासनिधियां, सैनिक-असैनिक कर्मचारियों की जमा निधियां तथा भारत सरकार के पास जमा की गई स्थानीय निधियां विशिष्ट सार्वजनिक निधियों से पृथक कर दी गईं।[222] इस प्रकार ऋण कम और सुव्यवस्थित अनुपात में कर लिया गया। 1865-66 तक ऋण 9 करोड़ 80 लाख पौंड के लगभग स्थिर बना रहा। इस वर्ष के बाद यह बढ़ता गया और 1871-62 में इसकी राशि असाधारण रूप से अधिक होकर 12 करोड़ 17 पौंड हो गई। मेयो की सरकार इस प्रवृत्ति से बहुत चिंतित थी और उसने साधारण खर्च चालू आय से करने और उधार से बचने का दृढ़ निश्चय किया।[223] रिचर्ड टैंपिल जिस समय इंग्लैंड में टिका हुआ था, उस समय वह प्रधान मंत्री ग्लेड्स्टन के संपर्क में आया जिसने टैंपिल को ऋण प्रबंध के आधुनिक सिद्धांतों के विषय में परामर्श दिया। उसकी ही सलाह पर टैंपिल ने ऋण के एक भाग पर ब्याज में कमी कर दी। शेयर-धारियों के सामने विकल्प रखा कि वे या तो अपना मूलधन वापस ले लें या ब्याज की नीची दर स्वीकार करें।[224] पुराने 5 वर्षीय ऋण पत्रों को सममूल्य पर भुगतान से कुछ अन्य ऋणों का परिशोधन हो गया।[225] टैंपिल द्वारा 5 प्रतिशत ब्याज पर लिए गए ऋणों को 4 प्रतिशत ब्याज वाले ऋणों में सफलतापूर्वक बदलने से यह संकेत मिला कि सरकार की साख 'धीरे-धीरे उस बिंदु पर पहुंच रही थी जहां पर वह 4 प्रतिशत ब्याज पर मिलने वाले ऋणों पर भरोसा कर सकती थी।'[226] बाद में सरकार 5 प्रतिशत ब्याज पर लिए

गए और भी ऋणों को 4 प्रतिशत ब्याज वाले ऋणों में बदल पाने मे सफल हुई। तथापि पुराने ऋणों का परिशोधन सरलता से नही हो सकता। मेयो और उसकी सरकार जो भी कुछ कर सकी वह यह था कि वे अनियंत्रणीय बड़े ऋण के सचय को जिसे मेयो 'सबसे बड़ा भारतीय खतरा' कहता था रोकने का प्रयास कर सके।[227]

अधिकारियों के परिकलन मे ब्याज प्रभार का बड़ा बोझ था। वे लोक निर्माण कार्यों मे पूजी निवेश से मिल सकने वाले उत्पादक परिणामों का पूरी तरह महत्व समझ ही नही सके। लोक ऋणों और निजी ऋणों के बीच झूठे सादृश्य पर आधारित पूर्वग्रह तथा 'सरकार के दिवालिया हो जाने' का भय विकास के लिए भारी मात्रा में ऋण लेने में बाधाएं थीं।[228] तथापि एक विचारधारा थी जो सिंचाई निर्माण कार्यों के लिए सरकार द्वारा ऋण लेने का समर्थन करती थी। सर आर्थर काटन ने 1854 मे लिखा था 'बृहत लोक निर्माण के लिए चालू आय से धन की कभी भी व्यवस्था नही हो सकती। निर्माण कार्य के लिए तब तक प्रतीक्षा करना जब तक कि आय में वृद्धि हो वस्तुतः गाड़ी को घोड़े के आगे जोतना है···लोक निर्माण कार्य के अलावा किसी अन्य प्रकार से आय में वृद्धि नही हो सकती।'[229] भारत मे लोकमत सरकार द्वारा लोक निर्माण के विकास के लिए ऋण लेने के पक्ष में था। 'टाइम्स आफ इंडिया' ने लिखा कि ऋण के विरुद्ध पूर्वग्रह भारतीय वित्त के विनाश का कारण है।[230] 'इंडियन इकानामिस्ट' ने जोरदार ढंग से कहा था लोक निर्माण पर व्यय जितना अभी है, उसका तीन गुना होना चाहिए और इस व्यय की व्यवस्था अल्पकालीन ऋण लेकर की जानी चाहिए।[331] कुछ हिंदुस्तानियों के देशी भाषा मे निकलने वाले समाचार पत्रों ने भी यही शोर मचाया।[232] 1871 मे हाउस आफ कामंस के पास भेजे गए अपने स्मरण पत्र मे ईस्ट इंडिया एसोसिएशन ने माग की कि इस बात पर पुनर्विचार होना चाहिए कि 'ऐसे देश में जिसके साधन तो सपन्न है परंतु पूजी का अत्यंत अभाव है, लोक निर्माण की लागत क्या अब भी चालू आय से चुकाई जानी चाहिए अथवा इसकी ऋण तथा निक्षेप निधि (सिंकिंग फंड) की उपयुक्त प्रणाली द्वारा व्यवस्था की जानी चाहिए...'[233] 1870 में बंबई चेंबर्स आफ कामर्स ने वायसराय को अपनी यह इच्छा प्रकट करते हुए लिखा कि 'स्थाई स्वरूप के लोक निर्माण के लिए व्यय की व्यवस्था राजस्व पर भारितव्य और निश्चित तिथियों पर शोधनीय, अल्पकालीन ऋणों से की जा सकती है...।'[234] टी० बी० जेफ्रीज ने अपने पैंफलेट 'नेशनल क्रेडिट एंड पब्लिक वर्क्स' में 'राष्ट्रीय साख के मुक्त एवं युक्तिसंगत प्रयोग' का सुझाव दिया, क्योंकि 'चालू आय से लोक निर्माण का खर्च निकालने से वास्तव में नया निर्माण कार्य एक तरह से निषिद्ध हो जाता है...।'[235] प्रथम भारतीय आर्थिक पत्रिका के संस्थापक राबर्ट नाइट ने लोक ऋण के विरुद्ध पूर्वग्रह को दूर करने का भरसक प्रयास किया। उसका तर्क था कि भारत सरकार को किसी भी ऐसे जमीदार की भांति, जिसके पास सुधार के लायक भू संपत्ति है, ऋण लेकर देश के विकास पर ध्यान देना चाहिए। इसी से आय मे वृद्धि होगी जो व्यय के औचित्य को सिद्ध करेगी।[236]

अस्तु, लोक निर्माण के विकास के लिए ऋण लेने के पक्ष मे काफी बड़ा लोकमत था। फिर भी सरकार की नीति उधार से यथासंभव बचने की थी। जब भी ऋण लेने के

पक्ष में निर्णय लिया जाता था तो भारत सरकार पर भारत मंत्री द्वारा अनेक शर्तें लगाई जाती थी। सबसे महत्वपूर्ण शर्त थी कि ऋण लेकर जुटाई गई धनराशि का प्रयोग केवल लाभकारी निर्माण के लिए होना चाहिए। यह तर्क इस गलत सादृश्य पर आधारित था कि जिस प्रकार एक निजी व्यावसायिक इकाई उस समय तक ऋण नही ले सकती जब तक कि पूंजी निवेश उत्पादक न हो (अर्थात लगाई गई पूंजी पर ब्याज का भुगतान और ऋण परिशोधन संभव हो) सरकार को भी लाभकारी उद्देश्यो के अतिरिक्त किसी अन्य बात के लिए ऋण नही लेना चाहिए।[237]

यह बात मान ली जानी चाहिए कि बड़े पैमाने पर उधार लेने के विरुद्ध कुछ सबल तर्क थे। भारत सरकार स्वदेश मे ही ऋण लेने के स्थान पर विदेशी ऋणदाताओं से ऋण ले रही थी। विदेश मे लिए गए ऋणों पर ब्याज का भार बहुत अधिक था। इस प्रकार के उधार की प्रवृत्ति निस्संदेह घरेलू उधार से भिन्न होती है जिसमे देश के भीतर ही ऋणदाताओं को ब्याज का भुगतान किया जाता है। आरगाइल ने मेयो को 'हिंदुस्तानी पूंजीपतियों के पास पहुंचने' का उपदेश दिया। उसके शब्दो में, 'भारतीय लोक ऋण में भारत के मूल निवासियों की दिलचस्पी बढ़ाना मैं बड़े भारी राजनीतिक महत्व का मामला समझता हूं…।'[238] लारेंस को भी चार्ल्स वुड ने यही सलाह दी थी।[239] परंतु भारत सरकार ने लदन मुद्रा बाजार से ऋण लेना जारी रखा। मेयो ने एक कारण बताया कि सरकारी ऋणो मे पैसे देने वाले हिंदुस्तानियों की संख्या कम क्यों है। उसने भारत मंत्री को लिखा 'हमे यहां पर अभी ऋण नहीं मिल सकता। हिंदुस्तानी साहूकार अच्छी प्रतिभूति पर अपनी मुद्रा के बदले में 10,15 अथवा 18 प्रतिशत ब्याज की आशा करता है और यह उसे मिलता भी है…अतः, अभी काफी वर्षों तक हमें केवल 4 प्रतिशत ब्याज देकर 'यूरोप से ही ऋण लेना चाहिए।'[240] इस संबंध में जिन अन्य कारणों का उल्लेख किया गया था वे थे : 'भारतीय ऋणों के लिए यूरोपीय पूंजीपतियो मे बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा', हिंदुस्तानी पूंजीपतियों की 'भूमि पाने के लिए बढती हुई लालसा' (विशेष रूप से बंगाल मे) तथा पुराने सामती वर्गों का पतन जिनके पास पहले निवेश्य धनराशि रहती थी और जो अब धनहीन हो गए थे।[241] भारत सरकार के अनुसार 'इसका प्रश्न ही नही उठता कि हम यूरोपियनों को जो शर्तें देते हैं उनसे हर तरह की बेहतर शर्त देकर भी देशी पूंजी निवेशकों को प्रोत्साहित कर सके। मुद्रा बाजार की स्थिति पर (जो मौसम तथा कृषि की स्थिति पर निर्भर होती थी) भारत सरकार समय-समय पर भारत में ऋण लेती थी।[242] परंतु भारत सरकार का बार-बार यही कहना था कि कुल मिलाकर लंदन मुद्रा बाजार में सुविधा के साथ ऋण लिए जा सकते थे।[243] 1867 मे भारत मे सिंचाई निर्माण के लिए एक धनराशि जुटाने के उद्देश्य से भारत की लघु बचतों के सग्रह के लिए एक मनोरंजक योजना सामने आई। बंबई सरकार ने 40-50 रुपयो की छोटी-छोटी राशियों मे ऋण लेने का प्रस्ताव रखा। इसमें शर्त यह थी कि धनराशियां जिले के खजानों मे जमा की जाएंगी। यह कहा गया कि 'इस योजना का उद्देश्य सरकारी ऋणो के लाभ कृषकों तथा दूसरे वर्गों तक, जो बचतो को या तो संचित किए रहते हैं या बहुत खराब प्रतिभूतियो के आधार पर इन्हें निजी ऋणियो को दे देते है, पहुंचाना है।'[244] इस

प्रस्ताव को भारत मंत्री ने अस्वीकार कर दिया जिसे बहुत छोटी-छोटी राशियों में लिए जाने वाले ऋणों के प्रबंध में औपचारिक कठिनाइयां दिखाई दीं। इस प्रकार इस अकल्पनाशील ढंग से लोक निर्माण के विकास के लिए निष्क्रिय लघु बचतों के प्रयोग की एक अच्छी योजना का गला घोंट डाला।

संदर्भ

1. देखें अनुच्छेद IV आगे।
2. प्रत्यक्ष करों के निर्धारक और संग्रहकर्ता अस्थाई होते थे और इनकी नियुक्ति उसी समय होती थी जबकि इनकी आवश्यकता पड़ती थी।
3. देखें परिशिष्ट।
4. भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त संख्या 144, 29 जून, 1860, ठीक वही वित्त संख्या 58, 19 अप्रैल, 1862, संशोधित प्राक्कलन जून, 1860।
5. भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त संख्या 6, 19 जनवरी, 1859।
6. भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त संख्या 9, 31, जनवरी, 1859।
7. भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त संख्या 28, 22 फरवरी, 1859।
8. भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त संख्या 57, 23 अप्रैल, 1859।
9. भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त संख्या 57, 15 जून, 1859।
10. भारत मंत्री से भारत सरकार को, सैन्य प्रेषण संख्या 352, 7 अक्तूबर 1859।
11. भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त संख्या 75, 18 अगस्त, 1859।
12. भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त संख्या 23, 16 मार्च, 1869।
13. वित्त कार्यविवरण अक्तूबर, 1861 संख्या 197, सैन्य वित्त विभाग से भारत सरकार के वित्त सचिव को, 22 अगस्त, 1861। वित्त कार्यविवरण, अगस्त, 1861, लेखा शाखा संख्या 1 सैन्य वित्त विभाग से भारत सरकार के वित्त सचिव को, 15 जून, 1861। वित्त कार्यविवरण, सितंबर, 1861। लेखा शाखा संख्या 168। भारत सरकार द्वारा प्रस्ताव 19 सितंबर, 1861।
14. देखें परिशिष्ट।
15. भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त संख्या 136, 22 अगस्त, 1860। वित्त कार्यविवरण, अक्तूबर, 1861, लेखा शाखा संख्या 193, सैन्य वित्त विभाग से वित्त सचिव को, 8 अक्तूबर, 1861।
16. भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त संख्या 136, 22 अगस्त, 1860।
17. भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त संख्या 53, 8 अप्रैल, 1861; ठीक वही वित्त संख्या 85, 17 मई, 1861।
18. भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त संख्या 209 ए, 12 दिसंबर, 1861।
19. बी० फ्रेर से सी० वुड को, 3 मई, 1860 मार्टिन्यू, पूर्वोद्धृत, जिल्द I, पृ० 300 'यदि यह

बुरी बात नहीं है तो कम से कम हास्यास्पद तो है ही कि सैन्य और पुलिस आयोगों के बीच ऐसे दस्तों का भेद खुला जिनके विषय मे पहले किसी को मालूम नहीं था और जिन्हें राजनीतिक अथवा न्यायिक खर्चों की किसी मद के अन्तर्गत छिपाया गया था।' बी० फ्रेर से जी० क्लर्क को, 8 मई, 1861, वही पृ० 314।

20 फ्रेंड आफ इंडिया', 17 अप्रैल, 1862।

21 भारत सरकार से भारत मंत्री को सैन्य प्रेषण संख्या 132, 19 मार्च, 1864। भारत मंत्री का विचार था कि वित्त विभाग के बाहर सैन्य वित्त विभाग का होना असंगत था। भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त संख्या 1, 8 जनवरी, 1863। सी० ई० ट्रैवीलियन ने वित्त विभाग में वित्तीय नियंत्रण के केंद्रीयकरण की वांछनीयता को स्वीकार कर लिया था। वित्त कार्य-विवरण, फरवरी, 1864, प्रकीर्ण संख्या 14, सी० ई० ट्रैवीलियन का मेमो० 18 मई, 1863।

22. देखें परिशिष्ट।

23. भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त संख्या 66, अप्रैल, 1865।

24. क्रेनबोर्न से जे० लारेंस को, 18 फरवरी, 1867, लारेंस कागजात, भारत मंत्री से पत्र, जिल्द IV, संख्या 7।

25 सी० वुड से जे० लारेंस को, 9 दिसंबर, 1864, लारेंस कागजात, भारत मंत्री से पत्र, जिल्द I, संख्या 67।

26 जे० लारेंस से क्रेनबोर्न को, 10 सितंबर, 1866, लारेंस कागजात, जे० लारेंस से भारत मंत्री को पत्र, जिल्द, III, संख्या 34।

27. भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त संख्या 52, 26 जनवरी, 1869।

28 मेयो से लार्ड सैंडहर्स्ट को, 28 मई, 1871। मेयो कागजात, बंडल 43, संख्या 117।

29 मेयो से आरगाइल को, 17 अक्तूबर, 1869, मेयो कागजात, बंडल 37, संख्या 285।

30 मेयो से आरगाइल को, 15 मार्च, 1870, मेयो कागजात, बंडल 35, संख्या 77।

31. मेयो से डब्ल्यू० आर्बुथनाट को, 10 जनवरी, 1870, मेयो कागजात, बंडल 35, संख्या 17।

32. मेयो से बी० फ्रेर को, 11 जनवरी, 1869, मेयो कागजात, बंडल 32, संख्या 15।

33. मेयो से डब्ल्यू० ए० आर्बुथनाट को 5 दिसंबर, 1869 मेयो कागजात, बंडल 37, संख्या 342।

34 मेयो से आरगाइल को, 7 दिसंबर, 1869, के पत्र मे संलग्न गृह विभाग के अवर सचिव का मेमो०, मेयो कागजात, बंडल 37, संख्या 346।

35 मेयो से डब्ल्यू० आर्बुथनाट को, 14 फरवरी, 1870, मेयो कागजात, बंडल 35, संख्या 62।

36 वही।

37 मेयो से आरगाइल को, 20 मई, 1870, मेयो कागजात, बंडल 39, संख्या 132।

38. मेयो से डब्ल्यू० आर्बुथनाट को, 14 फरवरी, 1870, मेयो कागजात, बंडल 35, संख्या 62।

38 ए-भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त संख्या 72, 16 मार्च, 1871।

38. बी-आरगाइल से मेयो को, 9 दिसंबर, 1870, मेयो कागजात, बंडल 48, संख्या 33।

38 सी-मेयो से बी० फ्रेर को, 11 जनवरी, 1869, मेयो कागजात, बंडल 35, संख्या 15।

39. मेयो से आरगाइल को, 17 जनवरी, 1870, मेयो कागजात, बंडल 35, संख्या 20।

40. मेयो से आरगाइल को, 10 अप्रैल, 1871, मयो कागजात, बंडल 43, संख्या 91।
41. मेयो ने आरगाइल को, 8 मई, 1871, बंडल 43, सख्या 97। आरगाइल का विचार था कि नैपियर द्वारा लदन के साथ सीधा पत्र व्यवहार आपत्तिजनक नही था। आरगाइल से मेयो को, 9 जून, 1871, मेयो कागजात, बंडल 49, सख्या,13।
42. मेयो से आरगाइल को, 4 अक्तूबर, 1870, मेयो कागजात, बंडल 41, सख्या 282।
43 मेयो से आरगाइल को, 30 नवंबर, 1869, मेयो कागजात, बडल 37, सख्या 335।
44 वित्त कार्यविवरण, नवबर, 1869, लेखा शाखा सख्या 45। एच० एम० ड्यूरेंड का मेमो०, 13 सितंबर, 1869।
45 वही संख्या 48, गवर्नर जनरल का मेमो०, 4 अक्तूबर, 1869।
46 मेयो से आरगाइल को, 30 नवबर, 1869, मेयो कागजात, बडल 37, सख्या 335।
47 आरगाइल से मेयो को, 10 फरवरी, 1871, मेयो कागजात, बडल 49, संख्या 31।
48. मेयो से ड्यूक आफ कैंब्रिज को, 22 मार्च, 1870, मेयो कागजात, बंडल 35, सख्या 82। मेयो ने यह पत्र ड्यूक आफ कैंब्रिज के 4 फरवरी, 1870 के नोट के उत्तर मे लिखा था।
49 आरगाइल से मेयो को, 10 फरवरी,,1871, मेयो कागजात, बडल 49, सख्या 3।
50 आरगाइल से मेयो को, 11 मार्च, 1871, मेयो कागजात, बडल 49, सख्या 4।
51. आरगाइल से मेयो को, 3 मार्च, 1871, मेयो कागजात, बडल 49, सख्या 5।
52. मेयो से आरगाइल को, 17 जनवरी, 1870, मेयो कागजात, बडल 35, सख्या 20।
53. आरगाइल से मेयो को, (गोपनीय), 26 अक्तूबर, 1869, मेयो कागजात, बडल 47।
54 वही।
55 वही।
56 पी० पी० एच० सी० 1873, जिल्द 12, पत्रक 354, 4752, 4757, भारतीय वित्त के सबध मे प्रवर समिति के सामने जे० लारेंस का साक्ष्य।
57. मेयो ने दरअसल आरगाइल पर अपनी बात से मुकरने का आरोप लगाया था, मेयो से आरगाइल को, 10 अप्रैल, 1871, मेयो कागजात, बडल 43, सख्या 91, ठीक वही, 9 जनवरी, 1871, बंडल 42, संख्या 13।
58 आरगाइल से मेयो को, 4 नवबर, 1869, मेयो कागजात, बडल 47। 'जहा तक आपके सेना मे कमी करने के प्रस्ताव का सबध है, उससे जो प्रश्न उठते हैं उनका सबध भारत से ही न होकर पूरे साम्राज्य से है 'मैं केवल यही बताना चाहता हू कि 'इन प्रश्नों का समाधान भारत की तत्कालीन आवश्यकताओ के ही संदर्भ मे नही हो सकता।'
59. पी० पी० एच० सी० 1896, जिल्द 16, सी० 8259, पृ० 285-308। भारत मे लोक व्यय से सबधित शाही आयोग की रिपोर्ट का परिशिष्ट। 1824 में इडिया आफिस, वार आफिस तथा ट्रेजरी के बीच भुगतान के सिद्धातो का निर्धारण 1824 मे हो गया था और वे 1860 तक प्रचलन मे रहे।
60. एक्ट 23 व 24, विक्ट सी० 100।
61. एक्ट 24 व 25, विक्ट० सी० 74। ईस्ट इडिया कपनी के सैनिको ने ब्रिटिश सरकार की सेवा मे स्थानातरण का प्रबल प्रतिरोध किया था। इसे श्वेत सैन्य विद्रोह कहा गया है। देखें पी०

पी० एच० सी० 1860, जिल्द 51, पत्रक 169, 196 I, 169 II ।

62. भारत मंत्री से भारत सरकार को वित्त संख्या 90, 31 मई, 1861 । इस पत्र मे समझौते की शर्तें पूर्णरूप से स्पष्ट की गई हैं ।

63. पी० पी० एच० सी 1896, जिल्द 16 पत्रक 8259, पृ० 297 ।

64. पी० पी० एच० सी० 1874, जिल्द 8, पत्रक 329, पृ० 226-27 । भारतीय वित्त के संबंध मे प्रवर समिति की चौथी रिपोर्ट का परिशिष्ट । सीकोव समिति ने सिफारिश की थी (रिपोर्ट, दिनांक 11 मार्च, 1869, 24 नवंबर, 1869, 28 फरवरी, 1870 और 12 अप्रैल, 1872) कि भारत सरकार को अधिक मात्रा मे खर्चों का भुगतान करना चाहिए, क्योंकि ब्रिटिश सरकार को डिपो खर्चों और सैनिको की भर्ती से लेकर उनके पोतारोहण तक की लागत की अधिकता के कारण कुछ हानि हो रही है । परंतु इन सिफारिशो को तत्काल लागू नही किया गया । इंडिया आफिस ने प्रस्तावित नई दरो का विरोध प्रकट किया । वही पृ० 230-43 ।

65. सैन्य सचिव, इंडिया आफिस की ओर से जे० पी० टाम से अवर सचिव, वार आफिस को 8 सितंबर, 1871 । पी० पी० एच० एल० 1874, जिल्द 8, पत्रक 329, पृ० 245 ।

66. सी० कैंबेल, वार आफिस से उप भारत मंत्री, 14 अप्रैल, वही पृ० 248 ।

67. वही ।

68. टी० टी० पीयर्स, सैन्य सचिव, इंडिया आफिस से अवर सचिव, वार आफिस को, 9 अगस्त, 1872 । वही पृ० 249-53 ।

69. भारत सरकार ने भारत मंत्री को, सैन्य प्रेषण संख्या 94, 15 मई, 1873 मे स्पष्ट किया कि सैनिको की भर्ती के लिए खर्चों का ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा भुगतान (1859 मे समाप्त होने वाले दस वर्षों मे सभी प्रकार की सेना के लिए औसत 19 पौंड 14 शि० 10½ पैंस था) उससे बहुत कम था जो 1873 मे युद्ध मंत्री द्वारा वसूल किया गया (अश्वारोही सेना के लिए 136 पौंड 13 शि० 11 पैंस, पैदल सेना के लिए 63 पौंड 8 शि० 5 पैंस; शाही अश्वारोही गोलंदाज सेना के लिए 78 पौंड 14 शि० 8 पैंस; शाही गोलंदाज सेना के लिए 58 पौंड 9 शि० 3 पैंस) ।

70. भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त संख्या 110, 10 जुलाई, 1860 ।

71. देखें पी० पी० एच० सी० 1896, जिल्द 16, सी० 8259, पृ० 304 ।

72. पी० पी० एच० सी० 1862 जिल्द 16, पत्रक 165, पृ० 483 और आगे ।

73. टुलाक समिति (1859) ने 2 लाख पौंड की सिफारिश की थी । इसमें सेवामुक्त सैनिको को पेंशन के लिए 1 लाख 60 हजार पौंड, घायल अफसरो को पेंशन के लिए 2,374 पौंड अवकाश प्राप्त अफसरो को पूरे वेतन अथवा सैन्य भत्तो के लिए 21,541 पौंड, तथा विधवाओ और बच्चो के लिए 15,369 पौंड की राशियां सम्मिलित थी, वही ।

74. एक्ट 25 व 26, विक्ट० सी० 27 । यद्यपि एक्ट मार्च, 1867 तक ही लागू था, तथापि व्यवहार मे समझौते के अनुसार मार्च, 1870 तक कार्य होता रहा ।

75. वित्त कार्यविवरण फरवरी, 1868, लेखा शाखा संख्या 57 । गवर्नर जनरल का मेमो०, 20 जनवरी, 1868 ।

76. मेयो से आरगाइल को, 6 अप्रैल, 1870, मेयो कागजात, बंडल 39, संख्या 100 ।

77. एक्ट 21 व 22 विक्ट० सी० 106, अनुच्छेद 55।
78. टी० टी० पियर्स, सैन्य सचिव, इंडिया आफिस से अवर सचिव, वार आफिस को, 9 अगस्त, 1872, पी० पी० एच० सी० 1874, जिल्द 8, पत्रक 329, पृ० 249 और आगे।
79. 'आक्सफोर्ड डिक्शनरी आफ कोटेशंस, 1941, पृ० 527।
80. अबीसीनिया अभियान के लिए भारत सरकार ने जो भारी मात्रा में अग्रिम राशियां प्रदान की उससे उसका रोकड़ शेष अत्यधिक कम हो गया (भारत सरकार से भारत मंत्री को तार, 25 अगस्त, 1867)। भारत मंत्री ने भारत सरकार से अपनी वसूली (ड्राफ्ट) में कमी कर दी (भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त संख्या 316, 31 अगस्त, 1867)। इंग्लैंड में भारत मंत्री ने 12 लाख पौंड का ऋण लिया (भारत मंत्री से भारत सरकार को वित्त 485, 24 नवंबर, 1868)। भारत सरकार ने शिकायत की कि 'ऐसे कार्य के लिए जिसका भारत सरकार से कोई संबंध न हो', एक वर्ष में 70 लाख पौंड देना बहुत कठिन है। (भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त संख्या 332, 21 दिसंबर, 1868), भारत में बहुत सारे ऋण लिए गए (भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त 339, 31 दिसंबर, 1868)।
81. वित्त कार्यविवरण, फरवरी, 1868, लेखा शाखा संख्या 57। गवर्नर जनरल का मेमो०, 20 जनवरी, 1868।
82. पूर्वोक्त स्थल।
83. मेयो से एच० ड्यूरेंड को, 24 अप्रैल, 1870 मेयो कागजात, बंडल 39, संख्या 105।
84. 'हंसार्ड' तीसरी सीरीज C X C कालम 406, 28 नवंबर, आर० रोबिंसन द्वारा उद्धृत और अन्यत्र, पूर्वोद्धृत, पृ० 12।
85. सर सी० डिल्के, 'ग्रेटर ब्रिटेन', (लंदन, 1869) पृ० 470-74।
86. वित्तीय प्रतिबंध और म्यूटिनी एक्ट की धाराओं के लिए देखें भारत मंत्री से भारत सरकार को, सैन्य प्रषण, संख्या 108, 17 मार्च, 1862।
87. वही।
88. पी० पी० एच० सी० 1874, जिल्द 8, पत्रक 329, पृ० V।
89. वित्त कार्यविवरण, फरवरी, 1868, लेखा शाखा संख्या 57, गवर्नर जनरल का मेमो०, 20 जनवरी, 1868।
90. 4 नवंबर, 1859 के, भारत मंत्री द्वारा प्रेषण (रेल विभाग पत्र संख्या 109) में रेल विभाग की संविदा की शर्तों को पूरी तरह स्पष्ट किया गया है। इसकी एक अच्छी रूपरेखा लोक निर्माण विभाग के महालेखाकार जार्ज चेजनी की पुस्तक 'इंडियन पालिटी' (लंदन, 1868) में मिलती है। ईस्ट इंडिया कंपनी के डायरेक्टर्स और रेल कंपनियों के बीच 1849 तक समझौता संबंधी बातचीत के संबंध में देखें डेनियल थोर्नर की पुस्तक 'इनवेस्टमेंट इन एंपायर' (फिलाडेल्फिया, 1950), पृ० 119-167।
91 डेनियल थोर्नर, पूर्वोद्धृत, पृ० 178।
92. आरगाइल से मेयो को, 12 फरवरी, 1869, मेयो कागजात, बंडल 47, संख्या 7।
93 डेनियल थोर्नर, पूर्वोक्त स्थल।
94. पी० पी० एच० सी० 1872, जिल्द 8, पत्रक 327, पूर्वी भारत के लोक वित्त के संबंध में प्रवर

समिति की रिपोर्ट और कार्यविवरण। डेंवर्स (1861-63), चेजनी (2643-46), तथा आर० स्ट्रैची (6882,6887) के साक्ष्य। आगे इसका उल्लेख 'वित्त प्रवर समिति' के नाम से किया गया है और सबंधित पैराग्राफो की सख्याए कोष्ठक मे दी गई हैं।

95. रेलो मे पूजी लगाने वाले निवेशक 'उससे कहीं अधिक ब्याज वसूल कर पाने मे सफल हुए जितना कि उन्हे भारत सरकार को सीधा ऋण देने पर मिल सकता था, जबकि सुरक्षा की दृष्टि से दोनो मे अतर अति सूक्ष्म था।' एल० एच० जैक्स, 'पूर्वोद्धृत, पृ० 223।
96. एल० एच० जैक्स, पूर्वोद्धृत, पृ० 225, 219।
97. भारत मत्री से भारत सरकार को, वित्त प्रेषण सख्या 136, 22 अगस्त, 1860।
98. पी० पी० एच० एल० 1872, जिल्द 8, पत्रक 327, वित्त प्रवर समिति। स्ट्रैची (1836-41) द्वारा साक्ष्य। जार्ज चेजनी, पूर्वोद्धृत, पृ० 336। निस्संदेह, विनिमय दर भारत सरकार के लिए लाभ का स्रोत बन सकती थी। लदन स्थित कपनियो को 'यातायात सबंधी प्राप्तियो से प्रति रुपया 2 पेंस का भारत सरकार को लाभ हो सकता था।
99 'इग्लैंड मे रेल कपनियो से मिलने वाली राशियो और भारत मे उन्हे इन राशियों के 1 शि० 10 पेंस प्रति रुपये की दर से पुनर्निगम से होने वाली विनिमय हानि अब तक भारतीय राजस्व पर प्रभार के रूप मे नही दिखाई गई है, परतु भविष्य में इसे सभी प्राक्कलनो और लेखे मे सम्मिलित किया जाना चाहिए।' भारत मत्री से भारत सरकार को, वित्त प्रेषण सख्या 67, 26 अप्रैल, 1860।
100. देखें परिशिष्ट।
101. भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त प्रेषण, सख्या 63, 2 मई, 1861।
102. वही।
103 विधान परिषद के कार्यविवरण, 1864, जिल्द III (नई सीरीज) पृ० 219-20।
104. भारत मत्री से भारत सरकार को, वित्त प्रेषण सख्या 83, 9 जून, 1862।
105. भारत मंत्री से भारत सरकार को, रेल विभाग प्रेषण, सख्या 109, 4 नवबर 1859।
106. एन० सान्याल, 'डेवलपमेंट आफ इडियन रेलवेज', (कलकत्ता, 1903) पृ० 64।
107. पी० पी० एच० सी 1872, जिल्द 8, पत्रक 327। वित्त सबधी प्रवर समिति, लार्ड लारेंस (4589-92), ए काटन (8311), चेजनी (2622-25), डब्ल्यू० एन० मैसी (8866-67), थोर्नटन (1781-82) के साक्ष्य। कामकाज खर्च जैसे कि प्रारंभिक व्यय बहुत अधिक थे। 1872 मे इग्लैंड की रेलो मे कामकाज खर्च सकल प्रवृत्तियों के 49 प्रतिशत और भारत मे 54 प्रतिशत थे। इग्लैंड मे लगाई गई पूजी पर शुद्ध आय 4.47 प्रतिशत और भारत मे 3½ प्रतिशत थी। जे० ए० रेंज 'रेलवेज इन दि यूनाइटेड किंगडम एड इंडिया, 1872' 'दि इकोनामिस्ट', 31 जनवरी, 1874।
108. आरगाइल से मेयो को, 12 फरवरी, 1869, मेयो कागजात, बडल 47, सख्या 7।
109. 'फ्रेंड आफ इंडिया', 28 मई, 1863, लेख जिसका शीर्षक 'रेलवे एनार्की है'।
110. भारत मत्री से भारत सरकार को, रेल विभाग प्रेषण सख्या 78, 10 अक्तूबर, 1860, इसके द्वारा भारत मत्री के वित्त प्रेषण सख्या 110, दिनाक 10 जुलाई, 1860, मे दिया गया आदेश निरस्त कर दिया गया। पुराने आदेश द्वारा जिस कपनी ने अपने खाते मे अधिक रुपया

ले लिया था उसे भुगतान रोक देने की भारत सरकार को अनुमति दी गई थी।

111. वित्त कार्यविवरण, सितबर, 1860, सख्या 42, भारत सरकार द्वारा टिप्पणी, 13 सितबर, 1860।
112. भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त प्रेषण, सख्या 205, 8 दिसबर, 1860।
113. भारत सरकार से भारत मत्री को, वित्त प्रेषण, सख्या 16, 5 फरवरी, 1861।
114. भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त प्रेषण, संख्या 22, 2 फरवरा, 1861।
115. भारत सरकार से भारत मत्री को, वित्त प्रेषण, सख्या 199, 31 अगस्त, 1867।
116. भारत सरकार से भारत मत्री को, वित्त प्रेषण, सख्या 58, 18 फरवरी, 1867।
117. भारत मत्री से भारत सरकार को, रेल विभाग प्रेषण, सख्या 109, 4 नवबर, 1859।
118. वित्त कार्यविवरण, दिसबर 1864, लेखा शाखा, सख्या 546, रेल विभाग के लेखो से सबधित लेखा परीक्षण एव नियत्रण सबधी कार्यविवरण।
119. वित्त कार्यविवरण, जून 1869, लेखा शाखा, सख्या 65, भारत सरकार द्वारा प्रस्ताव, 19 जून, 1869।
120. आरगाइल से मेयो को, 3 अगस्त 1869, मेयो कागजात, बडल 47।
121. भारत सरकार से भारत मत्री को, वित्त प्रेषण सख्या 341, 13 दिसबर, 1871।
122. भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त प्रेषण सख्या 41, 31 जनवरी 1872।
123. भारत सरकार से भारत मत्री को, वित्त प्रेषण सख्या 74, 8 मार्च, 1867। तुलनीय भारत मत्री से भारत सरकार को, रेल विभाग प्रेषण सख्या 94, 17 नवबर, 1860।
124. भारत मत्री से भारत सरकार को, वित्त, प्रेषण सख्या 251, 24 जून, 1867।
125. भारत मंत्री से भारत सरकार को वित्त प्रेषण सख्या 17, 30 अप्रैल, 1866। भारत सरकार से भारत मत्री को, वित्त प्रेषण सख्या 116, 23 अप्रैल, 1868। वित्त कार्यविवरण मार्च, 1868, लेखा शाखा सख्या 35, भारत सरकार द्वारा प्रस्ताव, 5 मार्च, 1868।
126. ईस्ट इडिया ट्रामवे कपनी तथा इडियन ब्राच रेलवे कपनी के लिए देखें एन० सायाल, पूर्वोद्धृत, पृ० 67।
127. भारत मत्री से भारत सरकार को, रेल विभाग प्रेषण सख्या 18, 23 मार्च, 1867।
128. अवध रेलवे कपनी और कर्नाटक रेलवे कपनी के साथ नई सविदाओ मे 2 शिलिंग=1 रुपया विनिमय दर, बीस वर्ष बाद रेलो के राष्ट्रीयकरण के राज्य के अधिकार तथा प्राक्कलनो के सरकार द्वारा सूक्ष्म परीक्षण की व्यवस्था की गई थी। भारत मत्री से भारत सरकार को, रेल विभाग प्रेषण सख्या 44, 11 जून, 1868।
129. ईस्ट इडिया रेलवे कपनी ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नही किया। ग्रेट इडिया पेनिंसुला रेलवे, बबई बडौदा एड सेंट्रल इडिया रेलवे; मद्रास, बंबई, सिंध, पजाब और दिल्ली रेलवे कपनियो ने इसे स्वीकार कर लिया। देखें एन० सायाल, पूर्वोद्धृत, पृ० 67 और आगे।
130. भारत सरकार से भारत मत्री को, रेल विभाग प्रेषण, सख्या 80, 12 अगस्त, 1870।
131. मेयो से आरगाइल को, 12 अगस्त, 1870, मेयो कागजात, वडल 40, सख्या 229।
132. आरगाइल से मेयो को, 17 जनवरी, 1870, मेयो कागजात, बंडल 48, सख्या 1।
133. पी० पी० एच० सी० 1872, जिल्द 8, पत्रक 327, वित्त सबधी प्रवर समिति के सामने एम०

लैंग का साक्ष्य (7526-29)। आरगाइल लिखता है कि बार्टल फेर ने 'इस बारे में बहुत संदेह प्रकट किया था कि भारत सरकार उतनी तेजी से रेलों का निर्माण कर सकेगी जिस प्रकार कि प्रत्याभूत (गारटीशुदा) कंपनियों ने रेलों का विकास किया है।' आरगाइल से मेयो को, 19 नवबर, 1869। मेयो कागजात, बडल 47। फेर जब बबई का गवर्नर था तो उसने निजी उद्यमकर्ताओ को 'विधिकेतर' सहायता भी प्रदान की। एल० एच० जैक्स, पूर्वोद्धृत, पृ० 216।

134 पी० पी० एच० सी० 1872, जिल्द 8, पत्रक 327, वित्त सबधी प्रवर समिति के सामने साक्ष्य डब्ल्यू० थोर्नटन (3032 और आगे), स्ट्रैची (6380-81), जी० चेजनी (2623)।

135. भारत सरकार से भारत मत्री को, रेल विभाग प्रेषण सख्या 125, 3 दिसबर, 1867, अनुलग्न गवर्नर जनरल लारेंस का मेमो०, दिनाक 16 अगस्त, 1867।

136 भारत मत्री से भारत सरकार को,रेल विभाग प्रेषण, सख्या 5, 24 जनवरी, 1868।

137 आरगाइल से मेयो को, 17 जनवरी, 1870, मेयो कागजात, बडल 48, सख्या 1।

138 वही।

139 मेयो से आरगाइल को, 21 दिसबर, 1868, मेयो कागजात, बडल 37, सख्या 363।

140. भारत सरकार से भारत मत्री को, रेल विभाग प्रेषण संख्या 24, 11 मार्च, 1869। भारत मत्री से भारत सरकार को, रेल विभाग प्रेषण संख्या 42, 15 जुलाई, 1869।

141. आरगाइल से मेयो को, 12 फरवरी, 1869 मेयो कागजात, बडल 47, सख्या 7।

142 वही।

143. आरगाइल के ड्यूक का वित्त सबधी वक्तव्य 23 जुलाई, 1869। 'फाइनेंशियल स्टेटमेंट्स'' रिप्रिंटेड फ्राम हसार्ड्स पार्लियामेंटरी डिबेट्स (कलकत्ता, 1873), पृ० 810।

144. आरगाइल से मेयो को, 12 फरवरी, 1869, मेयो कागजात, बडल 47, सख्या 7।

145. भारत सरकार से भारत मत्री को, वित्त प्रेषण सख्या 144, 29 जून, 1860। प्रेषण का सपूर्ण मसौदा विल्सन ने तैयार किया था। उसने लिखा है 'मैं लगभग अकेले ही रेल व्यवस्था प्रारभ करने में प्रेरक रहा हूं।' जे० विल्सन से लार्ड कैनिंग को, 25 अगस्त, 1859 (ई० बी० II पृ० 181)। विल्सन का इस सबध मे दावा अतिशयोक्तिपूर्ण है।

146. क्रेनबोर्न से जे० लारेंस को, 3 नवबर, 1866, लारेंस कागजात, भारत मंत्री से जे० लारेंस को पत्र, जिल्द III, सख्या 39।

147. स्ट्रैची, 'इडिया इट्स एडमिनिस्ट्रेशन एड प्रोग्रेस (लदन, 1911) पृ० 228-234। विलियम टी थोर्नटन, *'पब्लिक वर्क्स इन इडिया' (लंदन, 1875)।* सर,ए० काटन, *'पब्लिक वर्क्स इन इडिया'* (लदन, 1854)।

148. एल० एच० जैक्स, 'दि माइग्रेशन आफ ब्रिटिश कैपिटल' '(लंदन, 1938), पृ० 208 : ईस्ट इडिया कपनी के रोस डी० मैंगल्स के एक वक्तव्य के अनुसार 1834 से 1848 के बीच कपनी ने अपनी 2 करोड पौंड की वार्षिक आय मे से केवल 14 लाख 34 हजार पौंड लोक-निर्माण पर व्यय किया (वही, पृ० 208)। 1858 मे भाषण करते हुए जान ब्राइट ने कहा था कि अकेले मैनचेस्टर मे वहा के निवासियों के लिए केवल पानी की व्यवस्था पर उससे कहीं अधिक धन व्यय किया गया है जितना कि ईस्ट इडिया कपनी ने 1834 से 1858 के बीच चौदह वर्षों मे सपूर्ण उपनिवेश मे हर तरह के लोक निर्माण पर व्यय किया है। (जे० स्ट्रैची

द्वारा उद्धृत, पूर्वोद्धृत, पृ० 233)।

149. देखें परिशिष्ट।

150 भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त प्रेषण सख्या 239, 18 सितंबर, 1868।

151. 'इंडियन फाइनेंस' (लंदन, 1880), पृ० 155।

152. देखें विवादात्मक पैंफलेट, एल० सी० प्रोविन, 'इज इंडिया सोल्वेंट' (लंदन, 1880), तथा डब्ल्यू० एम० थोर्नबर्न, 'इंडिया सोल्वेंट' (मद्रास 1880)। प्रोविन जिसकी दृष्टि प्रोफेसर फासट से अधिक साफ थी व्यक्ति और सरकार के स्थिति विवरणों में अंतर को' देख सका। पूर्वोद्धृत, पृ० 13।

153. भारत मंत्री से भारत सरकार को, सार्वजनिक प्रेषण संख्या 39, 8 अगस्त, 1864।

154 भारत सरकार से भारत मंत्री को, लोकनिर्माण प्रेषण सख्या 29, 9 मार्च, 1865। भारत सरकार से भारत मंत्री को, पृथक राजस्व प्रपक सख्या 13 और 14 दिनांक क्रमश. 7 व 8 अप्रैल, 1865।

155. भारत मंत्री से भारत सरकार को, 30 नवंबर, 1860, वित्त कार्यविवरण, जनवरी, 1866, व्यय शाखा 236।

156 क्रेनबोर्न से जे० लारेंस को, 3 नवंबर, 1866, लारेंस कागजात, भारत मंत्री से जे० लारेंस को पत्र, जिल्द III, संख्या 39।

157 भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त प्रेषण संख्या 200, 23 अगस्त, 1866।

168. भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त प्रेषण सख्या 210, 21 सितंबर, 1966। भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त प्रेषण सख्या 263, 9 नवंबर, 1866।

159. क्रेनबोर्न से जे० लारेंस को, 3 नवंबर, 1866, जे० लारेंस कागजात, भारत मंत्री से जे० लारेंस को पत्र, जिल्द III, संख्या 39।

160 भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त प्रपण सख्या 255, 20 दिसंबर, 1866। यद्यपि अधिकारी सिंचाई संबंधी निर्माण कार्यों की लाभकारी प्रकृति पर जोर देते थे तथापि इनसे कहां तक लाभ होता है यह निर्धारित कर पाना असंभव था। उदाहरणार्थ, क्या सिंचाई, सुविधाओं के फलस्वरूप मालगुजारी में वृद्धि को लोक निर्माण में पूंजी निवेश के लाभ के रूप में दिखा सकना संभव था? मद्रास में सिंचाई की व्यवस्था होने से पहले और उसके बाद की मालगुजारी के रूप में प्राप्तियों के अंतर को सिंचाई निर्माण कार्यों का लाभ माना गया। अत: मद्रास में सिंचाई निर्माण से लाभ की दर ऊंची थी। पश्चिमोत्तर प्रांत में केवल खेतों की सिंचाई से प्राप्त होने वाली राशि को ही सिंचाई निर्माणों के लाभ के रूप में दिखाया गया था। अतः लेखे में सिंचाई से थोड़ा लाभ दिखाई देता था जबकि सरकार को मालगुजारी के रूप में लाभ हुआ था। (गृह कार्यविवरण, राजस्व, 28 मई, 1870, सख्या 15 (7)। कर्नल आर० स्ट्रैंची की रिपोर्ट, दिनांक 2 सितंबर, 1869)। 1857-58 से 1862-63 के मध्य मद्रास के कुछ सिंचाई निर्माणों से पूंजी पर 4 प्रतिशत ब्याज चुका देने के बाद 0.3 प्रतिशत से लेकर 29.9 प्रतिशत तक शुद्ध लाभ हुआ जबकि कुछ अन्य पर शुद्ध भार 0.3 प्रतिशत से लेकर 54.3 प्रतिशत तक था। परंतु कुल मिलाकर निर्माण कार्य लाभकारी थे। परंतु इसी अवधि में पश्चिमोत्तर प्रांत में काफी हानि हुई (भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त प्रेषण 266. 30 नवंबर, 1865)।

161 भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त प्रेषण संख्या 79, 28 फरवरी 1867। 1867-68 के बजट में सिंचाई निर्माण पर व्यय को चालू खाते से हटा कर ऋण खाते में दिखाया गया। (भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त प्रेषण संख्या 73, 8 मार्च 1867)। भारत सरकार ने भारत मंत्री का 28 फरवरी 1867 का प्रेषण प्राप्त होने पर बजट विवरण बदल दिया (क) सिंचाई संबंधी निर्माण कार्य पर व्यय को 'ऋण' से हटा कर 'असाधारण खर्चों' में डाल दिया गया, (ख) इंडिया आफिस से आदेश आने पर जेलों के लिए अनुदान 'असाधारण खर्चों' में से घटा दिया गया। लेखा पद्धति में इस प्रकार के परिवर्तनों से भारतीय वित्त संबंधी आंकड़ों की तुलना कर पाना बहुत कठिन हो गया है।

162. भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त प्रेषण संख्या 220, 14 जून, 1867।

163 भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त प्रेषण संख्या 288, 9 जुलाई, 1868। आदेशानुसार भारत सरकार ने सैन्य निर्माण, संचार, तटबंधन और जेलों पर सभी खर्चों को 'साधारण व्यय' की श्रेणी में रखा था। अतः संपूर्ण बोझ वर्ष विशेष के राजस्व पर ही पड़ जाता था। केवल सिंचाई और विशिष्ट निधि निर्माण 'असाधारण व्यय' की श्रेणी में रखे गए थे और इन पर व्यय को ऋणों से पूरा किया गया था। (भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त प्रेषण 283, *21 अक्तूबर, 1868, संख्या 013, 23 नवंबर, 1868)*

164. भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त प्रेषण संख्या 72, 25 फरवरी 1867।

165. वित्त कार्यविवरण, जनवरी 1867, व्यय शाखा संख्या 193, लोक निर्माण विभाग में सपरिषद गवर्नर जनरल द्वारा प्रस्ताव, 22 जनवरी, 1867; संख्या 194, वित्त विभाग में प्रस्ताव, 31 जनवरी 1867।

166. वित्त कार्यविवरण, जनवरी, 1869। लेखा शाखा संख्या 15। भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त प्रेषण संख्या 477, 23 दिसंबर, 1967।

167. मेयो को आरगाइल से, 16 मार्च, 1869, मेयो कागजात' बंडल 34, संख्या 102।

168. मेयो का भी यही मत था।

169. यह निर्धारित कर पाना कठिन था कि सिंचाई निर्माण कार्य कहा तक लाभकारी था। देखें पाद टिप्पणी संख्या 160।

170. आरगाइल के मेयो को पत्र, दिनांक 12 फरवरी, 1869 (बंडल 47, संख्या 7) और, 17 जनवरी, 1870 (बंडल 48, संख्या 1) में उसके लोक निर्माण के विषय में विचार मौजूद हैं।

171. 'फ्रेंड आफ इंडिया,' 10 अक्तूबर, 1861। वृत्त प्रकाश', 2 मई, 1868'(आर० एन० पी० बंबई, 1868, पृ० 31)। 'हिंदू रीफार्मर,' 1 नवंबर, 1869 (आर० एन० पी० बंबई, 1869 पृ० 554)। 'ज्ञान प्रकाश,' 15 नवंबर, 1869 (आर० एन० पी० बंबई, 1869, पृ० 586)। वही 22 जून, 1868 (आर० एन० पी० बंबई, 1868, पृ० 134,। 'आमाम मिहिर,' 28 मई, 1873 (आर० एन० पी० बंगाल, दिनांक 14 जून, 1873)। 'संगवाद पूर्णचंद्रोदय, 8 जुलाई, 1868 (आर० एन० पी० बंगाल, 1868, पृ० 147)। 'प्रयाग दूत,' 15 जुलाई, 1868।

172. 'सोम प्रकाश', 23 नवंबर, 1868 (आर० एन० पी बंगाल, 1868, पृ० 343), 'हिंदू रिफार्मर,

1 दिसंबर, 1869 (आर० एन० पी० बंबई, 1869, पृ० 604)। 'संडे रिव्यू', 6 मई, 1870 (आर० एन० पी० बंबई, 1870, पृ० 134)। 'ज्ञान प्रकाश', 27 जुलाई, 1868 (आर० एन० पी० बंबई, 1868, पृ० 211)।

173. बंबई एसोसिएशन तथा बंबई प्रेसीडेंसी की ओर से प्रतिवेदन (1871) पी० पी० एच० सी० 1871, जिल्द 8, पत्रक 363, परिशिष्ट पृ० 511।

174. मेयो से एच० वार्टल फेर को, 21 अगस्त, 1869, मेयो कागजात, बंडल 36, संख्या 208।

175. वित्त कार्यविवरण, सितंबर, 1869। नेत्रा शाखा 54, भारत सरकार द्वारा प्रस्ताव, लोक-निर्माण विभाग, 11 सितंबर 1869।

176. पी० पी० एच० सी० 1871, जिल्द 8, पत्रक 363, वित्त संबंधी प्रवर समिति का कार्यविवरण, गेड्स का साक्ष्य (9968-71)। अलेक्जेंडर आर० विनी, 'पब्लिक वर्क्स इन इंडिया · ए लैटर एड्रैस्ड टु दि राइट ओनरेबल डब्ल्यू० ई० ग्लैड्स्टन', 'एम० पी० एंड अदर मेंबर्स आफ हर मैजेस्टीज गवर्नमेंट' (लंदन, 1881)। बिनी जो भारतीय लोक निर्माण विभाग मे एक कर्मचारी था कहता है कि जहा इंग्लैंड मे सिविल इंजीनियरिंग प्रभार निष्पन्न निर्माण कार्य के मूल्य का 5 से 6 प्रतिशत तक था, वहा भारत मे स्थापन व्यय के रूप में 25 से 30 प्रतिशत तक खर्च किया जाता था।

177. भारत सरकार से भारत मंत्री को, लोक निर्माण विभाग प्रेषण संख्या 67, दिनांक 30 जून, 1865; तथा संख्या 3, दिनांक 6 जनवरी, 1865। भारत सरकार से भारत मंत्री को, लोक निर्माण विभाग (सैन्य) प्रेषण संख्या 34, दिनांक 17 मार्च, 1865, संख्या 52, दिनांक 11 मई, 1865, तथा संख्या 108, दिनांक 30 अगस्त, 1865।

178. भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त प्रेषण संख्या 252, 8 नवंबर, 1865।

179. भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त प्रेषण संख्या 10, 12 जनवरी, 1865 (गोपनीय)।

180. भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त प्रेषण संख्या 252, 8 नवंबर, 1865। इस मद के अंतर्गत प्रतिवर्ष प्राक्कलित व्यय निम्नलिखित था

1865-66—12,70,000 पौंड
1866-67—20,00,000 पौंड
1867-68—28,00,000 पौंड
1868-69—28,00,000 पौंड
1869-70—25,00,000 पौंड

181. भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त प्रेषण संख्या 239, 18 सितंबर, 1868।

182. 'दि रास्त गोफ्तार' (बंबई) ने ईर्ष्या भाव से लिखा कि यूरोपीय सैनिकों की बैरकों पर व्यय अत्यधिक था ('रास्त गोफ्तार,' 30 अक्तूबर, 1870, आर० एन० पी० बंबई, 1870, पृ० 525। इसे घोर 'पक्षपात' का उदाहरण बतलाया गया ('रास्त गोफ्तार,' 24 अक्तूबर, 1869, आर० एन० पी० बंबई, 1869, पृ० 543)। 'सोम प्रकाश,' 7 नवंबर, 1864, आर० एन० पी० बंगाल, 14 नवंबर, 1864 की रिपोर्ट)।

183. भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त प्रेषण संख्या 10, 12 जनवरी, 1865 (गोपनीय)।

184. भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त प्रेषण संख्या 210, 21 सितंबर, 1866।

185. भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त प्रेषण संख्या 258, 20 दिसंबर, 1866।
186. वही।
187 भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त प्रेषण संख्या 72, 25 फरवरी, 1867।
188. भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त प्रेषण संख्या 79, 28 फरवरी, 1867।
189. *भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त प्रेषण संख्या 228, 9 जुलाई, 1868।*
190 भारत सरकार से भारत मंत्री, वित्त प्रेषण संख्या 283, 21 अक्तूबर, 1868। तदनुसार 1868-69 के बजट में परिवर्तन किया गया। बजट में मूल प्राक्कलन के अनुसार 2.4 करोड़ रुपये का आधिक्य था। वास्तव में बजट में उस वर्ष 4.1 करोड़ रुपये का घाटा था। भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त प्रेषण संख्या 313, 30 नवंबर, 1868।
191. वित्त कार्यविवरण, मार्च, 1868, लेखा शाखा संख्या 88, डब्ल्यू० आर० मैंसफील्ड का मेमो०, 14 मार्च, 1868।
192. वित्त कार्यविवरण, मार्च, 1858, लेखा शाखा 87, सर एच० एम० ड्यूरेंड का मेमो०, 13 मार्च, 1868। और भी, ड्यूरेंड का 23 मार्च, 1868 का मेमो०, पूर्वोक्त स्थल, संख्या 91। इसी रूपरेखा के आधार पर ड्यूरेंड का 17 अगस्त, 1868 का मेमो०। वित्त कार्यविवरण सितंबर, 1868, लेखा शाखा संख्या 164।
193 वित्त कार्यविवरण, मार्च, 1868, लेखा शाखा 89, जे० लारेंस का मेमो०, 18 मार्च, 1868।
194. वित्त कार्यविवरण, मार्च, 1868, लेखा शाखा 90, जे० स्ट्रैची का मेमो०।
195. वित्त कार्यविवरण, मार्च, 1868, लेखा शाखा 88, डब्ल्यू० आर० मैंसफील्ड का मेमो०, 14 मार्च, 1869।
196. *भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त प्रेषण संख्या 239, सितंबर, 1868* (आर० एन० पी० बंगाल, 1868, पृ० 253)। 'मुफीद-ए-आलम', 15 जुलाई, 1871 (एस० वी० एन०, पश्चिमोत्तर प्रांत, 1871, पृ० 401)। 'कुंभकोणम एथेनायम,' 17 जुलाई, 1872 (रिपोर्ट आन तमिल प्रेस, दिनांक 31 जुलाई, 1872)। 'हिंदू पेट्रिअट,' 12 दिसंबर, 1880 और 21 फरवरी, 1870।
197 जे० स्ट्रैची, भारतीय लोक वित्त से संबंधित कुछ प्रश्नों के संबंध में स्मरण पत्र। पी० पी० एच० सी० 1874, जिल्द 47, पत्रक 326, पृ० 245।
198. भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त संख्या 7, 13 जनवरी, 1866, ठीक वही, वित्त संख्या 37, 14 फरवरी, 1866। गृह कार्यविवरण, 10 फरवरी, 1866, संख्या 1, 387। जे० स्ट्रैची द्वारा स्मरण पत्र, दिनांक 10 अगस्त, 1865 व 27 सितंबर, 1865, गवर्नर जनरल का मेमो०, 7 अक्तूबर, 1865; डब्ल्यू० एन० मैसी का मेमो०, 29 दिसंबर, 1865। भारत सरकार से भारत मंत्री को, न्यायिक प्रेषण संख्या 30, 4 जुलाई, 1863।
199. 'इंडियन डेली न्यूज' 27 फरवरी, 1866। उसके अनुसार 8 वर्षों में जीवन निर्वाह के स्तर में सौ प्रतिशत वृद्धि हुई थी। वही 17 फरवरी, 1866।
200. वित्त कार्यविवरण, जनवरी, 1865, पेंशन व ग्रेचुटी, संख्या 90। भारत सरकार के कुछ गैर अनुबंधित कर्मचारियों द्वारा वायसराय को विनम्र स्मरण पत्र, अगस्त, 1864।

201. वित्त कार्यविवरण, जनवरी, 1865। व्यय प्रकीर्ण सख्या 415। सेनाध्यक्ष का मेमो०, 30 नवंबर, 1864।

202. वित्त कार्यविवरण, जनवरी, 1865। पृथक राजस्व संख्या 309। सचिव, बबई सरकार से सचिव, भारत सरकार को, 7 जनवरी, 1865।

203. जुलाई, 1863 में बबई सरकार द्वारा नियुक्त आयोग ने खाद्यान भत्ते की सिफारिश की थी। भारत सरकार से भारत मत्री को, वित्त सख्या 22, 5 फरवरी, 1864। यद्यपि अतिरिक्त व्यय अनियमित था, तथापि अस्थाई उपाय के रूप मे उसे स्वीकृति प्रदान कर दी गई थी। भारत मत्री से भारत सरकार को वित्त 118, 16 मई, 1864। खाद्यान्न भत्ते 1867 तक दिए गए जबकि वेतनो मे स्थाई रूप से वृद्धि की गई थी। *वित्त कार्यविवरण, अप्रैल, 1867। लेखा शाखा* सख्या 109। भारत सरकार द्वारा प्रस्ताव 30 अप्रैल, 1867।

204 भारत सरकार से भारत मत्री को, वित्त सख्या 74, 17 अप्रैल, 1865; वित्त सख्या 38, 14 फरवरी 1866, वित्त संख्या 43, 20 फरवरी, 1866, वित्त सख्या 160, 24 जुलाई, 1866, वित्त सख्या 96, 26 मार्च, 1867।

205. भारत सरकार से भारत मंत्री को, गृह (लोक शाखा) सख्या 37 व 42, दिनाक क्रमश 8 और 15 जून 1861। भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त सख्या 110, 4 अगस्त, 1882। भारत मत्री से भारत सरकार को, वित्त सख्या 205, 8 दिसबर, 1862।

206. गृह कार्यविवरण दिसंबर, 1868, लोक शाखा 66। इस विवरण मे भारत सरकार की नौकरी मे हिंदुस्तानियों की सख्या को दिखाया गया है।

207. वित्त कार्यविवरण, जून, 1870, पेंशन व ग्रेचुटी, सख्या 67। बगाल के अनुबधित सरकारी अफसरो का ड्यूक आफ आरगाइल को स्मरणपत्र, वही सख्या 70 व 71। मद्रास और बबई के अनुबंधित सरकारी अफसरो का सर एस० नोर्थकोट को स्मरण पत्र।

208. आरगाइल से मेयो को, 11 अप्रैल, 1871, मेयो कागजात बडल 49, सख्या 8।

209. भारत सरकार से भारत मत्री को, वित्त सख्या 155, 24 जून, 1870। ठीक वही वित्त सख्या 171, 14 जुलाई, 1874।

210. भारत मत्री से भारत सरकार को, वित्त सख्या 52, 10 फरवरी, 1871।

211. तदनुसार अधिनियम बनाए गए। वित्त कार्यविवरण, 1871, पेंशन तथा ग्रेचुटी, सख्या 17। भारत सरकार द्वारा प्रस्ताव, 31 मार्च, 1871। निवृत्ति भत्ता इग्लैंड मे प्रचलित विनिमय दर के अनुसार दिया जाता था। वित्त कार्यविवरण, जुलाई, 1871। पेंशन तथा ग्रेचुटी सख्या 61-62। बाद मे जब रुपया स्टर्लिंग दर भारत के विपरीत हो गई तो सरकार को स्टर्लिंग मे निर्धारित पेंशनो पर हानि हुई।

212. आरगाइल से मेयो को, 3 अप्रैल 1871, मेयो कागजात, बडल 49, संख्या 5।

213. आरगाइल से मेयो को, 11 अप्रैल 1871, मेयो कागजात, बडल 49, सख्या 8।

214. वही। मेयो का दावा था कि स्वहित द्वारा निर्णय प्रभावित नही था क्योकि इस सबध मे परिषद के असैनिक सदस्यो ने न तो कोई टिप्पणी की थी और न ही कोई सिफारिश की थी। मेयो से आरगाइल को, 23 मार्च, 1871, मेयो कागजात, बडल 43, सख्या 110। इस डर से कि कही सरकारी अफसर पेंशनो मे वृद्धि की अस्वीकृति के बारे में प्रेषण की ध्वनि से नाराज

न हो, मेयो ने आरगाइल से अनुरोध किया कि वह उसे प्रकट न करे। आरगाइल से मेयो को, 22 जून, 1871, मेयो कागजात, बंडल 49, संख्या 14।

215. वित्त कार्यविवरण, अप्रैल 15, 1862। प्रकीर्ण संख्या 25। असैनिक वित्त आयोग से वित्त सचिव, 20 मार्च, 1862।

216. 'फ्रेंड आफ इंडिया' 8 मई, 1862; वही 26 फरवरी, 1863।

217. वित्त कार्यविवरण, नवंबर, 1869। लेखा शाखा 48. गवर्नर जनरल द्वारा स्मरण पत्र। 4 अक्तूबर, 1869। मेयो से आरगाइल को, 9 जनवरी 1871। मेयो कागजात, बंडल 42, संख्या 13।

218. भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त संख्या 144, 29 जून, 1860।

219. वित्त कार्यविवरण, मई 1860, संख्या 21, वित्तीय विज्ञप्ति, 27 अप्रैल, 1860; 23, जे० विल्सन से भारत मंत्री, 28 अप्रैल, 1860।

220 वही, संख्या 25, वित्तीय विज्ञप्ति, 10 मई, 1860।

221. भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त 53, 9 अप्रैल, 1864। भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त 14, 9 जुलाई, 1862, और भारत सरकार से भारत मंत्री को वित्त 116, 16 सितंबर, 1863।

222. भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त 62, 22 मई, 1863।

223. भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त 240, 20 सितंबर, 1869। ठीक वही, वित्त 258, 11 अक्तूबर, 1869।

224. आर० टैंपिल, 'दि स्टोरी आफ माई लाइफ' (लंदन, 1866) जिल्द I, पृ० 201, 208।

225. वित्त कार्यविवरण दिसंबर, 1871, संख्या 38। भारत सरकार की विज्ञप्ति, 20 दिसंबर, 1871।

226. भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त (गोपनीय) संख्या 130, 16 जून, 1871।

227 मेयो से आरगाइल को, 27 मई, 1870, मेयो कागजात, बंडल 39, संख्या 141।

228. देखें IV ऊपर।

229. ए० काटन, 'पब्लिक वर्क्स इन इंडिया' (लंदन, 1854), पृ० 52-53। और भी देखें, पृ० 25-29 और 49-52।

230. 'टाइम्स आफ इंडिया,' 9 मई, 1863।

231. इंडियन इकानामिस्ट, 11 जुलाई, 1870। केवल 'दि फ्रेंड आफ इंडिया' ने ही बड़े पैमाने पर उधार लेने के लिए सरकार की निंदा की थी। देखें संपादकीय 4 दिसंबर, 1865, 11 मार्च 1869।

232. 'रास्त गोफ्तार,' 11 सितंबर, 1870, आर० एन० पी० (बंबई) 1870, पृ० 443; वही, 9 अक्तूबर, 1870; आर० एन० पी० (बंबई), 1870, पृ० 491। 'सोम प्रकाश,' 30 जुलाई, 1866; आर० एन० पी० (बंगाल) दिनांक 9 अगस्त, 1866।

233. हाउस आफ कामंस में पेश की गई ईस्ट इंडिया एसोसिएशन की याचिका, (अर्जी), 17 फरवरी, 1871, 'जनरल, आफ ईस्ट इंडिया एसोशियन,' जिल्द V, 1871, खंड II, पृ० 128-29।

234. वित्त कार्यविवरण, मई, 1870। पृथक राजस्व संख्या 83, बंबई चेंबर आफ कामर्स से लार्ड

मेयो को, 18 अप्रैल, 1870।

235. टी० जेफरीज, 'नेशनल क्रेडिट एड पब्लिक वर्क्स' (कराची, 1871), II पृ० 14।

236. बी० नाइट, 'दि फाइनेंशियल स्टेटमेंट दैट शुड हैव बीन डिलीवर्ड एड वाज नाट' (बबई, 1870) अज्ञात नाम से प्रकाशित, पृ० 42। नाइट 'इडियन इकानामिस्ट' का सस्थापक सपादक था।

237. आरगाइल से मेयो को, 12 मार्च, 1869, मेयो कागजात, बडल 47।

238. हैलीफाक्स (सी० वुड) से जे० लारेंस को, 10 मार्च, 1866, लारेंस कागजात, भारत मत्री से जे० लारेंस को पत्र, जिल्द III, सख्या 13।

239. मेयो से आरगाइल को, 16 मार्च 1869, मेयो कागजात, बडल 34, सख्या 102। मेयो की सूचना बहुत सही होती थी। एल० सी० जैन ('इडिजिनस बैंकिंग इन इडिया', लदन, 1929, पृ० 250) के अनुसार स्वदेशी बैंकरो की ब्याज दरें प्रतिभूतियो के स्वरूप के अनुसार 6 से 18 प्रतिशत के बीच मे रहती थी।

240. भारत सरकार से भारत मत्री को, वित्त 149, 24 जून, 1870।

241. वही, वित्त (गोपनीय), सख्या 130, 16 जून, 1871।

242 वही, वित्त सख्या 16, 5 फरवरी, 1861,
वही, वित्त सख्या 37, 13 मार्च, 1861,
वही, वित्त सख्या 258, 20 दिसंबर, 1866।

243. वित्त कार्यविवरण, जनवरी, 1867। लेखा शाखा सख्या 106, बबई की सरकार से भारत मंत्री को, 8 अक्तूबर, 1866।

244 वित्त कार्यविवरण, जनवरी, 1867। लेखा शाखा सख्या 108, वित्त सचिव, भारत सरकार से सचिव, लोक निर्माण विभाग, बबई सरकार को, 21 जनवरी, 1867।

राजस्व की मदें : नीति संबंधी कुछ प्रश्न

जिस समय सैन्य विद्रोह प्रारंभ हुआ उस समय तक ब्रिटिश भारत के विभिन्न भागो मे भूधृति प्रणाली, 1765 से धीरे-धीरे आकार ग्रहण करती हुई, जमींदारी, रैयतवाडी तथा महालवाडी नामक व्यवस्थाओं में ढलकर ठोस हो चुकी थी। इन सभी प्रणालियों पर उन ब्रिटिश राजनीतिक अर्थशास्त्रियों के सिद्धातों की सतही छाप थी जिनके शब्दो को भारत में तात्विक रूप से व्यावहारिक निर्णय प्रक्रिया को कुछ बौद्धिक तत्व प्रदान करने के लिए काफी उद्धृत किया जाता था। भूधृति प्रणाली, जो सैन्य विद्रोह के बाद लगभग अपरिवर्तित रही, तथा भूमि सबंध जिन्हे उत्तर सैन्य विद्रोह काल के विधान द्वारा नियमित करने का प्रयास किया गया था, स्पष्ट रूप से इस अध्ययन क्षेत्र के बाहर है। यहां पर भूमि में हमारी दिलचस्पी केवल राजस्व के साधन के रूप मे अथवा भूमि कर (मालगुजारी) की दृष्टि से है। मालगुजारी के सबध में हमारे अध्ययन की अवधि का सबसे महत्वपूर्ण नीति विषयक मामला स्थाई बंदोबस्त का उन क्षेत्रो में विस्तार का प्रश्न था जो उस वक्त समय-समय पर संशोधित अस्थाई बदोबस्त के अंतर्गत थे। इस प्रकार के स्थाई बदोबस्त द्वारा मालगुजारी मे सरकार की आय मे उत्तरोत्तर होने वाली वृद्धि रुक जानी थी। चूंकि सरकार की आय का 40 प्रतिशत से अधिक भाग मालगुजारी से आता था, इसलिए यह प्रश्न निर्णायक महत्व का था।

उन्नीसवीं सदी के भारत मे स्थाई बंदोबस्त राजस्व विधान का एक शब्द मात्र न होकर एक सामाजिक दर्शन था। स्थाई बंदोबस्त ने स्थिरता एवं व्यवस्था के सिद्धात को जन्म दिया था। यह सिद्धात अति पवित्र निजी सपत्ति की प्रथा पर आधारित, भूमि तथा लाभप्रद पूंजी निवेशो से प्राप्त होने वाली अनवरत आय द्वारा संपोषित और उच्चवर्गीय संघों द्वारा मुखरित था। ये उच्चवर्गीय संघ भूस्वामी तथा लगान जीवी (रांटिया) वर्गों के लिए सामाजिक एवं राजनीतिक ढाचे मे, उसी स्थान की मांग कर रहे थे जो 'भूमि से स्थाई रूप से संबद्ध' और (ब्रिटिश) 'राज' के प्रति वफादार 'समाज के स्वाभाविक नेताओं' को मिलना चाहिए था। बंगाल इस सिद्धांत का घर था परंतु अन्य स्थानों पर भी इसे स्वाभाविक ढंग से अपना लिया गया था। इस सिद्धात और व्हिग राजनीतिक विचारों मे सादृश्य तथा उपयोगितावादी विचारधारा से इसकी भिन्नता के कारण उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे मालगुजारी नीति को एक सैद्धांतिक आयाम भी मिल गया। उन्नीसवी शताब्दी के मध्य तक ऐसा प्रतीत होता था कि तथाकथित बंगाल विचारधारा पर मिल के अनुयायियों की पूर्ण विजय हो गई है। फिर भी, सातवें दशक मे

स्थाई बंदोबस्त के विचार को पुन: जीवन दिया गया। 1862 में भारत मंत्री ने संपूर्ण भारत में मालगुजारी के स्थाई बंदोबस्त के विषय में सरकार द्वारा स्वीकृति देने के निर्णय की घोषणा की।[1] अगले दो दशकों में जबकि इस प्रकार के बंदोबस्त का विस्तार करने के पक्ष विपक्ष पर विचार किया जा रहा था, इस संबंध में निर्णय स्थगित कर दिया गया और 1883 में अंतिम रूप से समाप्त कर दिया गया।[2] स्थाई बंदोबस्त लागू करने और फिर इस निर्णय से धीरे-धीरे हटने के पीछे प्रयोजनों का अध्ययन उत्तर सैन्य विद्रोह काल का प्रमुख दिलचस्प विषय है।

वारेन हेस्टिंग्स पर अपने निबंध में मैकाले यों ही एक मनोरंजक बात कह गया है। ब्रिटिश भारतीय अफसरों की शब्दावली में 'राजनीतिक' शब्द 'राजनयिक' का पर्यायवाची था। सरकारी अफसर आंतरिक प्रशासन का कार्य तो योग्यतापूर्वक संपन्न करता था, परंतु वह 'राजनीतिक व्यापार से बिलकुल अनभिज्ञ' था।[3] दूसरे शब्दों में, अधिकारियों के विचार से साम्राज्य के प्रशासन की कल्पना राजनीतिक पहलू से नहीं की गई थी। जिला अधिकारी तथा कलकत्ते में रहने वाले नौकरशाह प्रशासनिक निर्णयों और कार्रवाइयों की सामाजिक एवं राजनीतिक जटिलताओं की ओर ध्यान नहीं देते थे। अत: स्थाई बंदोबस्त बहुधा राजस्व संग्रह में एक विशुद्ध सुविधा के प्रश्न के रूप में लिया जाता था। तथापि निर्णय प्रक्रिया के ऊंचे स्तरों पर भूधृति तथा बंदोबस्त व्यवस्था के सामाजिक प्रभावों के विषय में अधिक चेतना थी। गवर्नर जनरल की परिषद में वित्त सदस्य सेमुअल लैंग की दृष्टि में स्थाई बंदोबस्त नवीन सामाजिक-व्यवस्था का आधार था। उसके ही शब्दों में, 'हमारी सरकार का उद्देश्य इस देश से अधिकाधिक धन की प्राप्ति नहीं है। हमारा उद्देश्य यहां की भारी जनसंख्या को समान रूप से निश्चेष्ट स्तर पर भी नहीं रखना है यद्यपि वह पितृवादी सरकार की छत्रछाया में भूधृतिधारी काश्तकार के रूप में काफी प्रसन्न तथा संतुष्ट हो सकती है। यदि हम स्थाई बंदोबस्त करते हैं···तो हम एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की नींव डालते हैं जिसकी व्यवस्था संभवत. सरल नहीं है, परंतु जो सभ्यता तथा प्रगति के तत्वों की दृष्टि से संपन्न होने के साथ-साथ विविधता भी लिए हुए है।।'[4] स्थाई बंदोबस्त लागू होने पर 'यद्यपि कठिनाइयों, असमानताओं और टकराव में वृद्धि हो सकती है परंतु उस स्थिति की तुलना में, जहां सरकार सर्वेसर्वा है, इस व्यवस्था में, अधिक जीवन, क्रिया और प्रगति होगी···यदि हमें पूर्व के देशों में कुछ करना है तो वह यह है कि हम पूर्वी निरंकुशतावाद के परंपरागत स्वीकृत ढांचे के स्थान पर कोई अच्छी व्यवस्था खोजें।' लैंग ने माना था कि इससे समाज में श्रेणीकरण एवं असमानताएं होंगी। परंतु यह तो अपरिहार्य था चाहे मालगुजारी देने वाला व्यक्ति जमींदार हो अथवा जमीन को बेचने या शिकमी देने के अधिकार के साथ सांविधिक (कानूनी) काश्तकार।'[5] तात्पर्य यह कि वर्तमान राजस्व प्रदाई रैयतों के हित वर्ग तथा स्थाई भूधृति की स्थापना में भारी संख्या में लोग लगान देने वाले काश्तकार या मजदूरी पर काम करने वाले श्रमिक बनने लगेंगे। जो रैयत जमीन पर पूर्ण स्वामित्व पा जाएंगे वे उसे कई भागों में बेचेंगे अथवा शिकमी देंगे। इस प्रकार एक मध्यवर्ती वर्ग बन जाएगा। लैंग तथा सर चार्ल्स वुड के अनुसार इस

प्रकार का मध्यम वर्ग नितांत वांछनीय था और सर जान लारेंस जिसकी सहज सहानुभूति मध्यम वर्गों की तुलना में छोटे जमीदारों के साथ अधिक थी, इनसे सहमत था। 9 जुलाई, 1862 के अपने राजस्व प्रेषण मे संपूर्ण भारत के लिए स्थाई बंदोबस्त की सिफारिश करते हुए वुड ने आशा व्यक्त की थी कि देश में 'भूमि से संबद्ध मध्यम वर्ग का धीरे-धीरे विकास होगा।' लारेंस ने भी इस प्रकार के वर्ग की जिसकी 'निश्चित रूप से सरकार के प्रति निष्ठा' होगी, वाछनीयता बतलाई।[6] परंतु ऐसा लगता है कि उसकी धारणाएं लैंग से भिन्न थी। लारेंस तत्कालीन 'छोटे जमीदारों तथा स्वत्वधारी किसानो को भूमि से वंचित किए बिना' भूमि से संबद्ध मध्यम वर्ग का विकास चाहता था यद्यपि, जैसा कि लैंग को अच्छी तरह पता था, स्वत्वधारी किसानो के स्वत्व का हरण नए मध्यम वर्ग के विकास की प्रक्रिया का अंग था। लारेंस अपने पंजाब के दिनों से 'लोक कल्याणवादी' हो सकता है, परंतु लैंग अथवा वुड के दृष्टिकोण मे वैसा कुछ नही था। यह कहा जाता है कि सैन्य विद्रोह के बाद स्थाई बंदोबस्त से सबधित प्रस्ताव का दोबारा आना जान लारेंस के प्रशासन में लोककल्याणवाद का पुनरुत्थान था।[7] परंतु स्थाई बंदोबस्त के अधिकाश समर्थको का दृष्टिकोण मूलत: व्यावहारिक था, और उनके सामाजिक दर्शन मे लोककल्याणवाद की ओर प्रत्यावर्तन का कोई प्रमाण नही मिलता।

स्थाई बदोबस्त की समस्या को सैद्धांतिक प्रश्न के रूप मे समझने के लिए इस विषय में राष्ट्रवादी दृष्टिकोण पर गौर करना भी आवश्यक है। स्थाई बंदोबस्त उन्नीसवी शताब्दी के बाद के दशकों के राष्ट्रवादियो के आर्थिक कार्यक्रमो का अनिवार्य अग था। इनमें रमेश दत्त स्थाई बंदोबस्त के सिद्धात के प्रधान समर्थक थे। 1875 मे रमेश दत्त जमीदार और रैयत के बीच मे ठीक उसी प्रकार के स्थाई बंदोबस्त का समर्थन कर रहे थे जैसा कि जमीदार और सरकार के बीच था।[8] 1793 के विनियम (रेगुलेशन) 1 द्वारा रैयत को जमीदार की दया पर छोड़ दिया गया था। बाद के काश्तकारी कानूनों ने रैयत को कुछ विधिक अधिकार दिए, परंतु नदिया तथा पावना में हुए उसी समय के उपद्रवो से कृषको मे असंतोष की तीव्रता एव मात्रा का पता चला। रमेश दत्त ने सरकार मे ऐसा उपाय करने के लिए कहा जिससे कि जमीदारों तथा रैयतों के वर्गों के बीच 'दुर्भावना दूर हो सके'। उन्होने तर्क दिया कि इस दिशा में पहला उपाय रैयत द्वारा दिए जाने वाले लगान की दरों का स्थाई बदोबस्त है। रमेश दत्त के सिविल सेवा के साथी अफसरो ने सावधान करते हुए उनसे कहा कि सरकार की नीतियो की आलोचना से सिविल सेवा में उसकी पदोन्नति की संभावनाएं नष्ट हो सकती है। इस पर दत्त ने अपने भाई को लिखा कि 'नौकरी मे मैं पदोन्नति की अधिक चिंता नहीं करता, परंतु सौभाग्यवश अन्य पुस्तकें जो मैं लिखना चाहता हूं भारत की राजनीति के विषय में नही है।'[9] जमीदारो के हितो के मुखपत्र 'हिंदू पेट्रिअट' ने 'इंग्लैंड मे कुछ वर्षो तक रह कर नए विचारों के साथ भारत लौटने वाले युवकों मे' 'क्रांतिकारी भावना' की स्पष्ट शब्दों मे निंदा की। इस कटु निंदा के लेखक क्रिस्टोदास पाल का विचार था कि 'उम्र बढने के साथ तरुणाई का असंयम दूर होकर इन युवको में गंभीरता आ जाएगी।' दत्त के दामाद और जीवनी लेखक जे० एन० गुप्ता ने भी उनकी 'जमीदारों

के दावों के प्रति पर्याप्त न्याय' करने में असफलता के कारण 'तरुणाई का जोश और अपरिपक्वता' बतलाए हैं। ऐसा लगता है कि दत्त पर विभिन्न दिशाओं से दबाव था और यह उनकी बाद की लिखी गई चीजों से स्पष्ट है कि उन्होंने अपने विचारों में काफी संशोधन कर लिए थे।[10] दत्त की रचनाएं, विशेष रूप से 'दि पीजेंट्री आफ बंगाल (1875) तथा फैमीस इन इंडिया, (1900) रैयत के प्रति गहरी सहानुभूति से ओत प्रोत थी और इन्होंने भारतीय कृषि की समस्याओं के बारे में ए० पी० मैकडोनल तथा एच० जे० रेनोल्ड्स जैसे ब्रिटिश प्रशासकों, दादाभाई नौरोजी जैसे राष्ट्रवादियों तथा भारतीय घटना स्थल से दूर प्रिंस क्रोपोटकिन जैसे लोगों को प्रभावित किया।[11] परंतु दत्त की बाद की रचनाओं मे 'उग्रवाद की भावना' जिसकी 'हिंदू पेट्रिअट' ने 1875 में निंदा की थी साफ तौर पर गायब थी। बंबई और मद्रास की अस्थाई रैयतवाड़ी प्रणाली के साथ बंगाल के राजस्व बंदोबस्त की तुलना करते हुए जहां दत्त उसका गुणगान करते है वहां वह जमीदारी प्रथा के शोषणकारी तत्व को कम बताते है। दत्त ने पदस्थितिजन्य यह निर्णायक कमजोरी 1900 मे ग्रहण की जिसका लार्ड कर्जन ने पूरा लाभ उठाया। लार्ड कर्जन ने स्पष्ट किया कि दत्त की विचारधारा मे रैयत के ऊपर जमीदारों के दावों की सीमा निर्धारित करने की आवश्यकता की ओर पर्याप्त ध्यान नही दिया गया है। रैयत के हितों की रक्षा करना आवश्यक है और यह संरक्षण उस समय की तुलना में जब भुगतान मालगुजारी के रूप में ब्रिटिश सरकार के होते थे, रैयत द्वारा जमीदार को लगान के भुगतान के समय कम आवश्यक नही थे। तथापि रमेश दत्त और राष्ट्रवादी खेमे के उनके अन्य मित्रो ने संपूर्ण भारत में बंगाल की तरह का स्थाई बंदोबस्त का समर्थन नही किया। यह स्पष्ट अनुभव हो गया था कि जिस प्रकार की जमीदारी प्रथा बंगाल मे विकसित हुई थी वह स्थाई बंदोबस्त का अनिवार्य अंग नही थी। मांग यह थी कि रैयत पर मालगुजारी संबंधी दावे का स्थाई बंदोबस्त होना चाहिए। रैयत साविधिक (कानूनी) काश्तकार था। उसके और सरकार के बीच में स्थाई बंदोबस्त से उसके हितों की तो रक्षा होती थी, परंतु भूमि पर किसानों का अधीनस्थ अधिकार होने या कोई भी अधिकार न होने के कारण उन्हें स्थाई बंदोबस्त से कोई लाभ नही होना था। एक आधुनिक अर्थशास्त्री के अनुसार 'यह तर्क कि बंदोबस्त रैयत के साथ होना चाहिए उस समाज में अर्थहीन होगा जिसमे रैयत को दर रैयत बनाने की स्वतंत्रता है जिससे ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसमें शोषित शोषक बन बैठते हैं।'[12] समस्या के इस पहलू पर दत्त ने ध्यान नही दिया था। उस दृष्टिकोण को जिसके रमेश दत्त के विचार प्रतीक है, उन्नीसवी शताब्दी के बाद के दशकों में विशिष्ट वर्ग की सामाजिक पृष्ठभूमि की सहायता से स्पष्ट कर सकना संभव है। यह दृष्टिकोण आंशिक रूप से राष्ट्रवादी नेताओं की सामाजिक न्याय की तुलना मे जिसे वे महान उद्देश्य (अर्थात) साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष) कहते थे से प्रतिबद्धता का परिणाम था।

स्थाई बंदोबस्त के इस पंथ का सैद्धांतिक आधार क्या था? वस्तुतः कुछ भी नही। एक अस्पष्ट मान्यता थी कि स्थाई बंदोबस्त के द्वारा लगान में राज्य का भाग कम हो जाने से कृषि संपत्ति का संचय बढ़ेगा और कृषि विकास के लिए पूंजी के निवेश को

प्रोत्साहन मिलेगा। न केवल दत्त और उसकी ही विचारधारा के अन्य लोग बल्कि अनेक ब्रिटिश अफसर, जैसा कि हम आगे देखेंगे, इस मान्यता को सही माने बैठे थे। यह मान्यता टर्गोट तथा स्मिथ के पूजी निवेश प्रक्रिया के सिद्धात का स्मरण कराती है जिसके अनुसार यदि किसी के पास निवेश्य पूजी है तो निवेश स्वाभाविक रूप से होगे और इसके परिणामस्वरूप उत्पादन क्षमता का विस्तार होगा। परंतु बचत और निवेश मे बाधाएं जैसे विस्तृत अथवा संयुक्त परिवार प्रणाली के माध्यम से साधनों का निकास, 'सामंती' अतीत से मिली या यूरोपीय लोगो के साथ नए संपर्कों से प्राप्त उपभोग संबंधी आदतो के अधिव्ययी प्रभाव, अन्यत्रवासी जमींदारों के नए वर्ग द्वारा जिसके पास पैतृक संपत्ति एकत्रित करने की परपरा नही थी, प्रदर्शन उपभोग एवं अपव्यय, आदि कृषि विकास के लिए भी सीमाएं थी और ये बंगाल में प्रत्यक्ष रूप से विद्यमान थीं। स्थाई बदोबस्त के आलोचक यह बता सके थे। वे उपयोगितावादी विचारधारा के अर्थशास्त्रियों के सिद्धात भी प्रस्तुत कर सकते थे। मिल के लगान सिद्धात मे कहा गया था कि राज्य को अनर्जित आय का एक भाग लेना ही चाहिए और स्थाई बंदोबस्त द्वारा इस पर रोक लग जाती थी। यह तर्क दिया गया कि राज्य लाभकारी लगान का एक छोटा भाग ही मालगुजारी के रूप मे ले रहा है। भारत का लघु किंतु वर्धनशील वाणिज्यिक समुदाय सरकार से आग्रह कर रहा था कि और अधिक लगान लिया जाए। कलकत्ता ट्रेडर्स एसोसिएशन ने 1867 में भारत मंत्री को अपने स्मरण पत्र मे लिखा कि जे० एस० मिल ने यह सिद्ध कर दिया है कि सभी प्रकार के करों मे मालगुजारी सबसे कम हानिकारक है, फिर भी सरकार व्यापारियो और उद्योगपतियो पर लाइसेंस कर लगा कर 'देश की संपत्ति और समृद्धि मे योगदान देने वाली एव उत्पादक कार्यों मे लगी पूजी' पर कराधान कर रही है जबकि अचल संपत्ति और निष्क्रिय पूंजी पर वस्तुतः कोई कर नहीं है।'[13] बंगाल चैंबर आफ कामर्स ने शिकायत की कि यदि प्रत्यक्ष कर 'भू संपत्ति और सरकारी प्रतिभूतियों' पर न लगा कर व्यापारियों और कारीगरो पर लगाए गए तो 'राष्ट्रीय उद्योगो पर अनुचित भार पड़ेगा।'[14] 1859 में ही बंबई के हिंदुस्तानी व्यापारियों ने सरकार से यह अनुरोध किया कि 'वह निष्क्रिय तथा संपन्न वर्गों के लाभ के लिए औद्योगिक वर्गों पर कर न लगाए...श्रम से उत्पन्न आय और व्यापार तथा व्यवसायो से प्राप्त आयो पर संपत्ति से मिलने वाली आय की तुलना में हलके कर होने चाहिए...।'[15] कलकत्ता, बंबई, अहमदाबाद तथा मद्रास से सरकार के पास इस प्रकार के कई स्मरण पत्र भेजे गए।[16] इस प्रकार के प्रतिवादों का अर्थ स्पष्ट है कि वणिकों, व्यापारियों, तथा कारीगरो की अर्जित आय की तुलना में जमींदारो तथा लगानजीवियो की आयों पर भारी कर लगाए जाने चाहिए। मिल ने आय के स्रोत के आधार पर कराधान मे विभेदीकरण का सुझाव दिया था तथा हाउस आफ कामन्स की ह्यूवार्ड समिति (1861) द्वारा विचार विमर्श मे भी अर्जित और अनर्जित आय में विभेदीकरण के औचित्य पर ध्यान आकर्षित किया गया था।[17] भारत सरकार ने विभेदीकरण सिद्धात को स्वीकार नहीं किया, परंतु किसी न किसी प्रकार के संपत्ति कर की भारी आवश्यकता अनुभव की गई।[18] सरकार इस प्रकार का कर खोज पाने में असफल रही और छठे दशक मे आय पर संबंधी

प्रयोगों से स्पष्ट हो गया कि स्थाई बंदोबस्त हो जाने के बाद कृषि आय में होने वाली वृद्धि पर लगा सकना कठिन् कार्य था।[19] इस संदर्भ में स्थाई बंदोबस्त के विरुद्ध उपयोगितावादी तर्क को केवल सैद्धांतिक बता कर अस्वीकार नहीं किया जा सकता। सातवें और आठवें दशक के राजस्व संबंधी विवाद मे जे० एस० मिल का कोई प्रमुख स्थान नही है परंतु पृष्ठभूमि मे उसकी अस्पष्ट छाया बराबर दिखाई देती है। सर एच० एस० मेन तथा डब्ल्यू० टी० थोर्नटन के साथ निजी पत्र व्यवहार मे जे० एस० मिल ने उन्हें 'वर्तमान अंग्रेजी ढंग के जमीदारवाद के प्रति प्रतिक्रिया (सैन्य विद्रोह के बाद)' के विरुद्ध चेतावनी दी थी और अपनी आशंका व्यक्त करते हुए कहा कि मालगुजारी का स्थाई परिशोधन 'सरकार के लिए घटिया सौदा' सिद्ध होगा।[20]

संक्षेप मे, स्थाई बंदोबस्त का विचार भिन्न-भिन्न लोगों के लिए अलग-अलग चीज था। सेमुअल लैंग की दृष्टि मे यह एक ऐसे श्रेणीबद्ध एवं विकासशील समाज का आधार था जिसमे सक्रिय एवं प्रगतिशील मध्यम वर्ग को भी रहना था। रमेश दत्त के लिए इसका अर्थ कृषि आय पर विदेशी सरकार की माग का अंतिम रूप से सीमाकन था, जिससे कृषि संपत्ति का विकास हो सकता था। जमीदारो की दृष्टि मे यह उनका स्थाईकरण था। मिल तथा उसके अनुयायियों के लिए यह एक घटिया सौदा था।

1862 मे भारत सरकार द्वारा स्थाई बंदोबस्त का सिद्धात स्वीकार करने के पीछे क्या प्रयोजन था? कर्नल बायर्ड स्मिथ ने स्पष्ट किया कि हमे दुर्भिक्ष की समस्या को प्राथमिकता देनी चाहिए क्योकि इसका राजस्व प्रणाली के ऊपर सीधा प्रभाव पड़ता है। जिस समय बायर्ड स्मिथ दुर्भिक्ष समस्या मे उलझ पड़ा था, उस समय वह अपने कार्य में नया था। वह ख्याति प्राप्त इंजीनियर था परंतु राजस्व प्रशासन तथा दुर्भिक्ष से संबधित अन्य बातो मे उसका अनुभव सीमित था। सभवतः यह उसके लिए एक सुविधाजनक बात थी क्योंकि जब लार्ड कैनिंग ने उससे उत्तरी भारत मे 1860 के दुर्भिक्ष के कारणो की जांच करने के लिए कहा तो समस्या के बारे मे उसने नए विचार दिए। मई तथा अगस्त में प्रस्तुत की गई अपनी तीन रिपोर्टो मे उसने स्पष्ट किया कि अभाव तथा दुर्भिक्ष का सामना कर सकने की लोगो की सामर्थ्य 'बंदोबस्त प्रणाली की, जिसके अंतर्गत रहते हुए वे उत्पादन करते है, पूर्णता के ठीक अनुपात मे या मैं कहना चाहूंगा कि ठीक ज्यामितिक अनुपात मे होता है।'[21] उसने पाया कि सरकार की भूमि संबंधी माग दीर्घकाल के लिए निर्धारित हो जाने और अधिकारो के सतर्कता के साथ दर्ज किए जाने से कृषि सपत्ति के मूल्य मे वृद्धि हुई है। निस्सदेह 1837-38 और 1860 के दुर्भिक्ष के वर्षों के बीच मे भूमि प्रणाली में इतना सुधार हो गया था कि दुर्भिक्ष की स्थिति में उसका सामना कर सकने की लोगों की सामर्थ्य भी बढ गई। इस सुधार का श्रेय दीर्घकालीन बंदोबस्त को देते हुए बायर्ड स्मिथ ने तर्क दिया कि इस सिद्धात के और अधिक प्रयोग द्वारा, अर्थात 30 वर्षों के लिए बंदोबस्त वाले क्षेत्रो में स्थाई बंदोबस्त लागू करके लोगों की स्थिति में और अधिक सुधार किया जा सकता है और इस प्रकार दुर्भिक्ष के समय कृषक वर्ग के पूर्णतया बरबाद हो जाने का भय भी कम हो सकता है। तथापि कृषकों की वास्तविक स्थिति के बारे मे बहुत थोड़ा मालूम था। पश्चिमोत्तर प्रान्त के लेफ्टिनेंट गवर्नर ने बायर्ड स्मिथ

के जाच परिणामों पर आपत्ति की और दावा किया कि 'पश्चिमोत्तर प्रात का कृषक कम से कम बगाल के कृषक के बराबर की स्थिति मे ही है' यद्यपि वहां भू स्वामी वर्ग बंगाल के भू स्वामी वर्ग की भांति संपन्न नही था।[22] तथापि यह बात लगभग निर्विवाद थी कि आवधिक बदोबस्त की तुलना मे स्थाई बंदोबस्त के अंतर्गत कृषि आय का अल्प भाग सरकार द्वारा लिया जाता था (और बड़ा भाग भू स्वामियो के पास छोड़ दिया जाता था)। परतु साथ ही, स्थाई बदोबस्त को किसानो के संपन्नीकरण के बराबर समझना बेतुकी सी बात होगी। यह बात इंडिया काउंसिल के सदस्य रोस डी० मैंगल्स ने वुड के स्थाई बंदोबस्त पर 1862 के प्रेषण पर अपनी विसम्मति टिप्पणी मे स्पष्ट की।[23] उसने दृढता के साथ कहा कि स्थाई बदोबस्त से केवल उन लोगों को लाभ होना है जो राज्य को सीधी मालगुजारी देते है न कि अधिकाश कृषि जनसंख्या को जिसके भूमि पर अधीनस्थ के अधिकार है। अस्तु, स्थाई बदोबस्त का अर्थ 'कृषापात्र वर्ग के लिए राज्य द्वारा अपने अधिकारों तथा हितों का परित्याग' भी हो सकता है। तथापि जैसा कि बायर्ड स्मिथ ने सिफारिश की थी यदि मालगुजारी के स्थाई निर्धारण के साथ अधिकार भी दर्ज किए जाते तो इस दोष से बचा जा सकता था। ऐसा लगता है कि सर सी० वुड बायर्ड स्मिथ की रिपोर्ट से बहुत प्रभावित था और उसने जुलाई, 1862 के अपने राजस्व प्रेषण मे स्थाई बदोबस्त के पक्ष को सहारा देने के लिए रिपोर्ट से उद्धरण लिए थे।[24]

स्थाई बंदोबस्त के पक्ष मे एक अन्य महत्वपूर्ण तर्क राजनीतिक था। तर्क यह दिया गया था कि स्थाई बदोबस्त से भू स्वामी वर्ग सरकार के पक्ष मे आ जाएगा। भारत मत्री लार्ड स्टैनले ने 31 दिसबर, 1858 के अपने राजस्व प्रेषण में लिखा था कि स्थाई बंदोबस्त के बाद जमीदार अपना सरकार के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेगा और 'उसकी निष्ठा उसकी अपनी बुद्धिमानी तथा स्वार्थ का मामला' बन जाएगी।[25] सर सी० वुड भी सदा के लिए जमीन के मालिकों के साथ बंदोबस्त के राजनीतिक लाभों से अवगत था। उसे आशा थी कि 'जमीन मे संपत्ति के पूर्ण सृजन' से सरकार के प्रति निष्ठा बढ जाएगी।[26] यह स्थाई बंदोबस्त के कट्टर हिमायती सर जान लारेंस का भी मत था।[27] उसने लिखा, 'कृषक जो देश की वास्तविक भौतिक शक्ति होते है, उनके ही संतोष पर ब्रिटिश शासन की सुरक्षा बहुत कुछ निर्भर है। यदि वे सपन्न हों तो सैनिक शक्ति कम हो सकती है, अन्यथा नही।' इस प्रकार का तर्क लारेंस जैसे अधिकारी द्वारा, और वह भी सैन्य विद्रोह के ठीक बाद, दिए जाने पर उसको काफी महत्वपूर्ण समझा जाना ही था। तथापि यह संभव है कि स्थाई बंदोबस्त का राजनीतिक लाभ बहुत बढा-चढा कर बताया गया था। जैसा कि एक अफसर ने, जिसके पास व्यावहारिक प्रशासनिक अनुभव था, बतलाया कि भारतीय कृषकों की स्थाई बदोबस्त के परिशोधन सबधी प्रस्ताव के ऊपर जिस प्रतिक्रिया की आशा की जा रही थी, वह उससे भिन्न भी हो सकती है। 'स्थाई बदोबस्त करने के समय मालगुजारी की दर इतनी ऊची निर्धारित की जानी थी जितनी भूमि के लिए सहन कर पाना संभव था। यह दर उससे अधिक रहनी थी जिसे देने की पिछली दो पीढियों को आदत पड़ चुकी थी।' बढ़ी हुई मालगुजारी किसानों पर भारी बोझ बन जानी थी। किसान इसके दीर्घकालीन लाभों के

समझ पाने मे असमर्थ था क्योंकि वह 'इतना आगे नहीं देख सकता कि उसे भूमि के मूल्य मे सामान्य वृद्धि की संभावना का बोध हो सके।'[28] जैसा कि पश्चिमोत्तर प्रांत के राजस्व बोर्ड से संबद्ध अधिकारी डब्ल्यू० म्योर ने बताया, 1857 के सैन्य विद्रोह से बंगाल की निरापदता के कारण एक गलत धारणा बन गई और इसी कारण से लोगों ने स्थाई बदोबस्त के लाभों को अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से रखा। वास्तव मे जिन कारणों ने लोगो को विद्रोह के लिए उकसाया था (म्योर यह नही बतलाता है कि वे कारण क्या थे) वे बंगाल के किसी भी भाग में पूरी तरह सक्रिय नही थे, परतु जहां पर वे उपस्थित और सक्रिय थे जैसे कि शाहाबाद में वहा स्थाई बदोबस्त भी उन्हें रोक पाने में उतना ही *अशक्त सिद्ध हुआ जितना कि अस्थाई बंदोबस्त।*[29] *स्थाई बंदोबस्त और राजनैतिक* सुरक्षा मे गलत तादात्म्य स्थापित करने का एक उदाहरण सेमुअल लैंग का यह कथन है कि स्थाई बंदोबस्त ने 'सैन्य विद्रोह के समय साम्राज्य के सबसे बड़े भाग (बगाल अथवा निचले प्रान्तों से तात्पर्य है) ने अपने आपको हमसे संबद्ध रखा' '[30] कुछ भी हो, ठीक *प्रकार से अथवा भूल से, यह समझा जाता था कि मालगुजारी के स्थाई बंदोबस्त के रूप* में रियायत से लोगो की सरकार के प्रति निष्ठा में वृद्धि होगी और एक ऐसा वर्ग उत्पन्न होगा जो अपने हितों और विदेशी सरकार मे तादात्म्य देखेगा।

स्थाई बंदोबस्त के पक्ष में एक अन्य बात यह थी कि इसके द्वारा प्रशासन के निचले स्तरों पर प्रशासनिक कार्य तथा व्यय में कमी कर सकने की संभावना थी। यह सभी लोगों द्वारा स्वीकार किया जाता था कि समय-समय पर किया जाने वाला बंदोबस्त यूरोपीय अधिकारियों के लिए जिनका काम निरीक्षण था, एक भारी कार्य था और छोटे अधिकारियों के लिए यह मालगुजारी अदा करने वालों को लूटने का अवसर था। करदाता को इससे बहुत खीझ होती थी और प्रत्येक बंदोबस्त से संबंधित कार्य की लागत बहुत होती थी।[31] व्यावहारिक प्रशासकों को स्थाई बदोबस्त के तथाकथित राजनीतिक लाभ संबंधी तर्क अथवा स्थाई बंदोबस्त और किसानो की दुर्भिक्ष का सामना कर सकने की क्षमता में *कल्पित संबंध की तुलना में ये प्रशासनिक कारण अधिक* महत्वपूर्ण लगे।

उन्नीसवी शताब्दी के छठे दशक में क्रीमियाई युद्ध तथा अमरीकी गृहयुद्ध के समय भारतीय कच्चे माल के बाजार के विस्तार, 1861 से 1864 तक लंकाशायर में कपास के अकाल के समय भारत के कपास बाजार में तेजबाजारी, कुछ खनिज तथा बागान उद्योगों के विस्तार, रेलवे तथा अंतर्देशीय जहाजरानी के विकास से व्यापार तथा वाणिज्य को प्रोत्साहन, भारत मे ब्रिटिश पूंजी निवेशों की मात्रा में वृद्धि इत्यादि के साथ भारत के आर्थिक जीवन में आर्थिक विकास का नया चरण प्रारंभ होता है। भारत अब 'कुबेर का खजाना' नही रहा था 'जिससे इंग्लैंड के नई पीढ़ी के लोग आकर मनचाहा धन उठा कर ले जाते।'[32] भारत का पूंजी निवेश तथा व्यापार क्षेत्र के रूप में विकास किया जाना था। भारत की बेकार भूमि को ब्रिटेन के प्रवासी श्रमिको की सहायता से उत्पादक बनाने की अव्यावहारिक योजनाओं से लेकर[33] पैट्रोलियम के स्रोतों के विकास की प्रगतिशील योजनाओं[34] तक कोई भी कार्यक्रम यदि निवेश के लिए अवसर प्रदान करता था तो इंग्लैंड की जनता की उसमे दिलचस्पी पैदा हो जाती थी और कभी-कभी तो

इन योजनाओं को सरकार से भी सहायता मिलती थी। भारत में निवेश और व्यापार की संभावनाओं को खोजने की उत्कंठा कुछ तो संरक्षणात्मक टैरिफ के फलस्वरूप यूरोप में इग्लैंड का बाजार सीमित हो जाने के कारण और कुछ 1857 के बाद भारत पर इग्लैंड का पूरा नियत्रण स्थापित हो जाने और सरकार को ससदीय दबाव गुटो तथा व्यापारिक संस्थाओं के द्वारा प्रभावित कर पाने की संभावनाओ के कारण थी। अस्थाई बदोबस्त और मालगुजारी मे समय-समय पर वृद्धि भारत में ब्रिटिश पूंजी निवेश को हतोत्साहित करने वाले तत्वों में से एक तत्व थी। 'ब्रिटिश' अधिकारी भारत में इस प्रकार की बाधाओ को दूर करने के लिए इच्छुक थे। लोगो का यह विश्वास था कि स्थाई बंदोबस्त, पूर्ण स्वामित्व की भूधृति, और मालगुजारी परिशोधन से भारत में ब्रिटिश पूजी और उद्यम के प्रवाह को प्रोत्साहन मिलेगा।

भारत मे ब्रिटिश पूजी आकर्षित करने के लिए 1857 में कोर्ट आफ डायरेक्टर्स ने भारत सरकार से आजमायशी तौर पर अपने स्वामित्व की भूमि कुछ ऐसे संपन्न और प्रतिष्ठित व्यक्तियो को स्थाई रूप से इस शर्त पर हस्तांतरित करने का आग्रह किया कि वे जमीन मे सबसे अधिक मूल्यवान फसलें उगाने के लिए कुछ पूजी लगाएंगे।[35] कोर्ट तथा भारत मंत्री के पास खाली भूमि प्रदान करने के लिए अनेक आवेदन आए। आवेदक इस भूमि पर 'कपास और इग्लैंड के उत्पादको के लिए अन्य निर्यात योग्य पदार्थो की खेती करना चाहते थे।'[36] मैनचेस्टर का मिलों की सयुक्त राज्य अमरीका पर कच्चे माल की आपूर्ति के लिए निर्भरता इनके मालिकों के लिए चिंता का विषय बनी हुई थी और उनके काटन सप्लाई एसोसिएशन ने सरकार पर साम्राज्य मे ही आपूर्ति के दूसरे स्रोतों को विकसित करने में सहायता देने के लिए ब्रिटिश सरकार पर दबाव डाला। इस एसोसिएशन ने एक प्रतिनिधि मंडल फरवरी, 1859 मे भारत मत्री लार्ड स्टेनले के पास, एक अन्य प्रतिनिधि मंडल अक्तूबर, 1861 में सेमुअल लैंग के पास, तथा जुलाई, 1859 तथा अप्रैल, 1860 में दो स्मरण पत्र सर चार्ल्स वुड के पास भेजे।[37] इसने सूती वस्त्र उद्योग के हितो के तथाकथित समर्थक ससद सदस्यों (काटन एम० पी०) की सहायता से अपने प्रचार पत्र काटन सप्लाई रिपोर्टर के माध्यम से तीव्र प्रचार किया। यद्यपि इस पत्रिका के मुख पृष्ठ पर ऊपर लिखा रहता था कपास राजनीति नही जानती, फिर भी उसमें काफी चालाकी से भरी राजनीति रहती थी। अमरीका में गृहयुद्ध छिड़ जाने से दक्षिणी राज्यो से कपास की आपूर्ति रुक गई और इसके साथ ही *काटन सप्लाई एसोसिएशन* ने अपने प्रयत्न तेज कर दिए। इंडिया आफिस के पास भेजे जाने वाले प्रतिनिधि मंडलो तथा स्मरण पत्रो से संतुष्ट न रह कर इस एसोसिएशन ने भारत सरकार के साथ सीधा पत्र व्यवहार प्रारंभ कर दिया। इसके सदस्यों ने भारत सरकार का ध्यान आकर्षित करते हुए लिखा कि 'पुरानी, कष्टकर, जटिल तथा अत्याचारी भूधृति प्रणाली को बनाए रख कर हमारे हिंदुस्तानी भाइयो के साथ घोर अन्याय किया गया है।[38] कच्ची कपास के उत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिए भारत सरकार को चाहिए कि वह मालगुजारी के परिशोधन तथा भूमि पर पूर्ण स्वामित्व और भूधृति को स्वीकार करे। काटन सप्लाई एसोसिएशन ने माग की कि 'यूरोपीय पूंजी निवेश के लिए पूरे अवसर' देने के लिए भूमि

संबंधी नियमों में परिवर्तन किया जाना चाहिए।[39] इस मामले में भारत के ब्रिटिश व्यापारी संघ भी मैनचेस्टर गुट के साथ हो गए। इंडिगो प्लांटर्स एसोसिएशन, चाय तथा कहवा बागानों के मालिकों, तथा लैंडहोल्डर्स एंड कमर्शियल एसोसिएशन की संयुक्त समिति ने इस मामले पर भारत सरकार के पास स्मरण पत्र भेजे। लैंडहोल्डर्स एंड कमर्शियल एसोसिएशन ने लिखा कि 'भारत के उत्पादक स्रोतों के ऊपर काम करने के लिए इंग्लैंड से जो पूंजी, उद्यम तथा शक्ति यहा आ सकती है वह भूधृति प्रणाली के असुरक्षित तथा पुनर्ग्रहणीय होने के कारण आ नही पाती।'[40]

इन प्रयत्नों का 1861 में कुछ परिणाम निकला। इस वर्ष के प्रारभ मे भारत सरकार ने घोषित किया कि 'इंग्लैंड मे भारतीय कपास की मांग काफी व आकस्मिक वृद्धि की सभावना' को देखते हुए भूमि सबधी विनियमों मे परिवर्तन करने के लिए उपाय किए जाएंगे। अक्तूबर, 1861 मे मालगुजारी के परिशोधन तथा साधारण शुल्क पर भूमि देने की व्यवस्था करने के लिए विनियम बनाए गए।[41] इस निर्णय तक पहुचने मे सरकार न केवल मैनचेस्टर के सूती वस्त्र उत्पादको तथा ब्रिटिश अधिकारियों के दबाव से प्रभावित हुई थी, वरन उस पर उसके अपने ही अधिकारियो कपास की खेती के बारे में रिपोर्ट देने के लिए नियुक्त कमिश्नर आर० सांडर्स तथा रिवर्स थांपसन जो बंगाल बोर्ड आफ रैवेन्यू से संबद्ध था, का असर था। थापसन का मत था कि जब तक साम्राज्य के दूसरे देशो की भांति भारत में साधारण शुल्क पर भूधृति नही दी जाती तब तक यूरोपीय पूंजी भारत मे जोखिम नही उठाएगी।[41A] पी० साडर्स ने न केवल मालगुजारी के परिशोधन की अपितु स्थाई बंदोबस्त की भी सिफारिश की। उसने लिखा कि 'लोग इतने अधिक हतोत्साहित किसी अन्य बात से नही होते जितना कि यह जानकर कि सुधार के आधार पर कर मे बराबर वृद्धि हो रही है और उनके द्वारा किए जाने वाले श्रम और सुधारो का केवल यही परिणाम होता है कि लचीला फीता जिससे वे बंधे हैं उन्हें और अधिक कस लेता है।'[42]

पश्चिमोत्तर प्रांत के लेफ्टिनेंट गवर्नर के अनुसार साडर्स ने अस्थाई बदोबस्त के विकास में बाधक प्रभावो को बढ़ा-चढा कर बताया था। परंतु वह इस बात पर सहमत था कि सरकार यूरोपीय लोगों को महानगरों के बाहर देश के भीतरी भागों मे भी बसने का प्रोत्साहन देने के लिए यथाशक्ति प्रयास करे भले ही वे 'जमीदार, बागान मालिक अथवा व्यापारी के रूप में' आएं।[43] जनसाधारण को 'उनके पड़ोस मे ही यूरोपीय पूंजी निवेश से, जिसके द्वारा मुद्रा प्रवाह में निश्चय ही वृद्धि होगी, कमोबेश लाभ' पहुंचेगा।[44] जुलाई, 1862 के विख्यात राजस्व प्रेषण मे, जिसमे स्थाई बंदोबस्त की सिफारिश की गई थी, सर सी० वुड ने घोषित किया (पैरा 24) कि भारत सरकार का उद्देश्य यूरोपीय लोगो को भारत में बसने के लिए प्रोत्साहन देना है।[45] उन दिनों इग्लैंड मे वेकफील्ड की रचनाओं में प्रवास तथा अन्य देशो मे जाकर बड़े पैमाने पर बस जाने मे लोगो की दिलचस्पी बढ़ाई।[46] जलवायु, उपयोग लायक खाली भूमि के अभाव, जनसंख्या के दबाव इत्यादि अनेक कारणो से जो बहुत स्पष्ट भी थे, भारत यूरोपीय लोगों के आवास की दृष्टि से उपयुक्त स्थान नही था। बंबई का गवर्नर एल्फिंस्टन बहुत सही था जब उसने

साधारण शुल्क के आधार पर बेकार भूमि देने के विषय में अपेक्षित विनियमों के संबंध में एक कार्यवृत्त मे लिखा : 'इस देश में यूरोपीय लोगों का इतनी बड़ी संख्या में अधिवास, जिसके आधार पर इसे हम भारत उपनिवेश कह सकें, मुझे तो कल्पना मात्र ही लगता है।'[47] साधारण शुल्क पर बेकार भूमि देने तथा मालगुजारी परिशोधन विषयक विनियमों की माग व्यापारिक हितों ने की थी और इन मांगों को सरकार ने इस आशा के साथ पूरा भी कर दिया था कि भूमि मे यूरोपीय पूजी का भारी निवेश होगा, विदेशी सुविज्ञता तथा तकनीकों का आयात होगा और भारत मे यूरोपीय उद्यमी आकर बसेंगे। व्यवहार में ये विनियम आ जाने पर उपर्युक्त आशाएं पूरी नही हुईं। बागान उद्योगों में लगे हुए यूरोपीयो को छोड कर बहुत थोड़े लोगों ने बेकार भूमि संबंधी विनियमों का लाभ उठाया और भारतीय जमीदार, जिन्होंने मालगुजारी परिशोधन की आवश्यकता समझी, संख्या मे और भी कम थे।

यह सामान्य रूप से स्वीकार किया जाता था कि अस्थाई बंदोबस्त जिसके साथ संशोधन की शर्त लगी रहती थी; भूमि मे यूरोपीय तथा हिंदुस्तानी दोनों ही तरह के पूंजी निवेश को हतोत्साहित करता था और स्थाई बंदोबस्त के पक्ष में यह सबसे प्रबल तर्क था। यह प्राय. देखा गया था कि जब भी मालगुजारी का वार्षिक अथवा नियतकालिक निर्धारण होता था तो अगले बंदोबस्त के समय मालगुजारी की राशि मे वृद्धि की निश्चित सभावना के कारण भूमि सुधार तथा उसमे पूजी निवेश मे बाधा पडती थी। अत: लोग नियतकालिक बदोबस्त के क्षेत्रों मे, जहा भूमि के मूल्य मे वृद्धि के साथ-साथ कर भी बढता चलता था, भूमि मे पूजी लगाने के लिए स्वाभाविक रूप से अनिच्छुक थे।[48] यह स्वस्पष्ट था कि 'राजस्व माग का स्थिरीकरण', सैसिल बीडन के शब्दों में 'अपनी संपत्ति का मूल्य बढाने के लिए मनुष्य की सभी प्रेरक शक्तियों में, जिनसे वह परिचित है, सबसे सबल है।'[49] निस्संदेह यह तर्क दिया जा सकता था कि नियतकालिक बंदोबस्त के क्षेत्रों में भी काफी विकास हुआ था। यह पश्चिमोत्तर प्रात मे हुआ था। उदाहरण के लिए इस प्रात के गवर्नर ने कहा था कि '1809 की अपेक्षा यह प्रात अब उद्यान हो गया है।'[50] यह ठीक है कि पश्चिमोत्तर प्रात मे बंदोबस्त नियमावली (1854) के नियम 37 के अनुसार जुम्मा मे सुधारो को प्रोत्साहन देने के लिए पूजी निवेशार्थ कुछ रियायत दी गई थी। फिर भी अल्पकालिक बंदोबस्द के क्षेत्रों में पूंजी का निवेश बहुत अनिच्छापूर्वक किया जाता था।[51] यह देखा गया था कि बंदोबस्त की अवधि जब समाप्त होने लगती थी और नए बंदोबस्त का समय पास आने लगता था तो कृषि सुधार का कार्य रुक जाता था क्योंकि प्रत्येक जमीदार का यह उद्देश्य होता था कि उसके ऊपर यथासंभव कम मालगुजारी निर्धारित हो कृषि सुधारो से कृषि क्षेत्र का मूल्य तथा विस्तार बढ़ जाता था और नए बंदोबस्त मे मालगुजारी का निर्धारण इसी के आधार पर किया जाता था।[52] मद्रास के राजस्व अधिकारियो ने भी यह तथ्य स्वीकार किया।[53] इसके विपरीत लोगो का यह विश्वास था कि बगाल में स्थाई बदोबस्त से 'अपार संपत्ति का उत्पादन हुआ है।'[54] कुछ भी हो, यह सदस्य सेमुअल लैंग का मत था यद्यपि यह निश्चित नही था कि क्या अथवा कहा तक संपत्ति के संचय से भूमि सुधार हुए। फिर भी यह धारणा कि

मालगुजारी के स्थाई बंदोवस्त से पूजी के संचय और निवेश मे सहायता मिलती है, बहुत प्रचलित हो गई थी और स्थाई बदोवस्त के पक्ष में तर्क के रूप मे इसका प्रयोग किया गया था । सर सी० वुड ने जुलाई, 1862 के अपने प्रेषण मे संपूर्ण भारत के लिए स्थाई बंदोवस्त की सिफारिश करते हुए इसका प्रयोग किया था ।[55]

सातवें दशक के मध्य तक स्थाई वदोवस्त के समर्थकों का अधिक जोर रहा । फिर भी काफी लोग इसके विषय मे संदेह करते थे । छठे दशक के मध्य से यद्यपि सरकार ने स्थाई बंदोबस्त का सिद्धात शासकीय तौर पर स्वीकार कर लिया था, तथापि अधिकारी इस बारे में पुर्नविचार करने लगे । 1864 मे वुड ने लारेंस को एक व्यक्तिगत पत्र में लिखा कि 'मैं स्थाई बंदोबस्त के सिद्धांत से पीछे नही हटता, परंतु जब मालगुजारी मे वृद्धि की संभावना अच्छी हो तो स्थाई बंदोबस्त करने की जल्दी न करो ।'[56] 1865 में वुड ने पुनः अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा कि 'यदि मालगुजारी मे वृद्धि कर सकना संभव हो तो वह आपत्तिजनक नही है ।'[57] वुड के उत्तराधिकारी क्रेनबोर्न ने लारेंस से 'स्थाई बंदोवस्त के मामले में सावधानी के साथ चलने के लिए' कहा । उसके शब्दो मे, 'इस बात को ध्यान में रखते हुए कि मुद्रा का मूल्य गिर रहा है और भारत मे संपत्ति का हर तत्व द्रुत विकास की स्थिति मे है, मैं स्थाई बंदोबस्त के प्रभावों को भयभीत होकर देख रहा हूं ।'[58] लारेंस उत्साहपूर्वक स्थाई बंदोबस्त के पक्ष मे था ।[59] परंतु उसका उत्तराधिकारी मेयो दूसरी तरफ था । उसने आरगाइल को सुझाव दिया कि पश्चिमोत्तर प्रांत मे स्थाई बंदोवस्त करने के बारे मे जल्दबाजी के साथ निर्णय नहीं लिया जाना चाहिए, क्योंकि 'जिस समय 1862 मे सर सी० वुड ने इस संबध मे लिखा था उस समय जो भी लोग स्थाई बदोबस्त के पक्ष में थे उन सभी ने इस संबंध मे अपने विचार बदल लिए थे ।'[60] 'इस समय यह एक महत्वहीन प्रश्न है । अब से 25 अथवा 30 वर्ष बाद यह हमारे शासन के लिए जीवन मरण का प्रश्न हो सकता है ।'[61] मेयो का यह विश्वास कि स्थाई बदोबस्त से 'सुधारों के लिए अतिरिक्त कराधात का रास्ता बंद हो जाएगा, बगाल के जमीदारों द्वारा स्थानीय उपकरों (सेस), सड़क कर, शिक्षा उपकर तथा ऐसे ही कुछ अन्य करों के विरोध से दृढ हो गया । उसने फ्रेर को लिखा कि 'जमीदार, निस्संदेह, उस हर प्रस्ताव का विरोध करेंगे जिसका उनकी जेब पर असर पड़ता है और प्रस्ताव कुछ भी क्यो न हो वे 'संविदा की शर्तों के उल्लंघन' की रट पपीहे की तरह लगाने लगेंगे···उन्हे इस बात की धेले भर चिंता नही है कि निर्धन व्यक्ति नमक और तबाकू के लिए भी कितना कर देने के लिए बाध्य हैं परतु यदि उनकी मोटी आमदनी से आधा प्रतिशत भी लिया जाए तो वे चीखने लगते हैं ।'[62] आरगाइल ने यह स्वीकार किया था कि 'स्थाई बंदोवस्त उस निजी उद्यम तथा ऐसे कृषि वर्गों के लिए जो इस विश्वास के साथ पूजी लगा सकते हैं कि वे अपनी प्रवीणता एवं उद्यम का लाभ उठा सकेंगे, एक महान प्रेरणा है ।' परंतु मालगुजारी के बंदोवस्त से कराधान पर प्रतिबंध नही लगाया जा सकता । उसने मेयो को लिखा कि 'मुझे आशा है कि आप ये बंदोवस्त करते समय ध्यान रखेंगे कि परस्पर यह समझौता होना चाहिए (या सूचना भी दी जा सकती है) कि साम्राज्यिक कर अथवा मालगुजारी संबंधी स्थाई बदोवस्त से स्थानीय कार्यों के लिए और अधिक कराधान

पर कोई प्रतिबंध नहीं होगा। आपको मालूम है कि उच्च अधिकारियों के पास भूमि के बढ़ते हुए मूल्य के अनुसार कर अथवा लगान का ठीक-ठीक समायोजन करने के विषय में राज्य के अधिकार के स्थाई परित्याग के संबंध में भारी एतराज आए हैं। मेरे विचार में केवल इस शर्त पर स्थाई बंदोबस्त अच्छी चीज है कि इससे लोगों के पास रह जाने वाली बढ़ी हुई संपत्ति दूसरे रूप में कराधान के लिए उपलब्ध होगी। ऐसे बंदोबस्त के विरुद्ध तर्क की बहुत सारी शक्ति सदैव ही इस विश्वास पर निर्भर होती है कि भारत में राजस्व के नए स्रोत खोज पाना यदि असंभव नहीं तो काफी कठिन अवश्य है।[63]

इस प्रकार अपने व्यक्तिगत पत्र व्यवहार के द्वारा अधिकारी अपने पहले निर्णय पर पुनर्विचार कर रहे थे, तथापि स्थाई बंदोबस्त लागू करने के विषय में 1862 के निर्णय के बारे में शासकीय रूप से कभी भी संदेह व्यक्त नहीं किया गया। इसके विपरीत 1862 के नीति संबंधी निर्णय से पीछे हटने की इच्छा की सार्वजनिक अभिव्यक्ति उन एक के बाद एक अधिसूचनाओं तथा विनियमों में दिखाई देती है जिनमें स्थाई बंदोबस्त के पहले पूरी की जाने वाली शर्तें निर्धारित की गई थीं। वास्तव में सर सी० वुड ने पहले ही कुछ शर्तें लगाई थीं जिनमें सबसे महत्वपूर्ण शर्त थी कि स्थाई बंदोबस्त उन्हीं क्षेत्रों में किया जाएगा जहां पर एक जायदाद में खेती के लायक समस्त भूमि के तीन चौथाई भाग पर पहले से ही कृषि हो रही हो।[64] 1793 में बंगाल के बंदोबस्त में गलती हो गई थी। वहां सभी भूमि पर राजस्व में संभाव्य वृद्धि को छोड़ दिया गया था। उपर्युक्त शर्त का सुझाव सेसिल बीडन ने इसी भूल से बचने के लिए दिया था। इस शर्त का अर्थ था कि पंजाब और मध्य प्रान्त के बहुत सारे भाग तथा बंबई व पश्चिमोत्तर प्रांत के कुछ भाग स्थाई बंदोबस्त के लिए उपयुक्त नहीं थे।[65] 1865 में भारत मंत्री ने इस शर्त को इस प्रकार प्रतिपादित किया कि स्थाई बंदोबस्त का अर्थ संशोधन के बाद उन सभी जायदादों के लिए जिनमें कृषि योग्य अथवा मालगुजारी क्षेत्र के 80 प्रतिशत भाग पर वास्तव में खेती होती है, तत्काल स्थाई बंदोबस्त कर दिया जाएगा।[66] अन्य क्षेत्रों को अपने स्रोतों के भावी विकास तक रुकना पड़ेगा और वहां पर अस्थाई बंदोबस्त रहेगा।

1866 में एक अन्य शर्त लगाई गई। यह निर्धारित किया गया कि सरकारी नहरों से लाभान्वित भूमि पर तथा ऐसी भूमि पर जिसे भविष्य में लाभ मिलने की संभावना हो, कर बढ़ाए जा सकेंगे। भारत मंत्री ने इस संबंध में निर्णय देते हुए कहा कि 'ऐसी जायदाद के लिए स्थाई बंदोबस्त नहीं किया जाना चाहिए जिसकी आस्तियां (ऐसेट) अपेक्षित नहर सिंचाई व्यवस्था पूर्ण हो जाने पर 20 प्रतिशत से भी अधिक बढ़ सकती है।' इस प्रकार की जायदादों पर उन सभी जायदादों की भांति, जिन पर पूरी तरह खेती नहीं होती अथवा जो अविकसित हैं, बंदोबस्त अस्थाई रूप से ही किया जाना था।[67] यह बहुत ही अस्पष्ट ढंग से प्रतिपादित शर्त थी और इसके आधार पर वे बहुत सारी जायदादें छोड़ी जा सकती थीं जिन पर भविष्य में सिंचाई सुविधा मिलने की संभावना थी।[68] भारत सरकार के अनुरोध पर नोर्थकोट ने इस नियम को इस प्रकार पुनः परिभाषित किया, 'ऐसी किसी भी जायदाद का स्थाई बंदोबस्त किया जाएगा जिसे सपरिषद गवर्नर जनरल की राय में अगले बीस वर्षों के भीतर नहर से सिंचाई की सुविधा मिल

सकती है और जिसकी मौजूदा आस्तियों में 20 प्रतिशत तक वृद्धि हो सकती है।'[69]

भारत सरकार ने दावा किया कि ये शर्तें भी उसके हितों को सुरक्षा प्रदान करने की दृष्टि से अपर्याप्त थी। वस्तुत: यह कहा गया कि जब तक किसी भी जायदाद का विकास हो रहा है और उसके मूल्य मे वृद्धि हो रही है तब तक कोई स्थाई बंदोबस्त नही किया जा सकता। भारत सरकार ने अपने मई, 1871[70] के राजस्व प्रेषण मे यह मत व्यक्त किया कि पश्चिमोत्तर प्रांत में स्थाई बंदोबस्त लागू करने का निर्णय स्थगित रखना चाहिए। इनसे सारा मामला यथार्थ मे ताक पर रख दिया गया और 1883 के राजस्व प्रेषण, संख्या 24 के द्वारा स्थाई बंदोबस्त की योजना को आखिरी झटका लगा और योजना समाप्त कर दी गई।[71] वस्तुत: 1883 का यह निर्णय भारत मंत्री के 1871 के प्रेषण मे ही प्रत्याशित था। इस प्रेषण मे भारतीय वित्त पर हाउस ऑफ कामंस की प्रवर समिति के विचारों के बारे में लिखा गया था कि 'वे भारत मंत्री का ध्यान इस ओर आकर्षित करना ठीक समझते है'''जिससे कि वह इस विषय पर पुनर्विचार कर सके और इस बीच यह भी निर्धारित कर सके कि अपने पूर्वाधिकारी के प्रेषण के अनुसार अगली कार्यवाही स्थगित करने के लिए कोई कदम उठाने हैं या नही।'[72]

ऐसा लगता है कि सर सी० वुड ने स्थाई बंदोबस्त लागू करने मे दो समस्याओ की गंभीरता को कम समझा। उसने भूमि के मूल्य मे वृद्धि का अनुमान कम लगाया और चांदी के मूल्य ह्रास की संभावना को भी कम समझा। उसने भारत सरकार को लिखा कि 'महा-महिषी की सरकार को मुद्रा के सापेक्षिक मूल्य मे संभाव्य कमी की आशका इस समय अधिक नही लगती''।'[73] उसी प्रेषण में एक अन्य स्थान पर वह लिखता है कि 'एक बार जब लगान ठीक से निर्धारित हो जाएगा तो समाज' की स्वाभाविक वृद्धि के परिणामस्वरूप उसमें कोई भी वृद्धि क्यों न हो उसके धीरे-धीरे ही होने की संभावना है और बहुत अधिक समय बीतने तक यह राशि बडी नही होगी'''।'[74] दोनों ही के बारे मे वुड गलत था और यह जितना अधिक स्पष्ट होता गया, स्थाई बंदोबस्त के प्रति उत्साह भी घटता गया। इसका अर्थ था कि जो भाग विकसित नही थे उनमे स्थाई बंदोबस्त नही किया गया, जबकि स्थाई बंदोबस्त वास्तव मे भूमि मे पूजी निवेश और उसके विकास के लिए किया जाता था। यह एक विडंबनापूर्ण स्थिति थी।

एक अन्य समस्या सातवें दशक के प्रारम्भिक वर्षो मे नही देखी जा सकी थी। यह समस्या थी ऐसी कर प्रणाली का निर्माण जिससे स्थाई बंदोबस्त हो जाने पर सरकार की छूटने वाली आय दूसरे करों के द्वारा पुन: मिल सके। आयकरों तथा परोक्ष करों से प्रत्याशित आय न हो पाने से सरकार के मस्तिष्क मे आय के प्रधान तथा बढ़ते हुए स्रोत के रूप में मालगुजारी का महत्व बैठ गया। स्थाई बंदोस्त के लाभ उस समय स्वीकार कर लिए गए थे जब यह विश्वास किया जाता था कि इस प्रकार के बंदोबस्त से उत्पन्न होने वाली संपत्ति पर कराधान की प्रणाली सहज ही खोज निकाली जाएगी। केनबोर्न ने लिखा है 'कराधान की प्रणाली भारतीय वित्त विशेषज्ञों के लिए अब भी पारसमणि लगती है और इसलिए यह स्वाभाविक है कि जो लोग पहले स्थाई बंदोबस्त के लिए उत्साही थे वे अब मालगुजारी मे संभावित वृद्धि को छोड़ने के लिए अनिच्छुक होने लगे

हैं।[75] पारसमणि की खोज मे चकराई हुई सरकार ने अत मे संपूर्ण भारत मे स्थाई बंदोवस्त लागू करने का विचार ही त्याग दिया।

II

बाजार मे काफी उतार-चढ़ाव के बावजूद उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे भारत सरकार की अफीम से आय मे अनवरत वृद्धि हुई। इस शताब्दी के प्रारंभ मे यह लगभग 3.3 लाख पौड थी। परंतु 1810 मे यह बढ़कर 10 लाख पौड हो गई थी। 1830 मे अफीम से आय 15 लाख पौड और 1850 मे 35 लाख पौड से भी अधिक हो गई थी।[75a] 1856-57 मे इस मद के अंतर्गत कुल प्राप्तियां 5 करोड़ रुपये से भी अधिक थी। 1857-58 मे जो सैन्य विद्रोह के साथ-साथ गंभीर वित्तीय अभाव का वर्ष भी था, अफीम से सरकारी आय 6.8 करोड रुपये हुई जो आशा से कही अधिक थी और इससे सरकार को वित्तीय संकट पर विजय पाने मे सहायता मिली। अफीम से आय उतार-चढ़ाव के बावजूद बराबर बढ़ती गई। 1858-61 की अवधि में अफीम से वार्षिक औसत आय 7 करोड़ रुपये थी। 1862-66 के पाच वर्षों मे इसका वार्षिक औसत बढकर 7.5 करोड रुपये और 1867-71 में 8.5 करोड रुपये हो गया।

पोस्त की खेती प्रधान रूप से भारत के दो क्षेत्रों मे होती थी। एक क्षेत्र बगाल प्रेसीडेंसी के आगरा, अवध तथा बिहार मे था और दूसरा ब्रिटिश भारत के बाहर (जिसमे मध्य भारत की अनेक रियासतें, राजपूताना और गायकवाड के अधिकार का प्रदेश था)। यह दूसरा मालवा अफीम के प्रजातिगत नाम से जाना जाता था। इन दोनो मे उत्पादन तथा राजस्व संग्रह की रीतियाँ भिन्न-भिन्न थी।

बंगाल मे सरकार ने अफीम पर अपना एकाधिकार प्राप्त कर लिया था। अत. पोस्त की खेती और इसका अफीम के रूप में प्रशोधन सरकार के लिए ही किया जा सकता था। पटना और गाजीपुर मे रहने वाले अफीम एजेंट बंगाल राजस्व बोर्ड की ओर से अफीम के व्यापार का प्रबंध करते थे।[76] पोस्त का उत्पादन करने वाले किसानों को, जो इसकी खेती स्वेच्छा से करते थे, भारी अग्रिम दिए जाते थे। ये अग्रिम अगली फसल पर उत्पादित होने वाली अफीम के आंशिक भुगतान के रूप मे देखे जाते थे। कच्ची अफीम का प्रशोधन सरकारी कारखानों मे होता था और यह कलकत्ता भेजी जाती थी। स्थानीय उपभोग के लिए अफीम विभाग आबकारी विभाग को अफीम देता था।[77] बंगाल मे उत्पादित अधिकांश अफीम कलकत्ते में मासिक नीलामी द्वारा सबसे ऊंची बोली लगाने वाले को बेची जाती थी। अफीम की लागत कीमत और नीलाम कीमत का अतर सरकार को प्राप्त होने वाला लाभ अथवा राजस्व था।[78] जैसा कि 1871 मे अफीम प्रशासन के बारे मे रिपोर्ट देने के लिए नियुक्त समिति ने इस विषय मे टिप्पणी करते हुए कहा कि संभवतः इस प्रणाली को 'जानबूझ कर खोजा नही गया बल्कि यह अपने आप विकसित हो गई थी।'[79] यह प्रणाली संतोषजनक नही थी। एक स्पष्ट कठिनाई जिसे इस प्रणाली से अलग नही किया जा सकता था, आपूर्ति के प्रबंध की समस्या थी। आपूर्ति की मात्रा सरकार द्वारा कृषकों को दी जाने वाली कीमत पर निर्भर होती थी। सरकार द्वारा

कीमत निर्धारण से संबद्ध बहुत सारी समस्याएं थी। अधिकारी 'पोस्त को इस प्रकार लेते थे मानो उस पर मांग और पूर्ति का सहज नियम लागू नही होता हो।'[80] 1859-60 के वित्तीय वर्ष मे अफीम की कीमत 3 रुपये 4 आने प्रति सेर से बढाकर 3 रुपये 8 आने प्रति सेर कर दी गई। 1860-61 में इसमे और अधिक वृद्धि कर से 4 रुपये कर दिया गया; 1861-62 मे इसमें पुन: वृद्धि की गई और इसे 5 रुपये प्रति सेर कर दिया गया।[81] सरकार इस बात से बहुत चिंतित थी कि 1861 तक सरकार द्वारा दी गई कीमतें पोस्त की खेती को प्रोत्साहन देने मे असफल रही।[82] 1853-54 से 1858-59 तक पांच वर्षों मे बिहार एजेंसी मे 1,08,627 बीघा तथा बनारस एजेंसी में 28,056 बीघा भूमि पर अफीम की खेती कम हो गई।[83] कीमतों मे वृद्धि होते हुए भी बंगाल मे अफीम की खेती मे कमी होती गई।[84] कृषि उत्पादनों की कीमतो मे वृद्धि, अफीम के उत्पादन मे भूमि के अधिक प्रयोग से उसकी उर्वरता की हानि, तथा बगाल मे पोस्त का मुकाबला करने वाली अन्य वाणिज्यिक फसलों का प्रचलन अफीम के उत्पादन मे कमी के कारण थे। जून, 1861 मे अफीम की कीमत बढाकर 5 रुपये प्रति सेर कर दिए जाने पर पोस्त की खेती फिर से कुछ बढी। कुछ वर्षों मे यह पता चला कि रैयतो को ऊंची दर से भुगतान करने का परिणाम यह हुआ कि इसकी खेती उन क्षेत्रों मे भी फैल गई जहा पर अधिक लागत पर घटिया किस्म की अफीम का उत्पादन होता था। अत: 1865 में कीमत घटाकर 4 रुपये 8 आने प्रति सेर कर देने और बनारस एजेंसी मे इसकी खेती पर प्रतिबध लगाने का निर्णय लिया गया।[85]

एकाधिकार प्रणाली और सरकार द्वारा कीमत निर्धारण से उत्पन्न होने वाली समस्याएं विकट थी। इन सममस्याओं का अहस्तक्षेपी नीति पर आधारित समाधान यह था कि सरकार एकाधिकार प्रणाली को त्याग दे। 1858 में मालवा के अफीम एजेंट सर राबर्ट हैमिल्टन ने बंगाल की एकाधिकार प्रणाली का स्थान लेने के लिए एक नई प्रणाली का प्रस्ताव रखा। इस नई व्यवस्था मे पोस्त की स्वतन्त्र एवं अप्रतिबंधित खेती करने और एक निर्धारित शुल्क के भुगतान पर अफीम का उत्पादन तथा निर्यात कर देने का आयोजन था। सुझाव यह था कि नई प्रणाली द्वारा दिए जाने वाली अग्रिम राशियो मे कमी करके तथा अफीम के उत्पादन के लिए लाइसेंस देकर धीरे-धीरे व्यवहार मे लाई जानी चाहिए।[86] पश्चिमोत्तर प्रांत की सरकार ने इस योजना को अपना समर्थन दिया। इस योजना का औचित्य सिद्ध करने के लिए जो तर्क दिए गए थे वे निम्नलिखित हैं: (क) इसमें सरकार के नाम पर यह कलंक कि वह अफीम के व्यापार मे एकाधिकार की हैसियत से लगी हुई है, दूर हो जाना था। (ख) एकाधिकार की समाप्ति से कोई वित्तीय हानि नही होनी थी, क्योंकि आबकारी तथा निर्यात शुल्क के रूप मे आय बनी रहनी थी। (ग) अफीम विभाग अथवा अफीम एजेंसियां रखने का खर्च समाप्त कर बचत हो सकती थी। (घ) स्वतंत्र खेती प्रारंभ हो जाने पर कृषि कार्य मे कष्टदायक हस्तक्षेप नही रह सकते थे।

बगाल सरकार ने प्रस्तावित परिवर्तनों का डटकर विरोध किया। बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर ने दावे के साथ कहा कि 'नैतिकता के प्रश्न के रूप मे अफीम मे आय

चाहे वह उपभोग पर आबकारी शुल्क तथा निर्यात शुल्क से अथवा उसके उत्पादन पर एकाधिकार द्वारा, उसमें अंतर काल्पनिक और झूठा है'' '[87] बंगाल में स्वतंत्र कृषि की प्रणाली में शुल्क के अपवंचन के द्वारा भारी हानि होती थी। इसमें भौगोलिक कारणों की उपेक्षा नहीं की जाती थी। मालवा की अफीम पर लगाया जाने वाला पारगमन शुल्क (पास ड्यूटी) नियमित रूप से वसूल हो जाता था क्योंकि पश्चिमी घाट से होकर बंबई जाने वाले गिने-चुने रास्तों की निगरानी सहज थी परंतु बंगाल में समुद्र तक पहुंचने वाले ढेर सारे जलमार्गों के द्वारा हो सकने वाले अफीम के तस्कर व्यापार को रोक सकना असंभव था। बंगाल सरकार ने हैमिल्टन के इस आरोप का खंडन किया कि किसानों पर पोस्त की खेती करने के लिए दबाव डाला जाता था। सरकारी एजेंसी के साथ समझौते स्वैच्छिक होते थे और किसान जब चाहें तब इन्हें समाप्त कर सकते थे, अग्रिम राशियां ब्याज सहित दी जाती थीं, यूरोपीय अधिकारियों के व्यक्तिगत निरीक्षण के कारण भ्रष्टाचार का क्षेत्र सीमित था, और खराब मौसमों में फसलों के नुकसान के लिए काफी पैसा दिया जाता था। बंगाल सरकार का यह दावा कि अफीम का उत्पादन करने वाले असामी प्रचलित व्यवस्था से संतुष्ट थे, इस बात से प्रमाणित हो जाता है कि सैन्य विद्रोह के समय भी उपद्रवग्रस्त जिलों के किसान, जो अग्रिम (दादन) ले चुके थे, अफीम लेकर सरकारी एजेंटों के साथ अपना हिसाब-किताब साफ करने के लिए आए।[88] यह भी स्पष्ट किया गया कि पोस्त की स्वतंत्र खेती से भारत में ही अफीम खाने और दम लगाने की आदत फैल सकती थी, विशेष रूप से उस समय जबकि बंगाल में पोस्त हर जगह पैदा किया जा सकता था।[89] इसके अलावा इससे अति उत्पादन भी हो सकता था जिससे चीन में इसके बाजार पर असर होता और कीमतें नीचे आ सकती थीं जिससे संकट उत्पन्न हो जाता।[90] एकाधिकार प्रणाली के पक्ष में निर्णायक तर्क यह था कि यह सरकार के लिए मालवा अफीम पर लगाए जाने वाले पारगमन शुल्क की तुलना में अधिक लाभदायक था। यह स्पष्ट है कि मालवा अफीम के निर्यात से पश्चिम तथा मध्य भारत के व्यापारी तथा देशी राज्य (विशेष रूप से महाराजा होल्कर) संपन्न हो गए थे।[91]

1871 में सर सेसिल बीडन ने हिसाब लगाया था कि यदि एकाधिकार प्रणाली को आबकारी शुल्क प्रणाली में बदल दिया जाता है तो प्रति पेटी सरकार को 200 रुपये से 250 रुपये तक की हानि हो सकती है।[92] अफीम के व्यापार का स्वरूप असाधारण था। अतः इस पर नियंत्रण की आवश्यकता थी। इस पर 'मुक्त व्यापार के सामान्य सिद्धांत के द्वारा विचार न करके किसी अधिक स्पष्ट माध्यम की सहायता से गौर किया जाना चाहिए।'[93] पोस्त की खेती बिना अग्रिमों के असंभव थी और यह संदेहजनक था कि इस प्रकार के जोखिम वाले व्यवसाय में सटोरिये और पूंजीपति अपनी पूंजी लगाएंगे।[94] यदि पूंजी उपलब्ध भी होती तो यह निश्चित था कि किसानों का महाजन शोषण करेंगे। यदि सरकार के साथ परंपरागत व्यवस्था में परिवर्तन किया जाता तो 'असामी सामूहिक रूप से अफीम की खेती छोड़ देते।'[95] ऐसी कोई संभावना नहीं थी कि जमींदार अफीम के व्यवसाय में आ जाएंगे। 'सरकार द्वारा छोड़ा गया क्षेत्र लगभग पूरी तरह से यूरोपीय लोगों के ही हाथ में आना था।'[96] जो यूरोपीय नील की फैक्ट्रियों का प्रबंध कर रहे

थे, वे संभवतः अफीम की फैक्ट्रियां स्थापित कर उनका प्रबंध कर सकते थे। बिहार के एक स्थानीय अफीम एजेंट ने लिखा था कि 'मेरे विचार में इस प्रकार के उद्यम में सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक प्रतिभा भारत के मूल निवासियों में नहीं है।'[97] भारत में रहने वाले यूरोपीय लोगों के पास व्यवसाय में लगाने के लिए पूंजी है और नील की फैक्ट्रियों के प्रबंध से प्राप्त सुविज्ञता है। ये लोग अफीम के व्यवसाय में लाभप्रद अवसरों से भी अनभिज्ञ नहीं हैं। ऐसा लगता है कि अफीम पर सरकारी एकाधिकार के विरुद्ध और मुक्त उत्पादन की व्यवस्था लागू करने के लिए आंदोलन का यह एक मुख्य कारण था। 1871-72 में भारतीय वित्त के बारे में हाउस आफ कामंस की प्रवर समिति द्वारा जांच के समय यह प्रश्न उठाया गया था। सर आर० हैमिल्टन तथा बहुत सारे अन्य लोग सरकारी एकाधिकार समाप्त करने के पक्ष में बोले थे।[98] परंतु बंगाल प्रणाली[99] के समर्थक मुक्त खेती की व्यवस्था लागू करने के लिए किए जाने वाले प्रयत्नों का सफलतापूर्वक विरोध कर सके।

मालवा अफीम पर निर्यात शुल्क लगता था। मध्य भारत, विशेष रूप से देशी रियासतों, में उत्पादित अफीम इंदौर लाई जाती थी, और मध्य भारत के अफीम एजेंट के कार्यालय में उसका वजन होता था। वह अफीम की प्रत्येक पेटी पर एक निश्चित शुल्क लगाता था और बंबई बंदरगाह तक अफीम, जिस पर शुल्क अदा कर दिया गया होता था, ले जाने के लिए एक पास देता था। ब्रिटिश सरकार का अफीम की खेती, निर्यात तथा यातायात से कोई संबंध नहीं था। वह केवल पास शुल्क ही वसूल करती थी।[100] 1845 तक यह शुल्क केवल 200 रुपये प्रति पेटी था। इस वर्ष इसे बढा कर 300 रुपये और 1847-48 में 400 रुपये कर दिया गया। 1859 में भारत सरकार ने शुल्क को बढा कर 500 रुपये कर दिया, परन्तु जब 1860 में शुल्क में फिर वृद्धि की गई और वह 600 रुपये कर दिया गया तो काफी विरोध हुआ।[101] बंबई सरकार ने स्पष्ट किया कि बंगाल अफीम के विपरीत मालवा अफीम से कम से कम चार पक्षों को लाभ मिलना ही चाहिए : कृषक, पहला खरीदार जो कृषकों को अग्रिम रूप में रुपया उधार देता है, दूसरा खरीदार जो अफीम का प्रशोधन कर उसे बंबई भेजता है और अफीम की पेटियों का निर्यातक। बंबई सरकार ने दृढ़तापूर्वक कहा कि 600 रुपये प्रति पेटी शुल्क से लाभ की समुचित मात्रा नहीं बचेगी। इंदौर के अफीम एजेंट का भी यही मत था। परंतु भारत सरकार ने इस विश्वास के साथ कि बिचौलिये और निर्यातक 'काफी मुनाफा' बना रहे हैं इन आपत्तियों को अस्वीकृत कर दिया।[102] बंबई में सरकार को (पारगमन शुल्क के रूप में) अफीम की प्रति पेटी से केवल 500 रुपये मिल रहे थे, जबकि बंगाल में एकाधिकार प्रणाली के अंतर्गत प्रति पेटी शुद्ध लाभ 1,200 रुपये था।[103] ऊंचे शुल्क के विरोध में बंबई सरकार की चेतावनी तथा बंबई के अफीम व्यापारियों के स्मरण पत्रों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।[104] अप्रैल, 1861 में भारत सरकार ने शुल्क को बढाकर 700 रुपये प्रति पेटी कर देने की सूचना दी।[105] ऐसा व्यापारिक संकट के समय हुआ। तीन माह के भीतर कीमत 1,850 रुपये प्रति पेटी (अप्रैल) से घट कर 1,350 रुपये प्रति पेटी (जुलाई) हो गई। अफीम के छः व्यापारी दिवालिया हो गए, वादे के सौदे करने वाले

20 दलाल फरार हो गए और बहुत सारे सटोरिये बरबाद हो गए।[106] इस स्थिति में मालवा के अफीम एजेंट कर्नल आर० शेक्सपियर ने निवेदन किया कि 700 रुपये शुल्क से व्यापार को भारी आघात पहुचेगा। अफीम के व्यवसाय से संबंधित डेविड सेसन एंड कपनी, रुस्तमजी जमशेदजी जोजी भाई एंड कंपनी, तथा दूसरी फर्मों ने सरकार के पास शुल्क कम करने के लिए स्मरण पत्र भेजे।[107] इस पर भारत सरकार ने अपनी पहली अधिसूचना रद्द करने का निर्णय लिया। निर्णय यह हुआ कि शुल्क बढाकर 700 रुपये नही किया जाएगा।[108]

मालवा अफीम तथा बंगाल अफीम दोनों से ही होने वाली आय मे काफी घट बढ होती रहती थी। परिशिष्ट मे दिए हुए आकडों पर दृष्टिपात से स्पष्ट हो जाएगा कि आय मे इस उतार-चढ़ाव की मात्रा तथा आवृत्ति इतनी थी कि इससे 1861 से 1871 तक के दशक में कम से कम तीन बार आर्थिक संकट उत्पन्न हुए। राजस्व मे आकस्मिक कमी से वित्त सदस्य के, जो वर्ष की आय का सही-सही अनुमान लगाना और बजट को 'संतुलित रखना' चाहता था, सभी परिकलन तथा अनुमान गड़बड़ हो जाते थे।

विभिन्न वर्षो मे अफीम से होने वाली आय में घट-बढ की प्रवृत्ति के कारण इसे सामान्य राजस्व का अनिश्चित स्रोत माना जाता था। ये प्राप्तिया कुछ ऐसी बातो पर निर्भर होती थी जो सरकार के नियत्रण के बाहर होती थी। 'फसलो के सयोग तथा बाजारों मे अवसर' के अनुसार अफीम से आय मे परिवर्तन बड़े स्वाभाविक ढंग से होते थे।[109] इन दो कारणो के अतिरिक्त बगाल मे सरकार का शुद्ध लाभ निर्धारित करने वाला एक तीसरा भी कारण अफीम प्रभार (अर्थात पोस्त की खेती करने वाले कृषकों को दी जाने वाली अग्रिम राशियों से संबधित वार्षिक प्रभार, सरकार द्वारा निर्धारित कीमत दर, बंगाल अफीम एजेंसियों का व्यवस्था सबंधी खर्च, इत्यादि) था। अफीम की लागत कीमत तथा कलकत्ते मे नीलाम से मिलने वाली कीमत का अंतर बगाल अफीम से मिलने वाला शुद्ध लाभ होता था।[110] जहा तक मालवा अफीम का प्रश्न था, उसके लाभ के निर्धारण की दृष्टि से फसल की स्थिति, चीन मे माग तथा बंबई मुद्रा बाजार की स्थिति महत्वपूर्ण घटक थे। मालवा अफीम की कीमत बंगाल अफीम के साथ घटने बढने की प्रवृत्ति दिखलाती थी।[111] सातवें दशक मे कृषको द्वारा अफीम के बदले कपास की खेती (अमरीकी गृह युद्ध के कारण लकाशायर मे कपास की अल्प आपूर्ति के फलस्वरूप भारतीय कपास की भारी माग थी) के परिणामस्वरूप अफीम का उत्पादन प्रभावित हुआ।[112] संचार व्यवस्था खराब होने से भी मालवा अफीम के व्यापार मे कमी बेशी होती रहती थी। बरसाती महीनों मे जब मालवा के भीतरी प्रदेशो तक सड़क व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाने से गाड़ियो का आना-जाना हफ्तों तक संभव नही हो पाता था तो इसका अफीम के आयात पर प्रभाव पड़ता था।[113] ऐसे अवसरों पर अफीम का निर्यात और फलतः पारगमन शुल्को (पास ड्यूटी) से आय कम हो जाती थी। अफीम के व्यापारी जो चीन को आर्डर मिलते ही निर्यात करने के उद्देश्य से बबई नगर के भंडार गृहो मे अफीम नही रख पाते थे और ऐसे भी व्यापारी जो चीनी माग की आशा मे अफीम ले आते थे, प्रायः भारी हानि उठाते थे। इस हानि का कारण होता था बाजार

सूचना और माल यातायात का धीमा होना।[114] मालवा और बंगाल दोनों ही स्थानों के अफीम व्यापार में अस्थिरता इसलिए भी थी क्योंकि भारत के बाहर अफीम के बाजार का विशेष अनुमान लोगों को नही था। डब्ल्यू एन० मैसी ने कहा था कि 'अफीम ऐसा स्रोत है जो अधिक स्पष्ट नही है। यह ऐसे बाजार पर निर्भर है जिसके विषय मे हमारे पास अधिक जानकारी नही है। इसके व्यवसाय मे बहुत अधिक उतार-चढ़ाव हैं।'[115] अंत में, अफीम से आय की तथाकथित अनिश्चितता का कारण बंगाल अफीम का कुप्रबंध ठहराया जा सकता था। 1867-68 तक निर्यात व्यापार में निरंतर तथा जोरदार सट्टा होता था। इसका एकमात्र कारण यह था कि सरकार की प्रति वर्ष बिक्री के लिए बाजार में लाई जाने वाली मात्रा के विषय में कोई निश्चित नीति नही थी। इसके परिणामस्वरूप अफीम से आय मे बहुत अधिक कमीवेशी होती रहती थी।[116]

इन सभी कारणों से अफीम को राजस्व का जोखिम भरा स्रोत माना जाता था और बजट तैयार करते समय सावधानी के पक्ष में भूल करने और अफीम से आय का कम अंदाजा लगाने का रिवाज बन गया था। गृह अधिकारी अफीम से आय के संयत प्राक्कलनों की प्रथा को प्रोत्साहन देते थे। भारत मे यह नीति अधिक लोकप्रिय नही थी क्योंकि जानबूझ कर अफीम के अल्पीकृत प्राक्कलन बहुधा प्रत्यक्ष करों को कसने का बहाना होते थे। सरकार ने समस्या से काफी समय तक संघर्ष किया और अंततः दो योजनाएं बनी। एक योजना सदस्य सर रिचर्ड टैंपिल ने तैयार की थी जिसके अनुसार अफीम (आरक्षित) निधि का निर्माण किया जाना था। दूसरी योजना का सुझाव बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर सेसिल बीडन ने दिया जिसमें अफीम का आरक्षित (रिजर्व) भंडार रखने के साथ-साथ प्रत्येक वर्ष बिक्री के लिए प्रस्तुत की जाने वाली मात्रा निर्धारित करने की भी योजना थी।

1868 मे आर० टैंपिल ने लार्ड लारेंस के समर्थन से विभिन्न वर्षों मे अफीम से होने वाली आय में कमीवेशी के निराकरण की अनोखी प्रणाली का प्रस्ताव रखा। यह योजना मूल रूप से लार्ड स्टेनले ने पेश की थी। नोर्थकोट ने लारेंस को लिखे गए एक व्यक्तिगत पत्र मे स्टेनले द्वारा प्रस्तावित योजना 'कि आपको प्रति वर्ष एक निश्चित राशि राजस्व खाते मे जमा करनी चाहिए, अच्छे वर्षों में उसे आधिक्य बीमा निधि मे ले जाना चाहिए और बुरे वर्षों में इस निधि से रुपया निकालना चाहिए', की रूपरेखा दी थी।[117] किन्ही-किन्ही वर्षों मे अफीम से आय आशा से अधिक हो जाती थी। टैंपिल ने प्रस्ताव रखा कि यह आधिक्य आरक्षित अफीम निधि के रूप में अलग नकद रखा जाना चाहिए जिससे आवश्यकता पड़ने पर रोकड़ शेष की कमी को पूरा करने, अथवा सरकारी प्रतिभूतियों मे लगाने या अस्थाई रूप से पुनरुत्पादी लोक निर्माणों में लगाने के लिए इसका प्रयोग किया जा सके। यदि अफीम से आय मे कमी हो जाए तो घाटा पूरा करने के लिए आरक्षित निधि का प्रयोग किया जाए।[118] परन्तु गवर्नर जनरल की परिषद के अधिकाश सदस्यों ने इस योजना को अस्वीकार कर दिया।[119] मेन तथा स्ट्रैची योजना को अपना समर्थन नही दे सके, ड्यूरेंड इसकी उपयोगिता को नही समझ सका और मैंसफील्ड ने सोचा कि यह योजना शीघ्र ही 'विस्मृति के गर्भ मे समा जाएगी'।[120]

अतः, योजना का परित्याग कर दिया गया।

अफीम से आय में तीव्र उतार-चढ़ावों से भारतीय वित्त की रक्षा करने के लिए एक अपेक्षाकृत श्रेष्ठ योजना का प्रस्ताव पहले ही आ चुका था। बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर सेसिल बीडन ने 18 अप्रैल, 1867 के कार्यवृत्त में दृढ़ता के साथ कहा था कि इन उतार-चढ़ावों का मूल कारण सरकार द्वारा बिक्री के लिए प्रस्तुत की जाने वाली बंगाली अफीम की मात्रा में कमीबेशी है।[121] जान स्ट्रैची का भी यही मत था जो अफीम के आरक्षित भंडार एकत्रित करने की आवश्यकता का कायल था।[122] यदि उत्पादन अधिक होता तो अतिरिक्त उत्पादन को आरक्षित भंडार में जमा करना था, जिसका उपयोग अगली फसलें खराब होने के समय हो सकता था। हर वर्ष सरकार द्वारा पहले से घोषित एक निर्धारित मात्रा बेची जानी थी। यह मात्रा अफीम की 'मानक' आपूर्ति के नाम से ज्ञात थी।[123] यदि उत्पादन इस 'मानक' से अधिक होता था, तो अतिरिक्त मात्रा बाजार में न ले जाकर, आरक्षित भंडार में रखनी होती थी। यह योजना स्वीकार कर ली गई, यद्यपि योजना लागू होने की प्रारंभिक अवस्था में फसलें खराब हो जाने के कारण अफीम का समुचित भंडार नहीं बन सका। ब्रिटिश व्यापारिक हित इस योजना के विरुद्ध नहीं थे। मैसर्स जार्डाइन, स्किनर एंड कंपनी तथा कुछ दूसरों ने भारत सरकार के वित्तीय सचिव को लिखा, 'ऐसे व्यापार के ढंग को नियमित करने के लिए पूर्वोपाय किए जाने चाहिए जिसके मूल्य में बराबर उतार-चढ़ाव होते रहते हैं। हम सरकार से आग्रह करने का साहस करते हैं कि प्रत्येक वर्ष बिक्री के लिए रखी जाने वाली मात्रा में समानता लाना पहला कार्य होना चाहिए'।[124] व्यापारिक कंपनियों ने भारत सरकार पर इस बात के लिए दबाव डाला था कि वह जितनी मात्रा बिक्री के लिए अगले वर्ष प्रस्तुत करना चाहती है उसे पहले ही घोषित करे। सामान्यतः मानक 48,000 पेटी था और यही लक्ष्य भी हुआ करता था। परंतु प्रारंभिक अवस्था में इसमें कमीबेशी हुई। 1879 तक निश्चित मात्रा की जो प्रत्येक माह बेची जानी थी और जिसे सरकार बिना पूर्व सूचना के न बदलने के लिए वचनबद्ध होती थी, पहले से घोषणा कर पाना संभव नहीं हो सका था।[125] 1871-72 के वर्ष के अनुभव से योजना के लाभ प्रकट हो गए। यद्यपि फसल की प्रत्याशित उपज का एक चौथाई भाग नष्ट हो गया था, तथापि पिछले वर्ष संचय किए गए भंडार से माल निकाल कर सरकार 'बढ़ी हुई कीमतों पर पूरी आपूर्ति का पूरा फायदा उठा सकी।'[126]

प्राप्तियों में उतार-चढ़ाव ही अफीम से संबंधित समस्या नहीं थे क्योंकि आय का यह स्रोत समाप्त हो जाने का डर था और चिंता का यह कहीं अधिक बड़ा कारण था। यह आशंका चीन तथा फारस की खाड़ी के क्षेत्र में अपेक्षाकृत सस्ती किस्मों की अफीम के उत्पादन से पैदा हो गई थी। फारस में यज्द तथा इस्फहान में पैदा किए जाने वाले पोस्त से बनी हुई अफीम बसरा और बंदर अब्बास होती हुई मस्कत पहुंचती थी, जहां से अरब और भारतीय नखोदास यह शब्द नाखुदा (Nakhudas) होना चाहिए। नाखुदा का अर्थ है मल्लाह भारतीय और अरब मल्लाह अफीम लाने ले जाने का काम करते रहे होंगे। सिंगापुर तथा चीन को अफीम का निर्यात करते थे। कभी-कभी तस्कर व्यापारी इसे मकरान अथवा कराची बंदरगाहों के रास्ते भारत में लाते थे।[127] कुछ घटिया किस्म

की अफीम शीराज के आसपास, करमान, काजरुन के निकट गुरमेसीर तथा उसके निकटवर्ती जिलों मे पैदा की जाती थी। परंतु फारस की अफीम की कुल मात्रा लगभग 10,000 शाहमुन (एक शाहमुन=14 पौंड) होती थी, जो अधिक नही थी। इसकी औसत कीमत भारतीय अफीम से कम होती थी, जिससे सुदूर पूर्व के बाजारों तक इसके यातायात की लागत निकल आती थी।[128] अफीम के संपूर्ण बाजार को प्रभावित करने की दृष्टि से फारस के उत्पादन की मात्रा बहुत कम थी। 1868 मे एक अनोखा प्रस्ताव रखा गया कि भारत सरकार को फारस की खाड़ी मे होने वाले व्यापार को राजस्व का स्रोत बना लेना चाहिए और इसके लिए फारस और टर्की के अफीम के समस्त उत्पादन को खरीद लेने के बाद उचित कीमत पर बेचना चाहिए।[129] यह व्यावहारिक नही समझा गया। यद्यपि पश्चिम एशियाई अफीम का उत्पादन तथा निर्यात नगण्य था, तथापि भविष्य में उत्पादन में वृद्धि की संभावना के कारण भारतीय अधिकारी चिंतित थे।[130] फारस की खाडी के पोलिटिकल रेजिडेंट लुई पैली की एक रिपोर्ट के अनुसार आठवें दशक के प्रारंभिक वर्षों मे कुल उत्पादन 2,500 पेटी था। फारस तथा तुर्की की अफीम चीन, सिंगापुर तथा लंदन भेजी जाती थी।[131]

भारतीय अफीम से प्रतिस्पर्धा करने वाली चीनी अफीम की किस्मे नांतू (यूनान प्रांत की अफीम), चेंगटू (सेचुएन प्रांत की), और क्वीचाउटू (क्वीचाउ प्रात की) थी। दक्षिण पश्चिम चीन के यन्नान प्रात मे 1736 के लगभग अफीम का उत्पादन होता था, और 1840 मे उसका उत्पादन निकटवर्ती सेचुएन तथा क्वीचाउ प्रांतों मे फैल गया।[132] चीनी सरकार द्वारा अफीम की खेती को हतोत्साहित करने के लिए किए प्रयत्नों के बावजूद इसका उत्पादन तेजी के साथ फैल रहा था। 1859-60 मे यन्नान, सेचुएन तथा कांसू का उत्पादन स्थानीय उपभोग को संतुष्ट करने के लिए पर्याप्त था और थोड़ी सी मात्रा दूसरे राज्यों को भी भेजी जाती थी। 1859-60 में अफीम का उत्पादन करने वाले प्रांतों के सबसे निकट हाकाउ का बदरगाह केवल स्वदेशी अफीम का आयात करता था। विदेशी अफीम का आयात बिल्कुल नही था। परंतु यह चरम सीमा थी। इसके बाद घरेलू उत्पादन गिर गया और अगले कुछ वर्षों मे विदेशी अफीम पुनः आ गई। 1861 मे कैंटन मे रहने वाले ब्रिटिश वाणिज्य दूत (कौंसुल) ने सूचना दी कि चीनी अफीम घटिया किस्म की होते हुए भी सस्ती होने के कारण से निम्न स्तर के वर्गों मे लोकप्रिय थी। 'अफीम का दम लगाने वाले लोगों की नई पीढी' स्वदेशी अफीम को अधिक पसंद करती थी। महंगी भारतीय अफीम मे मिलावट के लिए भी चीनी अफीम का प्रयोग किया जाता था।[133] ब्रिटिश राजनयिक प्रतिनिधियों को चीन के भीतरी प्रदेशों मे अफीम की खेती के *विस्तार की डराने वाली सूचनाएं मिल रही थी।*[134] *1861 में यांग्टिसी क्यांग नदी तक* पहुँचने वाले यात्री ने देखा था कि संपूर्ण पश्चिमी चीन अफीम की दृष्टि से लगभग आत्म-निर्भर था। पूर्वी और तटीय प्रांत तब भी विदेशी अफीम पर पूर्णतया निर्भर थे।[135] वास्तव में चीनी उत्पादन इतना बढ गया था कि ब्रिटिश बर्मा को निर्यात प्रारंभ हो गया था जिससे भारतीय अधिकारी भयभीत हो उठे। काफिलों के द्वारा यन्नान की अफीम को माडले लाया जाता था और व्यापारी रगून के बंदरगाह से खाड़ी उपनिवेशों को अफीम

का निर्यात करते थे (अब तक यहा पर केवल बनारस की अफीम आती थी)।[136] उस समय उपर्युक्त स्थिति थी जिसके बारे में 1863 में ए० पी० फायरे ने अपनी रिपोर्ट दी थी।[137]

1864 से चीन में अफीम का उत्पादन बहुत तेजी के साथ बढ़ा। चीन में व्यवसाय करने वाले अफीम के ब्रिटिश व्यापारियों द्वारा दी गई सूचना से ऐसा लगता है कि 1864 से 1869 तक पांच वर्षों में अफीम का उत्पादन न केवल पश्चिम के यन्नान, सेचुएन तथा क्वीचाउ प्रांतो मे बढा, अपितु यह पूर्व मे क्वागतुंग, होनान, हूपे, कियांगसिन, चेकियांग में तथा मंचूरिया और मंगोलिया मे भी फैल गया। शंघाई चेंबर आफ कामर्स के प्रतिनिधियो तथा सर आर० आल्काक ने 1869 में सूचना दी कि सेचुएन मे लगभग दो तिहाई तथा यन्नान में लगभग एक तिहाई कृषि योग्य भूमि पर अफीम की खेती हो रही थी।[138] अफीम की खेती के बारे मे राजाज्ञा प्रभावहीन थी और स्थानीय गवर्नरों को राजस्व के स्रोत के रूप मे अफीम के प्रति कोई आपत्ति नही थी। यह संभव है कि चीनी स्थानीय अधिकारी स्वदेशी उत्पादन की स्वीकृति देकर विदेशी अफीम का आना रोकने की दिशा मे प्रयत्न कर रहे थे।[139] सर आर० आल्काक तथा सर एफ० जे० हाली डे को सदेह था कि भारतीय व्यापार को नष्ट करने के उद्देश्य से चीनी अधिकारियो ने अफीम की खेती को हतोत्साहित करने की नीति ढीली कर दी थी।[140] आल्काक ने मेयो को लिखा कि चीनी सरकार भारतीय अफीम का दाम गिराने और फिर उसे चीनी बाजार से निकाल देने और कुछ समय बाद चीन मे अफीम का उत्पादन ही बंद कर देने के इरादे से इसके उत्पादन को प्रोत्साहन दे रही है। मेयो ने इस पर टीका करते हुए कहा था कि 'इससे अधिक हास्यास्पद एव बेतुकी नीति की कल्पना कर पाना भी कठिन है और ऐसी बात चीनी मस्तिष्क मे ही आ सकती है।'[141] चीनी नीति में परिवर्तन और वहां पर अफीम के उत्पादन को प्रोत्साहन देने के कुछ भी प्रयोजन क्यो न हों, इससे भारतीय अफीम का भविष्य निराशाजनक हो गया था। कलकत्ता के प्रमुख अफीम व्यापारियों को बाजार मे मदी आने की आशंका हो गई थी।[142] यद्यपि अफीम की बिक्री मे भारी कमी नही हुई थी फिर भी कलकत्ता के व्यापारिक क्षेत्रो मे आतंक के लक्षण दिखाई देते थे।[143] मेयो ने आरगाइल को लिखा कि 'इसमें कोई संदेह नहीं है कि चीनी अफीम से संबंधित बातें बिलकुल नई हैं और इस संबंध में पुरानी भारतीय कहावत कि अफीम संबंधी खतरे आवर्ती होते हैं, चरितार्थ नहीं होती।[144] ऐसा लगता था कि भारत सरकार को 'आगे आने वाले समय में कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा, क्योंकि भारतीय वित्त में अफीम की स्थिति इतनी निराशाजनक कभी भी नहीं दिखाई दी थी।'[145]

चीनी अफीम का सस्ता होना इसके इतने अधिक लोकप्रिय होने का प्रधान कारण था। भीतरी क्षेत्रों मे अफीम के उत्पादन क्षेत्रों के आस-पास विदेशी अफीम काफी अधिक महंगी थी, क्योंकि इस पर बदरगाह से भीतरी प्रदेशों तक यातायात के विविध खर्च पड़ जाते थे। 'अफीम व्यवसाय संबंधी संधि मे शामिल बंदरगाहों पर स्वदेशी अफीम की कीमत विदेशी अफीम की दो तिहाई है और इन कीमतों पर इनमें ठीक प्रतियोगिता रहती है। हांगकांग में कीमतों का अंतर स्वदेशी अफीम के पक्ष में एक तिहाई से

मिलने के लिए तत्पर है।'[155] इसके अलावा भारतीय अधिकारियों को डर था यदि भारत से अफीम के निर्यात में कमी कर दी गई तो रिक्त स्थान दूसरे देशों के उत्पादों से, जो अब तक भारतीय अफीम के साथ असफलतापूर्वक प्रतियोगिता कर रहे थे, भरा जा सकता है। यदि भारत अपने निर्यात में कमी कर दे अथवा उसे पूरी तरह बद कर दे तो वह वस्तुत: 'वे लाखों रुपये जो मैं समझता हूं कि हम हिंदुस्तान की भलाई के लिए खर्च कर रहे हैं, फारस वालो या अमरीकी लोगों को अथवा अन्य किसी को सौंप देगा।'[156] अतः, मेयो हड़बड़ाहट मे कोई भी समझौता करने के लिए अनिच्छुक था। इस सबके अलावा वह इस मामले में 'भावुकता' के विरुद्ध था। उसने फ्रेर को लिखा, 'यदि हम चीनियो को विष देने के अपराध से बचना चाहते है तो यह बहुत धीरे-धीरे हो सकता है।'[157] अस्तु, समझौता करने के विषय में चीनियों के प्रति संदेह, चीन की साम्राज्यिक सरकार की अपनी ही घोषित नीतियो को कार्यान्वित करने में असमर्थता तथा चीनी बाजार को भारत के प्रतिस्पर्धियो को समर्पित करने के विषय में अनिच्छा वे कारण थे जिनकी वजह से आल्काक की योजना रद्द कर दी गई। इसके अलावा यह अनुभव किया गया कि आगे आने वाले वर्षों मे भारतीय अफीम चीन के बाजार में अपनी ही सामर्थ्य पर बिकती रहेगी। क्योंकि भारतीय अफीम अच्छी किस्म की थी, कुल चीनी उपभोग तेजी के साथ बढ रहा था और चीन की सरकार भारतीय अफीम को चीन से बाहर कर पाने मे उतनी ही असमर्थ थी जितनी कि घरेलू उत्पादन पर रोक लगा पाने में थी। सचमुच उन्नीसवी शताब्दी के सातवे दशक की यह घबराहट कि अफीम से होने वाली आय को तत्काल खतरा है, यदि गलत नही तो समय से पहले अवश्य थी।

III

टैरिफ नीति के पीछे निर्देशक सिद्धांत यह था कि कराधान केवल राजस्व की दृष्टि से होना चाहिए और इसलिए टैरिफ का स्वरूप संरक्षणात्मक नहीं होना चाहिए। जैसा कि सेमुअल लैंग ने कपास की गांठो तथा धागे पर आयात शुल्क मे कमी की घोषणा करते हुए कहा था कि 'मुक्त व्यापार का सिद्धांत केवल राजस्व के निमित्त कर लगाना है' और किसी भी सीमा शुल्क के द्वारा 'संरक्षित हितो के विकास को प्रोत्साहन नहीं मिलना चाहिए।'[158] वास्तव मे लैंग इस समाचार से कि भारत मे 'ऊँचे शुल्क (सीमा शुल्क) के बल पर' सूती मिलें स्थापित हो रही हैं, इतना भयभीत हो गया कि उसने घोषणा की कि यदि 'सूत कराधान के लिए उपयुक्त पदार्थ है तो इसके देशी उत्पादन पर भी निर्मित पदार्थो पर लगाए गए सीमा शुल्क के बराबर ही उत्पादन शुल्क (एक्साइज ड्यूटी) लगाया जाना चाहिए। जूट के बने हुए माल पर शुल्क के विषय मे भारत मंत्री को भारत सरकार के प्रेषण मे इस सिद्धात को पुन: स्पष्ट रूप से घोषित किया गया। प्रेषण मे लिखा गया था कि 'भारत में कोई भी आयात कर नितात राजकोषीय प्रयोजन को छोड़ कर किसी अन्य प्रयोजन के लिए नही लगाए जाते। आयात सीमा शुल्क टैरिफ निर्धारित करते समय हम स्वदेशी उत्पादन को चाहे वह जूट, कपास अथवा किसी अन्य पदार्थ का हो, संरक्षण देने की इच्छा से बिलकुल प्रभावित नही हुए हैं।'[159] ब्रिटेन

के औद्योगिक हित इस सिद्धात का अनुमोदन करते थे परंतु उन्हें सदैव यह विश्वास नहीं था कि भारत सरकार इनका पालन कर रही है। वे बड़े अधीर होकर सभी शुल्कों को हटाने का आग्रह कर रहे थे। 1862 मे मैंनचेस्टर चेंबर आफ कामर्स तथा 1869 में डंडी चेंबर आफ कामर्स ने भारत में बिना शुल्क दिए ही आयात करने का विशेषाधिकार मांगा।[160] तथापि सभी भारतीय आयात शुल्कों को हटाने के लिए चलाए गए आदोलन को 1882 तक सफलता नही मिली क्योंकि 1882 तक भारतीय वित्त की स्थिति ऐसी नही थी कि भारत सरकार सीमा शुल्क मे होने वाली भारी आय को छोड़ सकती।

ब्रिटिश औद्योगिक हितो द्वारा भारतीय टैरिफ नीति पर सतर्कतापूर्ण नजर रखने की बात समझ में आती है। लंकाशायर के उद्योगपतियों के लिए भारत सबसे महत्वपूर्ण बाजार था। इंग्लैंड से लंकाशायर के माल के निर्यात मे 1860 में 29.7 प्रतिशत और 1870 में लगभग 28.4 प्रतिशत निर्यात भारत को हुआ।[161] जिस अवधि का हमने अध्ययन किया है उसमें बहुत अल्प समय के लिए उत्तर सैन्य विद्रोह काल के वित्तीय संकट की स्थिति को छोड़कर ब्रिटिश सूती वस्त्रों पर 5 प्रतिशत का बहुत मामूली सीमा शुल्क रहा था। 1859-60 से 1861-62 तक की अल्प अवधि में शुल्क बढ़ा कर 10 प्रतिशत कर दिया गया था। सूती वस्त्रों के आयात में निरंतर वृद्धि होती गई। 1858-59 से 1861-62 तक भारत मे सूती वस्त्रों का औसत वार्षिक आयात 89.5 लाख पौंड के मूल्य का था। 1862-63 से 1866-67 के वर्षों का औसत 108.4 लाख पौंड तथा 1867-68 से 1871-72 तक की अवधि का औसत 105.6 लाख पौंड था।[162] कपास की गांठों और सूत पर 1859-60 मे शुल्क 5 प्रतिशत, 1860-61 में 10 प्रतिशत, 1861-62 मे 5 प्रतिशत तथा 1862-63 के बाद 3½ प्रतिशत था। 1858-59 से 1862-63 तक के काल में कपास की गाठों, सूत तथा धागे के वार्षिक आयात का औसत मूल्य 16.5 लाख पौंड (भार 253.6 लाख पौंड) था। 1867-68 से 1871-72 की अवधि मे इसमे वृद्धि हुई और वार्षिक औसत 28.1 लाख पौंड (314.1 लाख पौंड) हो गया। भारत में लंकाशायर के व्यापार में निरंतर वृद्धि हो रही थी और सीमा शुल्क मामूली थे जिसका श्रेय मैंनचेस्टर चेंबर आफ कामर्स को है जो इस संबंध मे सतर्क था।

रैंडफोर्ड ने टिप्पणी करते हुए लिखा कि '1858 से लगभग अब तक भारतीय आयात शुल्क भारत के साथ लंकाशायर के व्यापार के लिए भारी खतरा (कम से कम मैंनचेस्टर चेंबर के अनुसार) बने रहे हैं।'[163] परंतु जिस आशंका से लंकाशायर के हितों को सबसे अधिक डर था, भारत सरकार की टैरिफ नीति से भी अधिक, और जिसे मैंनचेस्टर चेंबर आफ कामर्स प्रभावित कर पाने मे अथवा रोक पाने में बहुत कठिनाई अनुभव करता रहा वह था भारतीय सूती वस्त्र उद्योग का विकास। 1859 में बंबई प्रेसीडेंसी में दो सूती मिलें थीं जिनमें पहली 1853 में और दूसरी 1854 मे प्रारंभ हुई थी। 1874 तक बंबई प्रेसीडेंसी में 14 मिलें हो गई थी जिनमे 197.75 लाख रुपये की पूंजी लगी थी; इनमे 4 लाख 35 हजार से अधिक तकुए तथा 4,883 करघे थे; इनका मासिक उत्पादन 26,14,000 पौंड सूत तथा 12,30,000 पौंड कपड़े से अधिक रहता था।[164] कलकत्ते मे छः मिलें (1,07,130 तकुए और 200 करघे) और देश के भीतरी भागों मे

चार मिलें (58,882 तकुए और 387 करघे) थी। अत. कुल मिलाकर 24 मिलें थी और उनके बीच *6,01,738 तकुए और 5,460 करघे थे तथापि सूती मिल उद्योग शिशु* उद्योग था और इससे अब तक मैनचेस्टर के भारत तथा अन्य बाजारों के साथ व्यापार पर कोई प्रभाव नही पड़ा था।

परंपरागत कुटीर उद्योग जो उन्नीसवी शताब्दी के छठे दशक तक बहुत अशक्त हो गया था, अब भी ग्रामीण जनता के बड़े अंश को वस्त्रों का संभरण कर रहा था। 1863 मे कलकत्ता के चेंबर आफ कामर्स ने सरकार से उत्तरी भारत मे सूती वस्त्र उद्योग की स्थिति का एक सर्वेक्षण करने के लिए अनुरोध किया। यह आशंका थी कि कपास से कपड़ा *अपेक्षाकृत उस मूल्य से कम लागत पर तैयार किया जा सकेगा* जो मैनचेस्टर के माल के लिए दिया जाता था और स्थानीय उत्पादक अधिक बडे पैमाने पर उत्तरी तथा पश्चिमोत्तर प्रात की थोड़ी सी माग को हथियाने का प्रयास करेंगे।'[165] 1863-64 मे पश्चिमोत्तर प्रात, अवध, बंगाल तथा मध्य प्रांत के जिला अधिकारियो ने एक व्यापक जांच की। इस जाच से पता चला कि कपास की कीमतों में वृद्धि के कारण (अमरीकी गृह युद्ध के समय जब इसके कारण लंकाशायर मे कपास का 'दुर्भिक्ष' था और भारत से कच्ची कपास के निर्यात मे तेज बाजारी थी) भारतीय बुनकर कच्चा माल नही खरीद पाते और अपने माल को आयात किए हुए कपड़े के मूल्य से कम पर बेच पाने मे असमर्थ हैं। पश्चिमोत्तर प्रांत मे देशी सूती वस्त्र उद्योग का 'निरंतर पतन हो रहा था। जो लोग अब तक इस उद्योग में लगे थे वे अन्य उद्योगों में मजदूरी की ऊची दरों से आकर्षित होकर उधर जा रहे हैं।'' देश में तैयार किए जाने वाले मोटे कपड़े का मूल्य ब्रिटिश कपड़े की तुलना मे अधिक बढ़ा है। जहा देशी वस्त्रो के मूल्य में 200 या 300 प्रतिशत वृद्धि हुई, वहा इंग्लैंड *के वस्त्रो के मूल्य मे केवल 150 से 200 प्रतिशत तक वृद्धि हुई है।*'[166] पश्चिमोत्तर प्रात के पश्चिमी जिलों मे 16 प्रतिशत अथवा 25 प्रतिशत करघों पर काम बंद हो गया जबकि पूर्वी जिलों में *'व्यापार पूरी तरह ठप्प हो गया'* और एक तिहाई अथवा आधे करघों पर काम बंद हो गया।[167] 'बुनकरों ने या तो कृषि मजदूरों के रूप मे अथवा फिर किसी दूसरे प्रकार का काम ले लिया, कुछ ने घरेलू नौकर का काम कर लिया, कुछ मारीशस तथा दूसरे स्थानो पर चले गए और कुछ भीख मांगने लगे।'[168] अवध, बिहार तथा बगाल के जिलों और मध्य प्रात मे भी ऐसी ही स्थिति थी। कपड़ा बुनने का काम (कपास उत्पादन के संपन्न क्षेत्रों मे घरेलू उपभोग को छोड़ कर) कम हो गया था, क्योंकि बुनकर प्रचलित ऊची कीमत पर कपास खरीद पाने और कपड़े को लाभ के साथ बेच पाने मे असमर्थ थे।[169] प्रतिकूल स्थितियो के होते हुए भी कुटीर उद्योग क्यों जीवित था इसका कारण यह था कि कुटीर उद्योगों का उत्पादन ग्रामीण उपभोक्ताओं के लिए उपयुक्त होता था। '(किस प्रकार स्वदेशी वस्त्र उद्योग जीवित बना हुआ था) इस प्रश्न का उत्तर यह है कि स्वदेशी वस्त्र इस देश को इंग्लैंड से निर्यात किए जाने वाले कपड़े की तुलना मे मोटा, मजबूत और अधिक टिकाऊ होता है और इस प्रकार यह मजदूर वर्ग के कठोर और खुले स्थानो पर काम के लिए अधिक उपयुक्त है। श्रमिक..... इंग्लैंड के मशीन निर्मित हलके और उत्तम श्रेणी के वस्त्रों की तुलना मे स्वदेशी वस्त्र को

अधिक सस्ता पाता है ...'[170] तथापि, यह आशा की जाती थी कि 'लोगो की उपभोग संबंधी आदतें बदल जाएगी और लकाशायर की मिलें स्वदेशी कपड़े की तरह का वस्त्र बनाने लगेंगी और उसे कम कीमत पर बेच सकेंगी। सर चार्ल्स ट्रैवीलियन ने भविष्य-वाणी की कि 'जब मैनचेस्टर की मिलें पुन. अच्छे ढंग से चालू हो जाएगी तो वे देखेंगी कि उनके स्थानीय प्रतिस्पर्धी उत्पादक अप्रत्याशित हद तक परिवर्तित हो कर उनके माल के नकदी ग्राहक बन गए हैं।' अधिकाश बुनकर कृषि कार्य में पुनः लग गए थे। 'हमारे अपने हाथकरघा बुनकरो की भांति काफी बड़ी संख्या मे यहा के बुनकर भी पहले से ही अर्ध कृषक थे और उनका कृषक वर्ग मे विलयन इंग्लैंड और भारत दोनो ही के लिए लाभप्रद है। भारत की आश्चर्यजनक उत्पादक शक्तियां है और कृषि कार्य सदैव ही यहां का प्रधान उद्योग रहना चाहिए। इस दिशा मे एक और बडा कदम उठाया जा चुका है।'[171]

उपर्युक्त अंतिम कथन परिचित विचारधारा का प्रतिनिधि है जो कच्चे माल की आपूर्तिकर्ता के रूप मे भारत और निर्मित माल के उत्पादक के रूप मे इंग्लैंड के मध्य 'साधारण श्रम विभाजन' के आधार पर निर्भर है। व्यापार का यह स्वरूप जो ब्रिटिश व्यापारिक वर्ग के अधिकाश लोगो को स्वाभाविक लगता था,[172] बंगाल चेंबर आफ कामर्स द्वारा गवर्नर जनरल को दिए गए स्मरण पत्र मे इस प्रकार था 'इन देशो (इंग्लैंड इत्यादि) की मिट्टी, जलवायु, पूजी तथा उद्योगों के द्वारा कम लागत पर तैयार होने वाले माल का इस देश के कच्चे माल के साथ, जिसके उत्पादन मे इसे विशिष्ट सुविधा प्राप्त है, लाभ के साथ विनिमय करने के लिए प्रतिबंधो से पूर्ण स्वतन्त्रता है।'[173] इंग्लैंड के औद्योगिक वस्तुओ के उत्पादकों के लिए भारत, बाजार की दृष्टि से भी, उतना ही महत्व-पूर्ण था जितना कि कुछ आवश्यक कच्चे मालों के आपूर्ति स्रोत की दृष्टि से। उन्नीसवी शताब्दी के सातवें दशक मे सूती वस्त्र उद्योग के हित समर्थक ससद सदस्यों (काटन एम० पी०) की सहायता मे मैनचेस्टर चेंबर आफ कामर्स तथा काटन सप्लाई एसोसिए-शन ने भारत सरकार पर कच्ची कपास की आपूर्ति बढाने तथा लकाशाय को, जिसे कपास के अभाव का सामना करना पड रहा था, (विशेष रूप से अमरीकी गृह युद्ध के समय) कपास की आपूर्ति मे आने वाली बाधाएं दूर करने के लिए दवाव डाला। वस्त्र उत्पादको की दिलचस्पी कच्चे जूट, फ्लैक्स तथा सन की आपूर्ति बढाने मे भी थी। जेम्स विल्सन ने अपने प्रथम वजट विवरण (1860) मे यह सिद्धांत प्रतिपादित किया कि जिन मालो का उपयोग इग्लैंड मे होता है और जिन्हे अन्य देशो के उत्पादतो से भी प्रति-योगिता करनी पड़ती है उन पर यथासंभव थोड़े कर लगाए जाने चाहिए।[174] 'जहा तक आयात शुल्क का प्रश्न है सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि इसमे लागत मे वृद्धि हो जाती है, और इस प्रकार यह उपभोक्ता पर कर है। परंतु जहां तक निर्यात शुल्क का प्रश्न है आपका यह शुल्क वस्तु को विदेशी बाजार से ही बिलकुल बाहर कर सकता है।' इससे भारी हानि हो जानी थी क्योंकि जूट, कपास, सन, खाल, ऊन इत्यादि 'यूरोप के महान उत्पादक देशों द्वारा उपयोग में लाए जाने वाले कच्चे माल थे और इनकी मांग मे असीमित विस्तार की संभावना थी।' विल्सन ने घोषित किया कि 'अपने आंतरिक

कुछ वस्तुओं के ऊपर टैरिफ नीति पर विशेष टिप्पणी आवश्यक है। सातवें दशक के प्रारंभिक वर्षों मे भारी शुल्क से भारत का शोरा व्यापार वस्तुत: नष्ट हो गया था। निर्यात शुल्क के कारण यूरोप मे भारतीय शोरे को प्रतियोगी मूल्य पर बेच पाना असंभव हो गया था और कृत्रिम शोरे के उत्पादन से संबधित तकनीक के विकास ने इसके व्यापार पर सांघातिक प्रहार किया। शोरे का निर्यात 1862-63 में 20,253 टन था। 1863-64 मे यह कम होकर 16,805 टन और 1864-65 में यह केवल 11,043 टन रह गया। 1865 मे शुल्क में कमी हो जाने के बावजूद निर्यात में कमी हुई। भारत मंत्री का अनुमान था कि 'भारतीय पदार्थ की भारी शुल्क के कारण यूरोप के नव निर्मित पदार्थ के साथ प्रतियोगिता कर सकने की असमर्थता' के कारण ऐसा हुआ।[181]

कच्ची कपास जिसका अफ्रीका तथा एशिया के विभिन्न देशो को बंगाल तथा मद्रास से निर्यात होता था और जिस पर मामूली सा निर्यात शुल्क था, 1859 मे कर मुक्त पदार्थों की सूची में आ गई। 1856-57 से 1860-61 तक की अवधि मे औसतन 30 करोड़ पौंड कपास का निर्यात हुआ और औसत कीमत 5 पेंस प्रति पौंड से कम थी। अमरीकी गृह युद्ध के समय कीमतों में तेजी के साथ वृद्धि हुई (1864-65 मे 17 पेंस प्रति पौंड हो गई) और निर्यात में निरंतर वृद्धि के बाद 1865-66 मे निर्यात 80 करोड पौंड तक पहुच गया। 1865 से कीमतो मे कमी होने लगी। 1866-67 में यह 9½ पेंस और 1870-71 में 6½ पेंस प्रति पौंड थी। कपास मे तेज़बाजारी अस्थाई घटना थी और जैसे ही अमरीकी गृह-युद्ध समाप्त हुआ लकाशायर मे भारतीय कपास की मांग कम हो गई और बाजार में भारी मंदी आ गई। वास्तव में 50 वर्षों तक भारतीय कपास की किस्म में सुधार करने के प्रयत्नों के बावजूद वह अमरीकी कपास से, जो लम्बे रेशे वाली थी, बहुत नीची श्रेणी की थी। जहां तक जूट के निर्यात का प्रश्न है, क्रीमियन युद्ध के समय रूसी सन (हेम्प) की आपूर्ति मे कमी हो जाने के कारण, इसे अपना बाजार विकसित करने का अवसर मिला। निर्यात जो 1860-61 में 4,09,000 पौंड का था, 1870-71 में बढ़ कर 25,77,000 पौंड हो गया। कलकत्ते के पास स्काटिश प्रबंध मे जूट उद्योग का विकास हुआ जो आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड तथा अफ्रीका के विदेशी बाजारो में डंडी के उद्योग के साथ प्रतियोगिता करने लगा।[182]

1869 मे डंडी चेंबर आफ कामर्स ने भारत उपमंत्री से जूट माल के मामले पर विचार करने के लिए अनुरोध किया जिस पर 7½ प्रतिशत आयात शुल्क था, '7½ प्रतिशत आयात कर केवल राजस्व की दृष्टि से नही लगाया गया है, अपितु यह तो स्वदेशी उद्योग को संरक्षण प्रदान करता है और डंडी के उत्पादकों को भारतीय उत्पादकों के साथ प्रतियोगिता करने से रोकता है। साथ ही, यह भारतीय उत्पादको को आस्ट्रेलिया मे डंडी के उत्पादकों के साथ प्रतियोगिता करने के अवसर प्रदान करता है। (डंडी चेंबर आफ कामर्स के) निदेशकों का विश्वास है...कि भारत में जूट उत्पादों पर से आयात कर हटा दिया जाएगा।'[183] भारत सरकार ने यह स्वीकार नही किया कि उसका इरादा भारतीय जूट उद्योग को संरक्षण देने का है किंतु यह माना कि जूट उत्पादकों को सूती वस्त्रों की श्रेणी में रखना न्यायसंगत होगा और उन पर कराधान के लिए 5 प्रतिशत की नीची दर

रखी जा सकती है। सपरिषद गवर्नर जनरल ने भारत मंत्री को अपने उत्तर मे लिखा कि अगली बार जब टैरिफ में संशोधन होगा तब 'जूट उत्पादों पर आयात कर को सूती वस्त्रो पर कर की कोटि में लाने के औचित्य' पर विचार किया जाएगा।[184] 1870 मे (अधिनियम XVII) जूट उत्पादों पर से शुल्क हटा दिया गया।

1867 तक खाद्यान्नों पर निर्यात शुल्क 2 आने प्रति मन था। इसमें वृद्धि दो आधारो पर उचित ठहराई जा सकती थी। प्रथम, इससे राजस्व मे वृद्धि होगी, तथा द्वितीय, यह लोगो के मुख्य खाद्य के निर्यात को रोकने में सहायक होगी। बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर ने इस विषय पर एक सराहनीय कार्यवृत्त में लिखा, 'यह एक यथार्थ एव अकाट्य तथ्य है कि जब बगाल और उड़ीसा के हजारों निर्धन व्यक्ति पिछले कुछ महीनो में क्षुधापीडित रहे है · लाखो मन (खाद्यान्न) मुनाफे के साथ विदेशों को निर्यात कर दिया गया है···यह स्मरण रखना चाहिए कि भारत एक निर्धन देश है जबकि वे देश संपन्न हैं जिन्हे भारतीय खाद्यान्न का निर्यात होता है। वे भारत के चावल का प्रयोग खाद्य पदार्थ के रूप में ही नही बल्कि कला के लिए और अनेक वस्तुएं तैयार करने के लिए करते हैं। वे इसके लिए एक विलासिता की वस्तु की भांति वह कीमत दे सकते हैं जो भारत के निर्धन वर्गों के लिए, जिनकी यह अनिवार्य आवश्यकता की वस्तु है, दे सकना असंभव है।'[185] बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर ने 6 आने प्रति मन शुल्क का प्रस्ताव रखा। वास्तव में इससे कम शुल्क का निर्यात व्यापार पर कोई प्रभाव न पड़ता और वह खाद्यानो के निर्यात को नही रोक सकता था। सपरिषद गवर्नर जनरल ने शुल्कों मे बहुत थोड़ी वृद्धि का निर्णय लिया (2 से 3 आने तक)। ऐसा लगता है कि निर्णय केवल वित्त सबंधी बातों से प्रभावित था और निर्यात को हतोत्साहित करने के पक्ष मे दिए गए तर्क को अधिक महत्व नही दिया गया था। भारत सरकार को आशा थी कि शुल्क में वृद्धि से राजस्व मे 16 लाख रुपये की वृद्धि होगी। उसने भारत मंत्री को आश्वासन दिया कि 'इस मान्यता के लिए कोई कारण नही कि शुल्क मे इतनी थोड़ी वृद्धि से निर्यात के लिए उपलब्ध होने वाले खाद्यान्न की मात्रा पर थोडा सा भी प्रभाव पड़ सकता है।'[186] खाद्यान्नो का निर्यात करने वाली व्यावसायिक फर्मों के दबाव पर भारत सरकार को, शुल्क में वृद्धि करने के तत्काल बाद ही, उस पर पुनर्विचार करना पड़ा। लिवरपूल के ईस्ट इंडिया एसोसिएशन तथा भारत के व्यापारियों ने अधिकारियों के पास प्रतिवेदन भेजे।[187] भारत सरकार का ध्यान खाद्यान्न शुल्कों को समाप्त करने के लिए चलाए गए आंदोलनों की ओर आकर्षित करते हुए भारत मंत्री ने कहा कि देश के सामान्य हितों मे व्यापार की रक्षा राजस्व को बचाने से अधिक महत्वपूर्ण है चाहे दोनों उद्देश्यों मे परस्पर विरोध न भी हो।'[188] 1873 मे गेहू पर निर्यात कर हटा दिया गया।[189]

1860-61 मे भारत का 28.1 प्रतिशत निर्यात (सूती, रेशमी, ऊनी और जूट) कपड़ा उत्पादन के लिए आवश्यक कच्चे माल का था। 1870-71 मे यह अनुपात बढ़कर 43·3 प्रतिशत हो गया। चावल, दूसरे खाद्यान्न तथा बीज निर्यात की अन्य महत्वपूर्ण वस्तुएं थीं (1860-61 में कुल निर्यात का 15.57 प्रतिशत और 1870-71 मे 14·43 प्रतिशत)। बागान उत्पाद जैसे नील, चाय, कहवा इत्यादि 1860-61 में कुल निर्यातों का

7·2 प्रतिशत, और 1870-71 में 9 23 प्रतिशत था। 1860-61 में जूट की वस्तुएं (1·09 प्रतिशत), शोरा (2·01 प्रतिशत), चीनी (2·99 प्रतिशत) तथा तेल (0 75 प्रतिशत) जैसे निर्मित माल का कुल निर्यात में अंश बहुत थोड़ा था। 1870-71 में इस स्थिति में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ।

आयात की महत्वपूर्ण वस्तुओं से संबंधित 1860-61 तथा 1870-71 के आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि अधिकांश आयात निर्मित माल का था। 1860-61 सूती वस्त्रों का अंश कुल आयात में 39.63 प्रतिशत और 1870-71 में 46·82 प्रतिशत था। 1860-61 में सूती वस्त्र, कपास की गाठें, धागा व सूत, रेशमी तथा ऊनी माल मिलाकर कुल आयात के 49·13 प्रतिशत तथा 1870-71 में 60 प्रतिशत थे। मशीनें, रेल उपकरण, तथा धातुएं (निर्मित तथा अनिर्मित) मिलाकर 1860-61 में कुल आयात की 20 81 प्रतिशत और 1870-71 में 11·31 प्रतिशत थीं। रेल निर्माण की पहली लहर के बाद उसकी गति धीमी पड़ जाना इसमें कमी होने का कारण था। मादक पेय जैसे बियर, मदिरा, स्पिरिट इत्यादि का 1860-61 में कुल निर्यात में अंश 15.3 प्रतिशत और 1870-71 में 6·93 प्रतिशत था। 1870 में भारत का 50 प्रतिशत निर्यात ब्रिटेन को होता था और वह भारत के 80 प्रतिशत आयातों की पूर्ति करता था।[100] उन्नीसवीं शताब्दी के नौवें दशक में सरकार सदा की तुलना में ब्रिटिश उत्पादक हितों के दबाव से उनके उत्पादों पर लगे हुए आयात शुल्क को कम करने या पूरी तरह हटाने के लिए कहीं अधिक तत्पर थी। कच्चे माल के निर्यात को प्रोत्साहन देना टैरिफ नीति का आधारभूत सिद्धांत रहा था। निस्संदेह, केवल टैरिफ सिद्धांत से ही इंग्लैंड और भारतीय साम्राज्य के बीच वांछित, 'श्रम विभाजन' की व्यवस्था, जिसमें इंग्लैंड औद्योगिक माल और भारत कच्चे माल का उत्पादक होता, कर पाना संभव नहीं था। परंतु जैसा कि जेम्स विल्सन और सेमुअल लैंग ने निर्धारित किया था, यह समझा जाता था कि यह भारत सरकार का उत्तरदायित्व है कि वह इस प्रकार के टैरिफ न लगाए जिनसे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से स्वदेशी उद्योग को संरक्षण मिलता है। इस नीति के बीसवीं सदी के तीसरे दशक तक निरंतर पालन तथा टैरिफ नीति के कुछ अन्य पहलुओं पर अन्यत्र विचार किया गया है।

IV

नमक शुल्क उन परोक्ष करों में से था जिनका भार प्रधानत: निर्धन वर्गों पर पड़ता था। भारत सरकार के अधिकारी प्रवक्ताओं का प्राय: दावा रहता था कि मालगुजारी के अलावा केवल यही ऐसा कर है जो विशाल जनसाधारण द्वारा सरकार को अदा किया जाता है। हमारे इस अध्ययन से संबंधित काल में नमक शुल्क उपर्युक्त आधार पर धीरे-धीरे इतना बढ़ाया गया कि वह असह्य हो गया और उसके कारण नमक के उपभोग में कमी हो गई। 1858-59 से 1862-63 की अवधि में इस स्रोत से औसत वार्षिक आय लगभग 3 8 करोड़ रुपये थी। यह भारत के कुल राजस्व की 10 प्रतिशत थी। 1866-67 से 1871-72 के काल में नमक शुल्क से राजस्व का वार्षिक औसत बढ़कर 5.8 करोड़ रुपये हो गया जो सभी स्रोतों से कुल वार्षिक राजस्व का 12 प्रतिशत था।

विभिन्न प्रांतों में नमक शुल्क भिन्न-भिन्न रीतियों द्वारा वसूल किया जाता था। बंगाल में नमक राजस्व के दो स्रोत थे। प्रथम, बोर्ड आफ रेवेन्यू द्वारा नमक की बिक्री (बंगाल सरकार के प्रत्यक्ष निरीक्षण में तैयार किया जाने वाला नमक); तथा द्वितीय, नमक पर आयात शुल्क। नम जलवायु और नदियों द्वारा शुद्ध जल के निकास के कारण बंगाल के तटीय क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर नमक का उत्पादन नहीं होता था। तथापि मिदनापुर और चौबीस परगना में कुछ उत्पादक थे जिनका उत्पादन सरकारी भंडार गृहों में रखा जाता था और उत्पादन लागत तथा आयात शुल्क की प्रचलित दर के आधार पर निर्धारित कीमत पर बंगाल बोर्ड आफ रेवेन्यू द्वारा बेचा जाता था।[191] 1863 में बंगाल में सरकारी नियंत्रण में नमक के उत्पादन की व्यवस्था समाप्त कर दी गई। नमक उत्पादकों को दिए जाने वाले अग्रिम (दादन) बंद कर दिए गए और बंगाल में नमक का उत्पादन बिल्कुल बंद हो गया।[192] इस परिवर्तन से उपभोक्ताओं को लाभ हुआ क्योंकि नमक की थोक कीमतों में 50 प्रतिशत की कमी हो गई। आयातित विदेशी नमक बहुत सस्ता था; परंतु जो लोग अपनी जीविका के लिए नमक के उत्पादन पर निर्भर थे, उन्हें बहुत कष्ट हुआ।[193] 1857-58 में नमक पर आयात शुल्क 2 रुपया 8 आना प्रति मन था। 1859 में सरकार ने संपूर्ण भारत में नमक पर शुल्क बढा दिया। बंगाल में शुल्क 3 रुपये प्रति मन कर दिया गया था। 1861 में शुल्क में पुनः वृद्धि हुई और यह 3 रुपया 4 आना प्रति मन कर दिया गया।[194] जैसा कि फासेट ने स्पष्ट किया, 1870 में आयात शुल्क नमक की प्रधान लागत पर लगभग 700 प्रतिशत था। परंतु जैसा कि सर सेसिल बीडन ने कहा था कि सरकारी दृष्टिकोण यह था, 'कर का औचित्य लोगों की उसे दे सकने और उसे सह सकने की क्षमता द्वारा मापा जाना चाहिए' न कि वस्तु की मूल लागत पर प्रतिशत निकाल कर।[195] संभवतः सरकार इंग्लैंड के उद्योगपतियों से प्रभावित थी। नोर्थविक के नमक चेंबर आफ कामर्स ने भारत सरकार पर दबाव डाला कि वह उन्हें इंग्लैंड से होने वाले नमक के निर्यात के साथ तरजीही सलूक कर उन्हें प्रोत्साहन दे।[196] नोर्थविक चेंबर ने भारत मंत्री से अपने प्रतिवेदनों में आग्रह किया कि भारत में चैशायर से नमक के आयात में तथाकथित बाधाएं दूर की जाएं।[197] यद्यपि सरकार ने बंगाल में नमक का निर्माण बंद कर दिया था तथापि भारत के लोगों में विदेशी नमक के प्रति पूर्वग्रह था और कुछ समय तक वे 'इंग्लैंड के नमक से संतुष्ट' नहीं थे।[198] 1862 तक भारत सरकार के लिए संतोष के साथ भारत मंत्री को यह सूचना भेज पाना संभव हो सका कि ब्रिटिश नमक के प्रति पूर्वग्रह समाप्त हो रहा है।[199] सरकार को इस बात से कोई मतलब न था कि राजस्व की प्राप्ति स्वदेशी नमक की बिक्री से होती है अथवा विदेशी नमक पर लगाए जाने वाले आयात शुल्क से, परंतु सरकार की नमक एजेंसी का बंद हो जाना बंगाल के स्थानीय उत्पादकों के लिए विनाशकारी था।[200]

बंबई में नमक शुल्क की प्रणाली बंगाल प्रणाली से बहुत भिन्न थी। समुद्र के किनारे-किनारे सूर्य की किरणों से होने वाले वाष्पीकरण द्वारा तैयार किए जाने वाले नमक पर उत्पाद शुल्क (एक्साइज ड्यूटी) लगाया गया था। प्रेसीडेंसी के उत्तरी भागों में सरकारी स्वामित्व में नमक का उत्पादन करने वाली कुछ इकाइयां थीं जो उत्पादन

लागत व उत्पाद शुल्क के आधार पर निर्धारित कीमत पर नमक वेचती थीं। परंतु बंबई में अधिकांश नमक लाइसेंस प्राप्त निजी उत्पादकों द्वारा तैयार किया जाता था जिन पर आतरिक सीमा शुल्क विभाग का निरीक्षण रहता था। अन्य प्रांतों की तुलना में बंबई में उत्पाद शुल्क (एक्साइज ड्यूटी) काफी नीचा था। 1857-59 में इसकी दर 12 आना प्रति मन थी। अगस्त, 1859 में इसे बढा कर 1 रुपया प्रति मन कर दिया गया और अप्रैल, 1861 मे इसमें पुन: 4 आने की वृद्धि हुई। 1865 में भारत सरकार ने इस प्रश्न पर सलाह मांगी कि नमक पर उत्पाद शुल्क में और अधिक वृद्धि कर पाना व्यवहार्य है अथवा नहीं। बंबई सरकार का विचार था कि शुल्क में वृद्धि की जा सकती है और ऐसा करने पर 'विरोध भड़कने की अधिक जोखिम नही है', यद्यपि धनी व्यक्तियो पर किसी भी रूप में आय कर लगाना 'निर्धन व्यक्तियों पर और अधिक कर भार बढाने से कही अच्छा है।' भारत सरकार ने नमक शुल्क बढा कर डेढ रुपया प्रति मन करने का निर्णय लिया। अक्तूबर, 1869 में शुल्क दर में पुन: संशोधन कर उसे 5 आना प्रति मन बढ़ा दिया गया। अत: 10 वर्षों में बंबई में नमक शुल्क मे 80 प्रतिशत वृद्धि हो गई।[201]

मद्रास की प्रणाली सरकारी एकाधिकार की प्रणाली थी। स्थानीय उत्पादकों द्वारा समुद्र तट पर वाष्पीकरण द्वारा तैयार किया जाने वाला नमक संविदा व्यवस्था के आधार पर सरकार को दिया जाता था। सरकार निर्धारित कीमत पर नमक वेचती थी और नमक पर 'शुल्क' वास्तव में नमक की बिक्री द्वारा एकाधिकारी को प्राप्त होने वाला लाभ था।[202] नमक की बिक्री कीमत धीरे-धीरे बढाई गई। 1857-58 में यह 1 रुपया 1859 60 में 1 रुपया 2 आना, 1860-61 में 1 रुपया 6 आना, 1861-64 में डेढ रुपया 1865-69 में 1 रुपया 11 आना और अंत में 1869 में 2 रुपया हो गई। शुल्क में तेजी के साथ वृद्धि करने की समझदारी संदेहजनक थी, क्योंकि नमक राजस्व में वृद्धि संभवत: इसे कम कीमत पर भारी संख्या में उपभोक्ताओं को बेचकर हो सकती थी, न कि ऊंची कीमत पर एक संकुचित बाजार में ही बेचकर। भारत सरकार ने मद्रास में नमक की कीमत में वृद्धि को इस आधार पर उचित ठहराया कि यह सभी प्रांतों में नमक शुल्कों के समानीकरण की दिशा में प्रयास था।[203]

पंजाब की अपनी नमक खानें थीं। सरकारी नमक की खानों से बिक्री के लिए 1857-59 में कीमत 2 रुपया, 1860 61 में 2 रुपया 2 आना, 1861-69 की अवधि में 3 रुपया और जुलाई 1870 से 3 रुपया 1 आना थी। सांभर झील को नमक के स्रोत के रूप में विकसित किया गया। मेयो ने सांभर की नमक की झील को पट्टे पर लिया, जोधपुर के राजा पर इस संबंध में समझौते के लिए राजी होने के लिए दबाव डाला गया।[204]

चूंकि नमक शुल्क विभिन्न प्रांतों में भिन्न-भिन्न था, इसलिए अंतर्देशीय तस्कर व्यापार एक समस्या बन गया। नमक विभाग मे राजस्व संग्रह और नमक के तस्कर व्यापार व अवैध उत्पादन को रोकने के लिए काफी बड़ी संख्या मे कर्मचारी रखे गए थे। आतरिक सीमा शुल्क आयुक्त के अतर्गत यूरोपीय सहायक आयुक्त तथा सीर कारकून (जो नमक के उत्पादकों के लेखों की जाच करने के अलावा उत्पाद कर लेता था), साझेदार (जो नमक तोलता और स्टाक लेता था) दरोगा (तस्करी रोकने वाली पुलिस

टुकड़ी का प्रधान), नाकेदार (दरोगा का सहायक चपरासी) इत्यादि हिंदुस्तानी कर्मचारी होते थे। अंतर्देशीय सीमा शुल्क घेरों की निगरानी करने के लिए काफी बड़ी संख्या में कर्मचारी रखे गए थे। प्रत्येक सीमा शुल्क चौकी पर निरीक्षक तथा संग्राहक, सीमा की निगरानी के लिए दरोगा, कोटगश्त तथा जमादार, और पास अथवा रवन्ना देने के लिए क्लर्क और मुंशी होते थे। 1869 में एक 2,300 मील लम्बा सीमा शुल्क घेरा सिंधु नदी से लेकर मद्रास मे महानदी तक था, एक दूसरा 280 मील लंबा सीमा शुल्क घेरा बबई मे दोहद से कच्छ की खाड़ी तक फैला था। सीमा शुल्क के लिए निर्धारित सीमाओं पर 12,000 पहरेदार और छोटे अफसर लगे हुए थे।[205]

यह अनुभव किया गया था कि अंतर्देशीय सीमा शुल्क घेरा आतरिक वाणिज्य में बाधक है और इस पर होने वाला व्यय सरकार पर भार है। परंतु जब तक विभिन्न राज्यों मे शुल्क की दरों मे काफी स्पष्ट अंतर था तब तक तस्कर व्यापार लाभप्रद था और शुल्क अपवंचन रोक पाना कठिन था। अत: सभी प्रांतो मे नमक शुल्कों को बढ़ा कर धीरे-धीरे एक ही स्तर पर ले आना सरकार की नीति थी। केवल नमक शुल्कों को समान बनाकर ही सरकार निरोधक अधिकारियों की अंतर्देशीय सीमा को हटा सकती थी। जयपुर तथा जोधपुर की रियासतो के साथ भारत सरकार का सांभर झील पट्टे पर लेने की सविदा हो जाने पर इन क्षेत्रो से ब्रिटिश भारत मे नमक आने पर रोक रखने के लिए बनाया गया 800 मील लंबा सीमा शुल्क घेरा कम किया जा सका।[206] 1877-79 में राजपूताना और मध्य भारत की देशी रियासतों (अलवर, भवालपुर, झालावाड़, कोटा, नरसिंहगढ़, राजगढ, रतलाम, खवात, टोंक, भोपाल, वड़ोदा, ग्वालियर इत्यादि) के साथ वहां पर नमक के उत्पादन को नियंत्रित करने के लिए एक के बाद एक संविदा की गई।[207] जब तक यह हो सका तब तक इन रियासतों से ब्रिटिश भारत मे तस्करी रोकने के लिए सीमा शुल्क घेरे को बनाए रखना पड़ा। चूंकि भारत सरकार के लिए राजस्व मे कमी कर पाना संभव नहीं था, इसलिए नमक शुल्को को समान करने के लिए जब भी उनमें संशोधन हुआ तो वे बढा दिए गए। वस्तुत:, राजस्व मे वृद्धि उतना ही सबल प्रयोजन था, जितना कि नमक शुल्कों को समान करने की इच्छा।[208]

नमक शुल्क ही एकमात्र परोक्ष कर था जो भारी संख्या में जनसाधारण को प्रभावित करता था। वास्तव में यह व्यक्ति कर था। सरकारी मत था कि नमक व्यापार उपभोग की वस्तु होने के कारण कराधान के लिए सर्वाधिक उपयुक्त था। इसके अलावा चूंकि कर लागत मूल्य में जुड़ जाता था इसलिए लोग इसका उतना विरोध नही करते थे जितना कि किसी प्रत्यक्ष कर का कर सकते थे। संग्रह की सुविधा निश्चय ही परोक्ष कराधान के पक्ष में सबसे सबल तर्क था। नमक ही नही, बल्कि देश के कुछ भागों में तो चीनी पर भी शुल्क था। 1861-63 में सरकार द्वारा तंबाकू पर शुल्क लगानें के विषय में विचार किया गया परंतु अफीम की भांति सरकारी एकाधिकार, अथवा तम्बाकू के व्यापारियों या इसका उत्पादन करने वाले कृषकों पर लाइसेंस कर व्यावहारिक नहीं समझा गया और इसलिए इस योजना को छोड दिया गया।[209]

नमक शुल्क जैसे परोक्ष कर का आसानी से संग्रह ही वह कारण था जिसकी

वजह से भारत सरकार को नमक शुल्क बढाने में सतर्कता की आवश्यकता थी। भारत मंत्री आरगाइल ने भारत सरकार को चेतावनी दी कि नमक शुल्क 'बहुत भारी और अन्यायपूर्ण हो सकते हैं भले ही वे लोग जिन पर भार पड़ रहा है उस तथ्य को न समझें अथवा अनुभव न करें।'[210] ऐसा लगता है कि नमक शुल्क का नमक के उपभोग पर प्रभाव पड़ा था। 1870 में लगाए गए एक अनुमान के अनुसार बंगाल में नमक का औसत उपभोग 9 पौंड से कम, मद्रास में लगभग 12 पौंड और बंबई में लगभग 15 पौंड था। इन आकड़ों की तुलना ब्रिटेन तथा फ्रांस के आकड़ों से की जा सकती है जहा औसत वार्षिक उपभोग क्रमश: 22 और 18 पौंड था।[211]

नमक कर से सपन्न वर्ग उतने प्रभावित नही हुए थे जितना कि जनसाधारण। ब्रिटिश इंडियन एशोसिएशन ने सरकार से अनुरोध किया था कि वह नमक कर में वृद्धि करे और आय कर को कम कर दे अथवा बिलकुल हटा दे।[212] बंगाल चेंबर आफ कामर्स का मत था कि नमक शुल्क को वढाकर आय कर को हटा सकना संभव है। नमक शुल्क मे वृद्धि से बंगाल चेंबर के अनुसार कृषक तथा श्रमिक वर्गों की वार्षिक आय में बहुत थोड़ी कटौती होनी थी।'[213] जैसा कि भारत सरकार ने स्पष्ट किया, इस समस्या के बारे में उपर्युक्त दृष्टिकोण वर्ग हितों से बहुत अधिक प्रभावित था। 'यह कराधान मुक्त वर्ग पर से एक बहुत हलके कर को हटाकर एक ऐसे अन्य वर्ग पर डालने का प्रस्ताव था जिस पर पहले से ही यदि असह्य भार नही तो, प्रचलित वितरण को देखते हुए, सार्वजनिक भार के न्यायोचित अंश से कही अधिक भार था।'[214] रिचर्ड टैंपिल ने लिखा कि 'मैं एक ओर तो संपूर्ण भारत के संपन्न लोगों को प्रभावित करने वाले आय कर और (दूसरी ओर) निर्धन लोगों को प्रभावित करने वाले नमक कर मे कोई वास्तविकता अथवा न्यायोचित सबंध नही देख पाता हूं ...संपूर्ण भारत के सपन्न आय कर दाताओं को बचाने के लिए बंबई और मद्रास के निर्धन व्यक्तियो पर कर नही लगाया जा सकता।'[215]

V

भारत सरकार द्वारा लगाए गए आय कर तथा दूसरे प्रत्यक्ष करों का कुल राजस्व में बहुत थोडा अनुपात (5 प्रतिशत से भी कम) था। तथापि आय कर नीति [illegible] मे एक दिलचस्पी की चीज थी क्योकि यह कर इस देश में एक [illegible] था। [illegible] अलावा आय कर संबंधी प्रश्न के साथ महत्वपूर्ण राजकोषीय तथा आर्थिक नीति का उलझाव था।

जब जेम्स विलसन भारत आया तो अधिकारी प्रत्यक्ष करारोपण के विस्तार के पक्ष मे थे। मद्रास के लाइसेंस कर मोहतुरफा के अलावा प्रत्यक्ष करारोपण प्रणाली [illegible] थी। पिछले कुछ वर्षों से लाइसेंस कर की चर्चा चल रही थी। [illegible], 1859 को हेनरी हेरिंगटन ने भारत मे व्यापार करने तथा विभिन्न व्यवसायों के लिए लाइसेंस की व्यवस्था करने के उद्देश्य से एक विधेयक पेश किया, [illegible] बाहर काफी विरोध हुआ और जब तक जेम्स विलसन भारत नहीं आया [illegible] अंतिम और स्वीकृत स्वरूप नही ले सका। [illegible]

कर विधेयक *'अब तक ठीक स्वरूप नही ले सका है'* और विल्सन ने आने पर उसे पूर्ण रूप से रद्द करने और नए सिरे से लाइसेंस कर तथा आय कर से संबधित दो पृथक् विधेयकों को पेश करने का निर्णय लिया।[216]

विल्सन के लाइसेंस कर विधेयक में दो विशेषताएं थी। प्रथम, यह उस वर्ग के लोगों पर कर था जो अब तक करों से बचे हुए थे। कारीगर, खुदरा व्यापारी, बैंकर, लघु उत्पादक, व्यवसायी इत्यादि इसी वर्ग मे आते थे। विल्सन का विचार था कि राजस्व का बड़ा अंश भूमि से ही प्राप्त होता था और जो वर्ग ब्रिटिश शासन में स्थापित शांति से आर्थिक लाभ उठा रहे थे, वे राजस्व में अपना पूर्ण अंश नही दे रहे थे।[217] लाइसेंस कर लगाने की कल्पना इस प्रकार से की गई थी, कि इसका भार ऐसे वर्गों पर पड़े जो कृषकों के विपरीत किसी भी प्रकार के कर भार से मुक्त थे। जिन पर यह कर लगाया जाना था, उनमें से अधिकांश आय कम होने के कारण, आय कर से मुक्त रहते थे।

द्वितीय, विल्सन ने आरोही कराधान के विचार को अस्वीकार कर दिया। अपने वित्तीय विवरण में उसने स्पष्ट किया कि *'प्रत्येक बड़े छोटे वर्ग के व्यापारियों पर छोटा सा समान लाइसेंस शुल्क लगाया जाना चाहिए, परंतु इसमे क्रमिक वृद्धि का कोई प्रयास नही होना चाहिए।'*[218] तीन वर्गों पर यह कर लगाया गया। प्रथम वर्ग में थोक व्यापारी, बैंकर, बड़े उत्पादक, तथा व्यवसायी वर्ग के लोग थे जिन पर कर 10 रुपया वार्षिक था। दूसरे वर्ग मे खुदरा व्यापारी, छोटे उत्पादक जो स्थानीय खुदरा बिक्री के लिए माल बनाते थे, आदि थे जिन पर कर की दर 4 रुपया वार्षिक थी। शेष जैसे बुनकर, चर्मकार, इत्यादि पर दर 1 रुपया वार्षिक थी। विल्सन ने इस बात के स्पष्टीकरण का ध्यान रखा कि यह आरोही कराधान नही था, क्योंकि कर की राशि प्रत्येक वर्ग के सभी लोगों के लिए समान थी, चाहे उनकी आय, अथवा व्यापार या उत्पादन की मात्रा कुछ भी क्यों न हो।

लाइसेंस कर विधेयक परिषद में 4 मार्च, 1860 को पेश किया गया। परंतु इसके प्रथम पठन से लेकर इसके अधिनियमन तक लगभग डेढ़ वर्ष लगा। जुलाई, 1861 में पारित अधिनियम XVIII विल्सन के मूल विधेयक से कई दृष्टियो से भिन्न था। विधेयक के विपरीत लाइसेंस अधिनियम के द्वारा पूर्ण रूप से अस्थाई कर लगाया गया। विधान में कर की दरें (विभिन्न अनुसूचित वर्गों के लिए 3 रुपये, 2 रुपये, 1 रुपया) भी बहुत नीची थी। अपनी योजना के इस अंश के कार्यान्वयन को देखने के लिए विल्सन जीवित नही रहा।

आय कर विधेयक, जो लाइसेंस कर विधेयक के साथ ही पेश किया गया था, पारित हो गया और जनता का पूरा ध्यान उस पर ही केंद्रित हो गया। विवाद के प्रश्न ये थे : कराधान योग्य आय की न्यूनतम सीमा क्या होनी चाहिए ? क्या आरोही कराधान का सिद्धात स्वीकार किया जाना चाहिए ? क्या कुछ सुविधाभोगी वर्गों को आय कर से मुक्त रखना चाहिए ? कराधान की रीति कैसी बनाई जानी चाहिए कि वह लोगों को स्वीकार्य हो ? और अंत मे, क्या उत्तर सैन्य विद्रोह काल की राजनीतिक स्थिति में यह प्रयोग करना उचित था अथवा एंग्लो इंडियन की आलोचना और हिंदुस्तानियों की शत्रुता

का सामना के बजाए इसे स्थगित करना अधिक सुरक्षापूर्ण था ?

करायेय आय की उचित न्यूनतम सीमा निर्धारित करने में विल्सन को कठिनाई का सामना करना पड़ा। कैनिंग के साथ पत्र व्यवहार से ऐसा लगता है कि पहले उसका विचार था कि 100 रुपये वार्षिक से अधिक आय पर कर लगाया जाना चाहिए। कैनिंग को इस बात में संदेह था कि यह उचित सीमा है। उसने यह मालूम करने के लिए कि यह सीमा किस प्रकार कार्य करेगी, कुछ चुने हुए जिलों का नमूना सर्वेक्षण (सैंपल सर्वे) करने के लिए कहा। उसने विल्सन को लिखा, 'मेरे विचार से आय कर के लिए 100 रुपये जैसी नीची सीमा के पक्ष समर्थन के लिए, जिसके निम्न वर्गों को छोड़ देने का दावा किया गया है, और कर द्वारा लोगों में जाग्रत हो सकने वाली विद्वेष भावना का अनुमान लगाने के लिए यह सूचना आवश्यक है।'[219] अन्त मे कैनिंग ने 100 रुपये की सीमा के विरुद्ध अपना निर्णय दे दिया, और विल्सन द्वारा वित्तीय विवरण पेश करने के एक सप्ताह पहले कैनिंग ने सुझाव दिया कि 200 रुपये की सीमा ठीक रहेगी और 'कराधान की दृष्टि से प्रभावोत्पादक होगी।'[220] विल्सन ने अपने वित्तीय विवरण (18 फरवरी, 1860) में घोषणा की कि 200 रुपये से कम वार्षिक आय कर मुक्त होगी। आय कर विधेयक जब 4 मार्च, 1860 को विधान परिषद में पेश किया गया तो इस आधार पर कि 200 रुपये की न्यूनतम सीमा बहुत नीची है इसका व्यापक विरोध हुआ। सर सी० वुड ने पहले से ही भारत सरकार को चेतावनी दी थी कि 'बहुत कम आय पर कर लगाने के विषय मे सावधान रहना चाहिए। प्रस्तावित योजना के आधार पर निचले वर्गों पर, जिनमे अनायुक्त (नान कमीशंड) यूरोपीय अफसर, तथा सेना और पुलिस के हिंदुस्तानी अफसर भी सम्मिलित थे, कराधान की व्यवस्था होगी। मुझे आशंका है कि जो कर इन वर्गों तक लाया गया है, उसे इतना नीचे ले जाया जाएगा, जितना सही नीति की दृष्टि से युक्तिसंगत नहीं है।'[221] वुड ने जिन वर्गों का उल्लेख किया था जैसे कि सेना, नौ सेना, तथा पुलिस के निचले अधिकारी, उन्हें इस अधिनियम के अंतर्गत विशेष रूप से कर से मुक्त कर दिया गया। यह निर्णय असंतुष्ट अधिकारियों द्वारा 'बैरकों मे की गई फुसफुसाहट से' प्रभावित था जिसकी ओर कैनिंग का ध्यान संत्रस्त होकर गया।[222] कैनिंग ने विल्सन को सुझाव दिया कि कर से मुक्ति सभी अनायुक्त सैनिकों को दी जानी चाहिए।[223]

लाइसेंस कर की भांति ही आय कर विधेयक में भी आरोही कराधान के विचार को दृढता के साथ अस्वीकार कर दिया गया। विधेयक के द्वितीय पठन (14 अप्रैल) के समय विधान परिषद के सामने एक याचिका (अर्जी) आई। सरकारी तथा वाणिज्यिक दफ्तरों के क्लर्कों द्वारा भेजी गई इस याचिका में सुझाव दिया गया था कि कराधान के लिए समान दर के स्थान पर आरोही दर (आय के अनुसार 1 प्रतिशत से 6 प्रतिशत तक) होनी चाहिए। जैसी कि आशा की जा सकती थी विल्सन का उत्तर था कि 'लोगों की स्थितियों को समान बनाना' कराधान का उद्देश्य नहीं है।[224] आय कर विधेयक में दो दरों का प्रस्ताव रखा गया था : 500 रुपये से कम वार्षिक आय के लिए 2 प्रतिशत, और इससे अधिक आय के लिए 4 प्रतिशत। परंतु यह आरोही कराधान के समर्थकों के

साथ कोई रियायत नहीं थी। विल्सन ने अपने वित्तीय विवरण में कहा 'ऐसा यदि हम एक ही दर पर करते हैं तो लाइसेंस शुल्क तथा इस (निम्न) वर्ग की आय पर आय कर द्वारा द्वैध कराधान होगा जो दूसरे वर्गों की तुलना में अधिक भारी होगा।'[225]

आय कर विधेयक से एक विवादास्पद प्रश्न उठ खड़ा हुआ। यह दावा किया गया कि 1793 के स्थाई बंदोबस्त के अंतर्गत जमीदार, किसी भी रूप में कराधान क्यों न हो, मुक्ति पाने के अधिकारी हैं। ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन ने, जिसमें जमीदारों के हितों की प्रधानता थी, भारत मंत्री तथा भारत सरकार को भेजी गई याचिकाओं (अर्जियों) में उपर्युक्त विचार रखा।[226] परंतु भारत सरकार ने इसे अस्वीकार कर दिया और भारत *मंत्री ने भारत सरकार की इस कार्रवाई पर अपनी सहमति दे दी।*[227] *विल्सन ने कहा कि* स्थाई बंदोबस्त के संस्थापक कार्नवालिस को मालगुजारी के स्थाई बंदोबस्त और जमीदार पर कर लगने के संबध में दायित्व के बीच कोई भ्रांति नही थी।[228] विल्सन ने और भी स्पष्ट करते हुए कहा कि जब इंग्लैंड मे पिट ने प्रथम बार आय कर लगाया तो यह निर्णय हुआ था कि पूजी निवेशक (फंड होल्डर) को कर से मुक्ति देने के पक्ष मे कोई आधार नही था। *उस स्थिति मे भी कर मुक्ति का कोई प्रश्न नही उठता जब मालगुजारी* को एक निश्चित कर में रूपातरित कर दिया गया हो अथवा उसका परिशोधन हो गया हो। 'जमीदारों के दावों' के विरुद्ध विल्सन का तर्क और अधिक सबल हो गया जब उसे जमीदारों में से ही एक मित्र मिल गया। वह था बर्दवान का महाराजा जिसने विल्सन की 'कराधान की सराहनीय प्रणाली' का समर्थन किया। अपने को उन लोगों से अलग करते हुए जो आय कर का विरोध कर रहे थे *उसने लिखा, 'यह विरोध इस गलत मान्यता* पर आधारित है कि यह स्थाई बंदोबस्त का उल्लंघन (है)।'[229] सर चार्ल्स वुड तथा जेम्स विल्सन ने इस पत्र को विशेष महत्व दिया, यद्यपि यह जमींदार वर्ग के सामान्य मत का प्रतिनिधि नहीं माना जा सकता था।[230]

जमींदार तथा मध्यवर्ती वर्ग प्रभावशाली थे। कैनिंग ने विल्सन को लिखा कि *'हम शहरों को लाइसेंस कर से तंग करने ही वाले हैं। इसलिए हमें इस बात मे दुगुना* सावधान होना चाहिए कि न केवल बड़े पैमाने पर कृषक ही अपितु जिनका कृषकों से थोड़ा ऊचा होने के कारण अपने गावों मे काफी प्रभाव है, उनमे भी हमारे विरुद्ध हो जाने की प्रवृत्ति न उभर आए।'[231] विल्सन ने कर का ऐसा स्वरूप खोजने का प्रयास किया जिससे भारतीय संवेदनशीलता को किसी भी प्रकार की ठेस न पहुचे। यह आशंका थी *कि हिंदुस्तानी लोग 'खोजी कार्यवाही' का विरोध करेंगे। इग्लैंड के अधिनियम* की भांति ही विल्सन के विधेयक मे गोपनीयता के पक्ष में नियंत्रण लगाए गए, अधिकारियो के लिए गोपनीयता की शपथ लेना आवश्यक कर दिया गया, और एक विशेष आयोग की व्यवस्था की गई जिसके पास करदाता कर निर्धारण के लिए आवेदन भेज सकते थे। सरकार कर की व्यावहारिक कार्य प्रणाली को पंचायतों तथा 'कस्बों और व्यवसायों के मुखिया लोगों' *की सहायता* से निश्चित स्वरूप देना चाहती थी। वार्षिक कर निर्धारण से होने वाली खीझ को दूर करने के लिए कमिश्नरों को अधिकार था कि वे पूरे पांच वर्षों के लिए एक मोटी राशि निर्धारित कर सकेंगे। अधिनियम के इन उपबंधों के अतिरिक्त आय कर का

प्रबंध, निर्धारण एवं संग्रह करने वाले कमिश्नरों को दिए गए आदेशों में 'खीझ उत्पन्न करने वाले परीक्षणों, असुविधाजनक रहस्योद्‌घाटनों तथा परिणामी भ्रष्टाचारों' के विषय मे प्रचलित आशंका को कम करने की आवश्यकता पर जोर दिया गया।[232] चार्ल्स वुड ने विल्सन को 'अप्रिय चीज को इतना कम अप्रिय' बनाने में मिली सफलता के लिए बधाई दी।[233] विल्सन को संभवत: मालूम था कि इस नए कर के विरोध में सबसे अधिक रोष बैंकरों में होगा, परंतु उसे पूर्ण विश्वास था कि 'भारत में बड़े पूंजीपति बैंकरों के प्रति उतनी ही कम सहानुभूति थी जितनी कम सहानुभूति लंदन में लोंबार्ड स्ट्रीट के लोंबार्ड यहूदियों के प्रति उस समय थी जब उन्हे राज्य को आर्थिक योगदान करने के लिए वाध्य किया गया था।'[234] बैंकरों और व्यापारियों की सुविधा के लिए आय कर विवरणी के फारम में संशोधन किए गए (जैसा कि विशिष्ट समिति ने जिसके सदस्य है रिंगटन, टैंपिल तथा प्रसन्न कुमार टैगोर थे, सुझाव दिया था)।[235] परंतु यह उन्हे संतुष्ट करने के लिए पर्याप्त नही था। वंबई से भेजी गई एक याचिका (अर्जी) द्वारा भारतीय बैंकरों की मागों और उनके समर्थन में तर्कों को स्पष्ट किया गया था। याचिका में कहा गया था कि 'एक ओर आय और साख में और दूसरी ओर बकाया दावों और दायित्वों मे गहरा संबंध है · बैंकर इस प्रकार की एक दूसरे के विषय में जानकारी रखने के लिए बहुत इच्छुक है।'[236] इस प्रकार की जानकारी यदि प्रकट हो जाए तो इसके परिणामस्वरूप बहुत सारे बैंक असफल हो सकते हैं। कलकते में भी इस प्रकार की शिकायतें की गई थी। मारवाड़ी व्यापारियों का एक प्रतिनिधि मंडल बगाल सरकार से मिला और उसने निवेदन किया यदि वे इस तथ्य को कि 'व्यापार में कितना रुपया उनका अपना लगा हुआ है और कितना दूसरों का है' प्रकट कर दें तो इससे उनकी साख में कमी होगी।[237] आय कर आयोग के अध्यक्ष श्री ए० ग्रोट ने स्वीकार किया कि 'उनकी (मारवाड़ियों की) कोठियों (व्यापार गृहों) की साझेदारियों का स्वरूप बहुत जटिल है' और इनके विषय में सार्वजनिक जांच खतरनाक है।[238] आय कर के विरोध में बबई के बैंकर तथा व्यापारी उतने मुखर नही थे जितने कि जमीदार। उनकी आत्मरक्षण की विचक्षण तथा अनैतिक रीतियां थीं। बंबई के बैंकरों ने अपनी याचिका में स्पष्ट शब्दो मे कहा कि 'स्वार्थी प्रयोजनों से प्रेरित होकर लोग आगे झूठे लेखे रखना सीख लेंगे·'[239]

भारत की लगभग 13 करोड़ जनसंख्या मे से विल्सन के आय कर के अंतर्गत 1,000 रुपये अथवा इससे अधिक आय वाली 53,000, 500 रुपये से 1,000 रुपये के बीच में आय वाली 1,41,500, तथा 200 रुपये से 500 रुपये तक आय वाली 5 लाख विवरणिया थी। बंगाल की 4 करोड़ जनसंख्या में केवल 21,000 व्यक्तियों की आय 1,000 रुपये के ऊपर थी। यह तर्क दिया जा सकता था कि भारत जैसे निर्धन देश में यदि आय कर की वाध्यता का कम आय वाले वर्गों पर विस्तार होता तो उसका उन पर बहुत अधिक भार पड़ता और यदि इसे ऊची आय पाने वालो के एक छोटे से वर्ग तक सीमित रखा जाता तो, कर के संग्रह एवं निर्धारण की लागत को देखते हुए, वह अलाभकारी था।[240]

जैसा कि पहले वतलाया जा चुका है कि 200 रुपये से 500 रुपये तक वार्षिक

आय पर कराधान 2 प्रतिशत और 500 रुपये से अधिक आय होने पर 4 प्रतिशत था और इस सीमा के ऊपर आय में वृद्धि के साथ कर की दर बढ़ाने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया था। शीघ्र ही यह अनुभव हुआ कि 200 रुपये जितनी कम आय पर कर लगाना निरर्थक था क्योंकि संग्रह पर होने वाला खर्च कर से प्राप्ति के अनुरूप नहीं था। इसके अतिरिक्त थोड़ी आय पर कर लगाने पर अपवंचन की संभावना अधिक थी। आय करदेने वालों में दो तिहाई इसी श्रेणी (अर्थात 200 से 500 रुपये के आय वर्ग) में थे और इस कर से कुल प्राप्ति मे उनका योगदान केवल 20 प्रतिशत था। करदाताओं के निम्न वर्ग को इस कर से मुक्त कर देने का सरकार का निर्णय इन्ही बातों से प्रभावित था और कर की दर भी घटाकर 4 प्रतिशत से 3 प्रतिशत कर दी गई।[241] यह निर्णय सेमुअल लैंग के अनुरोध पर लिया गया। उसे सभी समस्याओं के वित्तीय समाधान के निमित्त आय कर की क्षमता के बारे में सदैव ही संदेह था। विल्सन (जिसकी कुछ समय बाद ही मृत्यु हो गई थी) द्वारा बनाए गए आय कर विधान के लागू हो जाने के कुछ समय बाद ही अपने 1861-62 के वित्त विवरण मे सेमुअल लैंग ने कहा कि आय कर से उतने अधिक राजस्व की प्राप्ति नही होती है जितनी कि विल्सन को आशा थी।[242] अगले वर्ष लैंग ने 200 रुपये से 500 रुपये तक के आय वर्ग को आय कर से मुक्त कर दिया। उसका उत्तराधिकारी सर चार्ल्स ट्रैवीलियन आय कर का सदैव ही कटु आलोचक रहा और 1860 मे जेम्स विल्सन के साथ उसके विवाद का यह भी एक विषय था जिसके परिणामस्वरूप उसे भारत से वापस बुला लिया गया था। उसे कुछ समय तक अपयश भी मिला। ट्रैवीलियन ने पहले तो दर मे कमी कर दी[243] और तत्पश्चात 1864-65 के वित्त विवरण मे भारत सरकार के इस दृढ निश्चय की घोषणा की कि पाच वर्ष बाद आय कर समाप्त कर दिया जाएगा।[244] सरकार के कुछ सदस्य और कुछ महत्वपूर्ण अधिकारी इस योजना के पक्ष मे नही थे। वास्तविकता यह है कि गवर्नर जनरल लार्ड लारेंस को इस बारे में संदेह था कि सरकार वास्तव में राजस्व के इस स्रोत को छोड़ सकने की स्थिति में है।[245] सर बार्टल फ्रेर ने एक बहुत सीधा-सादा तर्क दिया (इस सामान्य राय के विपरीत कि विल्सन का आय कर केवल पाच वर्षों के लिए ही लगाया गया था) कि 3 प्रतिशत कर 5 वर्ष की अल्प अवधि के लिए लगाया गया था और इस अवधि की समाप्ति के बाद 1 प्रतिशत स्थाई रूप से रहना था और उसे स्थानीय लोक निर्माण कार्यों पर व्यय किया जाना था।[246] परंतु स्थाई आय कर के समर्थक भी प्रत्यक्ष कराधान के विरुद्ध जनसाधारण की भावना की शक्ति और इस प्रकार के कराधान से जुड़े दोषों, जैसे खोजी जाच-पड़ताल तथा मनमाने कर निर्धारण की उपेक्षा नही कर सके। अतः कर को 29 जुलाई, 1865 को समाप्त हो जाने दिया गया। पांच वर्षों में आय कर व प्राप्त होने वाली कुल राशि लगभग 8 करोड रुपये थी और संग्रह की स्थापन व्यवस्था का खर्च निकाल देने पर कर से शुद्ध प्राप्ति 7·6 करोड़ रुपये थी।

आय कर का एक दोष यह था कि इसके निर्धारण की प्रणाली अक्षम थी। 1869 अधिनियम मे वार्षिक कर निर्धारण की व्यवस्था की गई थी। परंतु कर लागू होने के एक वर्ष के भीतर ही एक अन्य अधिनियम पारित करके गवर्नर जनरल को यह अधिकार दे

दिया गया कि वह पहले वर्ष के कर निर्धारणों को अगले एक वर्ष के लिए भी उपयोग कर सकता है। मई, 1862 मे उसके इस अधिकार की अवधि 1 से बढ़ाकर 3 वर्ष कर दी गई। कर निर्धारण की प्रक्रिया बहुत अधिक कष्टप्रद थी, इसलिए उपर्युक्त निर्णय लेना सरकार के लिए अनिवार्य हो गया।[247] परिणाम यह हुआ कि 1865 में भी करदाताओं ने पुराने निर्धारण के आधार पर ही कर दिए, जबकि ये निर्धारण हर दृष्टि से पुराने होकर अर्थहीन बन गए थे।[248]

प्रथम भारतीय आय कर के अनुभव से स्पष्ट हो गया कि कुछ अधिकारियों और समाचार पत्रों की अशुभ भविष्यवाणी के विपरीत भारत में प्रत्यक्ष कराधान असंभव नही था। साथ ही, अनुभव द्वारा यह भी सिद्ध हुआ कि आय कर के विरुद्ध लोकमत इतना प्रबल था कि असाधारण परिस्थितियो के अलावा इस उपाय का सहारा लेना अबुद्धिमत्तापूर्ण था। इसके अलावा आय कर के कुशल निर्धारण एवं संग्रह के लिए बुनियादी प्रशासनिक ढाचे की आवश्यकता थी। सरकार का विश्वास था[249] कि जनसाधारण की कर विरोधी प्रतिक्रिया कर के सहज रूप के कारण न होकर अल्प वेतन भोगी उन निम्नवर्गीय हिंदुस्तानी कर्मचारियों मे भ्रष्टाचार[250] के विरुद्ध थी जो, अन्य उत्तरदायित्वो का निर्वाह करते हुए, अतिश्रमी ब्रिटिश अधिकरियो के अपर्याप्त निरीक्षण मे कर प्रशासन का कार्य संभालते थे। समाचार पत्र आय कर के विरुद्ध थे। अखबारो में वाणिज्यिक, व्यावसायिक तथा संपत्तिवान वर्गों के विचारों के अनुरूप लिखा जाता था। इन वर्गों पर पहली बार प्रत्यक्ष रूप से अपेक्षाकृत कराधान की ऊची दर रखी गई थी।[251] यह वर्ग कर के विरुद्ध सबसे अधिक मुखर था। विशेष रूप से नीची आय वाले वर्ग (200 रुपये से 500 रुपये तक की आय वाले वर्ग) को कर से मुक्त कर देने के बाद अधिकांश व्यक्ति आय कर की पहुच से बाहर ही थे।

आय कर के कुछ भी दोष क्यो न रहे हों, यह बहुत स्पष्ट था कि सरकार के लिए किसी न किसी रूप में प्रत्यक्ष कर लगाए बिना घाटे को पूरा कर सकना संभव नही था। सरकार ने अनुभव किया कि उसके लिए लाइसेंस कर (1867) तथा सर्टिफिकेट कर (1868) के रूप मे प्रत्यक्ष कर लगाना और अंत मे पुन: आय कर (1869) लगाना आवश्यक था। आये कर के अंतिम वर्ष मे वित्त सदस्य ने कहा था कि 'इस (आय कर को) देश की महान वित्तीय आरक्षित निधि के रूप में लिया जाना चाहिए, और अब इसे पूरी तैयारी के साथ सहज ही उपलब्ध हो सकने की स्थिति में रखा जाएगा जिससे जब भी कोई नई संकटकालीन स्थिति पैदा हो तो इसे लगाया जा सके।'[252]

विभिन्न निर्धारित करों जैसे आय कर, लाइसेंस कर तथा सर्टिफिकेट कर से सरकार को बहुत थोड़े राजस्व की प्राप्ति हुई।

निर्धारित करों द्वारा प्राप्त राजस्व
1858-59 से 1872-73 तक

वर्ष प्रारंभ		राशि (लाख रुपयों में)
1858	मोहतुरफा	1·1
1859	,,	2·2
1860	आय कर (1860 का अधिनियम XXXII) दर 3 प्रतिशत	11·0
1861	आय कर (1860 का अधिनियम XXXII तथा 1861 का अधिनियम XVIII) दर 3 प्रतिशत तथा लाइसेंस कर	20·5
1862	आय कर (1860 का अधिनियम XXXII) दर 3 प्रतिशत	18 8
1863	आय कर (1863 का अधिनियम XXVII) दर 2 प्रतिशत	14·8
1864	,, ,,	12·8
1865	,, ,,	6·9
1866	आय कर निरस्त कर दिया गया	0 2
1867	लाइसेंस कर (1867 का अधिनियम XXI) (क)	6·5
1868	लाइसेंस कर (1868 का अधिनियम IX) (ख)	5·1
1869	आरोही आय कर (1869 का अधिनियम IX) (ग)	11·1
1870	आय कर (1870 का अधिनियम XVI) (घ) रुपये मे 6 पाई	20 7
1871	आय कर (1871 का आधिनियम XII) (ङ) रुपये में 2 पाई	8·2

(क) 200 रुपये न्यूनतम
(ख) 500 रुपये न्यूनतम
(ग) 500 रुपये न्यूनतम, 1 प्रतिशत वेतन पर, उसके ऊपर $2\frac{1}{2}$ प्रतिशत हो जाता था
(घ) 600 रुपये न्यूनतम, रुपये में 6 पाई
(ङ) 750 रुपये न्यूनतम

निर्धारित करों से बहुत थोड़े राजस्व की प्राप्ति के अतिरिक्त तथ्य ध्यान आकर्पित करता है वह है कर के स्वरूप में निरंतर परिवर्तन होना। इससे स्पष्ट होता है कि सरकार इस काल मे अन्वेपित विभिन्न करों से बहुत अधिक प्रसन्न नही थी।

यद्यपि सरकार ने आरोही कराधान का सिद्धांत दृढता के साथ अस्वीकार कर दिया था, तथापि न्यायसंगत कराधान के सिद्धातो की पूर्ण रूप से उपेक्षा नहीं की जा सकी। सरकार ने जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक न्यूनतम आय को कर मुक्त रखने का सिद्धांत स्वीकार किया था। विल्सन के 1860 के अधिनियम (XXXII) के अंतर्गत न्यूनतम आय जिस पर कर लगाया गया था, 200 रुपये थी। लैंग ने 500 रुपये से कम आय को कर मुक्त कर दिया था (1862)। उसने पाया था कि 1861-62 मे लगभग 6 लाख व्यक्तियों पर जिनकी आय 200 रुपये से 500 रुपये तक थी, कर निर्धारित हुआ था और इस वर्ग से कुल प्राप्ति केवल 35 लाख रुपये थी जिसमे से कम से कम 10 लाख रुपया कर संग्रह की लागत के रूप मे व्यय हो गया। कर संग्रह की भारी लागत और कम आय वाले बड़े वर्ग पर कर निर्धारण से थोड़ी प्राप्ति वे प्रशासनिक आधार थे जिनके कारण 200 रुपये वार्षिक से कम आय वाले व्यक्तियों को कर मुक्त रखना ही उपयुक्त था। बाद के निर्धारित करो मे (1867 के लाइसेंस शुल्क को छोड़ कर) कोई भी कर 500 रुपये से कम आय वाले वर्ग पर नही लगाया गया। 1870 मे (1870 के अधिनियम XVI द्वारा) इस सीमा को ऊंचा उठा कर 600 रुपये कर दिया गया और 1871 में (अधिनियम XII द्वारा) इसे पुनः बढ़ा कर 750 रुपये कर दिया गया।

न्यायशीलता के सिद्धांत का यह भी अर्थ था कि वर्ग विशेष के साथ भेद भाव नही बरता जाना चाहिए। यही कारण था जिसके आधार पर टैंपिल ने (वाणिज्यिक तथा व्यावसायिक वर्गों पर) लाइसेंस कर को आय कर मे रूपातरित करने का समर्थन किया था।[253] इस संदर्भ मे कलकत्ता ट्रेडर्स एसोसिएशन द्वारा भारत मंत्री के पास भेजे गए एक स्मरण पत्र मे उनके द्वारा दिए गए एक तर्क पर ध्यान दिया जा सकता है। तर्क था कि 'जो आय कर स्थिर संपत्ति से प्राप्त होने वाली आय, अस्थिर स्रोतों से होने वाली आय और व्यावसायिक आय पर समान रूप से दबाव डालता है उसे उचित एवं समान कर नही कहा जा सकता'। याचिका (अर्जी) में कहा गया था कि यह अनुचित है कि लगान जीवी (राटिया) वर्ग के लिए कर की वही दर है जो कारीगरों और व्यापारियों के लिए है, जबकि अर्थव्यवस्था मे लगान जीवी वर्ग का योगदान अल्पतम है।[254] कलकत्ता से भेजे गए एक अन्य स्मरण पत्र मे भी यही प्रधान तर्क दिया गया था। स्मरणपत्र मे कहा गया था कि श्रम से आय प्राप्त करने वालों पर कर का भार अधिक है, और यह मांग की गई थी कि इस वर्ग और संपत्तिवान वर्ग में कराधान की दृष्टि से भेद किया जाना चाहिए।[255] बंगाल चेंबर आफ कामर्स ने बहुत कुछ इसी आधार पर अपनी वैचारिक स्थिति निर्धारित की थी।[256] परंतु आय के स्रोत के आधार पर विभेदीकरण परंपरागत वित्तीय सिद्धातों के प्रतिकूल था।

संदर्भ

1. भारत मंत्री से भारत सरकार को, राजस्व प्रेषण संख्या, 14, 9 जुलाई, 1862।
2. वही, 24, 28 मार्च, 1883।
3. थोमस बेबिंगटन मैकाले, 'क्रिटिकल एंड हिस्टारिकल एससेज', (लंदन, 1867) जिल्द I, पृ० 56।
4. गृह (राजस्व) कार्यविवरण, सितंबर, 1862, संख्या 29, एस० लैंग का मेमो०, 7 अप्रैल, 1862।
5. पूर्वोक्त स्थल।
6. सर जे० लारेंस द्वारा प्रस्तुत विचार, 6 जुलाई, 1862, संसदीय कागजात, हाउस आफ लार्ड्स, 1863, जिल्द 22, पत्रक 87, पृ० 187 और आगे।
7. तुलनीय एरिक स्टोक्स, 'दि इंग्लिश युटीलिटेरियंस एंड इंडिया' (आक्सफोर्ड, 1959), पृ० 117।
8. आर० सी० दत्त, 'दि पीजेंट्री आफ बंगाल' (कलकत्ता, 1875)।
9. आर० सी० दत्त से जे० सी० दत्त को (दिनांक नहीं दिया है), जे० एन० गुप्ता 'लाइफ एंड वर्क आफ रमेश चंद्र दत्त) सी० आई० ई० (लंदन, 1911), पृ० 56।
10. वही, पृ० 58। 1884 में जब बंगाल काश्तकारी कानून बनाया जा रहा था तो इसी प्रकार के दबावों का परिणाम यह हुआ कि रमेश चंद्र दत्त के भूधृति धारी (टेन्योर होल्डर) की स्थिति और उनके अधिकारों में सुधार के विषय में विविध सुझावों को अस्वीकार कर दिया गया। देखें रमेश दत्त से जे० सी० दत्त को, 16 अक्तूबर, 1884· ए० पी० मैकडोनल से आर० दत्त को, दिसंबर, 1884, वही, पृ० 101-103।
11. जे० एन० गुप्ता पूर्वोद्धृत, पृ० 285-87, 289, 291-92। देखें क्रोपोटकिन से पत्र, वही, पृ० 285।
12. भावतोष दत्त, 'दि एवोल्यूशन आफ इकानामिक थिंकिंग इन इंडिया' (कलकत्ता, 1962)।
13. राजस्व कार्यविवरण अप्रैल, 1867, संख्या 20, कलकत्ता ट्रेड्स एसोसिएशन के मास्टर, समिति और सदस्यों द्वारा भारत मंत्री को याचिका, (अर्जी) 22 अप्रैल, 1867, वही मार्च, 1867, संख्या 35, कलकत्ता ट्रेड्स एसोसिएशन द्वारा वायसराय को याचिका, 15 मार्च, 1867।
14. राजस्व कार्यविवरण, अप्रैल, 1867, संख्या 7, एच० डब्ल्यू० आई० वुड, सचिव, बंगाल चेंबर आफ कामर्स से सचिव, गृहविभाग, भारत सरकार, 22 मार्च, 1867।
15. बंबई शहर और द्वीप के 3, 646 हिंदुस्तानी व्यापारियों द्वारा याचिका, 12 अक्तूबर, 1859 'कारेसपाडेंस आन डायरेक्ट टैक्सेशन' (कलकत्ता, 1882) जिल्द I, पृ० 30।
16. देखें, याचिकाएं कलकत्ता से (1859 व 1867), बंबई से (17 अक्तूबर, 1859), मद्रास से (22 सितंबर, 1859), अहमदाबाद से (31 अक्तूबर, 1859), वही, I, पृ० 25-33।
17. तुलनीय एफ० शहाब 'प्रोग्रेसिव टैक्सेशन'. ए स्टडी इन दि डेवलपमेंट आफ दि प्रोग्रेसिव प्रिंसिपल इन दि ब्रिटिश इनकम टैक्स' (आक्सफोर्ड, 1953) पृ० 104, 115 और आगे।
18. भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त संख्या 144, 29 जून, 1860। कैनबोर्न से जे० लारेंस को, 3 नवंबर, 1866, भारत मंत्री के पत्र जिल्द III संख्या 39। मेयो से आरगाइल को

8 मार्च, 1869, बस्ता 34, संख्या 76 मेयो कागजात ।

19. जे० पी० नियोगी 'एवोल्यूशन आफ इंडियन इनकम टैक्स' (लंदन, 1929), अध्याय 1, 2 ।

20. जे० एस० मिल से डब्ल्यू० टी० थोर्नटन, 28 जनवरी, 1862 'दि लैटर्स आफ जान स्टुअर्ट मिल' (संपादक एच० एस० आर० इलियट, लंदन 1910), जिल्द I, पृ० 258 । जे० एस० मिल से एच० एस० मेन को, 1 जनवरी, 1869, वही, जिल्द II, पृ० 169 । उन्नीसवीं शताब्दी में उपयोगितावादी अर्थशास्त्रियों का प्रभाव वैसा ही था जैसा कि अठारहवीं शताब्दी में प्रकृतिवादियों का था । बस उसकी व्यापकता अधिक थी । तुलनीय रजीत गुहा 'ए रूल आफ प्रापर्टी फार बंगाल', (पेरिस, 1963) ।

21. बायर्ड स्मिथ की रिपोर्ट दिनांक 16 अगस्त, 1861 । पी० पी० एच० सी० जिल्द 40, पत्रक 29, पृ० 301 । गृह कार्यविवरण, 7 अक्तूबर, 1861 । लोक शाखा संख्या 20-26 । लार्ड कैनिंग का ज्ञापन दिनांक 3 अक्तूबर, 1861 (के० डब्ल्यू०) जिनमें बायर्ड स्मिथ की रिपोर्ट के पैरा 62-82 की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है । रिपोर्ट में राजस्व के स्थाई बंदोबस्त की सिफारिश की गई है ।

22. गृह राजस्व कार्यविवरण, फरवरी, 1862, संख्या 2, सर जी० सुपर, सचिव, पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत की सरकार से डब्ल्यू० ग्रे, सचिव, भारत सरकार को, 27 जनवरी, 1862 ।

23. आर० डी० मैंगल्स द्वारा असहमति का मेमो०, 3 जुलाई, 1862, पी० पी० एच० एल० 1863, जिल्द 22, कालम 87, पृ० 181-86 ।

24. भारत मंत्री से भारत सरकार को, राजस्व प्रेषण, संख्या 14, 9 जुलाई, 1862 ।

25. वही, 2, 31 दिसंबर 1858 ।

26. वही 14, 9 जुलाई, 1862 ।

27. सर जे० लारेंस द्वारा अभिलिखित विचार, 5 जुलाई, 1862, पी० पी० एच० एल० 1853, जिल्द 22, पत्रक 97, पृ० 187-92 । कैनिंग ने स्थाई बंदोबस्त के विषय में वुड को इस आधार पर सिफारिश की कि इसके द्वारा जमींदार ब्रिटिश सरकार के साथ बंध जाएंगे । उसके शब्दों में 'इसका महत्व यूरोपीय सैनिकों की फौज जैसा ही होगा । कैनिंग से वुड को, 8 अक्तूबर, 1861, वुड कागजात, पद । एस० गोपाल, 'ब्रिटिश पालिसी इन इंडिया', 1858-1905 (कैंब्रिज, 1965) पृ० 11 ।

28. एस० मैंसफील्ड, सिंदे के कमिश्नर द्वारा रिपोर्ट, संख्या 188, 3 जुलाई, 1863, एच० सी० 1863, जिल्द 43, पत्रक 164, पृ० 617-19 ।

29. गृह राजस्व कार्यविवरण, सितंबर, 1862, संख्या 37, डब्ल्यू० म्योर द्वारा मेमो०, 5 दिसंबर, 1862 ।

30. वही, 29, एस० लैंग द्वारा मेमो०, 7 अप्रैल, 1862 ।

31. वही, 22, सचिव, फोर्ट सेंट जार्ज की सरकार से भारत सरकार को, 8 फरवरी 1862, वही, संख्या 37 डब्ल्यू० म्योर, बोर्ड आफ रेवेन्यू एस० डब्ल्यू० पी० का मेमो०, 3 दिसंबर, 1861 ।

32. टी० जे० होवलथर्लो 'दि कंपनी एंड दि क्राउन' (लंदन, 1866) पृ० 239 ।

33. एडवर्ड वेस्ट 'एमीग्रेशन टु ब्रिटिश इंडिया' : 'प्राफिटेबल इन्वेस्टमेंट फार ज्वाइंट स्टाक कंपनीज एंड फार एमीग्रेंट्स हू पजेस कैपिटल''' (लंदन, 1857) । ई० जी० वेकफील्ड के उपनिवेशीकरण

के माध्यम से विकास संबंधी कार्यक्रम के प्रभाव के लिए देखें, ब्रिले थामस, 'माइग्रेशन एंड इकानामिक डेवलपमेंट' (कैंब्रिज, 1954), पृ० 1-14।

34. पेट्रोलियम के स्रोतों के उपयोग के विषय में योजनाओं के प्रारंभिक उल्लेखों में से एक मेयो द्वारा आरगाइल को लिखे गए पत्र में भी है, पत्र का दिनांक 8 अगस्त, 1869। मेयो कागजात बंडल 36, संख्या 192।
35. कोर्ट आफ डायरेक्टर्स से भारत सरकार को, संख्या 6, 6 मई, 1857।
36. भारत मंत्री से भारत सरकार को, राजस्व प्रेषण संख्या 2, 31 दिसंबर, 1858।
37. 'एनुअल रिपोर्ट्स आफ काटन सप्लाई एसोसिएशन,' संख्या 2, 1859 और संख्या 5, सितंबर, 1862। आइजक वाट्स, 'दि आरिजिन एंड प्रोग्रेस आफ दि काटन सप्लाई एसोसिएशन,' (मैनचेस्टर, 1871)' पृ० 119, 125, 131।
38 गृह राजस्व कार्यविवरण, 6 जुलाई, 1861, संख्या 7, सचिव, काटन सप्लाई एसोसिएशन से सचिव, भारत सरकार को, 15 मई 1861।
39. गृह राजस्व कार्यविवरण, 9 दिसंबर, 1861, संख्या 2, ठीक वही, 3 सितंबर, 1861।
40. सूरमीपुर टी कंपनी, कछार के संचालकों द्वारा स्मरण पत्र, 9 फरवरी, 1861; इंडिगो प्लांटर्स एसोसिएशन 20 नवंबर, 1860, काफी प्लांटर्स आफ कुर्ग, 25 जून, 1862; पी० पी० एच० एल० 1863, जिल्द 22, पत्रक 87, पृ० 160-61, वही पृ० 162। लैंड होल्डर्स एंड कमर्शियल एसोसिएशन द्वारा स्मरण पत्र, 31 मई, 1861।
41. गृह राजस्व कार्यविवरण 28 फरवरी, 1861, संख्या 26। भारत सरकार द्वारा प्रस्ताव, वही अगस्त, 1862, संख्या 12-15।
41 ए. गृह राजस्व कार्यविवरण, 26 जुलाई, 1861, संख्या 2। 'आर० थामसन, बोर्ड आफ रेवेन्यू से सचिव, बंगाल सरकार को, 31 मई, 1861।
42. गृह राजस्व कार्यविवरण, 1 अक्तूबर, 1861, संख्या 1, पी० साउर्स की रिपोर्ट, 1 सितंबर, 1861।
43. गृह राजस्व कार्यविवरण, फरवरी, 1862, संख्या 2, सचिव, एन० डब्ल्यू० पी० सरकार से सचिव, भारत सरकार 27 जनवरी, 1862।
44. वही।
45. भारत मंत्री से भारत सरकार को, राजस्व प्रेषण, संख्या 14, 9 जुलाई, 1862।
46. एडवर्ड वेस्ट, 'एमीग्रेशन टु ब्रिटिश इंडिया' (लंदन, 1857)।
47 बंबई के गवर्नर द्वारा मेमो०, 23 फरवरी, 1860। पी० पी० एच० एल० 1863, जिल्द 22, पत्रक 87, पृ० 32।
48. गृह राजस्व कार्यविवरण, 1 अक्तूबर, 1861, संख्या 1, पीड साउर्स, कमिश्नर द्वारा कपास की खेती के विषय में रिपोर्ट, 1 सितंबर, 1861।
49. गृह राजस्व कार्यविवरण, सितंबर, 1862, संख्या 28। सी० बीडन द्वारा मेमो०, 13 मार्च, 1862।
50. गृह राजस्व कार्यविवरण, फरवरी, 1862, संख्या 2। सर जी० कूपर, सचिव, एनट डब्ल्यू० पी० सरकार से डब्ल्यू० ग्रे, सचिव, भारत सरकार को, 27 जनवरी, 1862।

51. गृह राजस्व कार्यविवरण, सितबर, 1862, सख्या 37 । डब्ल्यू म्योर द्वारा कार्यवृत्त, 5 दिसबर, 1861 ।
52. वही ।
53. गृह राजस्व कार्यविवरण, सितबर, 1862, सख्या 24 । ई० पाल्टवी द्वारा मेमो०, 24 दिसबर, 1861, और सख्या 22, सचिव, फोर्ट सेंट जार्ज की सरकार से डब्ल्यू० ग्रे, सचिव, भारत सरकार को, 8 फरवरी, 1862 ।
54 गृह राजस्व कार्यविवरण, सितबर, 1862, सख्या 29। एम० लैंग द्वारा मेमो० 7 अप्रैल, 1862 ।
55. भारत मत्री से भारत सरकार को, राजस्व प्रेषण सख्या 14, 9 जुलाई, 1862 ।
56. सी० वुड से जे० लारेंस को, 15 अक्तूबर, 1864, लारेंस कागजात, भारत मत्री से पत्र, जिल्द I, सख्या 55 ।
57. सी० वुड से जे० लारेंस को, 12 अगस्त, 1865, वही जिल्द II, सख्या 43 ।
58 क्रेनबोर्न से लारेंस को, 3 नवबर, 1866, लारेंस कागजात, भारत मत्री को पत्र, जिल्द III, सख्या 39 ।
59 लारेंस से सी० वुड को, 4 फरवरी, 1865, लारेंस कागजात, भारत मत्री को पत्र, जिल्द IV, सख्या 45 ।
60 मेयो से आरगाइल को, 2 जून, 1871, मेयो कागजात, बडल 43, सख्या 125 ।
61. पूर्वोक्त स्थल ।
62. मेयो से बी० फ्रेर को, 3 जून, 1870, बडल 39, मेयो कागजात, सख्या 156 ।
63 आरगाइल से मेयो को, 28 अप्रैल, 1871 । मेयो कागजात, बडल 49, सख्या 9 । मूल मे तिरछे टाइप हैं ।
64 भारत मत्री से भारत सरकार को, राजस्व प्रेषण, सख्या 14, 9 जुलाई, 1863 ।
65. गृह राजस्व कार्यविवरण, सितबर, 1862, सख्या 28, सी० बीडन द्वारा मेमो०, 13 मार्च, 1862 ।
66. भारत मत्री से भारत सरकार को, राजस्व प्रेषण, सख्या 11, 24 मार्च, 1865 ।
67 वही, 17, 17 मार्च, 1866 ।
68. वही, 29 20 नवबर 1866 ।
69. वही, 15, 23 मार्च, 1867 ।
70 वही,7, 26 मई, 1871 ।
71. वही, 24, 28 मार्च, 1883 ।
72. वही, 26, 27 जुलाई, 1871 ।
73. वही, 14, 9 जुलाई, 1862 ।
74 पूर्वोक्त स्थल ।
75. क्रेनबोर्न से लारेंस को, 2 जनवरी, 1867, लारेंस कागजात, भारत मत्री से पत्र, जिल्द IV, सख्या 2 ।
75-ए हाउस आफ कामस मे 14 फरवरी, 1859 के अपने वित्तीय विवरण मे लार्ड स्टेनले ने 1800

से 1859 तक की अवधि के अफीम राजस्व के आंकड़ो का विश्लेषण प्रस्तुत किया। देखें, 'फाइनेंशियल स्टेटमेंट्स 'रिलेटिंग टु इंडिया'...रिप्रिंटेड फ्राम हसार्डस पालियामेंटरी डिबेट्स' (कलकत्ता, 1871) पृ० 136-37। सकल अफीम राजस्व 1810 मे 9,35,996 पौंड, 1820 में 14,36,432 पौंड, 1830 में 12,53,895 पौंड, 1840 मे 13,41,093 पौंड तथा 1850 मे 35,58,094 पौंड था।

76. सेसिल बीडन का प्रवर समिति (1871) के सामने साक्ष्य, प्रश्न 3138, 3199 (पटना एजेंसी मे बिहार के सभी जिले और छोटा नागपुर के कुछ हिस्से शामिल थे। बनारस एजेंसी में बनारस और इलाहाबाद डिवीजन तथा अवध आते थे।
77. वित्त कार्यविवरण, अक्तूबर, 1864, लेखा शाखा, सख्या 105, परिशिष्ट ए। एम० एच० फास्टर तथा एच० डब्ल्यू० ह्विफिन की रिपोर्ट (7 सितबर, 1864), पृ० 22।
78. जे० स्ट्रैची व आर० स्ट्रैची पूर्वोद्धृत, पृ० 242।
79. वित्त कार्यविवरण, सितंबर, 1871, पृथक राजस्व सख्या 11, अफीम विभाग मे प्रशासनिक व्यवस्था को बदलने के औचित्य पर विचार करने के लिए नियुक्त समिति की रिपोर्ट।
80. गृह कार्यविवरण, 21 अक्तूबर, 1861, पृथक राजस्व सख्या 3, ई० एच० लशिंगटन, सचिव, बंगाल सरकार से सचिव, बोर्ड आफ रेवेन्यू को, 12 सितबर, 1861।
81. गृह कार्यविवरण, 1 जुलाई, 1861, पृथक राजस्व सख्या 1, सचिव, बगाल सरकार से सचिव, भारत सरकार को, गृह विभाग, 25 जून, 1861। वही सख्या 4। वित्त विभाग द्वारा प्रस्ताव, 29 जून, 1861।
82. वित्त कार्यविवरण, लेखा शाखा, मार्च, 1860, सख्या 4, वित्त सचिव, भारत सरकार से सचिव, बगाल सरकार को, 7 मार्च, 1850।
83. गृह कार्यविवरण, पृथक राजस्व 1 जुलाई, 1871, सख्या 1, सचिव, बंगाल सरकार से सचिव, भारत सरकार को, 25 जून, 1861।
84. गृह कार्यविवरण, पृथक राजस्व सख्या 2, अफीम एजेंट बिहार से सचिव, बोर्ड आफ रेवेन्यू, निचले प्रात, 15 फरवरी, 1861। बगाल मे पोस्त की खेती के अतर्गत 1857-58 मे 3,44,650 बीघा, 1858-59 मे 3,41,498 बीघा, 1959-60 मे 3,12,707 बीघा और 1860-61 मे 2,81,126 बीघा भूमि थी।
85. विधान परिषद कार्यविवरण (साराश) 1865, जिल्द IV (नई सीरीज), पृ० 164।
86. गृह कार्यविवरण, पृथक राजस्व, 27 जुलाई, 1860, सख्या 28, सचिव, बगाल सरकार से सचिव, भारत सरकार (गृह) को, 14 जुलाई, 1860। सर राबर्ट हैमिल्टन से सचिव, भारत सरकार को, सख्या 460, 4 अक्तूबर, 1858; अफीम के सबध मे सर आर० हैमिल्टन की टिप्पणी, 13 दिसबर, 1858।
87. गृह कार्यविवरण, पृथक राजस्व, 27 जुलाई, 1860, सख्या 58, सचिव, बगाल सरकार से सचिव भारत सरकार (गृह) को, 14 जुलाई, 1860।
88. पूर्वोक्त स्थल।
89. गृह कार्यविवरण, पृथक राजस्व, सख्या 29, ए० ईडन, कार्यवाहक सचिव बोर्ड आफ रेवेन्यू से सचिव, बगाल सरकार को, 21 नवबर, 1859।

90 पूर्वोक्त स्थल।

91. गृह कार्यविवरण, पृथक राजस्व 15 सितंबर, 1860। आर० एन० फरक्वँहर्सन। बिहार के अफीम एजेंट से सचिव, बोर्ड आफ रेवेन्यू, निचले प्रांत को, 14 अप्रैल, 1859।

92. प्रवर समिति (1871) के सामने सी० बीडन का साक्ष्य, प्रश्न 3414-18।

93 गृह कार्यविवरण पृथक राजस्व, 15 सितंबर, 1880। बिहार के अफीम एजेंट से सचिव, बोर्ड आफ रेवेन्यू, निचले प्रांत को, 14 अप्रैल, 1859।

94. गृह कार्यविवरण, पृथक राजस्व, 27 जुलाई, 1860। संख्या 29, सचिव, बोर्ड आफ रेवेन्यू से सचिव, बंगाल सरकार को, 21 नवंबर, 1859।

95 गृह कार्यविवरण पृथक राजस्व, संख्या 26। जे० जी० पग्रे, अवर उप अफीम एजेंट, औलीगंज से अफीम एजेंट, बिहार को, 10 मार्च, 1859।

96 गृह कार्यविवरण पृथक राजस्व, 15 सितंबर, 1860, संख्या 23। आर० किंग, अवर उप अफीम एजेंट, पटना से अफीम एजेंट बिहार को, 10 मार्च, 1859।

97 पूर्वोक्त स्थल।

98 प्रवर समिति (1971) के सामने सर आर० हैमिल्टन का साक्ष्य, प्रश्न 5008-24।

99. सर सी० बीडन का साक्ष्य, पूर्वोद्धृत, प्रश्न 3314-21, 3516-34, 3573-75। सर एफ० हालीडे का साक्ष्य, पूर्वोद्धृत, प्रश्न 5125-32, 5290-92।

100 प्रवर समिति (1861) के सामने आर० एन० हैमिल्टन का साक्ष्य प्रश्न 4889-4909, 4886-87, 4898-4903।

101. गृह कार्यविवरण पृथक राजस्व, 4 जून, 1860, संख्या 4, सचिव, बंबई सरकार से सचिव, भारत सरकार (गृह) को 16 मई, 1860।

102. गृह कार्यविवरण पृथक राजस्व, 4 जून, 1860, संख्या 8, सचिव (गृह), भारत सरकार से सचिव, बंबई सरकार को, 4 जून, 1860।

103. गृह कार्यविवरण पृथक राजस्व, 4 जून, 1860, संख्या 1, भारत सरकार से बंबई सरकार को, 10 मई, 1860।

104. गृह कार्यविवरण पृथक राजस्व, 14 सितंबर, 1860, संख्या 18, डेविड सेसून एंड कंपनी तथा दूसरे अफीम व्यापारियों से सपरिषद गवर्नर बंबई को, स्मरणपत्र, 15 अगस्त, 1860।

105. गृह कार्यविवरण पृथक राजस्व, 22 अक्तूबर, 1861, संख्या 11। भारत सरकार से बंबई सरकार को तार, 22 अगस्त, 1861। गृह कार्य विवरण पृथक राजस्व, अप्रैल, 1861, संख्या 1-3।

106 गृह कार्यविवरण पृथक राजस्व, अक्तूबर 1861, संख्या 10। मालवा के एजेंट से नमक व अफीम कमिश्नर बंबई को, 8 जुलाई, 1861 व 11 जुलाई, 1861।

107. गृह कार्यविवरण पृथक राजस्व, 22 अक्तूबर, 1861, संख्या 10। फोर्ब्स एंड कंपनी से सीमा शुल्क कमिश्नर को, 17 जुलाई, 1861, संख्या 16। डी० सेसून एंड कंपनी तथा बंबई के दूसरे अफीम के व्यापारियों से बंबई के गवर्नर सर सी० आर० क्लर्क को, 16 सितंबर, 1861।

108. गृह कार्यविवरण पृथक राजस्व, अक्तूबर, 1861, संख्या 17। सचिव, भारत सरकार से

सचिव, बबई सरकार को, 22 अक्तूबर, 1861।

109. भारत सरकार से भारत मत्री को, वित्त प्रेषण सख्या 144, 22 जून, 1860।
110. देखें, जे स्ट्रैची व आर० स्ट्रैची, पूर्वोद्धृत, पृ० 240।
111. विधान परिषद कार्यविवरण (साराश) 1870, जिल्द IX (नई सीरीज), पृ० 207।
112. वही, 1866, जिल्द V (नई सीरीज), पृ० 133।
113. वित्त कार्यविवरण मई, 1871, पृथक राजस्व सख्या 16। मेजर जनरल एच० डी० डैली, गृह विभाग, सरकार (4 अप्रैल, 1871)।
114. पूर्वोक्त स्थल।
115. विधान परिषद कार्य विवरण (साराश) 1868, जिल्द VII (नई सीरीज), पृ० 149।
116. जे० स्ट्रैची व आर० स्ट्रैची, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 245।
117. नोर्थकोट से जे० लारेंस को, 26 मार्च, 1868। (लारेंस कागजात, भारत मंत्री से लारेंस को पत्रों की जिल्द V, सख्या 15)। और भी, नार्थकोट से लारेंस को, 8 मई, 1868 (पूर्वोक्त स्थल सख्या 23) और 30 सितबर, 1868 (पूर्वोक्त स्थल सख्या 47)।
118 भारत सरकार से भारत मत्री को, वित्त प्रेषण सख्या 245, 22 सितबर, 1868।
119. वित्त कार्यविवरण सितबर, 1868, लेखा शाखा सख्या 166-85। अफीम आरक्षित निधि के सबध मे भारत सरकार के विचार।
120. वित्त कार्यविवरण सितंबर, 1868, लेखा शाखा सख्या 163। एच० एम० ड्यूरेंड का मेमो० (17 अगस्त, 1868)। वित्त कार्यविवरण अक्तूबर, 1858 पृथक राजस्व सख्या 32। डब्ल्यू० आर० मैंसफील्ड का मेमो० (28 अगस्त, 1868)।
121. प्रवर समिति (1871) के सामने सर सी० बीडन का साक्ष्य पी० पी० एच० सी० 1871, जिल्द 8, पत्रक 263, प्रश्न 3240-45, 3253-69।
122 जे० स्ट्रैची व आर० स्ट्रैची, पूर्वोद्धृत, पृ० 245-47।
123. विधान परिषद कार्यविवरण 1869, जिल्द VIII, पृ० 119।
124. *वित्त कार्य विवरण अप्रैल, 1868, पृथक राजस्व सख्या 6। मेसर्स जार्डाइन स्किनर एड कपनी* तथा कुछ दूसरी कपनियों से सचिव, वित्त विभाग, भारत सरकार को (3 अप्रैल, 1862)।
125. जे० स्ट्रैची व आर० स्ट्रैची, पूर्वोद्धृत, पृ० 247।
126 विधान परिषद कार्यविवरण (साराश) जिल्द XI (नई सीरीज), पृ० 263।
127. गृह कार्यविवरण पृथक राजस्व 21 अक्तूबर, 1861, सख्या 2, कप्तान एफ० जोन्स, राजनीतिक रेजीडेंट, फारस की खाड़ी से सचिव, बबई सरकार को (16 जुलाई 1861)।
128 गृह कार्यविवरण पृथक राजस्व, 10 फरवरी, 1862, सख्या 2, कप्तान एफ० जोन्स से सचिव, बबई सरकार को (9 दिसबर, 1861)।
129 वित्त कार्यविवरण पृथक राजस्व, फरवरी, 1868, सख्या 101-10 दर्रों और फारस की खाड़ी के क्षेत्रों में पैदा की जाने वाली अफीम को सरकारी राजस्व का स्रोत बनाने के प्रश्न के सबध में।
130. सेसिल बीडन का ससदीय प्रवर समिति (1871) के सामने साक्ष्य, प्रश्न 3344-51।
131. वित्त कार्यविवरण पृथक राजस्व, अक्तूबर, 1871, सख्या 41। लेफ्टिनेंट कर्नल स्टुअर्ट बेली,

राजनीतिक रेजीडेंट, फारस की खाड़ी से सचिव, बंबई सरकार को (17 जुलाई, 1871)।

132. वित्त कार्यविवरण जुलाई, 1871, परिशिष्ट, चीन में अफीम की खेती के बारे में वित्त विभाग द्वारा तैयार किया गया ज्ञापन।
133 गृह कार्यविवरण, पृथक राजस्व 19 अगस्त, 1861, सख्या 21, औपनिवेशिक सचिव, हागकाग से सचिव, भारत सरकार को (17 जुलाई, 1861), डब्ल्यू० एम० एफ० मेयर्स, ब्रिटिश वाणिज्य दूत, कैंटन।
134 गृह कार्यविवरण, पृथक राजस्व, 21 अक्तूबर, 1861, सख्या 6, औपनिवेशिक सचिव, हागकाग से सचिव, भारत सरकार को (10 सितबर, 1861)। लेफ्टिनेंट कर्नल सरेल की रिपोर्ट।
135. वित्त कार्यविवरण, जुलाई 1871। 23 फरवरी, 1871 का ज्ञापन।
136. गृह पृथक राजस्व 22 जुलाई, 1863। विदेशी (राजनीतिक) कार्यविवरण से 30 जून, 1863, सख्या 319 से उद्धरण, ए० पी० फायरे, वर्मा के चीफ कमिश्नर से सचिव विदेश विभाग, भारत सरकार को, पत्र दिनाक 10 फरवरी, 1863; 1 मई, 1863; 20 नवबर, 1862, 12 दिसबर, 1862।
137. जार्डाइन स्किनर एंड कंपनी के श्री एजरा, जार्डाइन मैथेसन एड कपनी के कैंमविक तथा एप्कार एड कपनी, देखें वित्त कार्यविवरण, जुलाई, 1871, दिनाक 23 फरवरी, 1871 का ज्ञापन।
138. वित्त कार्यविवरण, जुलाई, 1871, परिशिष्ट, वित्त विभाग का ज्ञापन, 23 फरवरी, 1871।
139. यह सर आर० आलकाक का मत था। प्रवर समिति (1871) के सामने साक्ष्य, प्रश्न 5696।
140. एफ० जे० हालीडे का प्रवर समिति (1871) के सामने साक्ष्य, प्रश्न 3660-61; 3677-79।
141. मेयो से आरगाइल को, 17 अक्तूबर, 1869 (मेयो कागजात, बडल 37, सख्या 285)।
142. 'फ्रैंड आफ इंडिया', सपादकीय, 16 दिसबर, 1869, वही 'ओपियम रेवेन्यू इन डेंजर', 30 दिसबर, 1869। मेयो से आर्बुथनाट को, 23 अगस्त, 1869 (मेयो कागजात), बडल 36, सख्या 210) मैसर्स जार्डाइन स्किनर कपनी के स्किनर का मत उद्धृत।
143. मेयो से आर० आलकाक को, 17 अक्तूबर, 1869 (मेयो कागजात, बडल 37, सख्या 286)।
144. मेयो से आरगाइल को, 23 जनवरी, 1870 (मेयो कागजात, बडल 35, सख्या 28)।
145. मेयो से डर्बी के अर्ल को, 30 जनवरी, 1870 (मेयो कागजात, बंडल 35, सख्या 40)।
146. वित्त कार्यविवरण, जुलाई. 1871, परिशिष्ट, वित्त विभाग का ज्ञापन, 23 फरवरी, 1871।
147. वही, पृथक राजस्व सख्या 21। अफीम परीक्षक, निचले प्रात से अवर सचिव, बोर्ड आफ रेवेन्यू को, 20 फरवरी, 1870, सख्या 25। शेपार्ड से बनारस के अफीम एजेंट को, 23 सितबर, 1870।
148. वित्त कार्यविवरण अक्तूबर, 1871, पृथक राजस्व सख्या 39। जी० डब्ल्यू० केन, हाकाउ स्थिति वाणिज्य दूत से सचिव. वित्त विभाग, भारत सरकार को, 31 जुलाई, 1871।
149. वही जेचुएन, यनान तथा केवीचाउ में 1869 में क्रमश: 6,000; 20,000 तथा 15000 पिकल उत्पादन हुआ।

150. *वित्त कार्यविवरण अक्तूबर, 1871, पृथक राजस्व सख्या 29। हांकाउ स्थित वाणिज्य दूत से सचिव, वित्त विभाग, भारत सरकार, 31 जुलाई, 1871।*
151. पूर्वोक्त स्थल।
152. मेयो से आरगाइल को, 31 जनवरी, 1870 (मेयो कागजात, बडल 35, संख्या 41)।
153. मेयो से वी० फेर को, 3 जून, 1870 (मेयो कागजात, बडल 39, सख्या 156)।
154. आरगाइल से मेयो को, 5 मई, 1870 (मेयो कागजात, बडल 48, सख्या 14)।
155. वही, 1 जुलाई, 1870 (मेयो कागजात, बंडल 48, सख्या 19)।
156. मेयो से वी० फ्रेर को, 3 जून, 1870 (मेयो कागजात, बंडल 39, संख्या 156)।
157. पूर्वोक्त स्थल।
158. विधान परिषद कार्यविवरण (पुरानी सीरीज) जिल्द VII, पृ० 351-52, एस० लैंग का वित्तीय विवरण।
159. वित्त कार्यविवरण, जुलाई, 1869, पृथक राजस्व सख्या 54, भारत सरकार से भारत मंत्री को, 22 जुलाई, 1869।
160. मैनचेस्टर चेंबर आफ कामर्स कार्यविवरण, 13 मार्च 1862, रेडफोर्ड द्वारा उद्धृत, पूर्वोद्धृत, पृ० 25। वित्त कार्यविवरण जुलाई, 1869, पृथक राजस्व सख्या 51, सचिव, चेंबर आफ कामर्स, डंडी, से भारत उपमंत्री को, 5 मार्च, 1869।
161. इग्लैंड से वस्त्रो का निर्यात (करोड़ गज)

	कुल	भारत
1850	135.8	31.4 (23 1 प्रतिशत)
1860	277.9	82.5 (29 7 ,,)
1870	325.3	92.3 (28.4 ,,)
1880	449.6	181.3 (40.3 ,,)

(कालम 3 का कालम 2 के साथ अनुपात कोष्ठक मे दिया गया है) देखें रेडफोर्ड, पूर्वोद्धृत, पृ० 22। यह स्मरणीय है कि ये आकडे मात्रा को प्रकट करते हैं न कि मूल्य को। अच्छी किस्म के कीमती वस्त्रो का निर्यात यूरोपीय और अमरीकी बाजारो को होता था।

162. इन आंकडो मे 'विदेशी' अर्थात गैर ब्रिटिश माल भी सम्मिलित हैं लेकिन इस अवधि में 'विदेशी' कपडे का आयात नगण्य था। उपनिवेशो को ब्रिटिश सूती वस्त्रो के निर्यात के बारे में देखें, डब्ल्यू० श्लोट, 'ब्रिटिश ओवरसीज ट्रेड 1870-1930' पृ० 97 व सारणी 25, पृ० 172-74 (अनुवाद डब्ल्य० ओ० हेडरसन तथा डब्ल्यू० एच० शैलनर द्वारा)।
163. रेडफोर्ड, पूर्वोद्धृत, पृ० 26।
164. वित्त कार्यविवरण अगस्त, 1875, सख्या 19-27 (के० डब्ल्यू०) पृ० 20-21। रेडफोर्ड, पूर्वोद्धृत, पृ० 29 पर मैनचेस्टर चेंबर आफ कामर्स के कार्यविवरण से उद्धरण: 'अब (1874) बबई और उसके आसपास भीतरी प्रदेश मे 20 सूती मिलें हैं।' यह गलत मालूम होता है। उस समय बबई मे 14 से अधिक मिलें नही थी।
165. राजस्व कार्यविवरण, 1 दिसबर, 1863, सख्या 2।
166. वही, 1 जून, 1864, सख्या 22, जे० एम० पैटन, सचिव, सदर बोर्ड आफ रेवेन्यू से सचिव,

एन० डब्ल्यू० पी० सरकार को, 6 जनवरी, 1864।

167. राजस्व कार्यविवरण जून, 1864, सख्या 23, ठीक वही दिनाक 16 मार्च, 1864।

168. वही, अंग्रेजी कपड़े की माग मे 1862-64 की अवधि मे कमी के विविध कारण थे। ये कारण थे—आतरिक मुद्रा बाजार में तगी 'उपलब्ध पूजी को अधिक लाभदायक कपास के निर्यात सबंधी सट्टे मे लगाना', और सूती कपड़े का ऊनी व सन के कपड़ों से प्रतिस्थापन। पूर्वोक्त स्थल, पश्चिमोत्तर प्रात के बोर्ड आफ रेवेन्यू की टिप्पणी जिलो से मिलने वाली सूचनाओ पर आधारित हैं। राजस्व कार्यविवरण, जनवरी, 1864, सख्या 23 (सदर बोर्ड आफ रेवेन्यू के परिपत्र आदेश ए, दिनाक 12 जनवरी, के प्राप्त होने वाले उत्तरो का साराश) और राजस्व कार्यविवरण, नवंबर, 1864, सख्या 24, डब्ल्यू० सी० प्लोडवन, सचिव बोर्ड आफ रेवेन्यू, एन, डब्ल्यू० पी० से सचिव, एन० डब्ल्यू० पी० सरकार को, 24 अक्तूबर, 1864।

169 वित्त कार्यविवरण, दिसबर, 1264, पृथक राजस्व प्रकीर्ण सख्या 574, सचिव, बोर्ड आफ रेवेन्यू, निचले प्रात से अवर सचिव, बगाल सरकार, 28 नवबर, 1864। वही सख्या 575, अवध के चीफ कमिश्नर के सचिव से सचिव, भारत सरकार को, 22 दिसबर, 1864। वित्त कार्यविवरण, जनवरी, 1865, पृथक राजस्व, प्रकीर्ण संख्या 53, मध्य प्रात के चीफ कमिश्नर के सचिव से सचिव, भारत सरकार को, 21 दिसबर, 1864।

170. वित्त कार्यविवरण, जनवरी, 1865, पृथक राजस्व (प्रकीर्ण) सख्या 53, मध्य प्रात के चीफ कमिश्नर के सचिव से सचिव, भारत सरकार को, 21 दिसबर, 1864।

171 विधान परिषद कार्यविवरण, 1863, जिल्द II (नई सीरीज) पृ० 82।

172. थोडे से उद्यमकर्ताओ जैसे कि कलकत्ते के पास के जूट के कारखानो को चलाने वाले स्काटिश लोगो के भिन्न विचार हो सकते हैं।

173. गृह पृथक राजस्व, 31 मार्च, 1862 सख्या 7, डब्ल्यू० एस० फिट्ज विलियम, अध्यक्ष, बगाल चेंबर आफ कामर्स से सपरिषद गवर्नर जनरल को, 27 मार्च, 1862।

174. विधान परिषद कार्यविवरण (पुरानी सीरीज) जिल्द VI, 1860, पृ० 115-17।

175. भारत सरकार से भारत मत्री को, वित्त सख्या 65, 6 अप्रैल, 1865। भारत मत्री से भारत सरकार को वित्त सख्या 114, 9 मई, 1865।

176. भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त सख्या 114, 9 मई, 1865। जब स्वय भारत सरकार ने निर्यात शुल्क समाप्त कर दिया तो भारत मत्री ने बहुत ही आश्वस्त अनुभव किया। वुड से लारेंस को, 16 सितबर, 1865। लारेंस कागजात, भारत मत्री से पत्र, जिल्द II, सख्या 50।

177. वुड से लारेंस को, 12 अगस्त, 1865, लारेंस कागजात, भारत मंत्री से पत्र, जिल्द II, संख्या 45। वुड ने लिखा कि वह सिद्धात रूप मे निर्यात शुल्क के विरोध में नही था, लेकिन आयकर हटाकर उससे होने वाली हानि को पूरा करने के लिए निर्यात शुल्क को लगाना भूल थी।

178. 1860 का एक्ट X, 1862 के एक्ट XI व XXIII।

179 गृह पृथक राजस्व 18 सितबर, 1862। भारत सरकार की वित्त विभाग द्वारा टिप्पणी, 9 अप्रैल, 1861। मशीनो के आयात के सबंध में टैरिफ नीति का पुनरावलोकन करते हुए भारत सरकार ने इस बात पर विचार किया कि क्या सभी मशीनो को पूर्ण रूप से शुल्क मुक्त

कर दिया जाना चाहिए (1845 के निर्णय के अनुसार) या फिर कुछ विशेष प्रकार की मशीनो को शुल्क से मुक्त रखना चाहिए (जैसा कि 1859 के एक्ट XII के अनुसार था)। 1860 के एक्ट X के अनुसार सभी मशीनें शुल्क मुक्त थी और स्टीमर का तला बनाने के लिए प्रयोग मे आने वाली चादरें जुलाई, 1860 की विज्ञप्ति के अनुसार शुल्क से मुक्त थी। परतु स्पूनर टैरिफ समिति (गृह पृथक राजस्व, सितबर, 1862, सख्या 13, आर० स्पूनर से सचिव, भारत सरकार को, 10 जनवरी, 1861) ने सुझाव दिया था कि कुछ विशेष प्रकार की मशीनो को ही शुल्क से मुक्त रखना चाहिए। इस सुझाव को स्वीकार कर लिया गया (गृह पृथक राजस्व अप्रैल, 1861, सख्या 14, भारत सरकार का वित्त विभाग मे प्रस्ताव, 9 अप्रैल, 1861) और 1862 के एक्ट XI मे केवल कृषि, नौ परिवहन, खनन निर्माण और रेल परिवहन के लिए प्रयोग की जाने वाली मशीनो को शुल्क मुक्त करने के लिए सशोधन किया गया (गृह पृथक राजस्व, अगस्त, 1862, सख्या 26, भारत सरकार द्वारा प्रस्ताव, 18 अगस्त, 1862)।

180. भारत सरकार से भारत मत्री को, वित्त सख्या 73, 8 मार्च, 1867। 1875 मे टैरिफ समिति ने सुझाव दिया कि मशीनो पर शुल्क लगाया जाना चाहिए। इस सबध में बहुत मनोरजक विवाद हुआ। टैरिफ समिति ने तर्क दिया कि यूरोपीय मशीनो के आयात को प्रोत्साहन देने के लिए किए गए 'अनुग्रह' को बनाए रखने का कोई कारण नही है। इसके विपरीत मत था कि 'जनाधिक्य के कारण सभावित सामाजिक कठिनाइयो को दूर करने के साधनो के रूप में यदि हमें किसी एक बात पर अन्य बातो से अधिक ध्यान देना चाहिए तो वह औद्योगिक वर्ग का निर्माण और भूमि पर जन भार को आधा करके इतना कर देना है कि लोग उस पर ठीक प्रकार से जीवन-यापन कर सकें।' (वित्त कार्यविवरण, अगस्त, 1875, सख्या 20, सचिव, टैरिफ समिति से सचिव, भारत सरकार को, 27 फरवरी, 1875 और एशले ईडन की टिप्पणी, दिनाक नही दिया है, के० डब्ल्यू०, पृ० 9, वित्त कार्यविवरण, अगस्त, 1875, सख्या 19-27)।

181 वित्त कार्यविवरण, 1867, सीमा शुल्क समिति की रिपोर्ट, 7 जनवरी, 1867, जे० एम० क्राफोर्ड की विसम्मति टिप्पणी, वित्त कार्यविवरण, पृथक राजस्व, मार्च 1866, सख्या 482। भारत मत्री से भारत सरकार को, वित्त पृथक राजस्व, सख्या 15, सितबर, 1865।

182. एस० बी० साउल, 'स्टडीज इन ब्रिटिश ओवरसीज ट्रेड 1870-1914' (लिवरपूल, 1960) पृ० 192।

183. वित्त कार्यविवरण, जुलाई, 1869, पृथक राजस्व सख्या 51। आर० स्टरोक, सचिव, चेंबर आफ कामर्स, डडी, से भारत उपमंत्री को, 5 मार्च, 1869।

184. वित्त कार्यविवरण, जुलाई, 1869, पृथक राजस्व सख्या 54, भारत सरकार से भारत मत्री को 22 जुलाई, 1869।

185. वित्त कार्यविवरण, पृथक राजस्व, जनवरी, 1867, सख्या 11। बगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर का दिनाक 28 नवबर, 1866 का कार्यवृत्त जो भारत सरकार को दिनांक 16 जनवरी, 1867 को भेजा गया था। वित्त कार्यविवरण पृथक राजस्व, मार्च, 1867, सख्या 10, अवर सचिव बंगाल सरकार से वित्त सचिव, भारत सरकार को, 18 फरवरी, 1867।

186. वित्त कार्यविवरण, पृथक राजस्व मार्च, 1867, सख्या 4, भारत सरकार से भारत मत्री को, 21 दिसबर, 1866।
187. वित्त कार्यविवरण पृथक राजस्व, अप्रैल, 1867, सख्या 26, ब्रिटिश बर्मा के व्यापारियो से चीफ कमिश्नर, ब्रिटिश बर्मा को, 20 मार्च, 1867। वही सख्या 27, मोलमीन के व्यापारियो से कमिश्नर, टिनेसिरिम डिवीजन को, वित्त कार्यविवरण, पृथक, राजस्व, मार्च, 1871, सख्या 25, सचिव, ईस्ट इडिया एसोसिएशन, लिवरपूल, से भारत मत्री को, 1 फरवरी, 1871।
188. वित्त कार्यविवरण, पृथक राजस्व, मार्च, 1871, सख्या 23। भारत मंत्री से भारत सरकार को, 10 मार्च, 1870।
189 वित्त कार्यविवरण, जनवरी, 1873, सख्या 4, सपरिषद गवर्नर जनरल का आदेश, 4 जनवरी, 1873।
190 एस० वी० साउल, पूर्वोद्धृत, पृ० 197-98।
191. सर सेसिल बीडन का भारतीय वित्त से सबधित प्रवर समिति के सामने साक्ष्य, पी० पी० एच० सी० 1871, जिल्द 8, पत्रक 363, 2874-2901।
192 वही, 2904-08, गृह कार्यविवरण 10 जून, 1863, पृथक राजस्व, सख्या 8, सचिव, बगाल सरकार से सचिव, बोर्ड आफ रेवेन्यू को, 16 अप्रैल, 1863।
193 पी० पी० एच० सी 1871, जिल्द 8, पृथक 363, 2926-28।
194 गृह कार्यविवरण, 18 मार्च 1861, पृथक राजस्व सख्या 20, डब्ल्यू०ग्रे सचिव, भारत सरकार से सचिव, बगाल सरकार को, 18 मार्च, 1861।
195 पी० पी० एच० सी० 1871, जिल्द 8, पत्रक 363 2981-99।
196 भारत सरकार से भारत मत्री को, पृथक राजस्व, प्रेषण सख्या 20, 15 अगस्त, 1859।
197. गृह कार्यविवरण, 3 फरवरी 1860, पृथक राजस्व, सख्या 2, भारत मत्री से भारत सरकार को, पृथक राजस्व, प्रेषण सख्या 16, 19 दिसबर, 1859।
198. गृह पृथक राजस्व कार्यविवरण, 11 अप्रैल, 1862, सख्या 6। ए० ईडन, सचिव, बोर्ड आफ रेवेन्यू, से सचिव, बगाल सरकार को, 27 फरवरी, 1862।
199 भारत सरकार से भारत मत्री को, वित्त संख्या 38, 7 मार्च, 1862।
200. पी० पी० एच० सी० 1871, जिल्द 8, पत्रक 363, 3170-75।
201 भारतीय वित्त से सबधित प्रवर समिति के सामने डब्ल्यू० जी० पैंडर का साक्ष्य, पी० पी एच० सी० 1871, जिल्द 8, पत्रक 363, 4140-47। गृह कार्यविवरण, 20 अप्रैल, 1861, पृथक राजस्व सख्या 20, सचिव, भारत सरकार से सचिव, बबई सरकार को, 20 अप्रैल, 1861। वित्त कार्यविवरण, जून, 1865, पृथक राजस्व संख्या 309, सचिव, बबई सरकार से सचिव, वित्त सचिव, भारत सरकार को, 7 जनवरी, 1865। वित्त कार्य विवरण, अक्तूबर, 1859। पृथक राजस्व सख्या 36, वही सख्या 38। भारत सरकार से भारत मत्री को वित्त सख्या 243, 4 अक्तूबर, 1869।
202. भारतीय वित्त से सबधित प्रवर समिति के सामने सर टी० पाइक्रोफ्ट का साक्ष्य, पी० पी० एच० सी० 1871, जिल्द 8, पत्रक 363, 3689-97।
203. गृह कार्यविवरण 23 सितबर, 1869, पृथक राजस्व संख्या 29। मद्रास बोर्ड आफ रेवेन्यू के

कार्यविवरण से उद्धरण, 27 मार्च, 1863। वित्त कार्यविवरण अक्तूबर, 1869, पृथक राजस्व सख्या 33, सचिव, मद्रास सरकार से सचिव, भारत सरकार, 17 सितबर, 1869। वित्त कार्यविवरण अक्तूबर, 1869, पृथक राजस्व सख्या 38, भारत सरकार से भारत मत्री को, वित्त 249, 4 अक्तूबर, 1868।

204. मेयो से जे० स्ट्रैची को, 10 जनवरी, 1860, मेयो कागजात, बंडल 35, सख्या 10, मेयो ने जोधपुर के महाराजा पर राजनीतिक दबाव डालने के विषय मे विचार किया और सोचा कि उसके नमक के लिए ब्रिटिश इडियन रेलो के द्वारा यातायात की सुविधा न देकर उसकी जड़ नीचे से काटी जा सकेगी। नमक की भीलो से सबधित पट्टे की व्यवस्था करने मे ए० ओ० ह्यूम की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण थी। वित्त कार्यविवरण, जनवरी, ,1870, व्यय की शाखा सख्या 4, ए० ओ० ह्यूम, आतरिक सीमा शुल्क कमिश्नर से सचिव, भारत सरकार को।

205 देखें,'डब्ल्यू० जी० पैंडर की नमक विभाग प्रशासन से सबधित रिपोर्ट, दिनाक 30 जुलाई, 1870। वित्त कार्यविवरण जून, 1871, पृथक राजस्व सख्या 80। वित्त कार्यविवरण, जनवरी, 1866, सख्या 45, नमक तथा चीनी शुल्को की सग्रह के सबध मे अधिनियम। जे० स्ट्रैची तथा आर० स्ट्रैची 'दि फाइनेंसेज एड पब्लिक वर्क्स आफ इडिया 1869-81' (लदन, 1881) पृ० 219।

206. वित्त कार्यविवरण, अक्तूबर, 1868, पृथक राजस्व सख्या 19। आर० टैंपिल का मेमो०, 11 अगस्त, 1868। मैंसफील्ड, ड्यूरेंड, मेन और स्ट्रैची टैंपिल के प्रस्ताव के विरोध मे थे और लारेंस उसके पक्ष मे था। भारत सरकार ने भारत मत्री को, पृथक राजस्व प्रेषण सख्या 25, 29 सितबर, 1868। टैंपिल की योजना के अनुसार बगाल मे शुल्को मे कमी की जाती थी और इससे राजस्व की हानि होनी थी। यह तथ्य टैंपिल की योजना के विरुद्ध एक प्रबल तर्क था। वित्त कार्यविवरण, अक्तूबर, 1868, पृथक राजस्व सख्या 21, एच० एम० ड्यूरेंड का, मेमो०, 17 अगस्त, 1868; वही सख्या 27, एच० एस० मेन का मेमो०, 19 सितबर 1868।

207. वित्त कार्यविवरण, सख्या 1878, पृथक राजस्व सख्या 350-77, खड बी, वित्त कार्यविवरण फरवरी, 1879, व्यय शाखा 292-93।

208. देखें जे० स्ट्रैची से मेयो को, 3 जुलाई, 1869, ,मेयो कागजात, बडल 36, सख्या 141 संलग्न-पत्र)।

209. वित्त कार्यविवरण अक्तूबर, 1868, सख्या 23, पश्चिमोत्तर प्रात से राजपूताना को अथवा ब्रिटिश क्षेत्र की सीमा शुल्क की सीमा के बाहर चीनी के निर्यात के विषय मे जे० स्ट्रैची का कार्यवृत्त 8 सितबर, 1868। वित्त कार्यविवरण मार्च, 1871, पृथक राजस्व सख्या 14-22 तथा कृषि, राजस्व एव वाणिज्य विभाग कार्यविवरण, नवबर, 1871, सख्या 1-3 पजाब मे चीनी पर शुल्क के विषय मे गृह कार्यविवरण, 11 अक्तूबर, 1861, पृथक राजस्व सख्या 41 सी० बीडन का सभी प्रांतीय सरकारो को परिपत्र, 21 मार्च, 1859। वित्त कार्यविवरण फरवरी, 1863, लेखा शाखा सख्या 2। भारत सरकार का प्रस्ताव, 3 फरवरी, 1863, इस प्रस्ताव द्वारा तबाकू पर शुल्क लगाने की योजना को रद्द कर दिया गया। वित्त कार्यविवरण फरवरी, 1868, पृथक राजस्व सख्या 26। तबाकू पर कर के विरोध मे जे० स्ट्रैची का

ज्ञापन, 21 अक्तूबर, 1865।

210 भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त संख्या 2, 21 जनवरी, 1869।

211. वित्त कार्यविवरण, जून, 1871 पृथक राजस्व संख्या 80, डब्ल्यू० जी० पेडर से सचिव, बंबई सरकार को,'(नमक विभाग के विषय मे रिपोर्ट), 30 जुलाई, 1870।

212 वित्त कार्यविवरण जून, 1861, लेखा शाखा संख्या 61, ब्रिटिश इंडिया एसोसिएशन, कलकत्ता के सदस्यों से गवर्नर जनरल को, 5 जून, 1861।

213 राजस्व कार्यविवरण, जून, 1867, संख्या 50, एच० डब्ल्यू० आई० वुड, सचिव, बंगाल चेंबर आफ कामर्स से सचिव, वित्त विभाग को, 31 मई, 1867।

214. वित्त पृथक राजस्व कार्यविवरण, संख्या 21; भारत सरकार से भारत मंत्री को, 20 अप्रैल, 1867।

215. आर० टैंपिल से मेयो को, 20 अक्तूबर, 1871, मेयो कागजात, बंडल 61 (संख्या नहीं दी गई है)।

216 लार्ड कैनिंग से जेम्स विलसन को (22 नवंबर, 1859), बैरिंगटन, पूर्वोद्धृत, II, पृ० 206 जे० विलसन से वाल्टर बेजहाट को (15 नवंबर, 1859) बैरिंगटन, II, पृ० 194-95।

217. जे० विलसन, स्टेटमेंट' (कलकत्ता, 1860), पृ० 15।

218 वही, पृ० 31।

219 कैनिंग से जे० विलसन को 31 जनवरी, 1860, बैरिंगटन, पूर्वोद्धृत, II पृ० 223-24।

220. वही, 10 फरवरी, 1860, वही, पृ० 225-27।

221. भारत मंत्री से भारत सरकार को, 3 अप्रैल, 1860, वित्त संख्या 55।

222 वही, 18 मार्च, 1860, बैरिंगटन, पूर्वोद्धृत II पृ० 274-75।

223. लार्ड कैनिंग से जे० विलसन को, 13 मार्च, 1860, बैरिंगटन II पृ० 272। कैनिंग से जे० विलसन को तार, दिनांक 13 मार्च। इस बात की बहुत संभावना है कि आय कर का सेना प‍ प्रभाव एक गंभीर प्रश्न बन जाएगा। इस संबंध मे सरकार के व्यवहार के विषय मे आ‍ सावधान रहें'। वही, पृ० 272।

224 विधान परिषद कार्यविवरण, 14 अप्रैल, 1860 जिल्द VI (पुरानी सीरीज)।

225. जे० विल्सन, फाइनेंशियल स्टेटमेंट (कलकत्ता 1860) पृ० 20।

225. 'पेटीशन अगेंस्ट इनकम टैक्स आफ दि जमींदार्स आफ बंगाल, बिहार एंड उडीसा टु पार्लियामेंटस, (कलकत्ता, 1861)। भारत मंत्री से भारत मंत्री से भारत सरकार को, 2 अगस्त, 1861। वित्त संख्या 121। भारत सरकार से भारत मंत्री को, 6 जून, 1861; वित्त संख्या 106।

227. भारत मंत्री से भारत सरकार को, 2 अगस्त, 1861, वित्त संख्या 121।

228. 1793 के विनियम XIX का पहला वाक्य इस प्रकार था : 'देश के प्राचीन विधान के अनुसार सत्ताधारी शक्ति को भूमि के प्रत्येक बीघे पर किए गए उत्पादन का एक निश्चित अनुपात, स्थानीय प्रथा के अनुसार, नकदी या पदार्थ में प्राप्त करने का अधिकार है।' 1993 के विनियम VIII में एक धारा (75 वीं) थी जिसके अनुसार मालगुजारी निर्माण इस प्रकार विनियमित होना चाहिए कि स्वत्वाधिकारियों (भूस्वामियों) के पास सरकार को दी जाने वाली राशि का 10 प्रतिशत बच रहे। इन उपबंधों और विवरणों की व्याख्या इस प्रकार

की गई कि भूमि से राजस्व पाने का अधिकार राज्य की सत्ता में निहित है। तात्पर्य यह है कि मालगुजारी कोई कर नहीं है।

229. गृह राजस्व कार्यविवरण 1860, जुलाई, 24, संख्या 41, वर्दवान के महाराजा से पत्र दिनांक 3 मई, 1860। राजस्व कार्यविवरण, 18 मई, 1860, संख्या 6, वर्दवान के महाराजा को धन्यवाद देते हुए भारत सरकार का प्रस्ताव। भारत मंत्री से भारत सरकार को प्रेषण, 26 जुलाई, 1860। वित्त संख्या 115 में भारत सरकार से अनुरोध किया गया है कि वह वर्दवान के महाराजा को धन्यवाद पहुंचा दे।
230. विल्सन अधिक आशावादी था और उसने विरोध को कम समझा था। विल्सन से डब्ल्यू० बेजहाट को, 20 फरवरी, 1860, बैरिंग्टन, II, पृ० 225-27।
231. लार्ड कैनिंग से जे० विल्सन को, 10 फरवरी, 1860, बैरिंग्टन, II, पृ० 225-27।
232. गृह राजस्व कार्यविवरण, अगस्त, 10, 1860, संख्या 9।
233. चार्ल्स वुड से जेम्स विल्सन को, 26 मार्च, 1860, बैरिंग्टन, II, पृ० 23।
234. जेम्स विल्सन से वाल्टर बेजहाट को 15 नवंबर, 1859, वही, II, पृ० 194-95।
235. गृह राजस्व कार्यविवरण, सितंबर, 23, 1860, संख्या 39, समिति की नियुक्ति के संबंध में भारत सरकार का प्रस्ताव। राजस्व कार्यविवरण, 20 अक्तूबर, 1860, संख्या 35। समिति की रिपोर्ट।
236. गृह राजस्व कार्यविवरण, 6 सितंबर, 1860, संख्या 15 : (फारसी विभाग) नारियाद, जिला कैरा के निवासियों द्वारा भारत की विधान परिषद के सदस्यों को भेजी गई याचिका, (अर्जी) दिनांक 15 जून, 1860।
237. गृह राजस्व कार्यविवरण, 20 अक्तूबर, 1860, संख्या 42। सचिव, बंगाल सरकार से भारत सरकार को, 2 अक्तूबर, 1860।
238. गृह राजस्व कार्यविवरण, 20 अक्तूबर, 1860, संख्या 44।
239. वही, 6 सितंबर, 1860, संख्या 15।
240. रोबर्ट नाइट एफ० एस० एस०, 'रिसोर्सेज ऑफ इंडिया ऐज इलस्ट्रेटेड बाई दि इनकम टैक्स' (बंबई, 1870)।
241. वित्त कार्यविवरण, 9 मई, 1863, लेखा शाखा, संख्या 265।
242. एस० लैंग, 'फाइनेंशियल स्टेटमेंट' (कलकत्ता, 1861)।
243. वित्त कार्यविवरण, जुलाई, 1864, लेखा शाखा संख्या 164।
244. 'हिंदू पैट्रियट' 20 जुलाई, 1864।
245 गवर्नर जनरल द्वारा कार्यवृत्त (दिनांक नहीं है)। वित्त कार्यविवरण मई, 1864, लेखा शाखा संख्या 56।
246. जॉ० कॉर द्वारा मेमो०, 8 दिसंबर, 1864, वित्त कार्यविवरण दिसंबर, 1864, लेखा शाखा संख्या 4।
247. कर निर्धारण की प्रक्रिया बदनामी थी; देखें, नीचे पृ० 212।
248. [illegible] 1860 के [illegible] निर्धारण [illegible] हो गया। इसका [illegible] कारण [illegible] के 1861 से 1864 तक की [illegible] थी।

249. वित्त कार्यविवरण, अप्रैल, 1865, लेखा शाखा सख्या 67।
250. मेयो से नैपियर को, 16 जनवरी, 1870, मेयो कागजात, बडल 39, सख्या 234।
251. मेयो से आरगाइल को, 5 जुलाई, 1870, मेयो कागजात, बडल 39, सख्या 453।
252 वित्तीय विवरण, विधान परिषद कार्यविवरण (सारांश) 1865, जिल्द I (नई सीरीज), पृ० 169। चार्ल्स वुड आय कर समाप्त करने के विरुद्ध था, परतु उसका तार कलकत्ते मे समय पर नही पहुचा। सी० वुड से जे० लारेंस को, 10 अप्रैल, 1865। भारत मत्री से पत्र, जिल्द II, सख्या 27 ए।
253. विधान परिषद कार्यविवरण (साराश), जिल्द VIII (नई सीरीज), पृ० 105।
254. गृह राजस्व कार्यविवरण अप्रैल, 1867, सख्या 20। कलकत्ता ट्रेड्स एसोसिएशन से भारत मत्री को याचिका (अर्जी), 22 अप्रैल, 1867।
255. गृह राजस्व कार्यविवरण, अप्रैल, 1867, सख्या 19। कलकत्ता के निवासियो का भारत मत्री को स्मरणपत्र, (दिनाक नही है)।
256 गृह राजस्व कार्यविवरण, अप्रैल, 1867, सख्या 7, सचिव, बंगाल चेंबर आफ कामर्स से सचिव, गृह विभाग को, 22 मार्च, 1867।

समृद्धि का लीला-रूपक

'राष्ट्र का हाल है क्या ?
कौन सा है इसका कारोबार
ए दोस्ती, बढो और बढ़ते ही चलो—
और, भेजो हमें इसकी खबर······'

रूडयार्ड किपलिंग
'दि मस्क आव प्लेंटी'
डिपार्टमैंटल डिटिज एंड बैरकरूम बैलाड्स

सार्वजनिक व्यक्तियों के वक्तव्यों तथा रचनाओं से इक्के-दुक्के अंश तथा समाचार पत्रो से कहीं-कही से कुछ उद्धरण निकालकर उनके आधार पर बननेवाली विचारधारा को 'लोकमत' अथवा 'राष्ट्रीय विचारधारा' के नाम से प्रस्तुत करना बहुत सहज होने के साथ-साथ खतरनाक भी है। यह प्रयास इस दृष्टि से खतरनाक है कि हम मिली-जुली धारणाओं तथा विचारो मे झूठी तालमेल बैठाने की भूल कर सकते है। जिस काल का हमने अध्ययन किया है उसके बारे मे यह युक्तियुक्त परिकल्पना की जा सकती है कि उसमे कोई ऐसी सुसंगत विचारधारा नही थी जिसे राष्ट्रीय कहा जा सके। फिर भी, हमारे लिए 'हिंदुस्तानी' अथवा भारतीय स्वामित्व के अंतर्गत आनेवाले समाचारपत्रो मे, ब्रिटिश इडियन एसोसिएशन तथा ईस्ट इंडिया एसोसिएशन जैसी सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा संगठित परिचर्चाओं तथा सभाओ मे, जनता द्वारा शासको के पास समय-समय पर भेजे गए स्मरणपत्रों एवं याचिकाओं (अर्जियो) मे, और दादाभाई नौरोजी, क्रिस्टोदास पाल, हरीश मुकर्जी जैसे राष्ट्रीय प्रवक्ताओं की रचनाओं में अभिव्यक्ति पानेवाली धारणाओं तथा विचारो के उभरते स्वरूप की उपेक्षा कर पाना संभव नही है। उस समय जानकार लोकमत का विकास प्रारंभिक व्यवस्था में था। बंगाल और बंबई की कुछ पत्रिकाओ के अतिरिक्त अन्य भारतीय समाचार पत्र प्रबुद्ध एवं जानकारी पर आधारित आलोचना कर पाने मे असमर्थ थे। यह लोकवित्त जैसे तकनीकी एव गूढ विषय के बारे मे विशेष रूप से सत्य था। तथापि विचारो की कुछ प्रमुख प्रवृत्तिया थी जिन्होने भिन्न-भिन्न अंशो में समाचारपत्रों को प्रभावित किया था और वित्तीय एवं आर्थिक नीति के संबंध मे कुछ धारणाएं निश्चित स्वरूप धारण करने लगी थी। इन विचारो और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अस्तित्व के प्रारंभिक वर्षो मे उसके विचारो मे बहुत सादृश्य दिखाई देता है।

जिस काल का यह अध्ययन है, उसमें वित्तीय प्रश्नो पर होनेवाले विवाद कुछ विशेष महत्वपूर्ण समस्याओ के बारे मे ही रहते थे। प्रथम प्रश्न कराधान के भार से सबद्ध था और फिर कुछ इससे घनिष्ठ रूप से संबद्ध अन्य प्रश्न भी थे जैसे जीवनस्तर, कर चुकने की क्षमता, कर-संपात इत्यादि थे। दूसरी श्रेणी मे व्यापक राजनीतिक प्रश्न जिन्हे 'प्रतिनिधित्व के साथ कराधान' के नारे से संबद्ध करके संक्षेप में व्यक्त किया जाता था, आते थे।

यद्यपि समसामयिक राजनीतिक एवं आर्थिक साहित्य मे लोगो की कर चुकने की क्षमता, जनसाधारण के जीवन-स्तर, करों के भारी बोझ इत्यादि के विषय मे अनेक सामान्य बातें देखने को मिलती हैं, तथापि सांख्यिकीय आधार पर इनकी सत्यता सिद्ध करने की दिशा में बहुत थोड़े प्रयास किए गए। राष्ट्रीय आय के एक भी निश्चित प्राक्कलन उपलब्ध होने से लोगों की कर चुकाने की क्षमता क्या थी इसका (औसत प्रति व्यक्ति आय और कराधान के औसत भार में तुलना के आधार पर) निर्धारण करने मे अटकलपच्चू ही रहना था। इस काल मे औसत राष्ट्रीय आय के बारे में एकमात्र सरकारी विवरण भारत उपमत्री श्री ग्राट डफ से प्राप्त हुआ था। 24 फरवरी 1871 को हाउस आफ कामंस मे प्रस्तुत किए गए वित्त विवरण में उसने कहा था कि 'अनुमान है कि ब्रिटिश भारत की आय 30 करोड़ रुपये वार्षिक है।' इस प्रकार औसत वार्षिक आय 2 पौंड (= 20 रुपये) प्रति व्यक्त थी।[1] लगभग दो वर्ष बाद 1867-68 के आंकड़ो के आधार पर दादाभाई नौरोजी ने भारत की राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाया।[2] नौरोजी ने प्रत्येक प्रात के वार्षिक कृषि उत्पादनों का हिसाब किया और फिर प्रचलित कीमतों के आधार पर उनका मूल्य निकाला। इसमे उन्होने अटकलपच्चू ढंग से अनुमानित गैर कृषि आय को जोड़ दिया। उन्होने न्यून प्रक्कलन से बचने के लिए त्रुटि की भारी गुजाइश भी रहने दी। उन्होने सेवाओं को कोई मूल्य नही दिया, क्योंकि उनका तर्क था कि सेवाए वास्तविक आय न होकर पहले से उत्पादित आय का विनियोग मात्र होती है। उनका निष्कर्ष था कि ब्रिटिश भारत की 17 करोड जनसंख्या की आय 3 अरब 46 करोड़ रुपये थी। तात्पर्य यह है कि औसत प्रति व्यक्ति वार्षिक आय 20 रुपये थी। यद्यपि दादाभाई नौरोजी की रीति परिष्कृत नही थी और उनकी राष्ट्रीय आय की परिभाषा में वैचारिक विचित्रता थी (*उदाहरणार्थ, सेवाओ को अलग रखना*) तथापि उनका अनुमान सर्वाधिक विश्वसनीय है।[3] 1871 में इंडियन इकानामिस्ट के संपादक राबर्ट नाईट ने दावा किया था कि औसत राष्ट्रीय आय लगभग 6 पौंड (=60 रुपये) वार्षिक है।[4] परंतु उसने यह स्पष्ट नही किया कि यह राशि उसने किस प्रकार निकाली थी। जाने-माने उग्र ब्रिटिश राजनीतिज्ञ हिंडमैन का, जिसने अनुमान लगाया था कि 1886 मे 5 व्यक्तियो के परिवार में वार्षिक आय 8 पौंड थी, आधार भी इतना ही अनिश्चित था।[5]

प्रति व्यक्ति कराधान के औसत भार संबंधी परिकल्पनों में भारी अंतर है। 'टाइम्स आफ इंडिया' के अनुसार 1863 में प्रति व्यक्ति वार्षिक कर लगभग 10 या 12 आने था।[6] 'फ्रेंड आफ इंडिया' द्वारा किए गए परिकलन के आधार पर 1861 में संपूर्ण

भारत में प्रति व्यक्ति कर का औसत भार 5 शिलिंग 3 पैंस (=2 रुपये 10 आने) था। अनुपात विभिन्न प्रांतों मे अलग-अलग था। बंगाल में कर भार 3 शिलिंग 6 पैंस (=1 रुपया 12 आने) था जो सबसे कम और पेगू में 9 शिलिंग (=4 रुपये 8 आने) था जो सर्वाधिक था।[7] 1868 में इसी पत्रिका के अनुसार प्रति व्यक्ति वार्षिक कर भार 6 शिलिंग (=3 रुपये) था।[8] बंबई से निकलने वाले 'इंडियन इकोनामिस्ट' की अटकलबाजी थी कि 1871 मे प्रति व्यक्ति कर भार केवल 1 शिलिंग 10 पैंस (=15 आने) था।[9] इसके एक दशक बाद हिंडमैन ने ऐसा ही अटकलपच्चू अनुमान लगाया कि औसतन 5 व्यक्तियों के भारतीय परिवार का सरकारी व्यय के लिए कर एव राजस्व मे लगभग 2 पौंड (=20 रुपये) का योगदान था।[10] वैचारिक अंतरों के कारण यह अनुमान एक दूसरे से इतने अधिक भिन्न हैं कि वास्तव में इनमें से एक भी विश्वसनीय नही लगता। कुछ लोग मालगुजारी को लगान मानकर उसे सरकारी आय का गैर कर स्रोत स्वीकार करते थे। दूसरी ओर, कुछ अन्य लोग कराधान को सरकार के लिए वार्षिक राष्ट्रीय आय से की जाने वाली प्रत्येक कटौती के रूप में परिभाषित करते थे। इस परिभाषा के आधार पर मालगुजारी को कर माना जाएगा। अत: मालगुजारी के स्वरूप की परिभाषा के विषय में मतभेद से इन परिकलनों में गडबडी उत्पन्न हो गई, क्योंकि इसको कर भार के अनुमान में सम्मिलित न करने का (अथवा सम्मिलित करने पर) प्राक्कलित भार काफी कम (अथवा अधिक) हो जाता था।

औसत राष्ट्रीय आय के मुकाबले कराधान के औसत भार के विश्वसनीय प्राक्कलन के अभाव में समसामयिक वृत्तकारों को जीवन स्तर, जन साधारण की आर्थिक स्थिति, और विभिन्न वर्गों पर पड़नेवाले राजकोषीय बोझ के संबंध मे उपलब्ध सामान्य प्रमाणों पर ही निर्भर होना पडा। सरकारी मत था कि देश तेजी के साथ आर्थिक विकास के दौर से गुजर रहा है और इसलिए राष्ट्रीय आय मे राज्य का भाग स्वाभाविक ढंग से बढना है। 1860 मे भारत मंत्री को अपने प्रेषण मे भारत सरकार ने दावा किया कि घरेलू तथा विदेशी व्यापार मे तेजी के साथ वृद्धि, सार्वजनिक कंपनियों में हिंदुस्तानी तथा यूरोपीय पूंजी के भारी निवेश, कृषि उत्पादनों की मात्रा तथा मूल्य मे वृद्धि, मजदूरी की दर मे वृद्धि इत्यादि से 'अभूतपूर्व समृद्धि की स्थिति' का पता चलता है।[11] परंतु ब्रिटिश संरक्षण मे इस नवीन समृद्धि से जो वर्ग मुख्यत: लाभान्वित हुए थे, उनके ऊपर कर भार का उनका अंश नही पड रहा था। 1860 मे जेम्स विलसन ने निर्भीकतापूर्वक भारत मंत्री को अपने प्रेषण मे लिखा कि 'निस्संदेह सभी वर्गों को लाभ हुआ है परंतु पूंजीपति और व्यापारी वर्गों को मिलनेवाला लाभ अतुलनीय है। शेष में कृषि से संबंधित वर्गों को विशेष फायदा पहुंचा है। और यदि ऐसा है तो अन्याय की बात छोड भी दें तो भी हमारी प्रणाली में बहुत बड़ी असगति व्याप्त है। न केवल इन वर्गों ने राज्य को उन फायदों के लिए बहुत थोड़ा योगदान किया है जो सरकार ने भारी लागत पर इन्हें प्रदान किए है, अपितु इन्हें किसी ऐसी व्यवस्था के अंतर्गत लाने का कोई प्रयत्न भी नहीं किया गया है जिसमें इन फायदों के लिए ये लागत के प्रति न्यायोचित योगदान करेंगे।' सरकार ने एक ऐसी राजकोषीय प्रणाली की आवश्यकता अनुभव की, जिसके द्वारा 'राज्य का

के संपूर्ण (समाज) पर समान रूप से डाला जा सके और राजस्व का ऐसा स्वरूप बन सके कि देश की सपत्ति और समृद्धि मे वृद्धि के साथ वह भी बढ़े।'[12] यह 1860 में लिखा गया जिसका मसौदा जेम्स विलसन ने स्वयं निर्भीकतापूर्वक तैयार किया था। 1869 मे भारत सरकार ने इसी प्रकार के विचार पुनः व्यक्त किए। भारत सरकार ने भारत मंत्री को प्रेषण मे लिखा कि 'साम्राज्य का भव्य राजस्व ऐसे जनसमुदाय से प्राप्त होता है जिस पर अन्य देशों की तुलना में कर भार हल्का है··· पिछले बीस वर्षों मे रेल तथा सिचाई संबंधी बड़े निर्माण-कार्यों द्वारा सभ्यता एवं संपन्नता बढ़ाने वाले प्रभावों का आभास पूरे देश में मिलने लगा है ··श्रम के मूल्य मे निरंतर होने वाली वृद्धि से शीघ्र ही लोगों की संपत्ति तथा संतुष्टि मे समुचित वृद्धि होनी ही चाहिए···'[13] 'वित्त विवरणों' तथा 'नैतिक एवं भौतिक प्रगति संबंधी रिपोर्टों' मे की गई इन घोषणाओं से अगणित बार दोहराई गई कुछ बातें बहुत साफ हो जाती हैं अर्थात (क) 1860-70 के दशकों मे भारत की राष्ट्रीय सपत्ति बहुत तेजी के साथ बढ़ रही थी, और इस प्रकार का विकास केवल ब्रिटिश शासन द्वारा स्थापित शांति की अवस्था में ही संभव था, (ख) तुलनात्मक दृष्टि से भारत में कर भार हल्का था। विशेष रूप से ऐसे वर्ग जिन्हे व्यापार एवं वाणिज्य के विकास से लाभ हुआ था अपने अंश का कर भार अपने ऊपर लेने से बच रहे थे।

अंग्रेजी के समाचार पत्र स्थिति के विषय में इस सरकारी मत को लगभग स्वीकार करते थे। 'फ्रैंड आफ इंडिया' का अनुमान था कि भारत मे कर बहुत हल्का है। इस पत्रिका के अनुसार तो समस्त संसार की तुलना मे भारत में ही कर सबसे कम थे।[14] परन्तु 'फ्रैंड आफ इंडिया' ने स्पष्ट किया कि यद्यपि औसत भार कम है, तथापि एक वर्ग के लोगों पर कष्टप्रद भार है। पत्र मे लिखा गया था कि 'साम्राज्य का भार संपत्तिशाली वर्गों पर न होकर लगभग एकमात्र श्रमिकों पर ही पड़ता है।' श्रमिक वर्ग भूमि कर, आबकारी, मोहतुरफा तथा 90 प्रतिशत नमक कर देता था जबकि संपत्तिशाली वर्गों पर सीमा शुल्क, अदालती शुल्क, स्टाम्प शुल्क इत्यादि के रूप में कर लगाए गए थे। संपत्तिवान एवं व्यापारिक वर्गों पर कर भार का अंश छोटा था।[15] वास्तव मे 'फ्रैंड आफ इंडिया' अलोकप्रिय आय कर से संतुष्ट था क्योंकि इसके द्वारा आशा थी कि कराधान का भार 'परिश्रमी एवं किसी तरह चल रहे मध्यम वर्ग' तथा निर्धन व्यक्तियों पर से हटाकर सराफों, महाजनों व बनियों पर डाला जा सकेगा जो करों से या तो पूरी तरह मुक्त थे या फिर जिन पर करदेय क्षमता की तुलना मे बहुत थोड़े कर थे।'[16] इस अखबार ने फिर लिखा कि ये वर्ग 'अपनी संपत्ति और संख्या के लिए हमारे ऋणी है' परंतु कराधान की प्रणाली में उन्हे हल्के कर लगा कर ही छोड़ दिया जाता है जबकि हम सभी रैयत के बल पर करो से बचे हुए है और ये रैयत उत्पादन शुल्कों, सीमा शुल्क तथा नमक शुल्क का भार हम सबसे कही अधिक अनुभव करते है।'[17] 'टाइम्स आफ इंडिया' का विचार था कि 'सकल भारतीय सपत्ति मे वृद्धि' तो हुई थी, परंतु लोगों के सभी वर्गों की स्थिति मे सुधार नही हुआ था।[18] कृषि उत्पादनों की कीमतों में वृद्धि से जमींदारों को तो फायदा हुआ था, परंतु श्रमिको को कोई लाभ नही हुआ था, क्योंकि मजदूरियो मे कीमतो की समानुपाती वृद्धि नही हुई थी। अतः 'भारतीय जनता का भूमिहीन वर्ग अधिकाधिक फटेहाल वर्ग बन

गया है।[19] यद्यपि 'फ्रैंड आफ इंडिया' का दावा था कि उद्योग एवं वाणिज्य की तुलना में कृषि क्षेत्र पर कर अधिक थे,[20] तथापि 'टाइम्स आफ इंडिया' का मत था कि कृषि आय पर भी वास्तव में भारी कर नहीं थे। बंबई से निकलने वाले इस दैनिक पत्र का तर्क था कि मालगुजारी कर नहीं थी, अतः वास्तविक कर की राशि प्रति व्यक्ति लगभग 10 या 12 आने वार्षिक थी जो बहुत थोड़ी थी।[21] 'दि मैंड्रास टाइम्स' कलकत्ता की पत्रिका से सहमत था। उसने लिखा कि भूमि कर, नमक शुल्क, आबकारी, (विलासिता पर कर जो भारत में अत्यंत निर्धन वर्ग की ही विलासिता पर कर था), स्टाम्प तथा सीमा शुल्क ये सभी निर्धनों द्वारा प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से दिए जाते थे जबकि संपन्न स्वदेशी व्यापारिक पूंजीपति वर्ग को 'कराधान से अनुचित उन्मुक्ति' मिली हुई थी।[22] इस प्रकार सभी ऐंग्लो इंडियन अखबार दृढ़ता के साथ, लगभग पूर्ण सहमति से, यह कह रहे थे कि प्रति व्यक्ति औसत कराधान कम था। जेम्स विलसन द्वारा बतलाई गई समस्या कि भूमिधारी वर्ग को छोड़कर अन्य संपन्न हिंदुस्तानी अपने हिस्से का कर भार नहीं उठा रहे हैं, के बारे में बहुत कुछ सहमति थी। अंत में, यह भी अस्पष्ट बोध हो रहा था कि निर्धन वर्ग करों के भार से कुछ कष्ट का अनुभव कर रहे थे। परन्तु इस वर्ग की वास्तविक स्थिति के बारे में ठीक-ठीक नहीं पता था। ऐसा समझा जाता था कि कराधान के दबाव से ही दुर्भिक्ष पड़ा था। हाउस आफ कामंस की प्रवर समिति के सामने लोक सेवा के एक अधिकारी ने दावा किया था कि कराधान के दबाव से ही उड़ीसा का दुर्भिक्ष पड़ा था। 'करों के भुगतान के लिए जोड़कर रखे गए खाद्य पदार्थ दे दिए गए थे' और कराधान के दबाववश सभी खाद्य फसलों का निर्यात किया गया था जिससे दुर्भिक्ष की स्थिति उत्पन्न हो गई।[23] कुछ वर्ष बाद हिंडमैन ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किए। उसने लिखा 'दुर्भिक्ष जो भारत का सर्वनाश करते रहे है, मुख्य रूप से वित्तीय दुर्भिक्ष हैं। लोग खाद्य पदार्थों को प्राप्त करने मे इसलिए असमर्थ हैं, क्योंकि वे 'कराधान के दबाव के कारण, बचत कर पाने में असमर्थ है।'[24] परंतु ये उग्रवादी विचार थे जिन्हे एंग्लो इंडियन अखबार केवल खंडन करने के लिए ही छापते थे।

भारतीय समाचार पत्रों ने राजकोषीय (फिस्कल) भार का सांख्यिकीय प्राक्कलन लगाने जैसा कोई प्रयास नहीं किया। उन्होंने लिखा कि करों का भार 'असह्य'[25] हो गया है, करों की अनेकरूपता तथा भार से स्पष्ट है कि अंग्रेजों की पराधीन जातियों के प्रति उत्कंठा पाखंडपूर्ण है,[26] कराधान अपनी न्यायोचित सीमा[27] पर पहुंच गया है, कर 'सूई की तरह चुभते हैं और हल के फाल की तरह लगते है',[28] देशी राजाओं के शासन की तुलना में ब्रिटिश शासन में रहने वाले लोगों पर कर भारी है,[29] अंग्रेज जिस अनुपात में चाहते है, कर भार अन्यायपूर्वक बढ़ा देते है,[30] इत्यादि। परन्तु इन्होंने कोई भी परिमाणात्मक विवरण नहीं दिए। ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन ने सामान्य ढंग से सरकार द्वारा राष्ट्रीय आय का बड़ा भाग हथिया लेने की निंदा की। एक स्मरण पत्र में संघ ने कहा कि 'पिछले दस वर्षों में राजस्व में जो भारी वृद्धि हुई है…उसका अर्थ है कि लोगों पर इसी अनुपात में भार बढ़ा है…यह वृद्धि चाहे भारतीय राजस्व के कुछ स्रोतों में स्वाभाविक लचीच के कारण हुई हो अथवा प्रत्यक्ष या परोक्ष नए करों को लगाने में,

इसका प्रभाव यह पड़ा है कि 'राष्ट्र के सकल लाभ मे इतनी ही कमी हो गई है' और इसके परिणामस्वरूप जीवन निर्वाह के साधनो अथवा आराम में भी कमी हुई है।'[31]

1880 मे वित्त आयोग को भेजे गए एक स्मरण पत्र मे दादाभाई नौरोजी ने भी यही बात कही।[32] उन्होंने अनुमान लगाया कि भारत की कुल आय लगभग 34 करोड़ पौंड थी जबकि सरकार द्वारा एकत्रित राजस्व 6.5 करोड़ पौंड था।[33] उनके ही शब्दों मे 'इंग्लैंड मे सरकार के कार्यों के लिए (करो के रूप में राष्ट्रीय आय का) केवल 8½ प्रतिशत लिया जाता है···जबकि भारत में इसी उद्देश्य के लिए 22 प्रतिशत लिया जाता है फिर भी लोग धृष्टता एव निर्ममता के साथ लिखते है कि भारत में हल्के कर लगाए गए है।'[34] नौरोजी ने यह स्वीकार किया था कि ये अनुमान पूर्णरूप से विश्वसनीय नही है परतु उन्हे इस बारे मे कोई सदेह नही था कि भारत मे सरकार द्वारा ली जाने वाली राष्ट्रीय संपत्ति का अनुपात इग्लैंड के अनुपात से कही अधिक था।[35] नौरोजी भारत की राजनीतिक निर्भरता और निर्णयकारी संस्थाओं में भारतीयों के प्रतिनिधित्व का अभाव इस समस्या का कारण समझते थे।

'दृढतापूर्वक चलाए गए अनेक संघर्षों के बाद इग्लैंड की राजनीति में स्थाई रूप से इस सिद्धात को स्वीकृति मिल गई है कि प्रतिनिधित्व रहित कराधान विकृत होकर निरंकुशता मे परिणत हो जाता है। यही सिद्धात शक्ति के दुरुपयोग से विश्वसनीय बचाव है···भारत मे कराधान की अविवेचित योजनाए, इनके विषय में केवल सरकारी भावनाओं के आधार पर या तो अज्ञानतावश या फिर लोकमत की उपेक्षा करते हुए बनाई जाती है और उन्हे कार्यान्वित भी किया जाता है।'[36] 5 सितंबर, 1860 के 'हिंदू पेट्रिअट' की इस संपादकीय टिप्पणी से ब्रिटिश प्रतिनिधि संस्थाओं के लिए प्रशंसा और भारत मे इस प्रकार की संस्थाओं के अभाव के प्रति धैर्यरहित आक्रोश दोनों ही विशेष रूप से प्रकट होते है। तथापि उन्नीसवीं शताब्दी के सातवें दशक के प्रारंभिक वर्षों मे भारतीय मत को प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए कोई सुनिश्चित योजना (सिवाय विधान परिषद में 'अतिरिक्त सदस्यों' के रूप मे कुछ प्रमुख व धनी-मानी व्यक्तियो के मनोनयन के) प्रस्तुत नही की गई थी!

ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन ने अपने आपको कुछ सामान्य बातों तक ही सीमित रखा था। जैसे इन्होने कहा कि सरकार लोकमत की ओर ध्यान देने मे असफल रही है; सरकार द्वारा दी जाने वाली वित्तीय जानकारी अपूर्ण एवं विलंबित रहती है, इत्यादि।[37] 1868 में ब्रिटिश इडियन एसोसिएशन की कलकत्ता मे बैठक हुई जिसका उद्देश्य भारत मंत्री के सामने स्मरणपत्र के रूप मे एक सुनिश्चित योजना प्रस्तुत करना था। स्मरणपत्र में एसोसिएशन ने इस बात की निंदा की कि 'भारत की जनता की वित्त के प्रबंध में यथार्थ में कोई आवाज नही है। यही नही, उसे वित्तीय उपायों के बारे मे विचार विमर्श करने के पर्याप्त अवसर समय पर नही प्रदान किए जाते।'[38] कराधान सबंधी उपायो को बजट पेश होने के लगभग साथ-साथ ही पारित कर दिया जाता था। इससे लोकमत की अभिव्यक्ति के लिए कोई अवसर ही नही रह जाता था। एक अन्य स्थान पर स्मरण पत्र में कहा गया कि 'तथापि, भारत के करदाताओ को इससे कुछ संतोष मिलेगा यदि

राज्य की अर्थोपाय व्यवस्था में उनकी भी कुछ आवाज हो। सभी ब्रिटिश उपनिवेशों मे कराधान और प्रतिनिधित्व सहगामी हैं, परंतु इग्लैंड के भारत के साथ विशिष्ट संबंधों को ध्यान मे रखते हुए हमें विश्वास है कि यदि अन्य परिस्थितियों को छोड़ भी दिया जाए तो राजनीतिक कारणो से सपरिपद गवर्नर जनरल को वित्तीय मामलो में पूर्ण अधिकार होने चाहिए। यह व्यवस्था उस नीति की विरोधी नही…कि वित्त के नियमन और नए कर लगाने के बारे मे जनता का विश्वास प्राप्त करना और उनके विचारों एवं भावनाओ को पता करना चाहिए।'[39] स्मरणपत्र में एक बड़ी परामर्श परिषद जिसके सदस्यो में साम्राज्य के विविध भागों से हिंदुस्तानी तथा अंग्रेज भद्र पुरुष हो ''के गठन का प्रस्ताव रखा गया। प्रस्तावित परिषद को अधिकार दिया जाना था कि वह वित्तीय मामलों से संबधित कागजात और कोई भी सूचना माग सके और बजट पास होने से पहले उसका पुनर्विलोकन कर सके। परंतु यह परिषद केवल विचार विमर्श के लिए ही बनाई जानी थी। इसे मत देने का अधिकार नही भी दिया जा सकता था। इसके सभी सदस्य सरकार द्वारा मनोनीत होते थे। यह प्रस्ताव सरकार को स्वीकार्य नही था। सरकार की राय मे इस प्रकार की परिषद 'जनता की आकाक्षाओं का ठीक प्रतिनिधित्व नही कर सकती थी।'[40] 'हिंदू पेट्रिअट' ने टिप्पणी करते हुए कहा कि 'हमे विश्वास हो चला है कि सरकार अब अधिक समय तक काल की गति को जो उसके विरुद्ध बढ़ रही है, पीछे नही धकेल सकती।'[41] कुछ अन्य हिंदुस्तानी समाचारपत्रो ने भी कर दाता को प्रतिनिधित्व देने की माग का समर्थन किया। बंगाल के 'सोम प्रकाश' तथा बंबई के 'जामे जमशेद' ने इस मांग को अपना समर्थन प्रदान किया।[42] ब्रिटिश इडियन एसोसिएशन सरकार के पास स्मरणपत्र भेजता रहा। 1869 में भारत मंत्री के पास भेजे गए एक स्मरणपत्र में माग की गई कि गृह खर्चों का विवरण प्रकाशित किया जाना चाहिए (जिससे करदाताओं के लिए अपने विचारों और भावनाओं को प्रकट कर सकना संभव हो')।[43] 1871 मे मांग की गई कि वित्त का विकेंद्रीकरण किए जाने पर स्थानीय प्रशासन मे भारतीयों को भाग लेने का अवसर मिलना चाहिए।[44] इस समस्या पर मेयो ने गोपनीय ढग से बिलकुल ऐसे ही विचार व्यक्त किए थे। उसने नैपियर को लिखा था कि 'लोग कहते हैं कि यह प्रक्रिया लंबी होगी। यह हो भी सकता है। मेरे विचार से यह उससे छोटी होगी जितनी कि लोग समझते है। जो भी हो, यह प्रशासन की नई प्रणाली प्रारंभ करने का समय है जिसके द्वारा स्थानीय प्रशासन में भारत के मूल निवासियों के हमारे साथ संबंध बढ़ने के लिए रास्ता खुलेगा।'[45] परंतु शिक्षित और राजनीतिक दृष्टि से सचेतन वर्ग वित्तीय नियंत्रण की दिशा में धीमी प्रगति और संवैधानिक व्यवस्थाओं की अपर्याप्तता से असंतुष्ट था। 'हिंदू पेट्रिअट' ने लिखा कि 'ब्रिटिश संवैधानिक व्यवस्थाओं की नकल कर लेना, विधान परिषद मे बजट प्रस्तुत करना, और उस पर कृत्रिम विचार विमर्श करना बहुत अच्छा है, परंतु यह अर्थहीन तमाशाबाजी है…यद्यपि मित्र राजाओ महाराजाओ तथा सरदारों की अपने ढंग से उपयोगिता है, तथापि वे महामहिमी (महारानी) की भारतीय प्रजा का उससे अधिक प्रतिनिधित्व नही करते हैं जितना कि ब्रिटिश संसद में इग्लैंड की जनता की प्रतिनिधित्व लुई नेपोलियन अथवा विक्टर एमैनुअल

करते थे।'[46] सरकार को शासन का उत्तरदायित्व 'जनता के सहज नेताओं के साथ बांटने के लिए तत्पर रहना चाहिए।[47] यह स्वीकार किया गया कि 'व्यक्ति, विचार तथा भाषण की स्वतंत्रता' ब्रिटिश शासन में ही प्राप्त हुई थी। 'हिंदू पेट्रिअट' ने फिर लिखा 'परंतु इस बात को कौन अस्वीकार कर सकता है ··कि विधान परिषद स्वांग है, उसके सरकारी और गैर सरकारी अतिरिक्त सदस्य प्रभावशून्य हैं और यद्यपि कानून के अनुसार हिंदुस्तानियों को परिषद की सदस्यता देने की व्यवस्था की गई है तथापि शिक्षित वर्गों की लगातार उपेक्षा की जाती है···।'[48]

यह मान लेना भूल होगी कि सरकार लोकमत की बढ़ती हुई शक्ति को पूरी तरह से भुलाकर बैठी थी। यद्यपि ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन के विविध आवेदनों (भारतीय समाज के विविध वर्गों को प्रतिनिधित्व प्रदान करने की व्यवस्था करना, जो विधान परिषद में अतिरिक्त हिंदुस्तानी सदस्यों के मनोनयन की प्रचलित व्यवस्था मे सभव नही था) को सरकार द्वारा बार-बार अस्वीकार कर दिया गया, तथापि समझदार नौकरशाह लोकमत की पूरी तरह उपेक्षा नही कर सके। उदाहरणार्थ, बार्टल फ्रेर लोकमत की प्रवृत्ति के अध्ययन की आवश्यकता के विषय में बहुत सजग था। फ्रेर ने ईस्ट इडिया एसोसिएशन की एक बैठक (9 जून, 1871) मे कहा था कि 'कभी-कभी लोग भारत मे लोकमत की उपेक्षा करते हैं अथवा उसके अस्तित्व को ही अस्वीकार कर देते हैं, परंतु पुराने दिनों मे भारत आने वाले अंग्रेजो जैसे माल्कम, मुनरो, मैटकाफ तथा एल्फिंसटन ने 'लोगों के विचारो और भावनाओं को महसूस किया था और वे लोकमत के बारे में उपर्युक्त विचार से प्रेरित नहीं थे।'[49] वित्तीय कठिनाई एक अन्य कारण थी जिसकी वजह से भी सरकार को हिंदुस्तानियों की भावनात्मक स्थिति पर ध्यान रखना चाहिए था। लार्ड मेयो ने भी पाया कि 'व्यय की विविध मदों के बारे मे भारत के लोग काफी सचेत हो रहे है।'[50] एक अन्य प्रेक्षक ने लिखा कि 'लोगों के पास संपत्ति और शिक्षा में वृद्धि से स्वतंत्रता की भावना तथा बुद्धिमत्ता आ गई है। समझदारी की बात यह है कि इसकी उपेक्षा नही की जा सकती। हमारी प्रजा के अधिकाधिक लोग अब सरकार द्वारा किए जाने वाले कार्यों का रुचि लेकर सूक्ष्म परीक्षण करते हैं और उस पर बड़ी समझदारी के साथ बहस करते हैं। लोग अब तेजी से अज्ञानी अविवेकी समूह की स्थिति से, जिसे अपने शासकों की बुद्धिमत्ता मे आस्था होती थी, ऊपर उठ रहे है।'[51]

प्रश्न उठता है कि यदि सरकार भारत मे विकसित हो रहे लोकमत के बारे में जानकारी रखती थी तो इसने ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन तथा दूसरों की मागों को पूरा क्यो नही किया। प्रथम कारण यह है कि अंग्रेजी अर्थ में 'लोकमत' भारत में नई चीज था। यह विकास की प्रारंभिक अवस्था मे था। सरकार का दावा था कि वित्तीय एवं आर्थिक नीतियों की तथ्यो पर आधारित एव जानकार आलोचना बिलकुल नही की जाती थी। द्वितीय, सरकार का विचार था कि समाचारपत्रों मे जो कुछ लिखा जाता था वह लोकमत को ठीक-ठीक भी नही व्यक्त करता था। जैसा कि बार्टल फ्रेर ने लिखा कि प्रकाशित मत सदैव ही लोकमत नही होता। अंग्रेजी और हिंदुस्तानी दोनो ही समाचार पत्र जनता के बहुत छोटे से वर्ग के विचार प्रतिबिंबित करते थे।[52] मेयो के अनुसार समाचार

राज्य की अर्थोपाय व्यवस्था में उनकी भी कुछ आवाज हो। सभी ब्रिटिश उपनिवेशो मे कराधान और प्रतिनिधित्व सहगामी है, परतु इग्लैंड के भारत के साथ विशिष्ट संबंधो को ध्यान मे रखते हुए हमें विश्वास है कि यदि अन्य परिस्थितियों को छोड़ भी दिया जाए तो राजनीतिक कारणो से सपरिषद गवर्नर जनरल को वित्तीय मामलो में पूर्ण अधिकार होने चाहिए। यह व्यवस्था उस नीति की विरोधी नही…कि वित्त के नियमन और नए कर लगाने के बारे में जनता का विश्वास प्राप्त करना और उनके विचारों एवं भावनाओ को पता करना चाहिए।"[39] स्मरणपत्र में एक बड़ी परामर्श परिषद जिसके सदस्यों मे साम्राज्य के विविध भागो मे हिंदुस्तानी तथा अग्रेज भद्र पुरुष हों…'के गठन का प्रस्ताव रखा गया। प्रस्तावित परिषद को अधिकार दिया जाना था कि वह वित्तीय मामलों से संबधित कागजात और कोई भी सूचना मांग सके और बजट पास होने से पहले उसका पुनर्विलोकन कर सके। परंतु यह परिषद केवल विचार विमर्श के लिए ही बनाई जानी थी। इसे मत देने का अधिकार नही भी दिया जा सकता था। इसके सभी सदस्य सरकार द्वारा मनोनीत होते थे। यह प्रस्ताव सरकार को स्वीकार्य नही था। सरकार की राय में इस प्रकार की परिषद 'जनता की आकांक्षाओं का ठीक प्रतिनिधित्व नही कर सकती थी।'[40] 'हिंदू पेट्रिअट' ने टिप्पणी करते हुए कहा कि 'हमे विश्वास हो चला है कि सरकार अब अधिक समय तक काल की गति को जो उसके विरुद्ध बढ रही है, पीछे नही धकेल सकती।'[41] कुछ अन्य हिंदुस्तानी समाचारपत्रों ने भी कर दाता को प्रतिनिधित्व देने की माग का समर्थन किया। बंगाल के 'सोम प्रकाश' तथा बबई के 'जामे जमशेद' ने इस मांग को अपना समर्थन प्रदान किया।[42] ब्रिटिश इडियन एसोसिएशन सरकार के पास स्मरणपत्र भेजता रहा। 1869 में भारत मंत्री के पास भेजे गए एक स्मरणपत्र में मांग की गई कि गृह खर्चो का विवरण प्रकाशित किया जाना चाहिए (जिससे करदाताओ के लिए अपने विचारो और भावनाओ को प्रकट कर सकना संभव हो')।[43] 1871 मे माग की गई कि वित्त का विकेंद्रीकरण किए जाने पर स्थानीय प्रशासन मे भारतीयों को भाग लेने का अवसर मिलना चाहिए।[44] इस समस्या पर मेयो ने गोपनीय ढंग से बिलकुल ऐसे ही विचार व्यक्त किए थे। उसने नेपियर को लिखा था कि 'लोग कहते है कि यह प्रक्रिया लंबी होगी। यह हो भी सकता है। मेरे विचार से यह उससे छोटी होगी जितनी कि लोग समझते है। जो भी हो, यह प्रशासन की नई प्रणाली प्रारभ करने का समय है जिसके द्वारा स्थानीय प्रशासन मे भारत के मूल निवासियों के हमारे साथ संबंध बढ़ने के लिए रास्ता खुलेगा।'[45] परतु शिक्षित और राजनीतिक दृष्टि से सचेतन वर्ग वित्तीय नियंत्रण की दिशा मे धीमी प्रगति और सवैधानिक व्यवस्थाओं की अपर्याप्तता से असंतुष्ट था। 'हिंदू पेट्रिअट' ने लिखा कि 'ब्रिटिश सवैधानिक व्यवस्थाओं की नकल कर लेना, विधान परिषद मे बजट प्रस्तुत करना, और उस पर कृत्रिम विचार विमर्श करना बहुत अच्छा है, परतु यह अर्थहीन तमाशाबाजी है…यद्यपि मित्र राजाओ महाराजाओ तथा सरदारो की अपने ढंग से उपयोगिता है, तथापि वे महामहिषी (महारानी) की भारतीय प्रजा का उससे अधिक प्रतिनिधित्व नही करते है जितना कि ब्रिटिश संसद में इंग्लैंड की जनता की प्रतिनिधित्व लुई नेपोलियन अथवा विक्टर एमैनुअल

पत्रों मे कुछ मुखर व्यक्तियों के विचार ही प्रकट होते थे और 'बहुत सारे खामोश व्यक्तियों के विचार मालूम करने का कोई साधन नही था। मेयो अंग्रेजों के स्वामित्व मे निकलने वाले समाचारपत्रों को जो गैर सरकारी यूरोपियनों (व्यापार तथा उद्योग में लगे हुए यूरोपियन जो 'यहा पर काले लोगों से यथासंभव रुपया ऐंठने के लिए आए थे') के हितों का ही समर्थन करते थे और बाबुओ के द्वारा निकाले जाने वाले हिंदुस्तानी अखबारो का जो जनसाधारण के हितो की ओर ध्यान न देकर अपने ही हित साधन मे लगे हुए थे, घृणामिश्रित तिरस्कार के साथ देखता था।[53] गवर्नर जनरल लारेंस ने भी अनुभव किया था कि 'जिस वर्ग की आवाजें सुनाई पड़ती है उसके और जनसाधारण के बीच जो मुश्किल से जीविका ही चला पाता है, खाई है।'[54] भारत मंत्री को भेजे जाने वाले अपने एक प्रेषण मे भारत सरकार ने 'वर्गीयमत' और 'लोकमत' मे भेद किया था। लोकमत 'केवल सार्वजनिक गोष्ठियो मे एकत्रित होने वाले वर्गों का ही मत नही होना चाहिए, *अपितु महामहिषी (महारानी) की प्रजा मे से उन लाखों लोगों का मत होना चाहिए* जो राजकोष मे अपना योगदान करते है ··'[55] जब 1868 में ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन ने एक परामर्श परिषद 'जिसके सदस्य योग्य हिंदुस्तानी और यूरोपियन भद्र पुरुष होते थे, के गठन का सुझाव दिया था तो भारत सरकार ने इस पर अपना मत व्यक्त करते हुए कहा कि इस प्रकार की संस्था केवल 'उन थोड़े से वर्गों के हितों का प्रतिनिधित्व करेगी जिनका स्पष्ट उद्देश्य अपने आपको करो से बचाना होगा।'[56] 'भारत भ्रमण के लिए आए हुए एक अंग्रेज पत्रकार के सशक्त शब्दों में ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन सामान्यतः 'संगठित स्वार्थपरता की एक व्यवस्था' माना जाता था।[57] यह सत्य है कि ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन का यथार्थ मे जमीदारो का संघ होने के कारण, यूरोपियन चेंबर्स आफ कामर्स की भांति ही एक सुस्पष्ट वर्ग चरित्र था। यह भी सत्य है कि यह संघ और हिंदुस्तानी समाचारपत्र सामान्य लोगों के हितो की तुलना मे जमीदारों, संपन्न व्यवसायिक वर्गो, दफ्तरों मे कार्य करने वाले कर्मचारियों इत्यादि के हितों के प्रति अधिक सजग थे। उदाहरण के लिए यह बात जनसाधारण पर पड़ने वाले नमक शुल्क तथा दूसरे अप्रत्यक्ष कर कि ऊंची दरों को इनके द्वारा समर्थन से प्रकट होती है, क्योंकि इससे संपन्न वर्गो के लिए आय कर, व्यवसायो पर लाइसेंस कर तथा दूसरे प्रत्यक्ष करों से, जो संपत्तिवान *एवं व्यवसायी वर्गों* को ही प्रभावित करते थे, *बच सकना संभव हो सकता था।* तथापि भारत में एकमात्र राजनीतिक चेतना संपन्न और मुखर वर्ग को प्रतिनिधित्व न देना, स्पष्टतया नीति विरुद्ध होता जा रहा था।

इस बारे मे केवल अटकलबाजी ही संभव है कि यदि इस वर्ग का निर्णय प्रक्रिया पर प्रधान असर होता तो वित्तीय नीतियां क्या होती। यहा पर कुछ नीति विषयक मामलों पर भारत में 'लोकमत' की प्रवृत्ति का सर्वेक्षण कर लेना अधिक उपयोगी होगा।

हिंदुस्तानी और ऐंग्लो इंडियन समाचारपत्र, आश्चर्यजनक पूर्ण सहमति से, हर प्रकार के प्रत्यक्ष कराधान के विरोध मे थे। दूसरी ओर उनका सुझाव था कि नमक शुल्क में वृद्धि होनी चाहिए। सभी परोक्ष करों मे नमक कर सबसे निर्धन वर्गों को प्रभावित करता था और प्रत्यक्ष कर केवल मध्यम और ऊंची आय वाले वर्गों पर होते थे। जेम्स विल्सन

के आय कर अधिनियम विवाद से, जिसके विषय मे हम पहले लिख आए है, प्रत्यक्ष कराधान के पक्ष और विपक्ष मे बार-बार दिए गए सारे तर्क उभरकर सामने आगए थे। ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन की प्रतिक्रिया ठीक वही थी जो 'संपत्तिवान 'एवं 'प्रबुद्ध' वर्ग की होती है। इसकी राय मे नमक शुल्क कराधान का 'सबसे कम आपत्ति जनक' रूप था। इस प्रकार के कराधान के विपरीत कुछ भी आपत्ति क्यो न हो, इसके बड़े से बड़े दोप आय कर अथवा प्रत्यक्ष कराधान की ऐसी ही किसी अन्य प्रणाली के अत्याचार, खतरे और उत्साह भंग करने वाले प्रभावों की तुलना मे वरदान ही सिद्ध होगे।'[57A] उन्नीसवी शताब्दी के सातवें दशक मे ऐंग्लो इंडियन पत्रिकाओ और चेंबर आफ कामर्स ने निरंतर इसी प्रकार के तर्क दिए। कुछ उदाहरण है, जनता 'प्रसन्नतापूर्वक' परोक्ष करों को सहन करेगी। (मद्रास एक्जामिनर); जहां आय कर 'बहुत अप्रिय' है, वही नमक शुल्क 'कृपि तथा श्रम जीवी वर्गों की वार्पिक आय में से बहुत थोडी कटौती है' (बगाल चेंबर आफ कामर्स); आय कर ने ब्रिटिश भारत के उन 'सभी वर्गों तथा जातियो' को एकता के सूत्र में बाध दिया है जो सबके साथ हुए अन्याय के बारे मे सहमत है (पायनिर); 'निर्धन वर्गो पर' भूमि कर और शुल्क के रूप मे कर भार नाम मात्र है (टाइम्स आफ इंडिया); लाइसेंस शुल्क और आय कर द्वारा अधिक उद्यमशील वर्ग 'अपने परिश्रम के फल' से वचित किया जाता है (कलकत्ता ट्रेड्स एसोसिएशन); आय कर से निष्ठावान वर्ग के साथ 'अधिकतम अन्याय करने के बाद अल्पतम राजस्व' की प्राप्ति हो रही है (इंग्लिसमैन)।[58] इस प्रकार के निरर्थक तर्कों के पीछे प्रयोजन स्पष्ट है। मेयो ने यूरोपीय अधिकारियो, जो भारत को अपनी दुधारू गाय समझते थे, अंग्रेज व्यापारियों, 'जिनका कम से कम समय मे अधिकाधिक धन कमाकर इंग्लैंड मे निष्क्रिय जीवन बिताने की इच्छा के अतिरिक्त अन्य कोई लक्ष्य नही था' ; और 'संपन्न हिंदुस्तानियों जिनकी कराधान के संबंध मे एकमात्र धारणा निर्धन की आय का अपहरण ही है' की अज्ञानता, स्वार्थपरता तथा दुर्भाव के विषय मे काफी घृणा के साथ लिखा है।[59] कैंनिंग ने संपन्न हिंदुस्तानियो की स्वार्थी प्रकृति और ऐंग्लो इंडियन वर्गों के प्रत्यक्ष कराधान पर संगठित प्रहारो की पोल खोलने के अवसर से लाभ उठाया। उसने ब्रिटिश इडियन एसोसिएशन से संबद्ध राजा राधाकात देव को लिखा कि 'आय कर के स्थान पर नमक पर कर लगाने का अर्थ है निर्धन के बल पर धनी व्यक्तियो को छूट देना।'[60] बंबई के इडियन इकानामिस्ट तथा सीरामपुर के फ्रैंड आफ इंडिया के अतिरिक्त किन्ही भी समाचारपत्रों ने नीची आय वाले वर्गों पर विभिन्न प्रकार के परोक्ष करो का भार हलका करने के लिए प्रत्यक्ष कराधान की आवश्यकता को कभी भी स्वीकार नही किया।[61] प्रत्यक्ष कराधान के विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया थी क्योंकि सरकार ने सातवें दशक मे पहली बार 'खामोश जनसाधारण के स्थान पर चीख पुकार मचाने वाले थोड़े से लोगो' पर कर लगाया था।[62]

प्रत्यक्ष करों के विरुद्ध एक हो जाने वाले सभी वर्गों के हित एक सदृश नही थे। प्रत्यक्ष कराधान की निंदा करते समय एक होते हुए भी प्रत्येक गुट अपने हितो की रक्षा करता था। नीची आय वाले वर्ग ने आरोही कराधान का सुझाव दिया था। सरकारी तथा वाणिज्यिक दफ्तरो मे नौकरी करने वाले क्लर्कों ने समान दर के स्थान पर क्रमवद्ध

पत्रों में कुछ मुखर व्यक्तियों के विचार ही प्रकट होते थे और 'बहुत सारे खामोश व्यक्तियों के विचार मालूम करने का कोई साधन नहीं था। मेयो अंग्रेजों के स्वामित्व में निकलने वाले समाचारपत्रों को जो गैर सरकारी यूरोपियनों (व्यापार तथा उद्योग में लगे हुए यूरोपियन जो 'यहां पर काले लोगों से यथासभव रुपया ऐंठने के लिए आए थे') के हितों का ही समर्थन करते थे और बाबुओं के द्वारा निकाले जाने वाले हिंदुस्तानी अखबारों का जो जनसाधारण के हितों की ओर ध्यान न देकर अपने ही हित साधन में लगे हुए थे, घृणामिश्रित तिरस्कार के साथ देखता था।[53] गवर्नर जनरल लारेंस ने भी अनुभव किया था कि 'जिस वर्ग की आवाजें सुनाई पड़ती हैं उसके और जनसाधारण के बीच जो मुश्किल से जीविका ही चला पाता है, खाई है।'[54] भारत मंत्री को भेजे जाने वाले अपने एक प्रेषण में भारत सरकार ने 'वर्गीयमत' और 'लोकमत' में भेद किया था। लोकमत 'केवल सार्वजनिक गोष्ठियों में एकत्रित होने वाले वर्गों का ही मत नहीं होना चाहिए, अपितु महामहिषी (महारानी) की प्रजा में से उन लाखों लोगों का मत होना चाहिए जो राजकोष में अपना योगदान करते हैं ..'[55] जब 1868 में ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन ने एक परामर्श परिषद 'जिसके सदस्य योग्य हिंदुस्तानी और यूरोपियन भद्र पुरुष होते थे, के गठन का सुझाव दिया था तो भारत सरकार ने इस पर अपना मत व्यक्त करते हुए कहा कि इस प्रकार की संस्था केवल 'उन थोड़े से वर्गों के हितों का प्रतिनिधित्व करेगी जिनका स्पष्ट उद्देश्य अपने आपको करों से बचाना होगा।'[56] 'भारत भ्रमण के लिए आए हुए एक अंग्रेज पत्रकार के सशक्त शब्दों में ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन सामान्यतः 'संगठित स्वार्थपरता की एक व्यवस्था' माना जाता था।[57] यह सत्य है कि ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन का यथार्थ में जमीदारों का संघ होने के कारण, यूरोपियन चेंबर्स आफ कामर्स की भांति ही एक सुस्पष्ट वर्ग चरित्र था। यह भी सत्य है कि यह संघ और हिंदुस्तानी समाचारपत्र सामान्य लोगों के हितों की तुलना में जमीदारों, संपन्न व्यवसायिक वर्गों, दफ्तरों में कार्य करने वाले कर्मचारियों इत्यादि के हितों के प्रति अधिक सजग थे। उदाहरण के लिए यह बात जनसाधारण पर पड़ने वाले नमक शुल्क तथा दूसरे अप्रत्यक्ष कर कि ऊंची दरों को इनके द्वारा समर्थन से प्रकट होती है, क्योंकि इससे संपन्न वर्गों के लिए आय कर, व्यवसायों पर लाइसेंस कर तथा दूसरे प्रत्यक्ष करों से, जो संपत्तिवान एवं व्यवसायी वर्गों को ही प्रभावित करते थे, बच सकना संभव हो सकता था। तथापि भारत में एकमात्र राजनीतिक चेतना संपन्न और मुखर वर्ग को प्रतिनिधित्व न देना, स्पष्टतया नीति विरुद्ध होता जा रहा था।

इस बारे में केवल अटकलबाजी ही संभव है कि यदि इस वर्ग का निर्णय प्रक्रिया पर प्रधान असर होता तो वित्तीय नीतियां क्या होतीं। यहां पर कुछ नीति विषयक मामलों पर भारत में 'लोकमत' की प्रवृत्ति का सर्वेक्षण कर लेना अधिक उपयोगी होगा।

हिंदुस्तानी और ऐंग्लो इंडियन समाचारपत्र, आश्चर्यजनक पूर्ण सहमति से, हर प्रकार के प्रत्यक्ष कराधान के विरोध में थे। दूसरी ओर उनका सुझाव था कि नमक शुल्क में वृद्धि होनी चाहिए। सभी परोक्ष करों में नमक कर सबसे निर्धन वर्गों को प्रभावित करता था और प्रत्यक्ष कर केवल मध्यम और ऊंची आय वाले वर्गों पर होते थे। जेम्स विल्सन

के आय कर अधिनियम विवाद से, जिसके विषय मे हम पहले लिख आए है, प्रत्यक्ष करा-धान के पक्ष और विपक्ष में बार-बार दिए गए सारे तर्क उभरकर सामने आगए थे। ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन की प्रतिक्रिया ठीक वही थी जो 'संपत्तिवान 'एव 'प्रबुद्ध' वर्ग की होती है। इसकी राय मे नमक शुल्क कराधान का 'सबसे कम आपत्ति जनक' रूप था। इस प्रकार के कराधान के विपरीत कुछ भी आपत्ति क्यों न हो, इसके बड़े से बड़े दोष आय कर अथवा प्रत्यक्ष कराधान की ऐसी ही किसी अन्य प्रणाली के अत्याचार, खतरे और उत्साह भंग करने वाले प्रभावों की तुलना मे वरदान ही सिद्ध होगे।'[57A] उन्नीसवी शताब्दी के सातवें दशक मे ऐंग्लो इडियन पत्रिकाओं और चेंबर आफ कामर्स ने निरंतर इसी प्रकार के तर्क दिए। कुछ उदाहरण है, जनता 'प्रसन्नतापूर्वक' परोक्ष करों को सहन करेगी। (मद्रास एक्जामिनर); जहां आय कर 'बहुत अप्रिय' है, वही नमक शुल्क 'कृषि तथा श्रम जीवी वर्गों की वार्षिक आय में से बहुत थोड़ी कटौती है' (बगाल चेंबर आफ कामर्स); आय कर ने ब्रिटिश भारत के उन 'सभी वर्गों तथा जातियों' को एकता के सूत्र मे बांध दिया है जो सबके साथ हुए अन्याय के बारे मे सहमत है (पायनिर); 'निर्धन वर्गो पर' भूमि कर और शुल्क के रूप में कर भार नाम मात्र है (टाइम्स आफ इडिया); लाइसेंस शुल्क और आय कर द्वारा अधिक उद्यमशील वर्ग 'अपने परिश्रम के फल' से वंचित किया जाता है (कलकत्ता ट्रेड्स एसोसिएशन); आय कर से निष्ठावान वर्ग के साथ 'अधिकतम अन्याय करने के बाद अल्पतम राजस्व' की प्राप्ति हो रही है (इंग्लिसमैन)।[58] इस प्रकार के निरर्थक तर्कों के पीछे प्रयोजन स्पष्ट है। मेयो ने यूरोपीय अधिकारियों, जो भारत को अपनी दुधारू गाय समझते थे, अंग्रेज व्यापारियों, 'जिनका कम से कम समय मे अधिका-धिक धन कमाकर इंग्लैड मे निष्क्रिय जीवन बिताने की इच्छा के अतिरिक्त अन्य कोई लक्ष्य नही था'; और 'संपन्न हिंदुस्तानियों जिनकी कराधान के संबंध मे एकमात्र धारणा निर्धन की आय का अपहरण ही है' की अज्ञानता, स्वार्थपरता तथा दुर्भाव के विषय मे काफी घृणा के साथ लिखा है।[59] कैनिंग ने सपन्न हिंदुस्तानियों की स्वार्थी प्रकृति और ऐंग्लो इंडियन वर्गों के प्रत्यक्ष कराधान पर संगठित प्रहारो की पोल खोलने के अवसर से लाभ उठाया। उसने ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन से संबद्ध राजा राधाकांत देव को लिखा कि 'आय कर के स्थान पर नमक पर कर लगाने का अर्थ है निर्धन के बल पर धनी व्यक्तियों को छूट देना।'[60] बंबई के इंडियन इकानामिस्ट तथा सीरामपुर के फ्रैंड आफ इंडिया के अतिरिक्त किन्ही भी समाचारपत्रो ने नीची आय वाले वर्गों पर विभिन्न प्रकार के परोक्ष करों का भार हलका करने के लिए प्रत्यक्ष कराधान की आवश्यकता को कभी भी स्वीकार नही किया।[61] प्रत्यक्ष कराधान के विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया थी क्योंकि सरकार ने सातवें दशक मे पहली बार 'खामोश जनसाधारण के स्थान पर चीख पुकार मचाने वाले थोड़े से लोगो' पर कर लगाया था।[62]

प्रत्यक्ष करों के विरुद्ध एक हो जाने वाले सभी वर्गों के हित एक सदृश नही थे। प्रत्यक्ष कराधान की निंदा करते समय एक होते हुए भी प्रत्येक गुट अपने हितों की रक्षा करता था। नीची आय वाले वर्ग ने आरोही कराधान का सुझाव दिया था। सरकारी तथा वाणिज्यिक दफ्तरो मे नौकरी करने वाले क्लर्कों ने समान दर के स्थान पर क्रमबद्ध

मान की आवश्यकता के बारे में सरकार के पास स्मरणपत्र भेजा।[63] वेतन भोगी वर्ग, जिन पर भारी कर लगाए गए थे, 'बनियों, साहूकार तथा पारसी करोड़पतियों की ओर, जो ब्रिटिश शासन के लाभ उठाते हुए भी करों से बचे हुए थे, ईर्ष्या के साथ देखते थे।'[64] व्यवसायी तथा उद्यमी वर्ग कर के अनौचित्य पर रुष्ट थे, क्योंकि वह उनकी अपनी आय जो 'परिश्रम का फल' थी और लगान निष्क्रिय जीवियों पूंजी निवेशकों, जमींदारों तथा संपत्तिधारी की निष्क्रिय व्यक्तियों की आय मे अंतर नहीं करता था।[65] व्यापारी इसलिए क्रुद्ध थे कि 'संपत्ति जब निष्क्रिय पड़ी रहकर स्वामी के अतिरिक्त किसी अन्य का भला नहीं करती तब तो वह कर मुक्त होती है, परंतु जैसे ही उसे उत्पादन कार्य में लगाया जाता है और वह देश के साथ-साथ संपत्ति के स्वामी के धन और समृद्धि मे वृद्धि करने लगती है, उस पर कर लगा दिया जाता है।'[66] ऐंग्लो इडियन मत आय कर के स्थान पर अथवा उसके अलावा भी, उत्तराधिकार कर के पक्ष में था, क्योंकि उत्तराधिकार कर मुख्य रूप से वास्तविक संपत्ति के मालिक भारतीयों पर ही पड़ना था, और अंग्रेज जो धन कमा लेने के बाद स्वदेश लौट जाते थे, इस कर से बचे रह सकते थे।[67] इन सभी बद्धहित गुटों द्वारा दिए गए अलग-अलग तर्क एक बिंदु पर पहुच कर मिल जाते थे कि उनकी आय पर लगाए गए प्रत्यक्ष कर, जैसा कि ब्रिटिश इडियन एसोसिएशन के सदस्यों ने कहा था 'अनुपयुक्त और अनैतिक' थे।

यह ध्यान देना बडा ही कौतूहलपूर्ण होगा कि इस काल मे सार्वजनिक विवादो मे नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र के प्रश्न बहुधा मिल जाते थे और फिर इन्हे एक-दूसरे से पृथक नही किया जा सकता था। इसका एक अच्छा उदाहरण अफीम का प्रश्न है। इग्लैंड और भारत मे बहुत बड़ा मत नैतिक व अन्य आधारो पर अफीम के व्यापार के विरुद्ध था। एक अवसर पर श्री ब्राइट ने कहा था कि इससे अधिक बुरा व्यापार अथवा यों कहे कि ऐसा व्यापार जिसके परिणाम इससे अधिक घृणित हों संभवत: अफ्रीकियों को उनके देश से अमरीकी महाद्वीप ले जाने के अतिरिक्त दूसरा नही रहा है :'[68] कई वर्षों तक निरंतर अनेक संसद सदस्यों ने जिनमे कर्नल साइक्स, किनँर्ड, आर० एन० फाउलर, सर डब्ल्यू० लाउसन, स्टीफन केव, एम० फाउलर आदि थे, विशेष रूप से अफीम के व्यापार के साथ सरकार के प्रत्यक्ष संबंध के कारण उसके नैतिक दृष्टि से निंदनीय स्वरूप की ओर ध्यान आकर्षित किया।[69] भारतीय विषयो पर लिखी गई पुस्तको मे से दो पर यहा विचार किया जा सकता है। इनमें से एक डोनाल्ड मैथेसन द्वारा लिखित 'व्हाट इज ओपियम ट्रेड' है। इस पुस्तक मे दावा किया गया था कि 'अफीम द्वारा किया गया अनर्थ चीन मे ईसाई धर्म की स्वीकृति मे एक सबसे बड़ी बाधा सिद्ध हुआ।'[70] कभी-कभी यह तर्क दिया जाता था कि अफीम पर एकाधिकार ब्रिटेन के मदिरा पर कर से बुरा नही है। मैथेसन लिखता है 'परतु यह तुलना पूर्ण नहीं है। जिस प्रकार भी राजस्व की प्राप्ति हो सकती है, मदिरा से प्राप्त होने वाला राजस्व उसमे सर्वश्रेष्ठ है क्यों कि एक ओर तो इससे सरकार की आय मे वृद्धि होती है और दूसरी ओर यह लागत को बढाकर इस हानिकर पदार्थ के उपभोग को कम करता है। सरकार को अफीम से राजस्व पहले तो इस विनाशकारी पदार्थ के उत्पादन से और फिर निषेधाज्ञाओं और निर्बल एवं गैर ईसाई राष्ट्र, जिसको

नैतिक भावनाओं को हमारे कार्य से धक्का पहुचता है, के विरोध के बावजूद उपभोग को प्रोत्साहन देकर प्राप्त होता है।'[71] 'दि गवर्नमेंट आफ दि ईस्ट इंडिया कपनी एंड इट्स मोनोपलीज और दि यग इंडिया पार्टी एड फ्री ट्रेड' नामक पैंफलेट मे अफीम के एकाधिकार को अतीत का कालदोषयुक्त अवशेष कहकर इसकी निंदा की गई। लेखक माल्कम लेविन का कहना था कि सभी एकाधिकार बुरे है, परतु अफीम पर एकाधिकार इन सबमे बुरा है।[72] उन्नीसवी शताब्दी के आठवें दशक मे सरकार द्वारा अफीम के व्यापार के विरोध मे मत बहुत सबल हो गया और 1874 मे अफीम के व्यापार पर प्रतिबंध लगाने के लिए आंदोलन पूर्ण रूप से संगठित था। इसी वर्ष भारत मे अफीम विरोधी समाज की स्थापना की गई।[73]

भारत मे ऐंग्लो इंडियन समुदाय के एक वर्ग का मत सरकार के अफीम पर एकाधिकार के विरुद्ध था। 'फ्रैंड आफ इंडिया' ने लिखा कि इस प्रकार का एकाधिकार उतना ही अशोभनीय था जितना कि महामहिषी (महारानी) के स्वामित्व मे मदिरा की दुकानें चलाना।[74] एकाधिकारों में अतिम अफीम का एकाधिकार तो 'हमारे प्रशासन के लिए कलक' है।[75] यह अकारण ही आरोप नही लगाया गया था कि सरकार न केवल अफीम का उत्पादन ही, अपितु उसमें सट्टेबाजी भी कर रही है।[76] यह एकाधिकार 'पुराने दिनो के वाणिज्यिक भ्रष्टाचार' की अप्रिय विरासत है।[77] नैतिक तर्कों के अलावा आर्थिक तर्क भी दिए गए। मुक्त व्यापार के सबंध मे दिए जाने वाले सामान्य तर्क भी दिए गए और यह सुझाव दिया गया कि एकाधिकार के स्थान पर उत्पादन शुल्क (एक्साइज ड्यूटी) प्रणाली उतनी ही लाभप्रद होगी।[78] बंगाल की एकाधिकार प्रणाली कृत्रिम थी और उसकी अपनी कठिन समस्याए थी। 'फ्रैंड आफ इंडिया' ने लिखा कि प्रत्यक्ष उत्पादन प्रणाली मे माग और पूर्ति के बीच ऐसा कोई सहज संबंध नही होता जिसकी समाज के नियमों को आवश्यकता पड़ती है और जो हस्तक्षेप न होने पर, प्राप्त हो जाता है...'[79] परतु अफीम के व्यापार मे सरकारी हस्तक्षेप के विरुद्ध तर्क का मर्म आर्थिक न होकर नैतिक था। समस्या के नैतिक पक्ष के विषय में अधिकाश ऐंग्लो इंडियन पत्रिकाओं के साथ-साथ भारतीयों के स्वामित्व मे निकलने वाली पत्रिकाए भी उदासीन थीं। यह नही भूलना चाहिए कि अफीम का दम लगाने के हानिकर प्रभाव भारत की तुलना मे चीन मे अधिक देखे गए। 'इंडियन इकानामिस्ट' ने लिखा कि 'भारत सरकार एकाधिकार अपने पास इसलिए रखे हुए है क्योंकि कोई भी इसके परित्याग के बारे मे योजना दे पाने में समर्थ नहीं है। प्रत्येक राजनीतिक नेता यह देख सकता है...कि वह अपने पास एकाधिकार अफीम का उपभोग संपूर्ण देश मे फैलने से रोकने की विशुद्ध तथा सच्ची अकांक्षा से रखता है। साथ ही इससे यथासंभव कम उत्पादन से अधिक से अधिक संभव राजस्व की प्राप्ति होती है।'[80] दादाभाई नौरोजी ने स्पष्ट रूप से अफीम विरोधी समिति को कहा था कि अफीम के व्यापार पर प्रतिबध लगाने के संबध मे 'आपके साथ सभी हिंदुस्तानियों की सहानुभूति नही है।' वे जानते थे कि अनेक भारतीय समाचार पत्रों की राय मे अफीम से प्राप्त होने वाला राजस्व छोड़ा नहीं जा सकता था।[81] व्यक्तिगत रूप से नौरोजी अफीम के व्यापार को नैतिक दृष्टि से घृणास्पद मानते थे। 1855 मे

जब वे बंबई की एक फर्म से संबद्ध हुए तो उनकी एक स्पष्ट शर्त यह थी कि उन्हें अफीम से संबंधित कोई कार्य नहीं दिया जाएगा।[83] परंतु सारे भारतीयों का यह मत नहीं था।[87] कुछ विरले अपवादों को छोड़कर भारतीयों के स्वामित्व में निकलने वाले समाचारपत्र अफीम के प्रश्न से संबंधित नैतिक पहलू पर चुप थे।[84]

अधिकारी अफीम व्यापार विरोधी आंदोलन के विषय में अनभिज्ञ नहीं थे। इस पदार्थ की खेती और बिक्री अनैतिक है, इस तर्क के विषय में लार्ड स्टेनले ने सरकारी दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए लिखा कि 'मैं इस तर्क को अयुक्तियुक्त और सरकार के कार्यों के विषय मे गलत सिद्धांत पर आधारित मानता हूं…'।[85] अफीम विरोधी आंदोलनकारियों के प्रचार का प्रतिकार करने के लिए कुछ प्रयत्न किए गए थे। किसी अज्ञात लेखक द्वारा लिखी गई पुस्तक 'दि ओपियम रेवेन्यू आफ इंडिया' मे आर्थिक आधार पर अफीम के एकाधिकार को बनाए रखने के समर्थन में तर्क दिए गए थे। पुस्तक मे दावा किया गया था कि अफीम के उपभोग के हानिकर दोषों को बहुत बढ़ा चढ़ा कर बताया गया है।[86] एक अन्य पैंफलेट लेखक ने अफीम से प्राप्त होने वाले राजस्व को इस आधार पर ठीक बताया कि इससे भारतीयों को कर भार से कुछ मुक्ति मिलती थी।[87] एक तीसरे लेखक ने प्रश्न किया कि 'यदि इन निस्तेज उपदेशकों की बन आए तो अफीम से प्राप्त होने वाले राजस्व के बिना भारत क्या करेगा?'[88] एस० लैंग ने तर्क दिया कि इंग्लैंड में मदिरा के कराधान से प्राप्त होने वाली आय की तुलना मे अफीम से राजस्व न तो अच्छा है और न ही अधिक खराब है।[89] चार्ल्स ट्रैवीलियन ने भी ठीक इसी तर्क का प्रयोग किया। उसने लिखा कि 'अफीम से राजस्व का नैतिक औचित्य ठीक वही है जो इंग्लैंड मे मदिरा पर उत्पादन शुल्क का है। क्या अफीम पर यथासंभव ऊंचा कर लगाकर उसके उपभोग को रोकना अधिक अच्छा है अथवा उसकी खेती और निर्यात को पूर्ण रूप से मुक्त छोड़कर चीनियों को अपने प्रिय स्वापक मे लीन रहने के साधन तैयार करना ठीक है?'[90] यह केवल आडंबरपूर्ण प्रश्न था और ट्रैवीलियन के विचार से इसका स्पष्ट उत्तर यही था कि हर दृष्टि से पहला विकल्प ही श्रेष्ठ है।[91] यदि यह वाछनीय भी हो तो भी अफीम की खेती और उपभोग पर पूर्ण रूप से प्रतिबंध लगा पाना असंभव था। सर जान स्ट्रैची तथा कर्नल रिचर्ड स्ट्रैची ने निश्चयात्मक ढंग से कहा कि न केवल अफीम का उपभोग कुछ लोगों की पक्की आदत है, बल्कि यदि यह थोड़ी मात्रा में ली जाए जैसा कि सिख और राजपूत करते है (ये पोस्त के काढ़े के रूप में अफीम का सेवन करते थे) तो यह लाभप्रद भी हो सकती है।[92] उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि चूंकि अफीम की आपूर्ति का एकमात्र स्रोत भारत नही है इसलिए अफीम का निर्यात बंद कर देने पर भी चीनियों को इससे अनिवार्य रूप से कोई लाभ नही होगा। वास्तव मे चीन के भीतरी प्रदेशों के सामान्य लोग स्वदेश में उत्पादित अफीम पर निर्भर थे, केवल तटीय प्रांतो के सम्पन्न लोग ही उत्तम श्रेणी की भारतीय अफीम खरीद पाने मे समर्थ थे।[93] इसके अतिरिक्त भारतीय हितों को भी तो ध्यान मे रखना था। भारत का यह विरला सौभाग्य था कि वह अपने एक ही उत्पाद से और अपने लोगो पर कर लगाए बिना भारी राजस्व प्राप्त करने मे समर्थ था। स्ट्रैची को इस आशा से कि चीनियों को उनकी इच्छा

के विरुद्ध अफीम के उपभोग से रोका जा सकेगा, उस लोगों के प्रकट एवं महत्वपूर्ण हितों के त्याग के लिए जिनके कल्याण के लिए भारत सरकार महानतम कर्तव्यपालन की दृष्टि से प्रतिशाबद्ध थी, कोई कारण दिखाई नही दिया।[94] जो लोग अफीम के व्यापार को नैतिक दृष्टि से गलत मानते थे, उन्हे भी यह स्पष्ट नही था कि राजस्व के इतने अधिक लाभप्रद और अपरिहार्य स्रोत को किस प्रकार छोड़ा जा सकता है। मेयो ने जिसे अफीम के प्रश्न पर 'लोकोपकारकों की बकवाद'[95] के प्रति गहरी तिरस्कारपूर्ण घृणा थी, स्वीकार किया कि 'अफीम संबंधी स्थिति ··हमारे यश पर सबसे गहरा कलंक है।'[96] परंतु क्या बंगाल की एकाधिकार प्रणाली का उत्पाद शुल्क प्रणाली मे परिवर्तन 'हमारे कुछ दुर्बल भाइयो के अंतःकरण पर मरहम का कार्य करने के अतिरिक्त कुछ और हो सकेगी।'[97] मेयो ने फ्रेर को लिखा कि 'प्रत्यक्ष क्रय विक्रय न करके पारगमन और आबकारी कर द्वारा राजस्व उगाह कर हम इस सबंध मे उत्तरदायित्व से बच सकते है, यह मेरे विचार से भ्रम है। कोर्निश तथा आयरिश तटो के पुराने जमीदार कभी-कभार ही स्वयं तस्कर व्यापार करते थे। परंतु वे उसे प्रोत्साहन देते थे और अपने काश्तकारो द्वारा चोरी से लाए गए माल पर भारी महसूल लगाते थे। हम अपनी प्रजा को (अफीम का) व्यापार करने की छूट व प्रोत्साहन देकर भारी कराधान द्वारा बहुत अधिक लाभ अर्जित करने के प्रस्ताव को स्वीकार करने के विरुद्ध है। यह व्यवस्था एक मिनट भी नही चलनी है। मैं भारी राजस्व के त्याग को, जो हमें बंगाल प्रणाली के स्थान पर पश्चिमी (बंबई की) प्रणाली के अपनाने पर करना होगा, मात्र उस नैतिक श्रेष्ठता के लिए वाछनीय नही समझता जिसे समझने के लिए भी मेरे जैसे सामान्य प्राणियों की बुद्धि से कहीं अधिक प्रखर बुद्धि होनी चाहिए।'[98]

सरकार की अफीम विरोधी नीति को पैशाचिक बताना, जैसा कि अफीम विरोधी आंदोलनकारियों की आदत थी, अत्युक्ति होगा। धर्मोपदेशको के दृष्टिकोण से यह नीति असमर्थनीय थी, परंतु भारत के व्यावहारिक प्रशासक केवल 'भावुकता' के बहाव मे नही आए।[99] इस प्रश्न पर सरकार के व्यावहारिक दृष्टिकोण का सारांश निम्नलिखित उद्धरण में आ जाता है। 'इस देश को अच्छी और सस्ती अफीम में स्वाभाविक एकाधिकार प्राप्त है। यदि कोई भी गंभीरतापूर्वक यह तर्क देता है कि यह स्वभाविक लाभ जो भारत को विधाता से मिला है, चीनियों के कारण पोस्त की खेती निषिद्ध करके कृत्रिम रूप से समाप्त कर दिया जाना चाहिए तो इस तर्क को उसके ही भाग्य पर छोड़ दिया जाना चाहिए···यह भारत सरकार की नीति है कि जो कुछ भी हो रहा है उसे यथासंभव सहज ढंग से होने दे। राजकोष को इस एकाधिकार से लाभ मिलता है और साथ ही इतनी ही राशि के किसी अधिक असुविधाजनक कराधान से बच पाना भी सम्भव होता है।[100]

कराधान संबंधी ये दो मत थे: पहला, कराधान का उद्देश्य राजस्व की प्राप्ति हैं। दूसरा, कर का प्रयोग समाजिक और नैतिक दृष्टि से अवाछनीय वस्तुओं का उपभोग रोकने के लिए नैतिक अनुशासन के रूप में किया जा सकता है। इन दो मतों के बीच टकराव उत्पाद शुल्क संबंधी विचार विमर्श मे भी लक्षित होता है।

उत्पाद शुल्क (क) गांजा और अफीम जैसे स्वापकों से; (ख) भारत में यूरोपीय ढग से तैयार की जाने वाली शराब पर शुल्क के रूप मे; तथा (ग) 'देशी शराब' पर शुल्क के रूप में संग्रह किया जाता था। जैसा कि हम अन्यत्र वर्णन कर चुके हैं मालवा और बंगाल की अफीम एजेंसियो के नियंत्रण मे अफीम का व्यापार था। बंगाल में अफीम पर सरकार का एकाधिकार था। मालवा बंबई में होकर जाने वाली अफीम पर पारगमन शुल्क लगता था। बंगाल मे नमक पर एकाधिकार की भांति ही भारत में अफीम के होने वाले उपभोग पर उत्पाद शुल्क राजस्व वस्तुतः एकाधिकारी का लाभ ही था। सरकार लाइसेंस प्राप्त विक्रेताओं के माध्यम से जनता को अफीम बेचती थी और सीमा शुल्क राजस्व मे लाइसेंस शुल्क जुड़ जाता था। गाजे की बिक्री पर लाइसेंस शुल्क था और उसकी खेती के लिए भी लाइसेंस लेना आवश्यक था। स्वापको की कृषि के निषेध तथा इस संबंध मे लाइसेंस प्रणाली से इनके उपभोग की आदत को बढने से रोकने मे सहायता मिलती थी। 1871 मे कृषि, राजस्व, तथा वाणिज्य विभाग ने इन स्वापको के हानिकर प्रभावों के बारे मे एक सर्वेक्षण किया और पाया इनके प्रभाव बहुत ही खतरनाक होते है जिनमे पागलपन भी था।[101] यूरोपीय ढंगों से बनाई जाने वाली शराबों पर विदेश से आयातित ऐसी ही शराबो पर लगनेवाले सीमा शुल्क के बराबर ही शुल्क था।

देशी शराबो पर शुल्क संग्रह की दो प्रणालियां थी। एक भभका शुल्क प्रणाली (आउट स्टिल सिस्टम) के नाम से ज्ञात थी। इस प्रणाली के अंतर्गत शराब बनाने के भभकों पर स्थित दैनिक कर था और शराब के खुदरा विक्रेता को लाइसेंस शुल्क देना होता था जिसका समय विशेष में शराब की बिक्री की मात्रा से कोई संबंध नही होता था।[102] जिला अधिकारियो द्वारा किए जाने वाले नीलाम मे विक्रेता एकाधिकार सपूर्ण अधिकार) खरीदता था। वस्तुतः यह शराब बेचने का अधिकार इजारा करने की प्रणाली थी। इजारेदार उसी कस्बे अथवा शहर में दुकानें खोल सकता था जिसके लिए उसे इजारा मिला होता था। यह विश्वास किया जाता था कि इस प्रणाली में भारी संख्या में शराब खानों और शराब की दुकानों के खुलने पर रोक रहेगी। इस प्रणाली का दोष था कि इसमे लाइसेंस पा जाने वाले व्यक्ति को यथासंभव भारी मात्रा में शराब बेचने की प्रेरणा मिलती थी क्योंकि लाइसेंस शुल्क पहले ही निर्धारित हो जाता था और इसका शराब की बेची जाने वाली मात्रा से कोई संबंध नही होता था। इसलिए विक्रेता का स्वाभाविक प्रयास यही होता था कि वह अधिक से अधिक मात्रा मे शराब बेचकर यथासंभव अधिक लाभ अर्जित करे। बंगाल सरकार ने संत्रस्त होकर देखा कि लोगों में शराब पीने की आदत बढ़ रही है। इसके लिए शराब के व्यापारी ही उत्तरदाई थे। ('जिनका लाभ केवल इस बात पर ही निर्भर होता था कि वे शराब के उपभोग को कितना बढ़ा सकते हैं')।[103] बंगाल सरकार के अनुसार यह 'इस देश मे हमारे प्रशासन के लिए सबसे बड़े कलंक की बात है।'[104] उत्पादन शुल्क की दूसरी प्रणाली सदर शराब कारखाना प्रणाली के नाम से थी।[105] इस प्रणाली की मुख्य विशेषता यह थी कि इसके अंतर्गत शुल्क की राशि वास्तविक उपभोग के लिए उपलब्ध होने वाली मात्रा पर निर्भर होती थी।[106]

इस प्रणाली को सदर शराब कारखाना प्रणाली (सदर डिस्टिलरी सिस्टम) इसलिए कहा जाता था क्योंकि सरकार ने केंद्रीय शराब कारखाना स्थापित कर दिया था जिसमें वे लोग शराब का उत्पादन करते थे जो इसकी उत्पादित मात्रा पर शुल्क देते थे। इस प्रकार उत्पादित शराब को ये विक्रेताओं को दे देते थे जिन्हें एक लाइसेंस शुल्क देना होता था।[107] भारत सरकार 'आबकारी प्रशासन पर लगाए गए इस आरोप का निराकरण करने के लिए उत्सुक थी' कि भभका शुल्क (आउट स्टिल सिस्टम) प्रणाली के अंतर्गत 'आबकारी विभाग ने शराब के उपभोग को थोपकर राजस्व में वृद्धि करने का प्रयास किया है।[108] परंतु सदर शराब कारखाना' प्रणाली लागू करने के लिए इमारतों और व्यवस्था पर भारी व्यय करना आवश्यक था। इसलिए इस प्रणाली को बहुत धीरे-धीरे ही लागू किया जा सकता। हिंदुस्तानी समाचारपत्र लोगों में शराब पीने की आदत फैलने से न रोक पाने के लिए सरकार की आलोचना कर रहे थे। धर्म प्रचार का पूर्वगृह रखने वाले समाचारपत्र भी 'सरकार द्वारा नशेबाजी के विस्तार' की आलोचना करते थे।[109]

इस संबंध में सरकारी अधिकारियों की घोषणाएं यदि मनोरंजक नहीं तो उलझन में डालने वाली अवश्य थी। 'ऐसा विश्वास है कि (आबकारी) प्रशासन की उपयुक्त प्रणाली में राजस्व और नैतिकता के उद्देश्य समान होंगे।'[110] सरकार का लक्ष्य 'उत्पादन-शुल्क के रूप में इतना अधिक राजस्व एकत्रित करना था जिससे स्वापक तथा शराब का उपभोग करने वाले हतोत्साहित हो जाएं।[111] इन आदर्शों को व्यावहारिक नीति में परिणत कर पाना कठिन था।

सरकार के अधिकारी प्रवक्ताओं की राय में स्टांप कर 'विशिष्ट लाभकारी राजस्व' का स्रोत था। विलसन का विचार था कि दुकानदारों, व्यापारियों तथा बैंकरों पर, जो न्याय एवं व्यवस्था की प्रणाली का लाभ उठा रहे थे, इस खर्चीली प्रणाली का व्यय पूरा करने के लिए न्यायोचित ढंग से कर लगाए जा सकते थे।[112] अतः 1860 में स्टाप कर में 100 प्रतिशत वृद्धि कर दी गई, और 1861 में इसमें पुनः थोड़ी सी वृद्धि की गई। इस प्रकार स्टाप राजस्व जो 1857-58 में केवल 45.6 लाख रुपये था, 1860-61 में बढ़कर 1.18 करोड़ रुपये हो गया। सरकार के लिए वाणिज्यिक संव्यवहार (लेन-देन संबंधी कागजात (जैसे हुंडी, बांड, विनिमय बिल) पर स्टांप शुल्क लगाकर राजस्व में वृद्धि करना उचित था, पर अदालती एवं विधिक कागजात (जैसे वादपत्र, याचिका, जमीन रजिस्ट्री की दस्तावेज इत्यादि) पर स्टांप शुल्क लगाना वस्तुतः 'न्याय पर कर' था।[113] दस्तावेजों की सरकारी मान्यता सुनिश्चित करने के लिए संपन्न व्यापारी तथा बैंकर उन पर लगाए जाने वाले स्टांपों के लिए सहर्ष भुगतान करते थे, परंतु जो लोग न्याय पाने के लिए न्यायालयों की शरण में पहुंचते थे उन पर कर लगाना उचित माना जा सकता था। सरकारी मत था कि इससे अत्यधिक मुकदमेबाजी पर रोक लगेगी। यह समझा जाता था कि लोगों को मुकदमेबाजी अत्यधिक प्रिय है।[114]

भारतीय समाचारपत्र भारत सरकार के भारी सैन्य व्यय की निंदा करने में लगभग एकमत थे। 'भारतीय राजनीतिज्ञों की एक विचारधारा के अनुसार सरकार

था, पहले ही 'संपत्ति-निकास' पर ध्यान दिया था। फास्ट ने भारतीय लोकमत को बहुत प्रभावित किया।[111] उसने लिखा कि यह जानकर मन में शंका उत्पन्न होती है कि भारत के राजस्व का बढ़ता हुआ अनुपात भारत में खर्च नहीं हो रहा है।'[112]

उन्नीसवीं शताब्दी के भारत की विशिष्ट सरकारी शब्दावली में 'गृह खर्च' से तात्पर्य उन विदेशी खर्चों से होता था जो इंग्लैंड भारत मंत्री के कार्यालय द्वारा ब्रिटिश मुद्रा में किए जाते थे। 1860-65 की अवधि में इंग्लैंड में शुद्ध भुगतान का वार्षिक औसत 94 लाख पौंड था और इसी दशक के उत्तरार्द्ध का औसत 95 लाख पौंड। भारत मंत्री द्वारा इंग्लैंड में किए जाने वाले इन गृह खर्चों पर भारत सरकार का कोई प्रत्यक्ष नियंत्रण नहीं था। जिस अवधि का इस पुस्तक में अध्ययन किया गया है, उसमें भारत मंत्री द्वारा तैयार किए गए इंग्लैंड में प्रत्याशित व्यय प्राक्कलनों को भारतीय बजट में दो बार कम किया गया था। दोनों बार भारत मंत्री ने भारत सरकार और वित्त सदस्य को इस संबंध में जोरदार शब्दों में फटकारा था और गृह खर्चों के बजट में संशोधन करके उन्हें बढ़ा दिया गया था। भारत मंत्री ने वे आर्थिक नीतियां निर्धारित कीं जिनके द्वारा इंग्लैंड में भुगतान होने थे। इस कार्य के लिए कुछ निर्धारित रीतियां थीं। इंग्लैंड में भारत पर लिखे गए विनिमय बिल तथा तार द्वारा हस्तांतरण, भारत से सोने चांदी का प्रेषण, इंग्लैंड में जुटाए गए ऋण, प्रत्याभूत (गारंटीशुदा) रेल कंपनियों से हुई प्राप्तियों का उपयोग इत्यादि।

गृह खर्चों की मुख्य मदें निम्नलिखित थीं :

(1) ऋण पर ब्याज : इसमें ईस्ट इंडिया कंपनी के शेयरधारियों को दिया जाने वाला लाभांश सम्मिलित था। 1834 से 1874 तक इन्हें 6,29,970 पौंड दिया गया था (1874 में इन शेयरों का परिशोधन हो गया)। इंग्लैंड में लिए गए ऋणों तथा लंदन पर काटे गए बिलों के द्वारा शोधित भारतीय ऋणों पर ब्याज एक बहुत बड़ी मद था। हम देख चुके हैं कि भारत का लोक ऋण हमारे इस अध्ययन की अवधि में किस प्रकार बढ़ा है। 1856-57 में इंग्लैंड में ब्याज का भुगतान केवल 8,89,000 पौंड था। 1860-65 में औसत वार्षिक ब्याज भार 20.3 लाख पौंड और 1865-70 में 20.8 लाख पौंड था।

(2) भारत के निमित्त भंडार : भारत पर इंग्लैंड में सिविल विभागों (जिनमें लोक निर्माण विभाग, टकसाल, तथा डाक व तार विभाग सम्मिलित थे), सेना तथा नौ सेना के लिए खरीदे गए भंडारों की लागत प्रायः 10 लाख पौंड से अधिक आती थी और विरले ही 15 लाख पौंड से अधिक होती थी। इंग्लैंड से भंडारों की प्राप्ति पर नियंत्रण एक गंभीर समस्या था। 1862 में सरकार के विभिन्न विभागों को आदेश दिया गया कि वे इंग्लैंड से भंडारों की सीधी मांग न करें। भंडार संबंधी मांगें भारत मंत्री के पास भेजने से पहले वित्त विभाग उनकी जांच पड़ताल करता था।[113] भारत सरकार के अनुरोध पर भारत मंत्री ने इंडिया आफिस में भंडार संबंधी सभी मांग पत्रों की जांच-पड़ताल और उन पर अंतिम रूप से स्वीकृति देने से पूर्व उनकी पिछले वर्षों में सामग्री के इस्तेमाल की मात्रा से तुलना करने का नियम बना दिया था।[114] सैन्य वित्त विभाग से

संबद्ध कर्नल वाल्फ सैन्य खर्चों में कमी करने का प्रयास कर रहा था, उसने सैन्य भंडारों को की जाने वाली आपूर्ति पर नियंत्रण रखने के लिए कुछ नियम बनाए।[145] भारत मंत्री ने भारत सरकार से आग्रह किया कि यदि भारत में कागज तथा लेखन सामग्री कम कीमत पर मिलना संभव हो तो उसे प्राप्त कर इंग्लैंड में भंडार पर खर्चों में कमी की जाए।[146] 1866 मे भारत मंत्री ने भारत सरकार से पुन: आग्रह किया कि वह इंग्लैंड में भंडारों पर खर्च में कमी करे। यह स्पष्ट किया गया कि इंग्लैंड में भंडारों पर खर्च, जिसमें माल भाड़ा भी सम्मिलित था 1864 से 1866 तक के तीन वर्षों में तीन गुना हो गया है।[147] भंडार खर्च की पूर्व योजना बनाने के लिए भारत सरकार ने भारत मंत्री के पास वित्तीय वर्ष प्रारंभ होने से पहले ही मांग पत्रों के प्राक्कलन भेजने का निश्चय किया।[148] कम से कम कीमत पर भंडारों की आपूर्ति की निश्चित व्यवस्था करने के लिए भारत मंत्री ने टेंडर मंगाना प्रारंभ कर दिया। यह प्रणाली पहले भी प्रचलित थी, परंतु अब 'सार्वजनिक प्रतियोगिता का सिद्धांत' अधिक संगत ढंग से लागू किया गया।[149] ये सब उपाय भंडार पर व्यय में वृद्धि को रोक पाने में असफल रहे थे। 1869 मे भारत मंत्री ने पुन: भंडारों के बढ़ते हुए व्यय की ओर भारत सरकार का ध्यान आकर्षित किया और मांग पत्रों पर अपर्याप्त नियंत्रण के लिए उसे दोषी ठहराया।[150] मेयो ने भंडार संबंधी एक ऐसी 'मांग पत्र समिति' (इंडेंट कमेटी) की स्थापना के संबंध में सोचा जिसमें लोक निर्माण, सैन्य तथा वित्त विभागों के प्रतिनिधि हों।[151] ऐसी समिति नियुक्त की गई और भंडार व्यय के वार्षिक पुनर्विलोकन की प्रणाली की व्यवस्था शुरू हुई।[152] इन उपायों से सरकार के लिए भंडार पर अपव्यय रोक सकना संभव हुआ, परंतु जैसा कि आंकड़ों से स्पष्ट है भंडार खर्च बढता ही गया। डाक व तार विभाग तथा लोक निर्माण विभाग के कार्यों मे विस्तार तथा रेलों के निर्माण के कारण इंग्लैंड से माल तथा विविध उपकरणों के आयात की आवश्यकता हुई।

(3) भारत स्थित ब्रिटिश सेना व्यवस्था पर गृह खर्च एक महत्वपूर्ण मद थी। हमने पिछले अध्याय मे भारतीय राजस्व पर पड़ने वाले नियमित और गैर नियमित सैन्य व्यय की व्याख्या की है।

(4) गृह खर्चों में शामिल होनेवाला एक अन्य व्यय भारत जाने वाली और वहा से इंग्लैंड लौटने वाली सेनाओं पर परिवहन व्यय था। 1900 तक, जब वैलबी आयोग ने सिफारिश की कि परिवहन का आधा परिव्यय ब्रिटिश राजकोष से किया जाना चाहिए, इंग्लैंड में सेना के पोतारोहण के दिन से भारत पहुंचने तक का संपूर्ण मार्ग व्यय भारत से ही वसूल किया जाता था। अल्पकालीन सेवा प्रणाली के कारण परिवहन खर्च अधिक हो गया था। इस शीर्षक के अंतर्गत व्यय की राशि हर वर्ष बदलती रहती थी।

(5) सेवा निवृत होने वाले सिविल सेवा अधिकारियों की पेंशन, वार्षिक अनुदानों तथा और छुट्टी पर जाने वाले अधिकारियों को दिए जाने वाले भत्तों के कारण गृह खर्चों मे भारी वृद्धि हो गई थी। ये व्यय गैर नियमित प्रभार कहलाते थे।

(6) रेलों पर प्रत्याभूत (गारंटी शुदा) ब्याज बहुत बड़ी मद था। प्रत्याभूत

था, पहले ही 'सपत्ति-निकास' पर ध्यान दिया था। फास्ट ने भारतीय लोकमत को बहुत प्रभावित किया।[141] उसने लिखा कि यह जानकर मन मे शंका उत्पन्न होती है कि भारत के राजस्व का बढता हुआ अनुपात भारत मे खर्च नही हो रहा है।'[142]

उन्नीसवी शताब्दी के भारत की विशिष्ट सरकारी शब्दावली में 'गृह खर्च' से तात्पर्य उन विदेशी खर्चों से होता था जो इंग्लैंड भारत मंत्री के कार्यालय द्वारा ब्रिटिश मुद्रा मे किए जाते थे। 1860-65 की अवधि मे इग्लैंड मे शुद्ध भुगतान का वार्षिक औसत 94 लाख पौंड था और इसी दशक के उत्तरार्द्ध का औसत 95 लाख पौंड। भारत मंत्री द्वारा इग्लैंड मे किए जाने वाले इन गृह खर्चों पर भारत सरकार का कोई प्रत्यक्ष नियंत्रण नही था। जिस अवधि का इस पुस्तक मे अध्ययन किया गया है, उसमे भारत मंत्री द्वारा तैयार किए गए इग्लैंड में प्रत्याशित व्यय प्राक्कलनों को भारतीय बजट में दो बार कम किया गया था। दोनों बार भारत मंत्री ने भारत सरकार और वित्त सदस्य को इस सबंध मे जोरदार शब्दो मे फटकारा था और गृह खर्चों के बजट में संशोधन करके उन्हे बढ़ा दिया गया था। भारत मंत्री ने वे आर्थिक नीतिया निर्धारित की जिनके द्वारा इंग्लैंड मे भुगतान होने थे। इस कार्य के लिए कुछ निर्धारित रीतियां थी। इंग्लैंड में भारत पर लिखे गए विनिमय बिल तथा तार द्वारा हस्तातरण, भारत से सोने चांदी का प्रेषण, इंग्लैंड मे जुटाए गए ऋण, प्रत्याभूत (गारंटीशुदा) रेल कंपनियों से हुई प्राप्तियो का उपयोग इत्यादि।

गृह खर्चों की मुख्य मदें निम्नलिखित थी :

(1) ऋण पर ब्याज : इसमे ईस्ट इडिया कंपनी के शेयरधारियों को दिया जाने वाला लाभाश सम्मिलित था। 1834 से 1874 तक इन्हे 6,29,970 पौंड दिया गया था (1874 में इन शेयरों का परिशोधन हो गया)। इंग्लैंड में लिए गए ऋणों तथा लंदन पर काटे गए बिलों के द्वारा शोधित भारतीय ऋणो पर ब्याज एक बहुत बड़ी मद था। हम देख चुके है कि भारत का लोक ऋण हमारे इस अध्ययन की अवधि मे किस प्रकार बढा है। 1856-57 में इग्लैंड मे ब्याज का भुगतान केवल 8,89,000 पौंड था। 1860-65 मे औसत वार्पिक व्याज भार 20.3 लाख पौंड और 1865-70 में 20.8 लाख पौंड था।

(2) भारत के निमित्त भंडार : भारत पर इंग्लैंड में सिविल विभागो (जिनमें लोक निर्माण विभाग, टकसाल, तथा डाक व तार विभाग सम्मिलित थे), सेना तथा नौ सेना के लिए खरीदे गए भंडारों की लागत प्राय: 10 लाख पौंड से अधिक आती थी और विरले ही 15 लाख पौंड से अधिक होती थी। इंग्लैंड से भंडारो की प्राप्ति पर नियंत्रण एक गंभीर समस्या था। 1862 में सरकार के विभिन्न विभागो को आदेश दिया गया कि वे इग्लैंड से भंडारो की सीधी माग न करें। भंडार संबंधी मागें भारत मंत्री के पास भेजने से पहले वित्त विभाग उनकी जाच पडताल करता था।[143] भारत सरकार के अनुरोध पर भारत मंत्री ने इंडिया आफिस मे भंडार संबंधी सभी मांग पत्रों की जाच-पड़ताल और उन पर अंतिम रूप मे स्वीकृति देने से पूर्व उनकी पिछले वर्षों में सामग्री के इस्तेमाल व [illegible] करने का नियम बना दिया था।[144] सैन्य वित्त विभाग से

संबद्ध कर्नल वाल्फ सैन्य खर्चों में कमी करने का प्रयास कर रहा था, उसने सैन्य भंडारों को की जाने वाली आपूर्ति पर नियंत्रण रखने के लिए कुछ नियम बनाए।[145] भारत मंत्री ने भारत सरकार से आग्रह किया कि यदि भारत में कागज तथा लेखन सामग्री कम कीमत पर मिलना संभव हो तो उसे प्राप्त कर इंग्लैंड में भंडार पर खर्चों में कमी की जाए।[146] 1866 में भारत मंत्री ने भारत सरकार से पुनः आग्रह किया कि वह इंग्लैंड में भंडारों पर खर्च में कमी करे। यह स्पष्ट किया गया कि इंग्लैंड में भंडारों पर खर्च, जिसमें माल भाड़ा भी सम्मिलित था 1864 से 1866 तक के तीन वर्षों में तीन गुना हो गया है।[147] भंडार खर्च की पूर्व योजना बनाने के लिए भारत सरकार ने भारत मंत्री के पास वित्तीय वर्ष प्रारंभ होने से पहले ही मांग पत्रों के प्राक्कलन भेजने का निश्चय किया।[148] कम से कम कीमत पर भंडारों की आपूर्ति की निश्चित व्यवस्था करने के लिए भारत मंत्री ने टेंडर मगाना प्रारंभ कर दिया। यह प्रणाली पहले भी प्रचलित थी, परंतु अब 'सार्वजनिक प्रतियोगिता का सिद्धांत' अधिक संगत ढंग से लागू किया गया।[149] ये सब उपाय भंडार पर व्यय में वृद्धि को रोक पाने मे असफल रहे थे। 1869 में भारत मंत्री ने पुनः भंडारो के बढ़ते हुए व्यय की ओर भारत सरकार का ध्यान आकर्षित किया और मांग पत्रों पर अपर्याप्त नियंत्रण के लिए उसे दोषी ठहराया।[150] मेयो ने भंडार संबंधी एक ऐसी 'मांग पत्र समिति' (इंडेंट कमेटी) की स्थापना के संबंध मे सोचा जिसमें लोक निर्माण, सैन्य तथा वित्त विभागों के प्रतिनिधि हों।[151] ऐसी समिति नियुक्त की गई और भंडार व्यय के वार्षिक पुनर्विलोकन की प्रणाली की व्यवस्था शुरू हुई।[152] इन उपायों से सरकार के लिए भंडार पर अपव्यय रोक सकना संभव हुआ, परंतु जैसा कि आंकड़ों से स्पष्ट है भंडार खर्च बढ़ता ही गया। डाक व तार विभाग तथा लोक निर्माण विभाग के कार्यों में विस्तार तथा रेलों के निर्माण के कारण इंग्लैंड से माल तथा विविध उपकरणों के आयात की आवश्यकता हुई।

(3) भारत स्थित ब्रिटिश सेना व्यवस्था पर गृह खर्च एक महत्वपूर्ण मद थी। हमने पिछले अध्याय में भारतीय राजस्व पर पड़ने वाले नियमित और गैर नियमित सैन्य व्यय की व्याख्या की है।

(4) गृह खर्चों में शामिल होनेवाला एक अन्य व्यय भारत जाने वाली और वहा से इंग्लैंड लौटने वाली सेनाओं पर परिवहन व्यय था। 1900 तक, जब वैलबी आयोग ने सिफारिश की कि परिवहन का आधा परिव्यय ब्रिटिश राजकोप से किया जाना चाहिए, इंग्लैंड में सेना के पोतारोहण के दिन से भारत पहुंचने तक का संपूर्ण मार्ग व्यय भारत से ही वसूल किया जाता था। अल्पकालीन सेवा प्रणाली के कारण परिवहन खर्च अधिक हो गया था। इस शीर्षक के अंतर्गत व्यय की राशि हर वर्ष बदलती रहती थी।

(5) सेवा निवृत होने वाले सिविल सेवा अधिकारियों की पेंशन, वार्षिक अनुदानों तथा और छुट्टी पर जाने वाले अधिकारियों को दिए जाने वाले भत्तो के कारण गृह खर्चों में भारी वृद्धि हो गई थी। ये व्यय गैर नियमित प्रभार कहलाते थे।

(6) रेलों पर प्रत्याभूत (गारंटी शुदा) ब्याज बहुत बड़ी मद था। प्रत्याभूत

था, पहले ही 'संपत्ति-निकाम' पर ध्यान दिया था। फास्ट ने भारतीय लोकमत को बहुत प्रभावित किया।[111] उसने लिखा कि यह जानकर मन में शंका उत्पन्न होती है कि भारत के राजस्व का बढ़ता हुआ अनुपात भारत में खर्च नहीं हो रहा है।"[112]

उन्नीसवी शताब्दी के भारत की विशिष्ट सरकारी शब्दावली में 'गृह खर्च' से तात्पर्य उन विदेशी खर्चों से होता था जो इंग्लैंड भारत मंत्री के कार्यालय द्वारा ब्रिटिश मुद्रा मे किए जाते थे। 1860-65 की अवधि मे इंग्लैंड में शुद्ध भुगतान का वार्षिक औसत 94 लाख पौंड था और इसी दशक के उत्तरार्द्ध का औसत 95 लाख पौंड। भारत मंत्री द्वारा इंग्लैंड मे किए जाने वाले इन गृह खर्चों पर भारत सरकार का कोई प्रत्यक्ष नियंत्रण नही था। जिस अवधि का इस पुस्तक मे अध्ययन किया गया है, उसमें भारत मंत्री द्वारा तैयार किए गए इंग्लैंड मे प्रत्याशित व्यय प्राक्कलनों को भारतीय बजट में दो बार कम किया गया था। दोनों बार भारत मंत्री ने भारत सरकार और वित्त सदस्य को इस संबंध मे जोरदार शब्दों मे फटकारा था और गृह खर्चों के बजट मे संशोधन करके उन्हें बढ़ा दिया गया था। भारत मंत्री ने वे आर्थिक नीतिया निर्धारित की जिनके द्वारा इंग्लैंड मे भुगतान होने थे। इस कार्य के लिए कुछ निर्धारित रीतियां थीं। इंग्लैंड में भारत पर लिखे गए विनिमय बिल तथा तार द्वारा हस्तांतरण, भारत से सोने चांदी का प्रेषण, इंग्लैंड मे जुटाए गए ऋण, प्रत्याभूत (गारंटीशुदा) रेल कंपनियों से हुई प्राप्तियों का उपयोग इत्यादि।.

गृह खर्चों की मुख्य मदें निम्नलिखित थी :

(1) ऋण पर ब्याज : इसमे ईस्ट इंडिया कंपनी के शेयरधारियों को दिया जाने वाला लाभांश सम्मिलित था। 1834 से 1874 तक इन्हें 6,29,970 पौंड दिया गया था (1874 में इन शेयरो का परिशोधन हो गया)। इंग्लैंड मे लिए गए ऋणों तथा लंदन पर काटे गए बिलों के द्वारा शोधित भारतीय ऋणो पर ब्याज एक बहुत बड़ी मद था। हम देख चुके है कि भारत का लोक ऋण हमारे इस अध्ययन की अवधि मे किस प्रकार बढा है। 1856-57 मे इंग्लैंड मे ब्याज का भुगतान केवल 8,89,000 पौंड था। 1860-65 मे औसत वार्षिक ब्याज भार 20.3 लाख पौंड और 1865-70 मे 20.8 लाख पौंड था।

(2) भारत के निमित्त भंडार : भारत पर इंग्लैंड मे सिविल विभागों (जिनमे लोक निर्माण विभाग, टकसाल, तथा डाक व तार विभाग सम्मिलित थे), सेना तथा नौ सेना के लिए खरीदे गए भंडारो की लागत प्राय: 10 लाख पौंड से अधिक आती थी और विरले ही 15 लाख पौंड से अधिक होती थी। इंग्लैंड से भंडारों की प्राप्ति पर नियंत्रण एक गंभीर समस्या था। 1862 मे सरकार के विभिन्न विभागों को आदेश दिया गया कि वे इंग्लैंड से भंडारों की सीधी मांग न करें। भंडार संबंधी मांगें भारत मंत्री के पास भेजने से पहले वित्त विभाग उनकी जांच पड़ताल करता था।[113] भारत सरकार के अनुरोध पर भारत मंत्री ने इंडिया आफिस मे भंडार संबंधी सभी मांग पत्रों की जांच-पड़ताल और उन पर अंतिम रूप से स्वीकृति देने से पूर्व उनकी पिछले वर्षों में सामग्री के इस्तेमाल की मात्रा से तुलना करने का नियम बना दिया था।[114] सैन्य वित्त विभाग से

संबद्ध कर्नल ब्राल्फ सैन्य खर्चों में कमी करने का प्रयास कर रहा था, उसने सैन्य भंडारों को की जाने वाली आपूर्ति पर नियंत्रण रखने के लिए कुछ नियम बनाए।[145] भारत मंत्री ने भारत सरकार से आग्रह किया कि यदि भारत में कागज तथा लेखन सामग्री कम कीमत पर मिलना संभव हो तो उसे प्राप्त कर इंग्लैंड में भंडार पर खर्चों में कमी की जाए।[146] 1866 में भारत मंत्री ने भारत सरकार से पुनः आग्रह किया कि वह इंग्लैंड में भंडारों पर खर्च में कमी करे। यह स्पष्ट किया गया कि इंग्लैंड में भंडारों पर खर्च, जिसमें माल भाड़ा भी सम्मिलित था 1864 से 1866 तक के तीन वर्षों में तीन गुना हो गया है।[147] भंडार खर्च की पूर्व योजना बनाने के लिए भारत सरकार ने भारत मंत्री के पास वित्तीय वर्ष प्रारंभ होने से पहले ही मांग पत्रों के प्राक्कलन भेजने का निश्चय किया।[148] कम से कम कीमत पर भंडारों की आपूर्ति की निश्चित व्यवस्था करने के लिए भारत मंत्री ने टेंडर मंगाना प्रारंभ कर दिया। यह प्रणाली पहले भी प्रचलित थी, परंतु अब 'सार्वजनिक प्रतियोगिता का सिद्धांत' अधिक संगत ढंग से लागू किया गया।[149] ये सब उपाय भंडार पर व्यय में वृद्धि को रोक पाने में असफल रहे थे। 1869 में भारत मंत्री ने पुनः भंडारों के बढ़ते हुए व्यय की ओर भारत सरकार का ध्यान आकर्षित किया और मांग पत्रों पर अपर्याप्त नियंत्रण के लिए उसे दोषी ठहराया।[150] मेयो ने भंडार संबंधी एक ऐसी 'मांग पत्र समिति' (इंडैंट कमेटी) की स्थापना के संबंध में सोचा जिसमें लोक निर्माण, सैन्य तथा वित्त विभागों के प्रतिनिधि हों।[151] ऐसी समिति नियुक्त की गई और भंडार व्यय के वार्षिक पुनर्विलोकन की प्रणाली की व्यवस्था शुरू हुई।[152] इन उपायों से सरकार के लिए भंडार पर अपव्यय रोक सकना संभव हुआ, परंतु जैसा कि आंकड़ों से स्पष्ट है भंडार खर्च बढ़ता ही गया। डाक व तार विभाग तथा लोक निर्माण विभाग के कार्यों मे विस्तार तथा रेलों के निर्माण के कारण इंग्लैंड से माल तथा विविध उपकरणों के आयात की आवश्यकता हुई।

(3) भारत स्थित ब्रिटिश सेना व्यवस्था पर गृह खर्च एक महत्वपूर्ण मद थी। हमने पिछले अध्याय में भारतीय राजस्व पर पड़ने वाले नियमित और गैर नियमित सैन्य व्यय की व्याख्या की है।

(4) गृह खर्चों में शामिल होनेवाला एक अन्य व्यय भारत जाने वाली और वहा से इंग्लैंड लौटने वाली सेनाओ पर परिवहन व्यय था। 1900 तक, जब वैलबी आयोग ने सिफारिश की कि परिवहन का आधा परिव्यय ब्रिटिश राजकोष से किया जाना चाहिए, इंग्लैंड में सेना के पोतारोहण के दिन से भारत पहुंचने तक का संपूर्ण मार्ग व्यय भारत से ही वसूल किया जाता था। अल्पकालीन सेवा प्रणाली के कारण परिवहन खर्च अधिक हो गया था। इस शीर्षक के अंतर्गत व्यय की राशि हर वर्ष बदलती रहती थी।

(5) सेवा निवृत होने वाले सिविल सेवा अधिकारियो की पेंशन, वार्षिक अनुदानों तथा और छुट्टी पर जाने वाले अधिकारियों को दिए जाने वाले भत्तो के कारण गृह खर्चों में भारी वृद्धि हो गई थी। ये व्यय गैर नियमित प्रभार कहलाते थे।

(6) रेलो पर प्रत्याभूत (गारंटी शुदा) ब्याज बहुत बड़ी मद था। प्रत्याभूत

कंपनियों को दिया जानेवाला औसत वार्षिक ब्याज 1860-65 में 20 लाख पौंड था। यह इसी दशक के उत्तरार्द्ध में 35 लाख पौंड वार्षिक हो गया।

1861 में भारत मंत्री ने इस स्थिति का बहुत अच्छा चित्रण किया। उसने लिखा कि 'रेल पूंजी पर प्रत्याभूत ब्याज में वृद्धि की आशा की जानी चाहिए। रेलें जब धीरे-धीरे पूरी हो चलेंगी, तो यातायात से शुद्ध प्राप्ति में वृद्धि होगी और ब्याज प्रभार में थोड़ी कमी होगी। परंतु इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि निर्माण कार्यों को पूरा करने के लिए अब भी 2 करोड़ पौंड से अधिक की राशि जुटाने की आवश्यकता है, आगे आने वाले कुछ वर्षों में ब्याज प्रभार में वृद्धि की आशा की जानी चाहिए। निस्संदेह ब्याज का स्वरूप अन्य सभी से भिन्न है, क्योंकि अंततः यह सरकार को परिशोध्य है। जैसे ही रेलें लाभप्रद हो जाएंगी और लाभ 5 प्रतिशत से अधिक हो जाएगा कुछ-कुछ परिशोधन होने लगेगा, परंतु यह जाहिर है कि परिशोधन का समय अभी दूर है ....।'[153] एक पिछले अध्याय में हमने प्रत्याभूत संविदाओं की व्याख्या की है जिनके अंतर्गत ब्याज प्रभारों का भुगतान होता था। हमें गौर करना चाहिए कि न केवल ब्याज प्रभार भारी बोझ था, वरन रेल कंपनियों से प्राप्तियों और उन्हें किए जाने वाले भुगतानों में अनिश्चितता और इन कंपनियों की अपने खातों से अपने ही द्वारा जमा किए गए रुपये से अधिक रुपया निकालने की आदत सरकार के लिए वित्त संकट का अतिरिक्त कारण थी।[154]

(7) 'गृह प्रशासन की मद में भारत मंत्री, भारत उपमंत्री तथा इंडिया काउंसिल के सदस्यों के वेतन, इंडिया आफिस का स्थापन खर्च, ऋण प्रबन्ध के लिए बैंक आफ इंग्लैंड को भुगतान, लेखा परीक्षक को भुगतान (एक्ट 21 और 22 विक्ट० सी० 106 की धारा 52 के अंतर्गत) डाक खर्च इत्यादि सम्मिलित थे। इस शीर्षक के अंतर्गत 1860-61 में व्यय की राशि 1, 75, 000 पौंड थी। 1968-69 तक यह 2, 00, 000 पौंड से अधिक नहीं हुई थी और 1870-71 में यह 2, 16, 000 पौंड थी। इस व्यय की ओर विदेशी वाणिज्य दूतावासों को स्थापन पर होनेवाले व्यय की भारत में काफी छानबीन की जाती थी और ये खर्च आलोचना के विषय थे। उदाहरणार्थ, टर्की के सुल्तान के स्वागत में भारत मंत्री द्वारा की गई नाच व्यवस्था भारतीय कर दाताओं के रुपये के अपव्यय का कुख्यात उदाहरण बन गई। नोर्थकोट ने लारेंस को निजी पत्र में लिखा कि 'सुल्तान के लिए आयोजित नृत्य ने 'बहुत सारे लोगों को कलंकित किया है।'[155] 1834 में हुए एक करार के अनुसार चीन में स्थापित वाणिज्य दूतावास के स्थापन खर्च का एक तिहाई खर्च भारत सरकार देती थी। ये खर्च 1860-61 में लगभग 23, 000 पौंड, 1861-63 में 14, 000 पौंड, 1863-65 में 17, 000 पौंड और 1865-67 में 19, 000 पौंड थे। इन खर्चों में कमी करने के लिए 1860, 1862 और 1866 में राजकोष के लार्डों के समक्ष प्रतिवेदन पेश किए गए, परंतु उन्होंने 1834 के करार में संशोधन करना स्वीकार नहीं किया।[156] 1860 में भारत सरकार ने अदन से संबंधित खर्च को भारत पर से हटाने अथवा उसमें कमी करने का प्रयत्न किया। यह स्पष्ट किया गया कि अदन के ही नहीं आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और सिंगापुर के रास्ते में भी पड़ता है अदन

मे किए जाने वाले सैन्य एव राजनीतिक खर्च केवल भारत को देने पड़ते हैं।[157] इसी प्रेषण में यह भी स्पष्ट किया गया कि खाडी उपनिवेशों के प्रशासन का बोझ भारत पर 5 लाख रुपए (50,000 पौंड) वार्षिक पड रहा है। प्रेषण मे इस बात का आग्रह किया गया कि उपनिवेश संबंधी खर्च भारत पर से हटा दिए जाने चाहिए।[158] भारत सरकार ने इस सिद्धांत पर जोर दिया कि भारत का राजस्व केवल इसी देश के कार्यों पर खर्च होना चाहिए, और भारत को 'बाहरी खर्चों' से मुक्त कर देना चाहिए।[159] सरकार के प्रयत्नों का कुछ परिणाम निकला। इंग्लैंड ने अदन संबंधी व्यय का आधा भाग अपने ऊपर लेकर इस खर्च को भारत के साथ बांट लिया, और 1867 में खाड़ी उपनिवेशों को भारत से अलग कर दिया गया। इस प्रकार बाहरी खर्चों में कुछ कमी हो गई।[160]

गृह खर्चों के अतिरिक्त भारत सरकार को 'गृह' संव्यवहारो (आदान-प्रदान) के लिए भी बड़ी राशि देनी होती थी। इसे 'गृह राजकोष के लिए विप्रेषण पर विनिमय द्वारा हानि' कहा जाता था। सरकारी तौर पर विनिमय दर दो शिलिंग प्रति रुपया थी, परंतु बाजार की दर घटती बढती रहती थी। जब भी रुपये का विनिमय मूल्य दो शिलिंग से कम हो जाता था, तो गृह राजकोष से भुगतान होने वाले स्टर्लिंगों के लिए अधिक रुपयों की आवश्यकता पड़ती थी। हम अन्यत्र विवेचना कर चुके हैं कि किस प्रकार प्रत्याभूत (गारंटीशुदा) रेल कंपनियों के साथ दोषपूर्ण संविदाओं के कारण विनिमय पर हानि उठानी पड़ी। निस्संदेह यह खर्च विनिमय दर और भारत से इंग्लैंड को विप्रेषित होने वाली रकम के अनुसार काफी घटता बढ़ता रहता था।

सेना, गृह विभाग संबंधी स्थापन, इंग्लैंड से प्राप्त होने वाले भंडार आदि पर भारी व्यय की तुलना में शिक्षा के लिए नियत अनुदान कम थे। 1857-58 और 1871-72 के बीच शिक्षा पर व्यय तीन गुना हो गया। इसी अवधि में शिक्षा संस्थाएं पांच गुने से भी अधिक हो गई और इनमे विद्यार्थियों की औसत संख्या छः गुना बढ़ गई। विकास की यह दर आशाजनक लगती है। शिक्षा न केवल सरकारी दफ्तर रूपी पौराणिक आनंदधाम के लिए अनिवार्य थी, अपितु वह बढते हुए मध्यम वर्ग के लिए व्यावसायिक क्षेत्रों के रूप में नए क्षेत्रों में प्रवेश पाने के लिए भी आवश्यक थी। शिक्षा संबंधी अवसरों के लिए लालायित तथा होहल्ला मचाने वाला मध्यम वर्ग विकास की दर के प्रति सरकारी संतोष से असहमत था। शिक्षा संस्थाओ पर विद्यार्थियो की संख्याओं से संबंधित आंकड़ों के आधार पर सरकारी क्षेत्रों मे अपने आपको बहुत बधाई दी गई। परंतु इस प्रकार के आंकड़ों का अर्थ बहुत सावधानी के साथ लगाना चाहिए। यह बहुत सभव है कि प्रारंभिक वर्षों में शिक्षण संस्थाओं एवं विद्यार्थियो की संख्याएं कम बताई गई हों जिससे सातवें दशक के अंतिम वर्षों और आठवें दशक के प्रारंभिक वर्षों मे तेजी से विकास का अतिशयोक्तिपूर्ण आभास मिला हो। 1857-60 मे सरकार शिक्षा पर औसतन 24 लाख रुपये प्रति वर्ष व्यय कर रही थी। 1861-65 में औसत व्यय की राशि 29 लाख रुपये और दशक के उत्तरार्द्ध मे 53 लाख रुपए थी। जिसकी तुलना उत्तर सैन्य विद्रोह काल में इस मद पर होने वाले व्यय की राशि के साथ की जा सकती है, परंतु सातवें दशक के अंतिम

वर्षों में भी शिक्षा की मद पर होने वाला व्यय भारत सरकार के कुल व्यय का केवल 1 प्रतिशत था। भारत सरकार शिक्षा संबंधी अनुदानों की अपर्याप्तता से अवगत थी अतः उसने प्रांतीय सरकारों से स्थानीय उपकर (सेस) लगाकर शिक्षा के लिए साधन जुटाने का आग्रह किया। इन साधनों का उपयोग विशेष रूप से देशी भाषाओं में दी जाने वाली शिक्षा पर किया जाना था क्योंकि इसके लिए सामान्य राजस्व से धनराशि प्रदान करने की व्यवस्था नहीं थी।[161]

जिस अवधि का अध्ययन हम यहां कर रहे हैं उसमें शिक्षा के लिए अन्य प्रांतों की तुलना में बंगाल को अपेक्षाकृत अधिक अनुदान मिला।[162] परंतु सरकार परिणाम से बिलकुल संतुष्ट नहीं थी। मेयो ने सर ई० पैरी को लिखा था कि 'सच यह है कि बंगाल में शिक्षा उन लोगों के निर्देशन में है जो इस विचार के समर्थक है कि यदि उच्च वर्ग के लोग ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं तो उनकी देखा देखी नीचे के वर्गों में भी शिक्षा का प्रसार होगा।···मेरे विचार से यह सिद्धांत निरा मूर्खतापूर्ण है यदि लोगों को शिक्षित किया जाना है तो नीचे से प्रारंभ करके ऊपर उठना होगा।'[163] यह अनुभव किया गया कि प्राथमिक शिक्षा की उपेक्षा हो रही है और नए विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालय शिक्षा संबंधी वित्त काफी भार डालते जा रहे है। मेयो ने पैरी को आगे लिखा कि 'बंगाल में आप अंग्रेजी शिक्षा दे रहे है और राज्य के भारी खर्चे पर कुछ सौ बाबू तैयार कर रहे हैं। इनमें से अधिकांश का उद्देश्य सरकारी नौकरी के लिए आवश्यक योग्यता प्राप्त करना मात्र है। परंतु इस बीच लाखों लोगों तक ज्ञान के विस्तार के लिए कुछ भी नहीं किया गया है।'[164] मेयो का अनुमान था कि अंग्रेजी शिक्षा 'हमारे और हमारे शासन के प्रति लोगों की अरुचि में कमी नहीं ला रही है।' हिंदुस्तान में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त उस बाबू से अधिक असंतुष्ट व्यक्ति और कोई नहीं है जिसे सरकारी नौकरी नहीं मिल सकी है।'[165] जो भी हो, चूंकि भारत सरकार जनसाधारण के लिए प्राथमिक शिक्षा प्रणाली लागू नहीं कर सकी थी, इसलिए यह कार्य स्थानीय अधिकारियों द्वारा ही किया जाना था। 1871 की वित्त विकेंद्रीकरण योजना में प्रांतीय सरकारों को हस्तांतरित किए जाने वाले विषयों में शिक्षा भी एक थी।

दादाभाई नौरोजी तथा इंडियन इकानामिस्ट के संपादक राबर्ट नाइट ने अपनी रचनाओं में वे सारे बहुत तर्क पहले ही दिए थे जिन्हें बाद में रमेश दत्त तथा दूसरे राष्ट्रवादी विचारकों ने प्रयोग किया। 1869-71 में एक के बाद एक कई लेखों में राबर्ट नाइट ने तर्क दिया कि भारत अंग्रेज पूंजी निवेशकों को बहुत ऊंची ब्याज की दर पर भुगतान कर रहा है 'और उनको जितना लाभ मिलता है भारत को उतने ही परिमाण में हानि होती है।'[166] उन्होंने आलोचना की दिशा में आगे जाकर भारतीय ऋण की निंदा की[167] और कहा कि वह 'आदि से अंत तक अंग्रेजों का दायित्व है[168] जो भारतीय राजकोष के साथ अन्यायपूर्वक बांध दिया गया है।'[169] नाइट ने महसूस किया कि ईस्ट इंडिया कंपनी की पूंजी (स्टाक) तथा सैन्य विद्रोह संबंधी ऋणों के कारण उत्पन्न ब्याज प्रभार विशेष रूप से अनुचित थे। नौरोजी के अनुसार ब्याज प्रभार 'राजनीतिक बोझ थे···जो व्यय के दोषपूर्ण प्रशासन से उत्पन्न होते थे।'[170] और भारत के साधनों के विकास में सहायक

थे। नाइट और नौरोजी दोनो ने ही राजनीतिक ऋणों और लोक निर्माण के निमित्त ऋणो में भेद किया था। यह भारत के लिए दुर्भाग्यपूर्ण था कि वह लोक निर्माण जैसे उत्पादी पूंजी निवेश के लिए भी पूजी की व्यस्था नही कर सका। दादाभाई नौरोजी ने लिखा कि 'भारत को ब्रिटिश पूजी की बुरी तरह आवश्यकता है' परंतु 'ऐसे ब्रिटिश आक्रमण की जरूरत नही है जो आकर यहां की पूंजी और उत्पादन दोनों ही को खा जाए।'[171]

'इंडियन इकानामिस्ट' के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों मे ब्याज की दर 20 से 50 प्रतिशत के बीच और प्रेसीडेंसी नगरो में वाणिज्यिक दर 9 प्रतिशत थी।[172] अत: सरकार के लिए लंदन में ऋण लेना अधिक सस्ता था। जैसा हम पहले बता आए है, भारत सरकार ने दूसरे देशों से ऋण लेने की नीति को इसी आधार पर युक्तिसंगत ठहराने का प्रयास किया था। देश के भीतर ऋण ले सकने का क्षेत्र बहुत सीमित था और विदेशी ऋणदाताओं से उधार पा सकना सुविधाजनक था। नौरोजी इस बात को सही मानते थे। परंतु वे सरकार पर वढते हुए स्टर्लिंग ऋणभार के आलोचक थे। इनके दो कारण थे। प्रथम, क्योंकि यह मुख्यत: 'राजनीतिक ऋणों' के कारण उत्पन्न हुआ था और द्वितीय, क्योंकि देश के बाहर ऋणदाताओं को ब्याज का भुगतान होता था।

उन्नीसवी शताब्दी के अंतिम वर्षों में टैरिफ नीति विवाद का सजीव विषय थी और 'राष्ट्रवादियो द्वारा ब्रिटिश शासन की निंदा में 'औद्योगिक शिशु वध' का स्थान महत्वपूर्ण होता था।' सातवें दशक में टैरिफ समस्या का भारतीयों की दृष्टि में यह महत्व नही था। सीमा शुल्क प्रशासन में संगठनात्मक सुधारों का वस्तुत: अनुमोदन किया जाता था। ये सुधार थे, ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों के बंदरगाहों के बीच होने वाले व्यापार पर राजकोषीय प्रतिबंधों को हटाना, संपूर्ण भारत में मूल्यांकन में समानता लाने की दृष्टि से सीमा शुल्क मूल्याकन प्रणाली को लागू करना; और सीमा शुल्क संग्रह की रीति का वैज्ञानिक पुनर्गठन।' देशी रियासतों के साथ भारत सरकार का उद्देश्य स्ट्रैची के शब्दों मे 'एक प्रकार की जोल्वरीन व्यवस्था' स्थापित करना था।[173] देशी रियासतों के साथ किए गए विविध समझौतों के द्वारा गृह व्यापार पर से राजकोषीय प्रतिबंध हटा लिए गए, यद्यपि इस बात का ध्यान रखा गया कि देशी रियासतें 'भारत सरकार की तुलना में कम शुल्क' लगाकर ब्रिटिश भारत के बंदरगाहों से होने वाले व्यापार को आकर्पित न कर लें।'[174] विलसन के अनुरोध पर सीमा शुल्क मूल्यांकन में संशोधन प्रारंभ हुआ। उसने भारत आने पर पाया कि भिन्न-भिन्न बंदरगाहों पर भिन्न-भिन्न प्रकार से मूल्यांकन करके मूल्यानुसारी शुल्क लागू किए जाते थे।[175] 1860 मे प्रथम बार समस्त भारत के लिए एक तरह का मूल्यांकन लागू किया गया।[176] एक वर्ष पहले 1859 के एक्ट VII द्वारा पहली बार समस्त भारत के लिए एक समान टैरिफ शुल्क निर्धारित किया गया था। 1876 में 'नि:शुल्क सूची' समाप्त कर दी गई। यह उन वस्तुओं की सूची थी जो सीमा शुल्क से मुक्त थी। प्रत्येक कल्पनीय पदार्थ की जो सूची मे नही था, जांच होती थी और उस पर शुल्क लगाया जाता था। इस असंगत पद्धति के स्थान पर, नवीन ब्रिटिश प्रणाली को अपनाया गया। ऐसी वस्तुओं की सूची, जिस पर शुल्क लगाया गया था

घोषित होने के साथ ही अन्य वस्तुएं शुल्क मुक्त घोषित की गईं।

निस्संदेह, प्रणाली के वैज्ञानिक पुनर्गठन के लिए इस प्रकार के प्रयत्नों के महत्व को जनता ने समझा था, परंतु टैरिफ के पीछे निहित सिद्धांतों को अविश्वास एवं संदेह की दृष्टि से देखा गया। प्रमुख हिंदुस्तानी पत्रिका 'हिंदू पेट्रिएट' ने लिखा कि 'निर्बाध व्यापार अच्छी चीज है,' परंतु सभी देशों के लिए नहीं। 'जहां भारत के आयात शुल्कों को पूरी तरह हटा देना इंग्लैंड के हित मे है, वहा भारत का हित इसमें है कि इनका इस प्रकार नियमन हो जिससे गृह उद्योगों के निकास और विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन का तालमेल बैठ सके।'[177] भारत में ब्रिटिश व्यापारियों के द्वारा डाले गए दबाव का विरोध केवल ब्रिटिश सरकार के समर्थन से ही किया जा सकता था और इस प्रकार का समर्थन केवल वित्तीय संकट के समय इस आधार पर मिलता था कि टैरिफ राजस्व वित्तीय घाटे की पूर्ति के लिए आवश्यक है। उदाहरणार्थ, 1859 मे उत्तर सैन्य विद्रोह काल के वित्तीय संकट पर काबू पाने के लिए कैनिंग ने आयात शुल्क मे वृद्धि की थी और वाणिज्यिक समुदाय के रोष का सामना किया था, परंतु वह इस पर भी बच निकला था। कलकत्ता के व्यापारियो के इस विरोध का कि 'नवीन शुल्कों का स्वरूप पश्चगामी है और ये इंग्लैंड मे हाल मे पारित वाणिज्यिक विधान की विवेकपूर्ण भावना के विरुद्ध है, और बंबई के व्यापारियो की याचिकाओ का कोई लाभ नही हुआ।[178] स्वयं कैनिंग ने विधान परिषद में विधेयक पेश किया था और उसे दो दिनों मे पास करवा लिया था। भारत मंत्री लार्ड स्टेनली ने कैनिंग का समर्थन किया और वित्तीय संकट को देखते हुए सीमा शुल्कों में और अधिक वृद्धि का सुझाव दिया। जब चार्ल्स ट्रैवीलियन ने खाल, चीनी, चाय, जूट तथा खाद्यान पर निर्यात शुल्क बढाने का प्रस्ताव रखा तो चेंबर आफ कामर्स की ओर से पुनः विरोध हुआ।[179] ट्रैवीलियन को परिषद के अपने सहयोगियों का तो समर्थन मिला, परंतु उसे भारत मंत्री की स्वीकृति नही मिल सकी। भारत मंत्री ने कहा कि भारत और इंग्लैंड के बीच होने वाले व्यापार का हित है कि नए निर्यात शुल्को की स्वीकृति नही दी जानी चाहिए।[180] भारत सरकार को बदनाम होकर पीछे हटना पड़ा और 1865 के सीमा शुल्क एक्ट XVIII की निर्यात शुल्को से संबंधित कुछ धाराएं रद्द कर दी गईं। जो लोग भारत की टैरिफ नीति को नियंत्रित करते थे वे भारत में ब्रिटिश वाणिज्यिक समुदाय के दबाव के प्रति सहानुभूतिपूर्ण थे, परंतु उनके बीच घृणित गठबंधन नही था। वे लोग कुछ सीमाओं के भीतर सहानुभूति दिखलाते थे। ये सीमाएं समग्र वित्तीय स्थिति, गृह अधिकारियों के दृष्टिकोण, हितबद्ध गुटों के द्वारा डाले जाने वाले दबाव की मात्रा तथा सरकारी निर्णयों के हिंदुस्ता[illegible] पर संभावित प्रभाव के अनुमान द्वारा निर्धारित होती थी।

के लिए छोड़ दी जानी चाहिए...'[181] यह भी दावा किया गया कि हिंदू और मुगल वित्तीय प्रणालियों का प्रसासन सघात्मक आधार पर होता था।[182] चूंकि मद्रास का गवर्नर ट्रैवीलियन जेम्स विल्सन के केंद्रीकरण नीति का विरोध कर रहा था, इसलिए उसे पूरा समर्थन दिया गया।[183] 'हिंदू पेट्रिअट' को विकेंद्रीकरण के प्रति इसलिए आकर्षण था क्योंकि उसका विश्वास था कि बंगाल से साम्राज्य के प्रयोजनार्थ उसके न्याय-पूर्ण अंश से कहीं अधिक वसूल किया जाता था। उसने लिखा कि बंगाल के साथ सदैव ही समस्त साम्राज्य के लाभ के लिए दुधारु गाय की भांति व्यवहार किया गया है।[184] पत्रिका की राय में विकेंद्रीकरण योजना का प्रमुख आकर्षण यह था कि इससे समस्त प्रांतों के बीच वितरण न्यायपूर्ण हो जाएगा।[185] द्वितीय, विकेंद्रीकरण का स्वागत इस लिए भी हुआ क्योंकि इसे 'भारतीयों को स्थानीय सरकार से संबद्ध करने' की दिशा में एक कदम माना गया। ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन ने आशा व्यक्त की थी कि स्थानीय सरकारों को 'राज्य विशेष के अनुसार करों को बढ़ाने का अधिकार होगा' और 'लोगों को प्रशासन में व्यावहारिक स्तर पर यथासंभव भाग लेने के लिए आमंत्रित किया जाना चाहिए।'[186] 'हिंदू पेट्रिअट' के अनुसार मेयो की योजना सही दिशा में कदम थी, परंतु 'बहुत आगे नहीं जाती थी।'[187] पत्रिका की कल्पना में अंतिम लक्ष्य संघीय राज्य था...'जो एक राज्यमंडल होगा जिसमें प्रत्येक राज्य का अपना विधानांग और कार्यांग होगा, प्रत्येक राज्य अपने ही साधनों पर निर्भर होगा...।[188] इन मापदंडों के आधार पर मेयो की योजना में वस्तुतः बहुत थोड़े विकेंद्रीकरण की व्यवस्था की गई थी। ईस्ट इंडिया एसोसिएशन ने इसे 'अनिच्छापूर्वक दी गई रिआयत' माना था जिसे सरकार से लोक मत के दबाव से छीन लिया गया था, परंतु वह अन्य दृष्टियों से महत्वहीन थी।[189]

विकेंद्रीकरण की योजना इसलिए आकर्षक थी क्योंकि इसके अंतर्गत स्थानीय वित्त के प्रशासन में भारतीयों की भागीदारी अधिक होने की संभावना थी। यह योजना प्रांतीय अथवा जिसे बहुधा 'वर्गीय भावना' कहा जाता था, को आकर्षित करती थी। प्रति वर्ष बजट के प्रकाशन के बाद भारतीय तथा ऐंग्लो इंडियन समाचारपत्र एक कार्य करते थे। यह था प्रत्येक राज्य का राजस्व में योगदान और उसकी 'प्राप्तियों' का परिकलन। लोक निर्माण पर निवेश के असंतुलित क्षेत्रीय वितरण से आपस में बहुत ईर्ष्या थी। उदाहरण के लिए बंगाल की पत्रिकाओं की शिकायत थी कि बंगाल और मद्रास के साथ अधिमान्य व्यवहार (तरजीही सलूक) किया जाता था जबकि 'सभी प्रेसीडेंसियों में सर्वाधिक संपन्न प्रेसीडेंसी (बंगाल) दीपक के इतने निकट है कि उसे प्रकाश का न्यायोचित अंश नहीं मिल पाता।'[190] तथ्य क्या थे? 1862 तक बंगाल को लोक निर्माण पर निवेश का 15 प्रतिशत मिलता था जो बंबई को मिलने वाले अंश के बराबर था परंतु पश्चिमोत्तर प्रांत और मद्रास के अंशों से काफी कम था। सैन्य विद्रोह के काल में सैनिक कार्यवाही तथा सैन्य विद्रोह के बाद समुत्थान की अवधि में अन्य निर्माण कार्यों की आवश्यकताओं के कारण पश्चिमोत्तर प्रांत तथा अवध में कुछ असाधारण व्ययों की आवश्यकता थी। संभवतः इस तथ्य ने सरकार के सिंचाई नहरों और बांधों के अनुरक्षण में पूंजी निवेश संबंधी निर्णयों को प्रभावित किया कि बंगाल

घोषित होने के साथ ही अन्य वस्तुएं शुल्क मुक्त घोषित की गईं।

निस्संदेह, प्रणाली के वैज्ञानिक पुनर्गठन के लिए इस प्रकार के प्रयत्नों के महत्व को जनता ने समझा था, परंतु टैरिफ के पीछे निहित सिद्धांतों को अविश्वास एवं संदेह की दृष्टि से देखा गया। प्रमुख हिंदुस्तानी पत्रिका 'हिंदू पेट्रिएट' ने लिखा कि 'निर्बाध व्यापार अच्छी चीज है,' परंतु सभी देशों के लिए नहीं। 'जहां भारत के आयात शुल्कों को पूरी तरह हटा देना इंग्लैंड के हित में है, वहां भारत का हित इसमें है कि इनका इस प्रकार नियमन हो जिससे गृह उद्योगों के निकास और विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन का तालमेल बैठ सके।'[177] भारत में ब्रिटिश व्यापारियों के द्वारा डाले गए दबाव का विरोध केवल ब्रिटिश सरकार के समर्थन से ही किया जा सकता था और इस प्रकार का समर्थन केवल वित्तीय संकट के समय इस आधार पर मिलता था कि टैरिफ राजस्व वित्तीय घाटे की पूर्ति के लिए आवश्यक है। उदाहरणार्थ, 1859 में उत्तर सैन्य विद्रोह काल के वित्तीय संकट पर काबू पाने के लिए कैनिंग ने आयात शुल्क में वृद्धि की थी और वाणिज्यिक समुदाय के रोष का सामना किया था, परंतु वह इस पर भी बच निकला था। कलकत्ता के व्यापारियों के इस विरोध का कि 'नवीन शुल्कों का स्वरूप पश्चगामी है और ये इंग्लैंड में हाल में पारित वाणिज्यिक विधान की विवेकपूर्ण भावना के विरुद्ध है, और बंबई के व्यापारियों की याचिकाओं का कोई लाभ नहीं हुआ।[178] स्वयं कैनिंग ने विधान परिषद में विधेयक पेश किया था और उसे दो दिनों में पास करवा लिया था। भारत मंत्री लार्ड स्टेनली ने कैनिंग का समर्थन किया और वित्तीय संकट को देखते हुए सीमा शुल्कों में और अधिक वृद्धि का सुझाव दिया। जब चार्ल्स ट्रैवीलियन ने खाल, चीनी, चाय, जूट तथा खाद्यान्न पर निर्यात शुल्क बढ़ाने का प्रस्ताव रखा तो चैंबर आफ कामर्स की ओर से पुनः विरोध हुआ।[179] ट्रैवीलियन को परिषद के अपने सहयोगियों का तो समर्थन मिला, परंतु उसे भारत मंत्री की स्वीकृति नहीं मिल सकी। भारत मंत्री ने कहा कि भारत और इंग्लैंड के बीच होने वाले व्यापार का हित है कि नए निर्यात शुल्कों की स्वीकृति नहीं दी जानी चाहिए।[180] भारत सरकार को बदनाम होकर पीछे हटना पड़ा और 1865 के सीमा शुल्क एक्ट XVIII की निर्यात शुल्कों से संबंधित कुछ धाराएं रद्द कर दी गईं। जो लोग भारत की टैरिफ नीति को नियंत्रित करते थे वे भारत में ब्रिटिश वाणिज्यिक समुदाय के दबाव के प्रति सहानुभूतिपूर्ण थे, परंतु उनके बीच घृणित गठबंधन नहीं था। वे लोग कुछ सीमाओं के भीतर सहानुभूति दिखलाते थे। ये सीमाएं समग्र वित्तीय स्थिति, गृह अधिकारियों के दृष्टिकोण, हितबद्ध गुटों के द्वारा डाले जाने वाले दबाव की मात्रा तथा सरकारी निर्णयों के हिंदुस्तानी लोकमत पर संभावित प्रभाव के अनुमान द्वारा निर्धारित होती थी।

भारतीय समाचारपत्र परवर्ती राष्ट्रवादियों की भांति वित्त के विकेंद्रीकरण के पक्ष में थे। मेयो की वित्तीय अंतरण विख्यात योजना के एक दशक पूर्व 'हिंदू पेट्रिअट' लिख रहा था कि हमारे विचार में सही उपाय वित्त का विकेंद्रीकरण है"'पहले साम्राज्यिक प्रभार तय हो जाने चाहिए और प्रत्येक प्रांत का यथानुपात योगदान निर्धारित हो जाना चाहिए। शेष रकम प्रांतों के पास स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति

जो कुछ छोड़ दिया था, उसे किस प्रकार पुन: प्राप्त किया जाए यह एक समस्या थी। हम देख चुके है कि स्थाई बंदोबस्त के लाभभोगी जमींदार वर्ग ने बावजूद इसके कि मालगुजारी स्थाई रूप से निर्धारित हो चुकी थी, अपनी आय पर करों का कितना विरोध किया था।

सरकारी सिद्धांत के अनुसार मालगुजारी कर न होकर लगान थी। जान स्ट्रैची ने एक प्रसिद्ध ज्ञापन पत्र में लिखा था कि 'अति प्राचीन काल से भारत मे अधिकांश भू संपत्ति, सिद्धात और व्यवहार दोनों ही मे, राज्य के पास रही है और राज्य लगान का वह अंश लेता रहा है जो उसके लिए संभव अथवा समीचीन था। भारत की मालगुजारी भूमि पर लगान का बस यही भाग है।'[196] मालगुजारी को कर से भिन्न मानना सिद्धात मात्र नही था। इस प्रकार की व्याख्या का अर्थ था कि मालगुजारी के स्थाई बंदोबस्त के द्वारा राज्य ने प्रजा पर कर लगाने के अधिकार का परित्याग नही किया था। दूसरे शब्दों में, मालगुजारी निर्धारित हो गई थी और सरकार पर मालगुजारी पर उप कर (सेस) लगाने अथवा कृषि आय पर आय कर लेने के संबंध मे कोई प्रतिबंध नही था। बंगाल से भू स्वामी वर्गों ने आय कर अथवा स्थानीय करों के प्रति कभी भी सतोष व्यक्त नही किया, क्योकि वे इन करों को स्थाई बंदोबस्त का उल्लंघन मानते थे। जेम्स विल्सन के समय से सरकारी मत यह था कि जमीदारों ने राजस्व की स्थिरता को सभी करों से मुक्ति समझकर कानून का गलत अर्थ लगा लिया है। 'यह कहना कि चूंकि सरकार ने लगभग सौ वर्ष पहले बंगाल में कतिपय व्यवस्थाएं की थीं, इसलिए बंगाल के सर्वाधिक संपन्न क्षेत्र का सबसे संपन्न वर्ग सदा के लिए कर से मुक्त है', 'एक स्पष्ट असंगत बात' थी।[197] बंगाल के जमीदार वर्ग द्वारा 'दावों' की यह अधीरता बंगाल चेंबर आफ कामर्स अथवा अंग्रेजी बहुमत वाले कलकत्ता ट्रेड्स एसोसिएशन (जिनका जमींदारी व्यवस्था मे कोई हित निहित नही था) जैसे भारत मे अंग्रेज व्यापारी गुटों में तो स्वाभाविक थी ही, बंगाल के बाहर करदाताओं की भी यही स्थिति थी। बंबई, अहमदावाद, मद्रास से भेजे गए स्मरण पत्रों में बार-बार यही विषय रहता था कि भूमि के रूप में संपत्ति रखने वाले सभी व्यक्ति राष्ट्रीय राजस्व मे यथोचित अंशदान नही कर रहे हैं जबकि व्यापारिक एवं व्यावसायिक आय पर भारी कर लगाए जा रहे हैं।[198] बंबई के हिंदुस्तानी व्यापारियों की याचिका में स्वार्थों मे टकराव स्पष्ट रूप से प्रकट होता है। इन्होने सरकार से याचिका में आग्रह किया था कि 'निष्क्रिय और सपन्न वर्गों के लाभ के लिए औद्योगिक वर्गों पर कर न लगाया जाए...संपत्ति से प्राप्त होने वाली आय की तुलना में श्रम से आय तथा व्यापार और व्यवसायों से आय पर हलके कर लगाए जाएं...।'[199]

इस लघु सर्वेक्षण से भारत की जिन समस्याओं के बारे में 'लोकमत' की प्रमुख विशेषताएं स्पष्ट हो जाती हैं वे हैं : प्रथम, राष्ट्रीय आय के संदर्भ मे कर भार संबंधी प्रश्न तथा करदाताओं का प्रतिनिधित्व: द्वितीय, वित्तीय नीति के वे अंगभूत तत्व जिन्होंने जनता का ध्यान सर्वाधिक आकर्षित किया था और जो राष्ट्रीय आलोचना

स्थाई बंदोबस्त के अंतर्गत था और कृषि आय में वृद्धि से राज्य की तुलना में भू स्वामी वर्गों को अधिक लाभ मिलने की संभावना थी। 1861-62 से परिस्थितयों में अतिरिक्त तत्व जुड़े। वे थे पश्चिमी भारत में कपास में तेजबाजारी का प्रभाव और अमरीका में गृह युद्ध के कारण कपास के अभाव से संत्रस्त लंकाशायर को कपास की आपूर्ति के लिए कपास क्षेत्र से बंदरगाहों तक सड़कों के निर्माण की लिए सहज प्रेरणा।[191] इसके बाद से वित्त के आवंटन में बंबई के साथ अधिमान्य व्यवहार (तरजीही सलूक) होने लगा। इग्लैंड के सूती वस्त्र उद्योग से संबधित हितों ने इस बात के लिए भारत सरकार पर दबाव डाला। 1863-66 की अवधि में बंबई को औसतन प्रति वर्ष 1 करोड़ रुपये से अधिक दिया गया (सामान्य लोक निर्माण कार्यों पर व्यय का 24 प्रतिशत), जबकि बंगाल में औसतन 81 लाख रुपये प्रति वर्ष (कुल का 27 प्रतिशत), मद्रास में 66 लाख रुपये (13.9 प्रतिशत), तथा पश्चिमोत्तर प्रांत में 61 लाख रुपये (12.9 प्रतिशत) व्यय किए गए।[192] अगले पाच वर्षों में बंबई प्रेसीडेंसी का भाग कुछ कम हो गया और पंजाब का बढ़ गया। तथापि 1863-72 में लोक निर्माण पर औसत वार्षिक व्यय मद्रास (प्रति वर्गमील 45 रुपये) और बंगाल (34 रुपये) की तुलना में बंबई (प्रति वर्गमील 79 रुपये) और पश्चिमोत्तर प्रांत (79 रुपये) में बहुत अधिक था।[193] हम एक पिछले अध्याय में बतला चुके हैं कि 1971 में लोक निर्माण पर प्रति व्यक्ति व्यय (साधारण) बंबई में 0.53 रुपया और मद्रास व बंगाल में महज 0.1 रुपया था। बंबई नगर और उसके भीतरी प्रदेश के द्रुत आर्थिक विकास का आंशिक कारण यह था कि कुछेक आधारभूत आर्थिक संरचनाओं में सार्वजनिक पूंजी निवेशों के वितरण में बंबई प्रेसीडेंसी के प्रति अधिमान्य व्यवहार (तरजीही सलूक) किया गया था।

इस प्रश्न के साथ मालगुजारी अथवा करो के रूप में प्रत्येक प्रेसीडेंसी अथवा प्रांत के अंशदान का प्रश्न भी जुड़ा हुआ था। यद्यपि बंगाल प्रत्यक्ष करो और वस्तुओं पर लगाए जाने वाले करों की दृष्टि से अन्य प्रेसीडेंसियों से आगे था, तथापि 1793 के स्थाई बंदोबस्त के कारण इसमें मालगुजारी प्राय: स्थिर रही। 1856-57 से 1870-71 की अवधि में भारत में मालगुजारी में 15 प्रतिशत वृद्धि हुई थी। इस अवधि में बंबई में 37 प्रतिशत, अवध में 36 प्रतिशत, मद्रास में 16 प्रतिशत, पंजाब में 7 प्रतिशत और पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत, बंगाल तथा मध्य प्रांत में 6 प्रतिशत या इससे कम वृद्धि हुई।[194] इस अवधि में भूमि के मूल्यों में धीमी किंतु नियमित वृद्धि, अवध और उडीसा में बंदोबस्त और मालगुजारी के पुनर्निर्धारण, सैन्य विद्रोह के बाद राज्य द्वारा अधिहरण, आबादी के क्षेत्र में वृद्धि, 1861-64 में पश्चिमी भारत में कपास की तेजबाजारी इत्यादि के कारण कुल मिलाकर वृद्धि की दर पर्याप्त ऊंची थी। 1871 में प्रति वर्गमील मालगुजारी बंगाल (177 रुपये) में बंबई (200 रुपये) अथवा पश्चिमोत्तर प्रांत (452 रुपये) की अपेक्षा बहुत कम थी।[195] स्थाई बंदोबस्त के क्षेत्र में सरकार की मांग निर्धारित हो जाने का परिणाम यह हुआ कि उस पर ऐसी आय के लिए दावा करने पर रोक लग गई, जो उसे अस्थाई बंदोबस्त के क्षेत्र में मालगुजारी के पुनर्निर्धारण की सामान्य प्रक्रिया द्वारा मिल सकती थी। स्थाई बंदोबस्त हो जाने पर सरकार ने मालगुजारी के रूप में

के स्थाई विषय थे : आय कर तथा दूसरे प्रत्यक्ष कर और अफीम, उत्पाद शुल्क (आबकारी) तथा स्टाप से प्राप्त राजस्व जिनके कारण 'नैतिकता संबंधी टेढ़े-मेढ़े प्रश्न उठाए गए, सैन्य एवं गृह खर्च जो सदा राष्ट्रवादियों के अभियोग पत्र में तगड़े ढंग से रखे जाते थे और ब्रिटिश पूंजी तथा निर्मित माल के आयात से संबंधित प्रश्न; और तृतीय, लोक निर्माण कार्यों में पूंजीनिवेश, विभिन्न क्षेत्रों में भूमि कर के प्रति व्यक्ति भार इत्यादि के आधार पर भारतीय साम्राज्य के विभिन्न प्रांतों के बीच लाभों का वितरण तथा उनके अंशदान। इस संबंध में हम दो समस्याओं का उल्लेख पहले ही कर आए हैं। प्रथम तो समाचार पत्रों, पैंफलेटों, स्मरण पत्रों तथा सार्वजनिक संघों के वक्तव्यों से लिए गए उद्धरणों के आधार पर इतिहास रचना के प्रयोग में, दूसरे प्रयोगों की तुलना में, संभवतः पूर्व धारणाओं से प्रभावित होने की संभावना अधिक है। द्वितीय, 'राष्ट्रवादी मत' और 'लोकमत' शब्दों के प्रयोग से प्रश्न उठ खड़े होते हैं। क्या इस काल में ऐसे सशक्त विचार थे कि जिन्हें राष्ट्रवादी सिद्धांत अथवा मत कहा जा सकता है ? जैसा कि बार्टल फ्रेर ने प्रश्न उठाया था, क्या प्रकाशित मत ही लोकमत है ? प्रकाशित मत को जनता में से अन्य लोग कहां तक स्वीकार करते हैं ? क्या लोकमत को समझने के लिए हमें यह देखना चाहिए कि विशिष्ट मत देश की संपूर्ण जनता में किस हद तक प्रचलित है, अथवा केवल राजनीतिक दृष्टि से सगत 'विशिष्ट वर्ग' के आधार पर निर्णय कर लेना चाहिए ? ये शब्द कितने ही अस्पष्ट क्यों न हों, हमने इन्हें उन स्थितियों मे प्रयोग करना उपयोगी पाया है जब विशिष्ट संदर्भ से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि मत की सार्वजनिक अभिव्यक्ति का स्रोत क्या है। संभवतः 'लोक (जनता)' संबंधी धारणा को अवखंडित करके वर्गों के अर्थ में सोचना, और 'सामान्य अभिलाषा' की रहस्यमय अभिव्यक्तियों को खोजने के स्थान पर विचारों और मतो मे विविधता का अध्ययन उपयोगी है। हमने बहुधा देखा है कि न केवल एक ओर 'साहबों' और दूसरी ओर 'जमीदारों', बनियों' तथा शिक्षित 'बाबुओं' में विरोध था, वरन शासित प्रजाति के विभिन्न वर्गो मे भी परस्पर विरोध था। शहरी व्यावसायिक एवं व्यापारिक वर्ग की लगानभोगी जमीदार वर्ग (जो लाइसेंस कर से मुक्त था और जिसे अपनी अनर्जित आय पर उसी दर से आय कर देना होता था जिस दर से व्यापार अथवा उच्च शिक्षा वाले व्यवसायो में लगे हुए व्यक्ति आय कर देते थे) के प्रति नाराजगी, ऊंची आय पाने वाले वर्गों के सरकार को अवरोही परोक्ष कर (विशेष रूप से नमक शुल्क को वस्तुतः जन साधारण पर व्यक्ति कर था) लगान के लिए राजी करने के लिए प्रयास, ताकि वे आय करों के भार से मुक्त हो सकें, सरकारी पूंजीनिवेशों के क्षेत्रीय वितरण के संबंध मे प्रांतीय ईर्ष्या-द्वेष एतत्संबंधी कुछ उदाहरण हैं। प्रस्तावना वाले अध्याय मे हमने हितबद्ध गुटों मे विरोध का अध्ययन किया है और देखा है कि प्रत्येक गुट वित्तीय नीति निर्णयों को अपने अनुकूल बनाने का प्रयास करता था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने विकास काल के प्रारंभिक वर्षों मे इस समस्या की ओर ध्यान दिया था कि किस प्रकार प्रमुख हितों के प्रतिनिधित्व की स्थाई व्यवस्था हो सके। कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन मे के० टी० तेलंग ने विधान मंडल में चेंबर्स आफ कामर्स, ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन, विश्व-

विद्यालयों तथा स्थानीय संस्थाओं को प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए एक योजना की रूपरेखा प्रस्तुत की। दूसरे अधिवेशन की स्वागत समिति के अध्यक्ष राजेंद्रलाल मित्र ने कहा कि विधान परिषद के गैर सरकारी सदस्य 'अपने हितों' के अलावा किसी अन्य का प्रतिनिधित्व नही करते। कांग्रेस ने 'वर्गीय हितों' को प्रतिनिधित्व देने का प्रस्ताव रखा। कलकत्ता कांग्रेस में सुरेंद्रनाथ बनर्जी ने, जो इस बात के लिए उत्सुक थे कि सभी वर्गो, समुदायों और 'सभी प्रधान हितो को पर्याप्त प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए', तेलंग की रूपरेखा के आधार पर एक योजना प्रस्तुत की। इसके कुछ समय बाद ही, 1888 मे विधान परिषद सुधार समिति ने, जिसे डफरिन ने नियुक्त किया था वशानुगत अभिजात वर्ग एवं भू स्वामी वर्गो, व्यापारी, व्यावसायिक एवं कृषक वर्गो और यूरोपीय बागान एवं वाणिज्यिक हितों को प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए विविध उपायो की सिफ़ारिश की। अंततोगत्वा 1892 के इंडियन काउंसिल एक्ट के पारित हो जाने पर इनमें से कुछ हितों को प्रतिनिधित्व प्रदान कर पाना संभव हो सका।[200]

इसी समय आर्थिक राष्ट्रवाद के कुछ तत्व 'वर्गीय' सिद्धांतों से आगे बढकर अंकुरित हो रहे थे। भिन्न-भिन्न हितों के परस्पर विरोधी दबावो के बीच, किन्ही-किन्ही समस्याओं पर कुछ एक सी भावनाएं उभरीं जैसे नौकरशाही में अपव्ययी ब्रिटिश कर्मचारियों के स्थान पर भारतीय कर्मचारियों को रखने की इच्छा, बढते हुए सैन्य एवं गृह खर्चो के प्रति असंतोष, सामान्य रूप से लोक व्यय में कमी की माग जिससे कर भार को कम किया जा सके, टैरिफ नीति के सबंध में परंपरागत ज्ञान की प्रेरणा के विषय मे संदेह, कराधान के साथ प्रतिनिधित्व पाने की आकाक्षा और कुछ ऐसी ही अन्य समस्याएं थी जो शासित देश की आम शिकायतो से उत्पन्न हुई थी। इस काल में जो विचार प्रकट किए गए थे उनमें और कांग्रेस के अस्तित्व के प्रारंभिक वर्षो के उसके प्रस्तावों में समानता दिखाई देती है। नौरोजी की प्रधान उपलब्धि थी इन विचारों की स्पष्ट अभिव्यक्ति, इनका गुंफन और निर्णायक महत्व की कुछ समस्याओं पर जोर देना। ये समस्याएं थी, क्या भारत में कराधान का प्रभाव लोक व्यय के आय एवं रोजगार उत्पादन करने वाले प्रभाव द्वारा प्रति संतुलन होता है, स्टर्लिंग के रूप में ऋण भार तथा भारत के बाहर सरकारी व्यय में वृद्धि द्वारा गृह खर्चो मे किस प्रकार वृद्धि हो रही है, करदेय क्षमता और प्रति व्यक्ति आय की तुलना में कर भार की स्थिति है, और सबके ऊपर यह कि 'जो कुछ भी जनसाधारण से किया जाता है वह उसे किस प्रकार वापस किया जा सकता है।' नौरोजी की जांच लोक वित्त के क्षेत्र से बाहर संसदीय कागजात से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर भुगतान संतुलनों के व्यापक अध्ययन तक विस्तृत थी। इसके आधार पर उन्होंने उन्नीसवी शताब्दी के अंतिम दो दशकों में 'आर्थिक निकास' की समस्या की विस्तृत व्याख्या की थी। नौरोजी के कोषों के स्थानांतरण के सभी संभव माध्यमो पर विचार किया। हमने अपने को लोक वित्त के प्रश्नों तक सीमित रखते हुए केवल उन्ही समस्याओं पर विचार किया है (अध्याय III और V में) जो नौरोजी की भाषा में सरकारी संव्यवहार मे उत्पन्न होती है, जैसे राजनीतिक ऋणों के लिए स्टर्लिंग ऋण प्रभार, रेल, लोक निर्माण, इंग्लैंड में किए जाने

के स्थाई विषय थे : आय कर तथा दूसरे प्रत्यक्ष कर और अफीम, उत्पाद शुल्क (आबकारी) तथा स्टाप से प्राप्त राजस्व जिनके कारण 'नैतिकता संबंधी टेढ़े-मेढ़े प्रश्न उठाए गए, सैन्य एवं गृह खर्च जो सदा राष्ट्रवादियों के अभियोग पत्र में तगड़े ढग से रखे जाते थे और ब्रिटिश पूजी तथा निर्मित माल के आयात से संबंधित प्रश्न; और तृतीय, लोक निर्माण कार्यों मे पूंजीनिवेश, विभिन्न क्षेत्रों में भूमि कर के प्रति व्यक्ति भार इत्यादि के आधार पर भारतीय साम्राज्य के विभिन्न प्रातों के बीच लाभो का वितरण तथा उनके अंशदान। इस संबंध में हम दो समस्याओं का उल्लेख पहले ही कर आए है। प्रथम तो समाचार पत्रो, पैंफलेटों, स्मरण पत्रों तथा सार्वजनिक संघों के वक्तव्यों से लिए गए उद्धरणों के आधार पर इतिहास रचना के प्रयोग मे, दूसरे प्रयोगों की तुलना मे, संभवत: पूर्व धारणाओं से प्रभावित होने की संभावना अधिक है। द्वितीय, 'राष्ट्रवादी मत' और 'लोकमत' शब्दो के प्रयोग से प्रश्न उठ खडे होते हैं। क्या इस काल मे ऐसे सशक्त विचार थे कि जिन्हे राष्ट्रवादी सिद्धांत अथवा मत कहा जा सकता है ? जैसा कि बार्टल फ्रेर ने प्रश्न उठाया था, क्या प्रकाशित मत ही लोकमत है ? प्रकाशित मत को जनता में से अन्य लोग कहा तक स्वीकार करते हैं ? क्या लोक-मत को समझने के लिए हमें यह देखना चाहिए कि विशिष्ट मत देश की संपूर्ण जनता मे किस हद तक प्रचलित है, अथवा केवल राजनीतिक दृष्टि से संगत 'विशिष्ट वर्ग' के आधार पर निर्णय कर लेना चाहिए ? ये शब्द कितने ही अस्पष्ट क्यो न हो, हमने इन्हे उन स्थितियो में प्रयोग करना उपयोगी पाया है जब विशिष्ट संदर्भ से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि मत की सार्वजनिक अभिव्यक्ति का स्रोत क्या है। संभवत: 'लोक (जनता)' संबंधी धारणा को अवखडित करके वर्गों के अर्थ में सोचना, और 'सामान्य अभिलाषा' की रहस्यमय अभिव्यक्तियों को खोजने के स्थान पर विचारो और मतों में विविधता का अध्ययन उपयोगी है। हमने बहुधा देखा है कि न केवल एक ओर 'साहबों' और दूसरी ओर 'जमीदारों', बनियों' तथा शिक्षित 'बाबुओं' मे विरोध था, वरन शासित प्रजाति के विभिन्न वर्गो मे भी परस्पर विरोध था। शहरी व्यावसायिक एव व्यापारिक वर्ग की लगानभोगी जमींदार वर्ग (जो लाइसेंस कर से मुक्त था और जिसे अपनी अर्जित आय पर उसी दर से आय कर देना होता था जिस दर से व्यापार अथवा उच्च शिक्षा वाले व्यवसायी में लगे हुए व्यक्ति आय कर देते थे) के प्रति नाराज़गी, ऊंची आय पाने वाले वर्गों के सरकार को अवरोही परोक्ष कर (विशेष रूप से नमक शुल्क को वस्तुत. जन साधारण पर व्यक्ति कर था) लगान के लिए राजी करने के लिए प्रयास, ताकि वे आय करों के भार से मुक्त हो सकें,' सरकारी पूंजीनिवेशों के क्षेत्रीय वितरण के संबंध मे प्रांतीय ईर्ष्या-द्वेष एतत्संबंधी कुछ उदाहरण है। प्रस्तावना वाले अध्याय मे हमने हितबद्ध गुटों में विरोध का अध्ययन किया है और देखा है कि प्रत्येक गुट वित्तीय नीति निर्णयों को अपने अनुकूल बनाने का प्रयास करता था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने विकास काल के प्रारंभिक वर्षों मे इस समस्या की ओर ध्यान दिया था कि किस प्रकार प्रमुख हितों के प्रतिनिधित्व की स्थाई व्यवस्था हो सके। कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन मे के० टी० तेलंग ने विधान मंडल में चेंबर्स आफ कामर्स, ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन, विश्व-

बहुत दूर तक फैले थे। कार्यवाही की तात्कालिक उपलब्धियां थोड़ी ही थी। परतु एक राष्ट्रीय राजनीतिक दल के आविर्भाव में सुविधा हो गई थी। शीघ्र (ही राजनीति के क्षेत्र में) नया खेल प्रारंभ होना था जिसके दांव ऊंचे थे।

संदर्भ

1. 'फाइनेंशल स्टेटमेंट्स रिलेटिंग टु इंडिया'''रिप्रिंटेड फ्राम हंसार्ड्स पालियामेंटरी डिबेट्स,' पृ० 680। ग्रैंट डफ ने भारत की राशि की तुलना इंग्लैंड की राशि से की है, जो प्रति वर्ष 30 पौंड प्रति व्यक्ति थी।
2. दादाभाई नौरोजी 'दि पावर्टी आफ इंडिया' (बबई 1876) पृ० 1-142।
3. डी० थोर्नर के अनुसार पिछड़ी अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय के परिकलन मे सेवाओं के क्षेत्र में सम्मिलित न करना बहुत युक्तिसगत है। एम० एस० कुजनेत्स, 'इकानामिक ग्रोथ' (1955) पृ० 10। देखें सुरेंद्र जे० पटेल 'लाग टर्म चेंजेज इन आउटपुट एंड इनकम इन इंडिया' 1866-1960 'दि इंडियन इकानामिक जर्नल,' जनवरी, 1958, जिल्द V, संख्या 3, पृ० 233-46।
4. 'इंडियन इकानामिस्ट' 21 अक्तूबर, 1871।
5. एम० ए० हिंडमैन, 'बैंकरप्सी आफ इंडिया,' (लदन, 1886), पृ० 157।
6. 'टाइंस आफ इडिया' 13 नवबर, 1863।
7. 'फ्रैंड आफ इंडिया' 27 जून, 1861।
8. 'फ्रैंड आफ इंडिया' 4 फरवरी, 1868। बगाल चैंबर आफ कामर्स के अनुसार राशि केवल 2 शिलिंग थी। राजस्व कार्यविवरण जून, 1867, संख्या 50।
9. 'इंडियन इकानामिस्ट' 21 अक्तूबर, 1871।
10. एच० एम० हिंडमैन, 'बैंकरप्सी आफ इंडिया' (लदन, 1866) पृ०157।
11. भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त प्रेषण संख्या 144, 29 जून, 1860।
12. वही।
13. वही, 240, 20 सितंबर, 1869।
14. 1868 में 'फ्रैंड आफ इंडिया' (27 जून, 1861 तथा 4 फरवरी, 1868) ने प्राक्कलित किया कि भारत मे प्रति व्यक्ति कर भार 6 शिलिंग था जबकि इग्लैंड में 2 पौंड 16 शिलिंग 3 पेंस सयुक्त राज्य अमरीका से 2 पौंड 16 शिलिंग 1 पेंस और फ्रास मे 1 पौंड 19 शिलिंग 1 पेंस था। 31 अक्तूबर, 1873 के 'दि इंडियन इकानामिस्ट' ने दावा किया था कि 1 शिलिंग 6पेंस प्रति व्यक्ति कराधान की स्थिति में 'इस देश मे कर भार विश्व भर मे सब से कम था।'
15. 'फ्रैंड आफ इंडिया,' 22 मार्च, 1860।
16. वही 26 मार्च, 1861।
17. वही 13 दिसबर, 1866।
18. 'टाइंस आफ इंडिया' 15 अगस्त, 1865।
19. वही।

वाले प्रशासनिक एवं सैन्य खर्च, सरकार द्वारा भंडार संबंधी खरीद इत्यादि। यहा पर हम यह उल्लेख मात्र कर देना चाहेगे कि उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में राष्ट्रवादी प्रवक्ताओं ने राजनीति के लिए नौरोजी के विचारों को अपनाने में विलक्षण ढंग से चुनाव किया था। गांगुली ने स्पष्ट किया है कि नौरोजी के सिद्धांत में कुछ प्रगतिशील तत्व थे जैसे अवरोही कर व्यवस्था की निंदा; 'साधारण कुली मजदूर' के हितों का उत्साहपूर्ण समर्थन जिन पर कि ऊंची आय पाने वाले वर्गों की तुलना में नमक शुल्क का भार कहीं अधिक था; यह संकेत कि 'चूंकि संपन्न वर्ग आंदोलन कर सकते हैं और अपनी बात सुनने के लिए सरकार को बाध्य कर सकते हैं जबकि निर्धन श्रमिकों और कृषकों के लिए यह संभव नही है' अतः उन्ही का कराधान के माध्यम से शोषण होना; आंतरिक 'आर्थिक निकास' की धारणा अर्थात कराधान द्वारा ग्रामीण जनता की संपत्ति के हस्तांतरण एवं शहरी पूंजीपति वर्ग के पक्ष में आय के पुनर्वितरण के विषय में विचार।[201] यह महत्वपूर्ण बात है कि नौरोजी के सिद्धात के इन तत्वों को ('बाहरी आर्थिक निकास' से संबंधित विचारो के विपरीत) उत्साहपूर्ण समर्थन मिलना तो दूर रहा, उस पर ध्यान भी नहीं दिया गया। वस्तुतः स्वयं नौरोजी ने भी 'आंतरिक निकास' के बारे में अपने विचार को विशिष्टता प्रदान नहीं की। हम पहले स्पष्ट कर चुके हैं कि किस प्रकार रमेश चद्र दत्त ने, जिन्होने 1875 मे रैयत की उपज पर जमीदार के दावे को स्थाई रूप से निर्धारित करने की आवश्यकता के विषय मे साहस के साथ लिखा था और जिनकी 'हिंदू पेट्रिअट' ने 'उग्रवादी भावना' के लिए अच्छी तरह भर्त्सना की थी, अपनी परिपक्व तथा सुप्रचारित रचनाओं में जमीदार रैयत संबंध के शोषणकारी पहलुओ से अपना ध्यान हटा लिया था।[202] संभवतः नौरोजी तथा दत्त जैसे वैचारिक क्षेत्र के नेताओं का खयाल था कि उन्हे पहले स्वकल्पित 'विदेशी शोषण' के विरुद्ध संघर्ष करना है। बंगाल के जमीदार, बंबई के बनिये अथवा शहरों के शिक्षित व्यावसायिक वर्गों के लोग अन्य प्रकार के शोषणों को जिनमें उनके प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष सहयोग और भागीदारी का संदेह किया जाता था, छोड़कर केवल उपर्युक्त शोषण के बारे में संदेश ग्रहण करने के लिए तत्पर थे।

निष्कर्ष के रूप में, यह कहा जा सकता है कि एक ओर विरोधी प्रतिबद्धताओं के एक दूसरे के प्रतिकूल दबाव तथा हितों और निष्ठाओं के बंधन थे और दूसरी ओर विचारधारा का एक स्वरूप उभर रहा था जो राष्ट्रवाद के रूप मे विकसित हुआ। दबाव गुटों के कार्य कलाप का महत्व बाद के ऐतिहासिक अनुभव के आधार पर ही स्पष्ट होता है। जिस काल का हमने अध्ययन किया है, उसमें (दबाव गुटों) का कार्य कलाप अधो-राजनीतिक स्तर पर चालबाजी का खेल मात्र था। इस खेल मे शिक्षित शहरी व्यावसायिक वर्गों को, विरोधी आर्थिक हितों के बीच विरोध की उग्रता का आभास होने लगा था। राष्ट्रीय स्तर पर बंधे हुए हितों के एकत्रीकरण की इस धारणा से ही आर्थिक राष्ट्रवाद का प्रारंभ हुआ था। विचारो के आधार पर बने संगठन शिकायतों अथवा मांगों के प्रचार के लिए प्रयत्न, लाब्बीकरण इत्यादि ऐसी रीतियां है जो राजनीतिक मस्तिष्क को लचीला बनाती हैं। इस प्रकार की कार्यवाही के परिणाम निकटतम कार्यक्षेत्र के बाहर

बहुत दूर तक फैले थे। कार्यवाही की तात्कालिक उपलब्धिया थोड़ी ही थी। परंतु एक राष्ट्रीय राजनीतिक दल के आविर्भाव मे सुविधा हो गई थी। शीघ्र (ही राजनीति के क्षेत्र मे) नया खेल प्रारंभ होना था जिसके दाव ऊचे थे।

संदर्भ

1. 'फाइनेंशल स्टेटमेंट्स रिलेटिंग टु इंडिया'''रिप्रिंटेड फ्राम हसार्ड्स पार्लियामेंटरी डिबेट्स,' पृ० 680। ग्रैंट डफ ने भारत की राशि की तुलना इंग्लैंड की राशि से की है, जो प्रति वर्ष 30 पौंड प्रति व्यक्ति थी।
2. दादाभाई नौरोजी 'दि पावर्टी आफ इंडिया' (बबई 1876) पृ० 1-142।
3. डी० थोर्नर के अनुसार पिछडी अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय के परिकलन मे सेवाओ के क्षेत्र मे सम्मिलित न करना बहुत युक्तिसंगत है। एम० एस० कुजनेत्स, 'इकानामिक ग्रोथ' (1955) पृ० 10। देखें सुरेंद्र जे० पटेल 'लाग टर्म चेंजेज इन आउटपुट एंड इनकम इन इंडिया' 1866-1960 'दि इंडियन इकानामिक जर्नल,' जनवरी, 1958, जिल्द V, सख्या 3, पृ० 233-46।
4. 'इंडियन इकानामिस्ट' 21 अक्तूबर, 1871।
5. एम० ए० हिंडमैन, 'बैंकरप्सी आफ इंडिया,' (लदन, 1886), पृ० 157।
6. 'टाइंस आफ इंडिया' 13 नवबर, 1863।
7. 'फ्रैंड आफ इंडिया' 27 जून, 1861।
8. 'फ्रैंड आफ इंडिया' 4 फरवरी, 1868। बगाल चेंबर आफ कामर्स के अनुसार राशि केवल 2 शिलिग थी। राजस्व कार्यविवरण जून, 1867, संख्या 50।
9. 'इंडियन इकानामिस्ट' 21 अक्तूबर, 1871।
10. एच० एम० हिंडमैन, 'बैंकरप्सी आफ इंडिया' (लदन, 1866) पृ०157।
11. भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त प्रेषण संख्या 144, 29 जून, 1860।
12. वही।
13. वही, 240, 20 सितबर, 1869।
14. 1868 मे 'फ्रैंड आफ इंडिया' (27 जून, 1861 तथा 4 फरवरी, 1868) ने प्राक्कलित किया कि भारत मे प्रति व्यक्ति कर भार 6 शिलिंग था जबकि इग्लैंड मे 2 पौंड 16 शिलिंग 3 पेंस सयुक्त राज्य अमरीका से 2 पौंड 16 शिलिंग 1 पेंस और फ्रास में 1 पौंड 19 शिलिंग 1 पेंस था। 31 अक्तूबर, 1873 के 'दि इंडियन इकानामिस्ट' ने दावा किया था कि 1 शिलिंग 6 पेंस प्रति व्यक्ति कराधान की स्थिति में 'इस देश मे कर भार विश्व भर मे सब से कम था।'
15. 'फ्रैंड आफ इंडिया,' 22 मार्च, 1860।
16. वही 26 मार्च, 1861।
17. वही 13 दिसबर, 1866।
18. 'टाइम्स आफ इंडिया' 15 अगस्त, 1865।
19. वही।

20. 'फ्रेंड आफ इंडिया' 13 दिसबर, 1866 ।
21. 'टाइम्स आफ इडिया' 13 नवबर, 1863 ।
22. 'मद्रास टाइस,' 24 अक्तूबर, 1863, 'टाइम आफ इडिया,' 23 अक्तूबर, 1863 मे उद्धृत ।
23. जे० सी० गैडस का साक्ष्य, 'ईस्टर्न इकानामिस्ट, 21 अगस्त, 1871 मे उद्धृत । सपादक रावर्ट नाइट के मतानुसार यह सिद्धात पूर्ण रूप से गलत था ।
24. एच० एम० हिंडमैन, 'दि बैंकरप्सी आफ इडिया' (लदन, 1886) पृ० 41 ।
25. 'बेलगाव समाचार,' 20 अप्रैल, 1868, आर० एन० पी० (बबई), पृ० 21 ।
26. 'रास्त गोफ्तार,' 24 मई, 1868, आर० एन० पी० (बबई), पृ० 79 ।
27. 'हिंदू हितैषिणी,' 28 मार्च, 1868, आर० एन० पी० (बंगाल), पृ० 150 ।
28. 'सुधावर्षन गजट,' 14 मार्च, 1868, आर० एन पी० (बगाल), पृ० 130 ।
29. 'सोमप्रकाश,' 23 दिसबर, 1867, आर० एन० पी० (बंगाल), पृ० 5 ।
30 'खानदेश वैभव,' 4 मार्च, 1870, आर० एन० पी० (बबई), पृ० 133 ।
31. वित्त कार्यविवरण अप्रैल, 1868, सख्या 35 । भारत मंत्री सर स्टेफर्ड नोर्थकोट को ब्रिटिश इडियन एसोसिएशन की कलकत्ता में हुई बैठक मे प्रेषित विनम्र स्मरण पत्र, फरवरी, 1868 ।
32. डी० नौरोजी, 'पावर्टी एड एन ब्रिटिश रूल इन इडिया' (दिल्ली, 1962) पृ० 193 और उसके आगे ।
33. वही, पृ० 195 ।
34. वही ।
35. वही, पृ० 194 ।
36. 'हिंदू पेट्रिअट,' 5 सितबर, 1860 ।
37 वित्त कार्यविवरण, जुलाई, 1850 । लेखा शाखा सख्या 26 । बाबू ईसर चदर सिंह, सचिव, ब्रिटिश इडिया एसोसिएशन द्वारा सचिव, वित्त विभाग, भारत सरकार को प्रेषित, 22 मई, 1860 (राजस्व प्रेषण सख्या 21, 20 अप्रैल, 1867) भारत सरकार से भारत मत्री को ।
38. वित्त कार्यविवरण अप्रैल, 1868, सख्या 34, बाबू जतींद्र मोहन टैगोर, सचिव, ब्रिटिश इंडिया एसोसिएशन द्वारा सचिव, बगाल सरकार को प्रेषित, 3 फरवरी, 1868; सख्या 35 । ब्रिटिश इडिया एसोसिएशन की कलकत्ता से हुई बैठक सर स्टेफर्ड नोर्थकोट को प्रेषित विनम्र स्मरण पत्र दिनाक 1 फरवरी' 1868 । और भी देखिए 'हिंदू पेट्रिअट' 23 मार्च, 1868 जिसमे परिषद में होने वाली बहसो को 'प्रहसन' कहा गया था ।
39. वही ।
40. भारत सरकार से भारत मत्री को वित्त प्रेषण, सख्या 86, दिनाक 3 अप्रैल, 1878 ।
41. 'हिंदू पेट्रिअट,' 6 अप्रैल, 1868, वही, 6 मार्च, 1868 ।
42. 'सोमप्रकाश,' 9 मार्च, 1868, आर० एन० पी० (बगाल), पृ० 107 । 'जामे जमशेद,' 15 फरवरी, 1869, 10 मार्च, 1869, आर० एन० पी० (बबई), पृ० 94, 133; 15 सितबर, 1870, आर० एन० पी० (बबई) पृ० 442 ।
43. वित्त कार्यविवरण, जुलाई, 1868, पृथक राजस्व सख्या 14 । ब्रिटिश इडिया एसोसिएशन की कलकत्ता मे हुई बैठक में भारत मत्री को प्रेषित विनम्र स्मरण पत्र, 31 मई, 1869 ।

44 वित्त कार्यविवरण, मार्च, 1871, लेखा शाखा सख्या 90, जतींद्र मोहन ठाकुर, सचिव, ब्रिटिश इडिया एसोसिएशन द्वारा सचिव, वित्त विभाग, भारत सरकार को प्रेषित, 10 मार्च, 1871।
45. मेयो से नैपियर को, 20 नवबर, 1870, संख्या 325, मेयो कागजात, बडल 41।
46. 'हिंदू पेट्रिअट,' 21 फरवरी, 1870।
47. 'हिंदू पेट्रिअट,' 11 जुलाई, 1870।
48. 'हिंदू पेट्रिअट, 10 अप्रैल 1870।
49. सर बार्टल फ्रेर 'दि मीन आफ असर्टेनिंग पब्लिक ओपीनियन इन इडिया', (1871) 'जर्नल आफ इंडिया असोसिएशन,' जिल्द V, खड IV, पृ० 102 172।
50. मेयो से डब्ल्यू० आर्बुथनाट को, 15 मार्च, 1871, मेयो कागजात, बडल 42, सख्या 68।
51. वित्त कार्यविवरण, अप्रैल, 1868, सख्या 48, सचिव, बोर्ड आफ रेवेन्यू से सचिव, फोर्ट सेंट जार्ज की सरकार को, 27 जनवरी, 1868।
52. बी० फ्रेर, पूर्वोद्धृत।
53. मेयो से आरगाइल को, 7 नवबर, 1870, मेयो कागजात, बडल 41, सख्या 300।
54. जे० लारेंस से क्रेनबोर्न को, 16 सितबर, 1866, लारेंस कागजात, भारत मत्री को प्रेषित पत्र, 1866, जिल्द, 3, सख्या 35।
55. राजस्व प्रेषण 1867, संख्या 21। भारत सरकार से भारत मत्री को प्रेषण, 20 अप्रैल, 1867।
56. भारत सरकार से भारत मंत्री को वित्त प्रेषण, संख्या 86, दिनाक 3 अप्रैल, 1868।
57. जेम्स रटलेज 'इग्लिश रूल एड नेटिव ओपीनियन इन इडिया' (लदन, 1278) पृ० 219-20।
57-ए वित्त कार्यविवरण (लेखा शाखा) जून, 1861, सख्या 61, ब्रिटिश इडियन एसोसिएशन द्वारा गवर्नर जनरल को प्रेषित स्मरण पत्र, 5 जून, 1861।
58. 'मद्रास एक्जामिनर,' 5 फरवरी, 1863, राजस्व कार्यविवरण, जून, 1867, सख्या 50, सचिव, बगाल चेंबर आफ कामर्स से सचिव, वित्त विभाग, 31 मई, 1867। वही अगस्त, 1867, सख्या 20, कलकत्ता ट्रेडर्स एसोसिएशन द्वारा भारत मत्री को प्रेषित स्मरण पत्र, 22 अप्रैल, 1867। 'पायनियर' 2 जनवरी, 1871। 'इग्लिशमैन' 11 अप्रैल, 1866।
59. मेयो से नेपियर को, 6 अगस्त, 1870, बडल 40, सख्या 225।
60. वित्त कार्यविवरण, (लेखा शाखा) जून, 1861, सख्या 62, गवर्नर जनरल से ब्रिटिश इडियन एसोसिएशन को।
61 'फ्रेंड आफ इडिया,' 26 जून, 16 मार्च, 24 अगस्त, 1865। 'इडियन इकानामिस्ट, 21 नवबर, 1871, 10 सितबर, 1867।
62. मेयो से नैपियर को, 15 मई, 1870, बंडल 39, संख्या 119।
63. विधान परिषद कार्यविवरण, 14 अप्रैल, 1860, जिल्द VI, पुरानी सीरीज।
64. 'टाइस आफ इडिया' 13 नवबर, 1863।
65. राजस्व कार्यविवरण, अप्रैल, 1867, सख्या 19, कलकत्ता के निवासियों द्वारा स्मरण पत्र।
66. राजस्व कार्यविवरण, मार्च 1867, सख्या 35 कलकत्ता ट्रेड्स एसोसिएशन की याचिका, (अर्जी) 15 मार्च, 1867।
67. 'फ्रेंड आफ इडिया' 16 मार्च, 1865। देखिए राजस्व कार्यविवरण नवंबर, 1880, सख्या

प्रणाली को लागू करने की नीति स्वीकार कर ली गई थी 'फ्रैंड आफ इंडिया,' 30 सितंबर, 1869।

110. वित्त कार्यविवरण, अक्तूबर, 1871, पृथक राजस्व संख्या 12, ज० वेस्टलैंड वित्त अवर सचिव, भारत सरकार से सचिव, बंगाल सरकार को, 14 अक्तूबर, 1871।
111 वित्त कार्यविवरण, जनवरी, 1866, पृथक राजस्व संख्या 482, चीफ कमिश्नर, ब्रिटिश बर्मा से वित्त सचिव, भारत सरकार को, 26 नवंबर, 1864।
112 भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त संख्या 144, 29 जून, 1860।
113 देखें, सी० एन० वकील, पूर्वोद्धृत, पृ० 484।
114. वित्त कार्यविवरण, मार्च, 1868, संख्या 39। वित्त सचिव, द्वारा टिप्पणी, दिनांक 14 फरवरी, 1868। वकील, पूर्वोद्धृत, पृ० 483। गृह कार्यविवरण, लोक शाखा, अप्रैल, 1871, संख्या 13। गृह सचिव, द्वारा ज्ञापन, दिनांक 14 मार्च, 1870।
115 'हिंदू पेट्रिअट', 115 मई, 1871।
116. वही।
117. 'हिंदू पेट्रिअट', 17 अप्रैल, 1871।
118. वही, 15 मई, 1871।
119 वही, 11 अप्रैल, 1870; 5 जून, 1871; 'रास्त गोफ्तार', 13 नवंबर, 1870, आर० एन० पी० (बंबई), पृ० 544।
120 'हिंदू पेट्रिअट', 12 दिसंबर, 1860; 30 जून, 1860, 11 जुलाई 1860।
121. 'पंजाब अखबार', 8 जून, 1871, एस० वी० एन० (पश्चिमोत्तर प्रांत), 'प्रयाग दूत', आर० एन० पी० (बंगाल), 15 जुलाई, 1868।
122. 'रूई नू माई पंजाब', 8 फरवरी, 1867, एस० वी० एन० (पश्चिमोत्तर प्रांत); पृ० 102।
123. 'भास्कर', 28 मार्च, 1868, नार० एन० मी० (बंगाल), 1868, पृ० 153।
124. वही, 4 जून, 1868, वही, पृ० 21; 'राजशाही पत्रिका', जनवरी, 1868, वही, पृ० 59; 'अवध अखबार', जून, 1868, वही, पृ० 298।
125. दादाभाई नौरोजी, 'एसेज, स्पीचज, एड्रैसेज एटसट्रा' (बंबई, 1887), पृ० 54।
126. 'हिंदू पेट्रिअट', 13 जनवरी, 1868।
127 वित्त कार्यविवरण, फरवरी, 1868- लेखा शाखा संख्या 67, गवर्नर जनरल का मेमो०, 20 जनवरी, 1868।
128. 'बंबई समाचार', 8 व 9 फरवरी, 1870, आर० एन० पी० (बंबई), पृ० 82।
129. 'जामे जमशेद,' 23 नवंबर, 1869, वही, पृ 586।
130 वही, 10 मार्च, 1869, वही, पृ० 133।
131. 'सुकीर्तनवचनी,' डब्ल्यू० एफ० राइट द्वारा मार्च, 1873 के तमिल समाचार पत्रों के विषय में रिपोर्ट (17 मार्च, 1873)।
132. ईस्ट इंडिया एसोसिएशन की बंबई शाखा द्वारा याचिका (अर्जी), 'जनरल आफ दि ईस्ट इंडिया एसोसिएशन', जिल्द V, खंड II (1871), पृ० 130-32।
133. देखें पीछे अध्याय 3।

134. वित्त कार्यविवरण, जुलाई, 1869, पृथक राजस्व संख्या 14, ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन की कलकत्ता में हुई बैठक मे पारित विनम्र स्मरण पत्र, भारत मंत्री को प्रेषित, दिनाक 31 मई, 1869।
135. 'जामे जमशेद', 4 अगस्त, 1868 को आर० एन० पी० (बंबई), पृ० 230, 15 मार्च, 1869 आर० एन० पी० (बंबई), पृ० 144।
136. 'रास्त गोफ्तार', 30 मई, 1869, आर० एन० पी० (बंबई), पृ० 273, 17 अक्तूबर, 1869, आर० एन० पी० (बंबई), पृ० 525।
137. 'हिंदू पेट्रिअट', 11 अप्रैल, 1870।
138. 'पंजाब अखबार', 10 जून० 1871, एस० वी० एन० (पश्चिमोत्तर प्रांत)' पृ० 303।
139. दादाभाई नौरोजी, 'एसेज, स्पीचेज एटसेट्रा' (बंबई, 1887), पृ० 26-30।
140. ईस्ट इंडिया एसोसिएशन की बंबई शाखा द्वारा याचिका 'जर्नल आफ ईस्ट इंडिया एसोसिएशन', जिल्द V, खंड II (1871), पृ० 130-32।
141. देखें, 2 सितंबर, 1885 को बबई मे हुई फासट मेमोरियल बैठक में नौरोजी का भाषण, 'स्पीचेज एंड राइटिंग आफ दादाभाई नौरोजी' (मद्रास दिनाक नही दिया है), पृ० 171-74।
142. एच० फासट, 'इंडियन फाइनेंस' (लदन, 1880), पृ० 52।
143. भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त संख्या 149, 22 नवंबर, 1862।
144. वही, वित्त संख्या 37, 13 मार्च, 1861। भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त संख्या 53, 8 अप्रैल, 1861।
145. वित्त कार्यविवरण सितंबर, 1861, लेखा शाखा (भंडार) संख्या 67, सचिव, सैन्य वित्त विभाग से वित्त सचिव, भारत सरकार को, 23 अगस्त, 1861।
146. भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त संख्या 218, 27 दिसबर, 1862।
147. वही, 7 और 27, दिनाक 16 जनवरी, 1866 और 8 फरवरी, 1866।
148. वही, 221, 4 अक्तूबर, 1867। भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त संख्या 464, 23 दिसबर, 1867।
149. वही, वित्त संख्या 8, 11 जनवरी, 1870।
150. वही, 114, 18 मार्च 1869।
151. जे० स्ट्रैची से मेयो को, 4 अगस्त, 1869, मेयो कागजात, बंडल 60। मेयो से आरगाइल को, 8 फरवरी, 1870, मेयो कागजात, बंडल 35, संख्या 53।
152. वित्त कार्यविवरण, अगस्त, 1871, संख्या 73। भारत सरकार द्वारा प्रस्ताव, 21 जुलाई, 1871। भारत सरकार से भारत मंत्री को, वित्त संख्या 422, 16 नवंबर, 1871।
153. भारत मंत्री से भारत सरकार को, वित्त 136, 22 अगस्त, 1860।
154. वही, वित्त 4, 16 जनवरी, 1865।
155. नोर्थकोट ने सुल्तान के लिए व्यवस्थित नृत्य पर व्यय को उचित सिद्ध करने का प्रयास किया। उसने लिखा कि 'यद्यपि इस बात को स्वीकार करने के लिए कोई भी व्यक्ति तत्पर नही दिखाई देता, तथापि नृत्य पूर्ण रूप से एकमात्र इंडिया आफिस का ही मामला था…।' एस० नोर्थकोट

से जे० लारेंस को, 1 अक्तूबर, 1867। लारेंस कागजात, भारत मंत्री से पत्र, जिल्द IV, सख्या 41।

156. भारत सरकार से भारत मत्री को, वित्त सख्या 191, 27 अगस्त, 1866; भारत मत्री से भारत सरकार को, वित्त सख्या 25, फरवरी, 1867।
157. वही, वित्त सख्या 30, 28 फरवरी, 1861।
158. वही।
159. वही।
160. भारत सरकार से भारत मत्री को, वित्त सख्या 73, 8 मार्च, 1867।
161. वित्त कार्यविवरण, जनवरी, 1867, लेखा शाखा, सख्या 70, वित्त विभाग, भारत सरकार द्वारा प्रस्ताव, 26 जनवरी, 1867। वित्त कार्यविरण, अक्तूबर, 1869, लेखा शाखा सख्या 63। वित्त विभाग, भारत सरकार द्वारा प्रस्ताव, 6 अक्तूबर, 1863।
162. बगाल मे शिक्षा विभाग मे अन्य स्थानो की तुलना मे वेतनमान ऊंचे थे। भारत सरकार से भारत मत्री को, वित्त सख्या 119, 14 जुलाई, 1865। वित्त कार्यविवरण, मार्च, 1868, लेखा शाखा सख्या 111-13। बाद के कार्यविवरण मे बगाल में वर्नाक्युलर शिक्षा की स्थिति के विषय मे ख्याति प्राप्त लेखक भूदेव मुकर्जी की मनोरंजक रिपोर्ट सम्मिलित है।
163 मेयो से अर्सिकन पेरी को, 23 मार्च, 1870, मेयो कागजात, बडल 35, सख्या 85।
164. मेयो से ई० पेरी को, 26 जुलाई, 1870, मेयो कागजात, बडल 35, सख्या 213।
165. मेयो से सर विलियम म्योर को, 4 अगस्त, 1870, मेयो कागजात, बडल 35, सख्या 222। मेयो से आरगगाइल को, 17 अक्तूबर, 1869। मेयो कागजात, बडल 37, सख्या 285।
166. 'इडियन इकानामिस्ट', 10 सितबर, 1869, वही, 21 अगस्त, 1871, 21 सितबर, 1871, डी० नौरोजी, पूर्वोद्धृत, पृ० 294, 295, 201।
167 राबर्ट नाइट एक अर्थशास्त्री और एफ० एस० एस० था।
168. नाइट केवल 'राजनीतिक ऋणों' की बात कर रहा था।
169. 'इडियन इकानामिस्ट', 21 अगस्त, 1871; 21 सितबर, 1871।
170. डी० नौरोजी, पूर्वोद्धृत, पृ० 295।
171. वही, पृ० 201, 294।
172. 'इडियन इकानामिस्ट', 30 अगस्त, 1873।
173. जे० स्ट्रैची से मेयो को, 18 अक्तूबर, 1869 को, मेयो कागजात, 60।
174. वित्त कार्यविवरण, अप्रैल, 1865, पृथक राजस्व सख्या 302, सचिव, भारत सरकार से सचिव, बबई सरकार को, 19 अप्रैल, 1865।
175. विधान परिषद कार्यविवरण, 1860, जिल्द VI (पुरानी सिरीज), पृ० 122।
176 गृह कार्यविवरण, पृथक राजस्व सख्या 7-8।
177. 'हिंदू पेट्रिअट', 4 जुलाई, 1870।
178 गृह (लोक शाखा) परामर्श, 15 अप्रैल, 1859, सख्या 20, 5 अप्रैल, 1859, को एक सार्वजनिक सभा मे कलकत्ता के व्यापारियो के द्वारा याचिका (अर्जी)। भारत मंत्री का प्रेषण पृथक राजस्व सख्या 4, 7 अप्रैल, 1859। गृह, पृथक राजस्व, सख्या 3, 1 अक्तूबर, 1860।

179. वित्त कार्यविवरण, अप्रैल, 1865, पृथक राजस्व संख्या 35।
180. वही, जून, 1865, पृथक राजस्व संख्या 244-45।
181. 'हिंदू पेट्रिअट', 21 मार्च, 1860।
182. वही, 29 मई, 1866।
183 वही, 21 अप्रैल, 1860।
184 वही, 11 जुलाई, 1870।
185 वही, 9 जनवरी, 1871।
186. वित्त कार्यविवरण, मार्च, 1871, लेखा शाखा संख्या 90, सचिव, ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन से वित्त सचिव, भारत सरकार को, 10 मार्च 1871।
187. 'हिंदू पेट्रिअट', 9 जनवरी, 1871।
188. वही 6 मार्च, 1871।
189 बंबई ईस्ट इंडिया एसोसिएशन द्वारा याचिका, 'जर्नल आफ दि ईस्ट इंडिया एसोसिएशन', जिल्द V, खंड II, 1871, पृ० 130-32।
190. 'फ्रेंड आफ इंडिया', 24 दिसंबर, 1863।
191. एम० भट्टाचार्य, 'लेसे फेअर इन इंडिया', 'इंडियन इकानामिक एंड सोशल हिस्ट्री रिव्यू', जनवरी, 1965, जिल्द II, पृ० 1-22।
192. सांख्यिकीय परिशिष्ट में साधारण लोक निर्माण व्यय से संबद्ध सारणी तथा पृ० 116-120 पर आधारित।
193. प्रत्येक प्रांत अथवा प्रेसीडेंसी का क्षेत्र, एम० एम० पी० आर०, 1871-72 तथा पी० पी० एच० सी०, 1873, जिल्द 50, पृ० 147 में दिए गए स्थूल प्राक्कलनों के आधार पर निकाला गया।
194. 'गजट आफ इंडिया', 31 मार्च, 1888 (पूरक)।
195. सर लुई मैलट्स द्वारा 1875 में किए गए प्राक्कलन 1871 के आंकड़ों पर आधारित थे। 'रिपोर्ट आफ दि फैमीन कमीशन' (1880) परिशिष्ट एल, पृ० 143।
196 जान स्ट्रैची का ज्ञापन, 1874, पी० पी० एच० सी०, 1874, पत्रक 326, पृ० 16-17।
197. वही, पृ० 18।
198. देखें, अध्याय IV, पृ० 157 और आगे।
199. बंबई के 3646 हिंदुस्तानी व्यापारियों द्वारा याचिका (अर्जी), 12 अक्तूबर, 1859, 'कारेस्पांडेंस आन डायरेक्ट टैक्सेज' (कलकत्ता, 1882), जिल्द I पृ० 30।
200. बी० बी० मजूमदार, पूर्वोद्धृत, पृ० 320, 339, 344-45।
201 बी० एन० गांगुली, 'दादाभाई नौरोजी एंड दि ड्रेन थिअरी', (बंबई, 1965), पृ० 80, 93-93।
202. देखें, ऊपर 155-57।

सांख्यिकीय परिशिष्ट

यह सभी जानते हैं कि भारतीय इतिहास के विद्यार्थी के सामने प्रधान समस्या परिमाणात्मक सामग्री का अभाव है। जब मैंने यह अध्ययन प्रारंभ किया था तो मैं प्रकाशित सामग्री मे और विशेष रूप से 'स्टैटिकल ऐब्स्ट्रैक्ट रिलेटिंग टु ब्रिटिश इंडिया' में भारतीय वित्त के बारे मे बहुत अधिक प्रभावोत्पादक आकड़े पाकर बहुत आश्वस्त हुआ था। जैसे-जैसे यह कार्य आगे बढ़ा मुझे प्रकाशित आंकड़ों की सीमाएं स्पष्ट होने लगी। जैसा कि मिचैल तथा डीन ने 'ऐब्स्ट्रैक्ट आफ ब्रिटिश हिस्टारीकल स्टैटिस्टिक्स' की अपनी भूमिका में लिखा है, 'साख्यिकीय श्रेणी की सीमाएं उसी समय प्रकट होती हैं जब विश्लेषण के लिए आंकडों का प्रयोग किया जाता है। यद्यपि मेरा प्रयास विस्तार की दृष्टि से प्रारंभिक एवं सीमित था, तथापि जो दोष मेरे सामने आए उनकी ओर मैं पाठक का ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा।

जहां तक दीर्घकालिक समयानुक्रम का प्रश्न है उनसे संबद्ध समस्याएं निम्नलिखित हैं: संसदीय कागजात में उपलब्ध अनेक साख्यिकीय श्रेणियां और विशेष रूप से प्रवर समितियों के सामने प्रस्तुत साक्ष्यों और इन प्रवर समितियों द्वारा तैयार की गई रिपोर्टों मे मिलने वाली सांख्यिकीय श्रेणिया विशिष्ट उद्देश्यो के लिए तैयार की गई थी। बुनियादी आंकड़ों के स्थान पर सक्षिप्त लेखे प्रकाशित किए गए थे। समय-समय पर परिभाषात्मक और भाषात्मक परिवर्तनों, राजस्व (व्यय) की एक मद से दूसरी मद मे घटकों के अंतरण, भूतलक्षी प्रभाव से अनेक मदों के चालू आय खाते से पूजी खाते में अंतरण, परिवर्ती सिद्धांतों के अनुसार एक ही राजस्व (व्यय) शीर्षक के अंतर्गत अनेक मदों का समुच्य इत्यादि के कारण ये तुलनीय नही हैं। यह 'स्टैटिस्टीकल ऐब्स्ट्रैक्ट' के विषय में भी सत्य है जिसके स्वरूप और आकार मे बिना किसी स्पष्टीकरण के परिवर्तन कर दिए जाते थे और पुराने 'एब्स्ट्रैक्टस' में प्रकाशित आंकड़ों को कोई भी स्पष्टीकरण दिए बिना ही संशोधित कर पुन: प्रकाशित किया जाता था। इन सब कारणों से दीर्घकालीन तुल्य कालानुक्रम का निर्माण कर पाना बहुत कठिन हो जाता है। आगे दी गई सारणियों में नवीनतम संशोधनों को लिया गया है जब तक कि परिभाषात्मक परिवर्तनों अथवा घटकों के एक मद से दूसरी मद में अंतरणों से कालानुक्रम की तुल्यता में व्यवधान न पडता हो, और प्रकाशित तथ्यों की वार्षिक वित्त विवरणों तथा अप्रकाशित अभिलेखों के साथ तुलना करके जांच की गई है। जहां कोई भी तथ्य बीच में टूटा हुआ है वहा संबंधित सारणी के नीचे टिप्पणी में इसे स्पष्ट कर दिया गया है। किसी खास राजस्व अथवा

व्यय शीर्षक के अंतर्गत आने वाले उपयुक्त घटकों को सामान्यतः संपूर्ण अवधि मे उसी शीर्षक मे रखा गया है। जहा उपलब्ध लेखे मे किसी घटक का एक मद से दूसरे में अंतरण हुआ है और राशियो को अलग-अलग कर पाना संभव नही है, वहां इसे पाद टिप्पणी (फुटनोट) में स्पष्ट कर दिया गया है।

वित्त विभाग के अभिलेख बहुत विस्तृत एवं अधिक हैं (देखिए ग्रंथ सूची से संबद्ध टिप्पणी)। व्यय लेखा कार्यालय (1843) से वित्तीय नियन्त्रण के माध्यम के रूप मे, जिसका प्रधान सदस्य (1859) होता था, इस विभाग का क्रमिक विकास, वित्तीय सेवा के प्रारंभ 1857 तथा वित्त विभाग के लिए प्रशिक्षित कर्मचारियो की भर्ती के सबंध मे ट्रैवीलियन के प्रयत्नो का हम पीछे वर्णन कर चुके हैं। जब वित्त विभाग का पुनर्निर्माण हो रहा था, उसी समय लेखा प्रणाली का भी, ईस्ट इडिया कंपनी की 'वाणिज्यिक लेखा प्रणाली' से सरकारी वित्त के लिए उपयुक्त प्रणाली के रूप मे तेजी के साथ विकास हो रहा था। 1860 मे बजट प्रणाली प्रारभ की गई और लेखा तथा लेखा परीक्षण पद्धतियो में लगातार अनेक सुधारों के चरम परिणाम के रूप मे, फास्टर तथा व्हिफिन के सुझावों के अनुरूप इनका पुनर्गठन किया गया। फास्टर तथा व्हिफिन इग्लैड मे ट्रैवीलियन तथा ग्लैडस्टन द्वारा चुने गए परामर्शदाता थे। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से वित्त संबधी आकडों के संग्रह मे काफी सुधार हुआ। परतु लेखा पद्धति के सिद्धातो, उनके स्वरूप, मदों के वर्गीकरण इत्यादि मे परिवर्तनों के कारण उत्तर पुनर्गठन काल के आंकड़ों की तुलना इससे पहले की अवधि के आकड़ो के साथ कर पाना कठिन हो गया। यही कारण है कि साख्यिकीय श्रेणियां कहीं-कही टूटी हुई हैं। पूर्वानुमान रूपरेखा तथा नियमित प्राक्कलन से संबंधित सपरिपद गवर्नर जनरल द्वारा भारत मंत्री वित्त प्रेषण, 1860 के बाद वित्त सदस्य द्वारा प्रतिवर्ष बनाए जाने वाले वित्त विवरण (विधान परिपद की कार्यवाही संबंधी विवरण, पुरानी श्रेणी जिल्दें VI VII, तथा नई श्रेणी जिल्दें I-XI), तथा भारत के गजट में वित्त संबंधी सारांश संक्षेप में प्रत्येक वित्तीय वर्ष का लेखा प्रस्तुत करते है।

कही-कही एक मद के अंतर्गत कुल सकल राजस्व तथा व्यय के आकड़े तो उपलब्ध हैं परंतु पूरी अवधि के लिए मद विशेष में आने वाले विभिन्न मदों की राशिया अलग-अलग प्राप्त नही है। उदाहरणार्थ, सेना तथा लोकनिर्माण के अंतर्गत व्यय की विभिन्न मदों की राशियां केवल सातवें दशक के मध्य से ही उपलब्ध है। ऐसी स्थिति में नीचे दी गई सारणियों में श्रेणी उसी बिंदु से प्रारंभ होती है, जहां से प्रकाशित श्रेणी और वार्षिक लेखे के आधार पर अविच्छिन्न श्रेणी का निर्माण किया जा सकता है। जहां पर आकड़े विच्छिन्न हैं और उपलब्ध मुख्य श्रेणी के साथ तुलनीय नहीं हैं, वहां उन्हे नीचे दी गई सारणियों मे सम्मिलित नही किया गया है। यदि ये आंकड़े महत्वपूर्ण हैं तो इन्हें संबंधित सारणी के अत में पाद टिप्पणी (फुटनोट) मे दिया गया है।

आंकड़ों की अपर्याप्तता उस समय बहुत अधिक खलती है जबकि राष्ट्रीय आय अथवा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से संबधित प्रश्नों पर विचार किया जाता है। राष्ट्रीय आय से संबंधित बढ़ते हुए साहित्य से यह अधिकाधिक स्पष्ट होता जा रहा है कि राष्ट्रीय आय

के बारे मे अटकलपच्चू प्राक्कलनों से संबद्ध अनिश्चितता और संभावित त्रुटि का अंश बीसवी शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में भी कम नही है और जितना हम पीछे जाते हैं, इसमें वृद्धि होती जाती है। इसके अलावा, उन्नीसवी शताब्दी के अधिकांश भाग के लिए जो आंकड़े हमारे पास है वे आयात और निर्यात के केवल सरकारी मूल्य को प्रदर्शित करते हैं जिनसे व्यापार की मात्रा मे होने वाले परिवर्तनों के बारे मे बहुत अपूर्ण सूचना प्राप्त होती है। भारत की राष्ट्रीय आय के दादाभाई नौरोजी द्वारा प्राक्कलनों का मूल्यांकन तथा उन्नीसवी शताब्दी मे विदेशी व्यापार की मात्रा की अनुक्रमणी का निर्माण किसी अन्य शोध कार्य के अंतर्गत गौण प्रयास के रूप से हलके फुलके ढंग से नही किया जाना चाहिए। इन महत्वपूर्ण विषयों पर होने वाले शोध कार्यों (उदाहरणार्थ, भारत के विदेशी व्यापार पर डा० के० एन० चौधरी का कार्य) की हम प्रतीक्षा कर रहे हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों मे ब्रिटिश भारत के वित्त विषयक आंकड़ों से संबंधित एक समस्या यह है कि राज्य क्षेत्र के द्रुत विस्तार के कारण विभिन्न अवधियों की कुल राशियों और प्रशासनिक प्रभागो के, जिनके आकार में निरंतर परिवर्तन हो रहे थे, आंकड़ों की तुलना श्रमसाध्य है। 1858-72 की अवधि मे बहुत मामूली क्षेत्रीय परिवर्तन हुए थे। 1866-67 तक खाड़ी उपनिवेशों (जो 1941 तक ब्रिटेन का उपनिवेश रहे) के लेखे भारत सरकार के लेखे से पृथक नही किए गए थे। यही हैदराबाद के अभ्यर्पित जिलों की स्थिति थी। इन अपवादों के अलावा किसी अन्य परिवर्तन ने प्रशासनिक प्रभागों के लेखे को, जो नीचे सारणी के रूप मे दिए गए हैं, प्रभावित नही किया। यह ध्यान में रखना चाहिए कि इस काल के भारत सरकार के लेखे मे भारत में दक्षिणी बर्मा सम्मिलित था। बंबई मे सिंध, बंगाल और (सारणी 4 को छोडकर जो 1888 मे तैयार किए गए विवरण पर आधारित है) असम सम्मिलित थे। इस काल के आंकड़े अपने प्रकाशित रूप मे (जैसे, भारत मंत्री द्वारा संसद में पेश किए जाने वाले विवरण, सपरिषद गवर्नर जनरल द्वारा भारत मंत्री को प्रेषित विवरण, और वित्त सदस्य द्वारा विधान परिषद मे रखे जाने वाले विवरण) सदैव पौंड स्टर्लिंग मे ही होते थे। तथापि भारत में रखे जाने वाले लेखे रुपयों मे होते थे। सार्वजनिक विवरणों के लिए रुपयों को स्टर्लिंग (10 रुपये = 1 पौंड) मे बदल लिया जाता था, और सरकारी कार्यों के लिए संकेत रूप में R+ प्रयोग किया जाता था (R+ का अर्थ रुपीज टैन दस रुपये होता था)। समानता की दृष्टि से नीचे सारणियों मे दिए गए आकड़े रुपयो मे हैं (केवल इंग्लैंड मे व्यय, ब्रिटिश प्रत्याभूत कंपनियों को दिए जाने वाले ब्याज प्रभार तथा लोक ऋण से संबधित सारणियां अपवादस्वरूप हैं)। यद्यपि संपूर्ण अवधि में सरकारी दर स्थिर (10 रुपये = 1 पौंड) थी, तथापि बाजार में प्रचलित दर मे उतार चढ़ाव होते रहे और इसके परिणामस्वरूप इंग्लैंड को भेजी जाने वाली राशियों पर 'विनिमय द्वारा हानि' हुई।

अंत मे, वित्तीय वर्ष के विषय में यह लिखना आवश्यक है वह निस्सदेह पंचाग वर्ष के अनुरूप नही था। 1858-66 की अवधि मे वित्तीय वर्ष 1 मई से और 1867 से 1 अप्रैल से प्रारंभ होता था (इसका आनुषंगिक परिणाम यह हुआ कि 1866-67 के

वित्तीय वर्ष के आंकड़े केवल 11 महीने की अवधि के हैं)। वित्तीय वर्ष और भी पहले प्रारंभ करने के उद्देश्य से प्रस्ताव रखे गए थे ताकि संसद को भारतीय लेखे कुछ पहले मिल सकें और यदि संभव हो तो यह 1 जनवरी से प्रारंभ किया जाए परंतु भारत मे फसलों की कटाई के मौसम, राजस्व संग्रह का कार्य, तथा मुद्रा बाजार की स्थिति मे घनिष्ठ संबंधों के कारण यह प्रस्ताव अव्यावहारिक पाया गया। भारतीय वित्तीय लेखे की भांति ही, नीचे की सारणियों मे प्रत्येक वित्तीय वर्ष का समाप्तिकाल दिया गया है। अत: 1860 का अर्थ है '1860 मे समाप्त होने वाला वर्ष' अर्थात 1859-60 का वित्तीय वर्ष।

प्रकाशित स्रोत और प्रमुख अप्रकाशित स्रोत नीचे टिप्पणियो मे बतलाए गए हैं।

मैं श्री एच० सान्याल का आभारी हूं जिन्होने संपूर्ण साख्यिकीय परिशिष्ट के मुद्रण ग्रंथों को देखने और सारणियों की जांच करने की कृपा की है।

संदर्भ

1. 1-1.3 पी० पी० एच० सी० 1868-69, जिल्द 7०. पृ० 8, सारणी 7, पी० पी० एच० सी० 1870, जिल्द 68, पृ० 255, सारणी 9, पी० पी० एच० सी० 1877, जिल्द 85, पृ247, विधान परिषद कार्यविवरण VI-VII (पुरानी सीरीज), I-XI (नई सीरीज) के साथ सलग्न वित्तीय साराश।
2. पी० पी० एच० सी० 1876, जिल्द पृ० 264, सारणी 21, पी० पी० एच० सी० 1874, जिल्द 70, पृ० 4, सारणी 5, पी० पी० एच० सी० 1870, जिल्द 68, पृ० 225, सारणी 9, 'फाइनेंशियल स्टेटमेट्स' (कलकत्ता) 1860-61। 1871-72, विधान परिषद कार्यविवरण (पुरानी सीरीज) VII, पृ० 561 और परिशिष्ट।
3. पी० पी० एच० सी० 1875, पत्रक 406, एम० एम० पी० आर० 1873-74, पृ० 65, सारणी 36, विधान परिषद कार्य विवरण (पुरानी सीरीज), जिल्द VII, पृ० 209, 354; विधान परिषद कार्यविवरण (नई सीरीज) जिल्द II, पृ 76, III, पृ 129, IV, पृ० 150-151, VI, पृ० 171, VII, पृ० 145।
4. 'गजट आफ इंडिया' 31 मार्च, 1888 (पूरक), बी० पी० I, पृ० 378।
5. पी० पी० एच० सी० 1875, पत्रक 406, पृ० 64, सारणी 35; वित्त कार्यविवरण जून, 1871, पृथक राजस्व 80, पी० पी० एच० सी० 1871, जिल्द, पत्रक 263।
6. पी० पी० एच० सी० 1875, पत्रक 406, पृ० 49, सारणी 4; वार्षिक वित्तीय साराश, विधान परिषद कार्यविवरण (नई सीरीज) I-XI।

7-8. विधान परिषद कार्यविवरण (पुरानी सीरीज) VI-VII और विधान परिषद कार्य-विवरण (नई सीरीज) I-XI, वित्तीय साराश; वित्त कार्य विवरण अगस्त, 1875, सख्या 19-27, पी० पी० एच० सी० 1875, पत्रक 406; एम० एम० पी० आर० 1873-74, पृ० 49-50, 'स्टैटिस्टीकल ऐब्स्ट्रैक्ट आफ ब्रिटिश इडिया' (लदन, 1873)।

9-11. पी० पी० एच० सी० 1876, जिल्द 77, पृ० 265, सारणी 22; पी० पी० एच० सी० 1874, जिल्द 70, पृ० 11, सारणी 6; पी० पी० एच० सी० 1870, जिल्द 68, पृ० 225।

12-14. पी० पी० एच० सी० 1868-69, जिल्द 63, पृ० 38, सारणी 41; वही 1870, जिल्द 68, पृ० 44, सारणी 49; वही 1873, जिल्द 69, पृ० 290, सारणी 55; क्षेत्र व जनसंख्या के संबंध में आकड़े पी० पी० एच० सी० 1873 जिल्द 50, पत्रक 172, पृ० 147 पर आधारित। एम० एम० पी० आर० 1871-72।

15. पी० पी० एच० सी० 1876, जिल्द 77, पृ० 342-43, सारणी 82।

16-17. पी० पी० एच० सी० 1868-69, जिल्द 63, पृ० 34, सारणी 32-33; वही 1870, जिल्द 68, पृ० 256, सारणी 40-41, वही 1871, जिल्द 69, पृ० 158, सारणी 28; वही 1873, जिल्द 69, पृ० 55-56, सारणी 45, पृ० 277-78; वही 1874, जिल्द 70, पृ० 70, सारणी 57; वही 1876, जिल्द 77, पृ० 340, सारणी 81; पूर्वोक्त स्थल, पृ० 342-43, सारणी 82।

18-20. पी० पी० एच० सी० 1860, जिल्द 49, पत्रक 339, पृ 99; वही 1885, पत्रक 352, पृ० 212-16 और आगे, वित्तीय साराश (वार्षिक), विधान परिषद कार्यविवरण (नई सीरीज), I-XI; 'स्टैटिस्टीकल एब्स्ट्रैक्ट्स'।

21. पी० पी० एच० सी० 1873, जिल्द 69, पृ० 283, सारणी 56; वही 1871, जिल्द 69, पृ० 163, सारणी 32, वही 1870, जिल्द 68, पृ० 261, सारणी 45, वही 1868-69, जिल्द 63, पृ० 39, सारणी 37।

सारणी 1:1

लोक राजस्व : भारत सरकार के समग्र सकल राजस्व के प्रतिशत रूप में
प्रमुख मदें : काल 1858-59 से 1871-72

	1858-59 प्रतिशत	1860-61 प्रतिशत	1865-66 प्रतिशत	1869-70 प्रतिशत	1870-71 प्रतिशत
मालगुजारी	50·3	43·1	41·8	41·4	40·1
अफीम	17·0	16·6	17·4	15·6	15·7
नमक	7·2	8·9	10·9	11·6	11·9
सीमा शुल्क	8·0	9·7	4·7	4·8	5·1
उत्पादन शुल्क	4·1	4·1	5·3	5·4	5·5
आय/व्यापार कर	0·3	2·6	1·4	2·2	4·0
स्टाम्प शुल्क	1·6	2·8	4·1	4·7	4·9
डाकघर	1·6	1·4	0·8	1·4	1·6
लोक निर्माण प्राप्तियां	1·8	2·0	1·9	1·9	1·8
खिराज	1·6	1·8	1·5	1·5	1·4
अन्य मदें	6·5	8·0	10·2	9·5	8·0

टिप्पणी : आंकड़े दी गई सारणी 2 पर आधारित। राजस्व की मदों का एक से दूसरी में अंतरण नहीं है।

सारणी 1.2

लोक व्यय : भारत सरकार के समग्र सकल व्यय के प्रतिशत रूप में

प्रमुख मदें

	काल			
	1863-64	1865-66	1869-70	1871-72
	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत
सेना	32·6	36·3	30·6	32·3
राजस्व संग्रह प्रभार	21·1	18·5	17·3	17·5
विधि एव न्याय	4 8	5·3	5·4	4·7
सामान्य प्रशासन	2·2	2·7	2·7	3·7
अधिवार्षिकी (सुपरएनुएशन)				
भत्ता	2·1	2·0	2·5	2 9
अवकाश भत्ता	0·2	0·2	0·3	0·4
लोक निर्माण (सामान्य)	12 0	10·9	10·0	5·3
राजनीतिक एजेंसिया	0·5	0·5	0·8	0·7
ऋण प्रभार	11·2	11·1	11·5	12·2
अन्य मदें	13·3	12·5	18·9	20 2

टिप्पणी आगे दी गई सारणी 11 पर आधारित। 1869-70 से लोक निर्माण 'सामान्य' से लोक निर्माण 'असाधारण' के पृथक्करण (सारणी 11 का कालम 12-14 द्रष्टव्य) के अतिरिक्त व्यय की मदो मे एक से दूसरी मे अतरण नही है।

सारणी 1.3

भारत सरकार का भारत और इंग्लैंड में सकल राजस्व और व्यय 1858-59 से 1871-72 तक

	सकल राजस्व	सकल व्यय	वित्त सदस्य	बजट विवरण पेश करने की तारीख
1859	36·06	51·06	—	—
1860	39·71	51·86	—	—
1861	42·09	48·15	जेम्स विलसन	18 फरवरी, 1860
1862	43·83	44·87	सेमुअल लैंग	27 अप्रैल, 1861
1863	45·14	44.05	सेमुअल लैंग	16 अप्रैल, 1862
1864	44·61	44·53	सी० ई० ट्रैवीलियन	30 अप्रैल, 1863
1865	45·65	45·85	सी० ई० ट्रैवीलियन	7 अप्रैल, 1864
1866	48-94	46·17	सी० ई० ट्रैवीलियन	1 अप्रैल, 1865
1867	42·12	44·64	डब्ल्यू० एन० मैसी	24 मार्च, 1866
1868	48·53	50·14	डब्ल्यू० एन० मैसी	5 मार्च, 1867
1869	49·26	53·41	डब्ल्यू० एन० मैसी	14 मार्च, 1868
1870	50·09	53;38	रिचर्ड टैंपिल	6 मार्च, 1869
1871	51·41	51·01	रिचर्ड टैंपिल	2 अप्रैल, 1870
1872	50·11	48·61	रिचर्ड टैंपिल	9 मार्च, 1871

टिप्पणी भारत सरकार के व्यय संबंधी प्रकाशित विवरणों में त्रुटियां हैं। इन त्रुटियों के कारण है (क) 'स्टैटिस्टिकल ऐब्स्ट्रैक्ट' के विभिन्न संस्करणों के आकार में अंतर, (ख) संसद में आकड़े पेश करने के लिए इंडिया आफिस के संकलनकर्त्ताओं द्वारा विभिन्न अर्थों में सांख्यिकी के अलग-अलग सिद्धांतों को अपनाना तथा (ग) आधिक्य न होने पर भी उसे दिखाने के लिए वित्त सदस्यों द्वारा की जाने वाली अद्भुत बाजीगरी। विलसन तथा लैंग द्वारा प्रकाशित नियमित एवं वास्तविक प्राक्कथनों में बाद में पुनरीक्षण किए गए थे। इस प्रकार का पुनरीक्षण क्षेत्रीय परिवर्तनों (उदाहरणार्थ, 1866-67 के बाद खाड़ी उपनिवेशों और हैदराबाद को मिलने वाले जिलों के लेखे का पृथक्करण), व्यय के एक शीर्षक से दूसरे में मदों का अंतरण अथवा असाधारण लोक निर्माण पर व्यय के राजस्व लेखे से पूंजी लेखे में अंतरण (1868 से) के मामलों में समान रूप से नहीं किया गया। एकरूपता की दृष्टि से संशोधन विशेष रूप से 1866-67 से पहले किए गए। यह वह काल था जब लेखा सिद्धांतों में तेजी के साथ परिवर्तन हो रहे थे।

सारणी 2

भारत सरकार के भारत और इंग्लैंड में सकल राजस्व और प्राप्तियां (1857-58 से 1872-73 तक) : प्रमुख मदें

(करोड़ रुपयों में)

	2 मालगुजारी	3 खिराज	4 उत्पाद-शुल्क एवं वन	5 आय एवं अनुज्ञप्ति कर (लाइसेंस टैक्स)	6 सीमा-शुल्क	7 नमक
1858	15·32	0·58	1·22	0·11	2.15	2·13
1859	18·12	0·56	1·47	0.11	2·87	2·60
1860	18·76	0·79	1.07	0·22	3·87	2·93
1861	18.51	0·78	1·78	1·01	4·16	3.81
1862	19·68	0·78	2·25	2·05	2·88	4·56
1863	19·57	0.73	2·47	1·88	2·46	5·24
1864	20.30	0·72	2·36	1·48	2.38	5.03
1865	20·09	0·68	2·58	1·28	2·29	5·52
1866	20·47	0·71	2·61	0·69	2·28	5·34
1867	19·14	0·63	2.43	0·02	2·03	5·35
1868	19·99	0·69	2·57	0 65	2·58	5·73
1869	19·93	0·69	2·69	0·51	2·69	5.59
1870	21·09	0·76	2·72	1·11	2·43	5·89
1871	20·62	0 72	2·83	2·07	2·61	6·11
1872	20·52	0 74	2·87	0 82	2·58	5·97
1873	21·35	0 74	2·89	0·58	2·65	6·17

सारणी 2

(गत पृष्ठ से आगे)

	8 अफीम	9 स्टाम्प शुल्क	10 टकसाल	11 डाक	12 तार	13 विधि (अदालत शुल्क, जुर्माना इत्यादि)
1858	6.86	0.45	0.36	0.39	—	0.03
1859	6.15	0.59	0.25	0.59	—	0.04
1860	5.59	0.74	0.39	0.66	—	0.44
1861	6.68	1.18	0.29	0.61	0.05	0.42
1862	6.36	1.17	0.38	0.04	0.07	0.51
1863	8.06	1.49	0.37	0.43	0.08	0.49
1864	6.83	1.74	0.37	0.46	0.09	0.63
1865	7.36	1.97	0.38	0.36	0.01	0.68
1866	8.52	1.99	0.49	0.41	0.19	0.79
1867	6.08	1.08	0.24	0.05	0.22	0.82
1868	8.92	2.19	0.12	0.66	0.24	0.95
1669	8.45	2.31	0.19	0.71	0.27	1.17
1870	7.95	2.38	0.16	0.71	2.25	1.09
1871	8.04	2.51	0.03	0.81	0.24	1.02
1872	9 25	2.48	0.09	0.82	0.23	0.04
1873	8.68	2.61	0.05	0.58	0.25	0.04

सारणी 3

अफीम राजस्व

औसत कीमत, शुल्क दर तथा व्यापार की मात्रा 1857-72

	2	3	4	5	6
	बंगाल अफीम की औसत कीमत (रुपये)	बंगाल अफीम की पेटियां हजारों में	मालवा अफीम पर शुल्क की दर (रुपये)	मालवा अफीम की पेटिया हजारों मे	सकल अफीम राजस्व (करोड रुपयों में)
1857	890	42.3	400	29.2	5.00
1858	1,290	40.1	400	39.7	6.86
1859	1,490	30.9	400	36 4	6.15
1860	1,670	25.3	500	32.9	5.89
1861	1,920	21.4	600	46.1	6.68
1862	1,610	24.1	700	37.0	6.36
1863	1,430	32.8	600	51.2	8.06
1864	1,220	42.6	600	25.7	6 83
1865	1,940	54 5	600	32 6	7.36
1866	1,120	56.0	600	36.1	8.52
1867	1,250	38.7	600	30.6	6 08
1868	1,330	48.0	600	39.1	8.92
1869	1,380	47.2	600	31 0	8 45
1870	1,200	45.7	600	39.4	7.95
1871	1,120	49.0	600	39.5	8 04
1872	1,390	49.7	600	38.8	9.25
1873	1,390	42.7	600	44.0	8.68

टिप्पणी कालम 2 मे बगाल अफीम की कलकत्ता मे प्रति पेटी वार्षिक औसत कीमत और कालम 4 मे मालवा अफीम पर इंदौर मे प्रति पेटी शुल्क (बंबई जाने वाली अफीम पर शुल्क) दिखाया गया है। शुल्क की नई दरें 1859-60 मे 1 जुलाई, 1859, 1860-61 मे 1 सितंबर, 1860, 1861-62 मे 1 अक्तूबर तथा 1862-63 मे 1 अक्तूबर, 1862 मे लागू हुई।

सारणी 4

प्रमुख प्रांतों/प्रेसीडेंसियों में सकल मालगुजारी
1856-57 से 1870-71 तक

(करोड़ रुपयों में)

	1856-57	1870-71	प्रतिशत वृद्धि
बंगाल	3.54	3.76	6
बंबई	2.15	2.95	37
मद्रास	3.8	4.4	16
पंजाब	1 84	1.97	7
पश्चिमोत्तर प्रांत	3 92	4.13	5
अवध	0.97	1.32	36
मध्यप्रांत	0.57	0.6	5

टिप्पणी इस सारणी में आसाम, दक्षिण बर्मा तथा छोटे प्रांतों के आंकड़े सम्मिलित नहीं किए गए हैं। भारत सरकार द्वारा 1888 में प्रकाशित यह प्राक्कलन अपरिष्कृत था, परन्तु इसके भी अपने उपयोग थे। संभवत लोकनिर्माण में पूंजीनिवेश के आवंटन के मामले में सरकारी नीति कुछ क्षेत्रों से अधिक आय प्राप्त होने के अनुभव तथा प्रत्याशा द्वारा प्रभावित थी।

सारणी 5

नमक से प्राप्त सकल राजस्व : आयात शुल्क, अंतर्देशीय सीमा शुल्क तथा विक्रय मूल्य 1856-57 से 1871-72 तक

1 रुपया = 16 आने = 2 शिलिंग

कालम 7 करोड़ रुपये में

	2	3	4	5	6	7
	बंगाल सीमा शुल्क	मद्रास विक्रय मूल्य	बंबई शुल्क	पंजाब की खानें विक्रय मूल्य	अंतर्देशीय सीमा शुल्क	भारत का सकल राजस्व
	प्रति मन रु० आने	प्रति मन रु० आने	प्रति मन रु० आने	प्रति मन रु० आने	प्रति मन रु० आने	करोड़ रुपये
1858	2-8	1-0	0-12	2-0	2-0	2.13
1859	,,	,,	,,	,,	,,	2.60
1960	3-0	1-2	1-0	2-2	2-8	2.93
1861	3-4	1-6	1-4	,,	3-0	3.81
1862	,,	1-8	,,	3-0	,,	4.56
1863	,,	,,	,,	,,	,,	5.24
1864	,,	,,	,,	,,	,,	5.03
1865	,,	1-11	1-8	,,	,,	5.52
1866	,,	,,	,,	,,	,,	5.34
1867	,,	,,	,,	,,	,,	5.35
1868	,,	,,	,,	,,	,,	5.73
1869	,,	,,	,,	,,	,,	5.59
1870	,,	2-0	1-13	,,	,,	5.89
1871	,,	,,	,,	3-1	,,	6-11
1872	,,	,,	,,	,,	,,	5.97

टिप्पणी (क) कालम 2 : शुल्क की नई दर दिसंबर, 1859 और मार्च, 1861 में लागू हुई। (ख) कालम 3 में अंकित नए विक्रय मूल्य अगस्त, 1859; अप्रैल, 1861, जून, 1861, जनवरी, 1865 तथा अक्तूबर, 1869 में लागू हुए। (ग) कालम 4 : शुल्क की पुनरीक्षित दरें अगस्त, 1859, अप्रैल, 1861, जनवरी, 1865 तथा अक्तूबर, 1869 से लागू हुई (घ) कालम 5 : पंजाब नमक के विक्रय मूल्यों में उपर्युक्त वित्तीय वर्षों में अप्रैल, 1860, सितंबर, 1861, तथा जुलाई, 1870 में पुनरीक्षण किए गए। (ङ) कालम 6 : इस काल में नमक पर अंतर्देशीय सीमा शुल्क में दिसंबर, 1859 और मार्च, 1861 में संशोधन किए गए।

सारणी 6

विदेशी व्यापार और सीमा शुल्क : 1857-58 से 1871-72 तक

(करोड़ रुपयों में)

	2	3	4	5
	आयातित वस्तुओं के शासकीय मूल्य	आयात शुल्क से सकल आय	निर्यातित वस्तुओं के शासकीय मूल्य	निर्यात शुल्क से सकल आय
1858	15.28	0 74	27·46	0.29
1859	21 73	1.21	29.86	0.03
1855-59	15.58	—	24.92	—
1860	24 26	2.28	27.96	0.36
1861	23.49	2.48	32.97	0 54
1862	22.32	1.93	36.32	0.56
1863	22.63	1.54	47.86	0.61
1864	27.15	1.47	65.63	0.06
1860-64	23·97	—	42.15	—
1865	28.15	1.41	68 03	0.59
1866	29 6	1.48	65.49	0.49
1867	29 04	1.51	41.86	0.34
1868	35.71	1 83	50.87	0 52
1869	35.99	1.9	53.06	0 06
1865-69	31.7	—	55 86	—
1870	32.93	1.75	52 47	0 48
1971	33 41	1.76	55.33	0.64
1872	31.08	1.65	63.19	0.69
1870-74	32.26	—	56.24	—

टिप्पणी : सामान्य प्रवृत्ति दिखाने के लिए ऊपर 1854-55 । 1858-59 । 1859-60 । 1863-64 । 1864-65 । 1868-68 तथा 1869-70 । 1873-74 पंचवार्षिक अवधियों के वार्षिक औसत दिए गए हैं । कालम 3 और 5 मे अंतर्देशीय सीमा शुल्क से भारी आय को सम्मिलित नहीं किया गया है ।

सारणी 7.1

कुछ मुख्य निर्यातों के शासकीय मूल्य : 1860-61 तथा 1870-71

	1860-61		1870-71	
	मूल्य करोड रुपयों मे	कुल निर्यात वस्तुओं के मूल्य के साथ अनुपात का प्रतिशत	मूल्य करोड़ रुपयों में	कुल निर्यात वस्तुओं के मूल्य के साथ अनुपात का प्रतिशत
कपास	7.34	22.3	19.46	36.2
कच्चा जूट	0.41	1.2	2.58	4.7
कच्चा रेशम	1.04	3.1	1.26	2 3
कच्चा ऊन	0.48	1.5	0.66	1.2
चावल	2.96	9.0	4.15	7.5
अन्य खाद्यान्न	0.36	1.2	0.32	0.6
बीज	1.79	5.4	3.52	6.4
खाल	0.66	2.0	2.02	3.7
तेल	0.25	0.8	0.18	0.3
नील	1.89	5 7	3.19	5.7
चीनी	0.99	3.0	0.24	0.4
कहवा	0.34	1.0	0.8	1.4
चाय	0.15	0.5	1.12	2.0
शोरा	0 66	2.0	0.54	0.8
निर्मित जट	0.36	1.1	0.34	0.6

सारणी 7.2

कुछ मुख्य आयातों का शासकीय मूल्य : 1860-61 तथा 1870-71

	1860-61		1870-71	
	मूल्य करोड रुपयो मे	कुल आयात वस्तुओ के मूल्य के साथ अनुपात का प्रतिशत	मूल्य करोड़ रुपयों मे	कुछ आयात वस्तुओं से मूल्य के साथ अनुपात का प्रतिशत
सूती वस्त्र	9.31	39.6	15,64	46.8
सूती लच्छा धागा व सूत	1.75	7.4	3.4	10.2
रेशमी वस्त्र	0.46	1.1	0.43	1.3
ऊनी वस्तुएं	0.22	1.0	0.58	1.7
मशीनें	0.87	3.7	0.45	1.3
रेल उपकरण	1.09	8.1	1.47	4.4
वस्तुए (निर्मित और कच्ची)	2.12	9.0	1.86	5.6
माल्ट लिकर	2.89	12.3	1.37	4.1
स्पिरिट	0.41	1.7	0.46	1.4
शराब	0.35	1.5	0.49	1.5
चीनी	0.22	1 0	3.36	1.7

सारणी 8.1

सूती लच्छों, धागों और सूत का आयात 1857-58 से 1871-72 तक

	मात्रा (लाख पौंडो मे)	शासकीय मूल्य (करोड़ रुपयों मे)	शुल्क दर	राजस्व (लाख रुपयों मे)
1858	17.7	0.94	अंग्रेजी माल 3½ प्रतिशत, विदेशी 7 प्रतिशत	3.7
1859	31.1	1.71	,, ,,	6.6
1860	31.5	2.05	,, 5 प्रतिशत ,,	11.8
1861	20.9	1.7९	,, 10 प्रतिशत ,,	17.8
1862	23.9	1.47	,, 5 प्रतिशत ,,	7.5
1863	19.5	1.27	लच्छो पर 3½ प्रतिशत, धागों आदि पर 10 प्रतिशत	4.6
1864	19.6	1.53	,, ,,	4.5
1865	17.9	2.19	लच्छों पर 3½ प्रतिशत, धागो आदि पर 7½ प्रतिशत	7.2
1866	16.9	1.66	,, ,,	6.8
1867	30.9	2.57	,, ,,	9.1
1868	26.7	2.07	,, ,,	9.6
1869	29.0	2.78	,, ,,	10.0
1870	32.0	2.72	,, ,,	9.5
1871	40.4	3.०4	,, ,,	10.2
1872	28.9	2.47	,, ,,	18.6

टिप्पणी : कालम 5 मे 'अन्य प्रकार' के निर्मित सूती माल पर, जो सीमा शुल्क के लिए निर्धारित श्रेणियो जैसे, सूती वस्त्र,. लच्छा, धागा, सूत इत्यादि मे नही आता था, दिया जाने वाला शुल्क सम्मिलित है ।

सारणी 8.2

सूती वस्त्र के आयात : शासकीय मूल्य तथा सीमा शुल्क 1857-58 से 1871-72 तक

	शासकीय मूल्य (करोड रुपयों मे)	सीमा शुल्क दर		राजस्व (लाखरुपयों में)
1858	4.78	अंग्रेजी माल 5 प्रतिशत,	विदेशी 10 प्रतिशत	24.2
1859	8.09	,,	,,	46.7
1860	9.65	10 प्रतिशत	,,	96.1
1861	9.31	,,	,,	92.8
1862	8.77	,,	,,	85 9
1863	8 36	5 प्रतिशत	,,	42 7
1864	10.42	,,	,,	41.2
1865	11 04	,,	,,	50.4
1866	11.85	,,	,,	57.8
1867	12.52	,,	,,	63.6
1868	15.00	,,	,,	75.2
1869	16.07	,,	,,	80.1
1870	13.65	,,	,,	67.7
1871	15.64	,,	,,	79.6
1872	15.01	,,	,,	75.4

टिप्पणी : (क) कालम 4 1869-70 में सीमा शुल्क-राजस्व मे आकस्मिक कमी का कारण यह था कि वस्तुओ का मूल्यांकन घटा कर किया गया था। (ख) कालम 2 : शासकीय मूल्य मात्रा का अपूर्ण सूचक है। चूकि माल का आयात विविध नामो से किया गया था इसलिए सूती वस्त्रो की कुल आयातित मात्रा के सबध मे तथ्य उपलब्ध नही हैं।

सारणी 10

भारत सरकार का प्रमुख प्रांतों : प्रेसीडेंसियों में सकल व्यय
(1858-59 से 1871-72 तक)

(करोड़ रुपयों में)

	2	3	4	5	6	7
	बंगाल	पश्चिमोत्तर प्रांत	पंजाब	मद्रास	बंबई	भारत में कुल सकल व्यय
1859	4.31	2 69	2.03	7.51	8.16	43.59
1860	4.3	3.16	2.12	8.05	9.51	44 62
1861	4 53	3.41	2.15	7 25	7.71	40 41
1862	4.84	2.47	1.68	7.06	6.31	37.25
1863	4 94	2.06	1.62	6.58	6.67	36.8
1864	5.87	2 09	1.55	6.28	7.26	38.09
1865	6.03	2.24	1.8	6 46	7.69	39.45
1966	5.32	2.13	1.65	6.71	7.92	41.12
1867	4.99	2.35	1.89	6.18	7.52	37.09
1868	6.21	2.57	2.11	6.73	8.52	41.65
1869	6.34	2.95	2.37	6.6	8.44	43.23
1870	6.89	2.95	2.22	6.6	8.29	42.79
1871	6.31	2.68	2 13	6.15	8.15	41.02
1872	5.66	2 45	2 06	5 83	7 23	38.76

टिप्पणी . कालम 7 में भारत में किया गया सकल व्यय दिखाया गया है और इसमें इंग्लैंड में हुआ व्यय सम्मिलित नहीं है। प्रकाशित लेखे कुछ विलक्षण थे क्योंकि उनमें 1865-66 तक केवल भारत के कुल व्यय की राशियां दिखाई गई थी जबकि इंग्लैंड में प्राप्तियां वहां के खर्चों से घटाकर दिखाई जाती थी। आगे सारणी में इंग्लैंड में किए गए भुगतानों को देखिए। इस काल से अवध, ब्रिटिश बर्मा, मध्य प्रांत, स्ट्रेट्स सेटिलमेंट्स तथा सीधे भारत सरकार के प्रत्यक्ष नियंत्रण वाले कुछ क्षेत्रों में व्यय को लेखे में अविच्छिन्न और तुलनीय ढंग से नहीं दिखाया गया है।

सारणी 11

भारत सरकार का भारत और इंग्लैंड में सकल व्यय : प्रमुख मदें
(1863-64 से 1872-73 तक)

(करोड़ रुपयों में)

	2 सेना	3 राजस्व संग्रह आदि	4 सामान्य प्रशासन	5 विधि एवं न्याय	6 अधि-वार्षिकी भत्ते	7 सिविल अवकाश
1864	14.51	9.38	0 98	2 12	0.9	0.07
1865	15.77	9.05	0.97	2.26	1.27	0 07
1866	16.75	8.53	1.25	2.42	0.91	0.08
1867	15.83	7.64	1.27	2.39	0.77	0.08
1868	16.0	8.96	1.32	2 54	1.16	0.1
1869	16.27	9.25	1.04	2.85	1.75	0.12
1870	16.33	9.23	1.43	2.9	1.33	0.16
1871	16.07	9.27	1.57	2.99	1.45	0.18
1872	15.68	8.52	1.78	2.27	1.45	0.17
1873	15.05	8.89	1.89	2.22	1.58	0.16

टिप्पणी : (क) कालम 3 राजस्व संग्रह पर व्यय की राशि के साथ राजस्व की वापसी और देशी रियासतों के शासकों के साथ संधि के अंतर्गत सुपुर्द की गई राशि जोड़ दी गई है। (ख) कालम 6 में अनुकंपा भत्ते सम्मिलित हैं।

सारणी 11 (गत पृष्ठ से आगे)

	8 राजनीतिक एजेंसिया	9 प्रांतीय सेवाए	10 नौसेना	11 चिकित्सा	12 लोक निर्माण
1864	0.23	2.82	0.63	0.13	4 92
1865	0.29	2 97	0 64	0.13	4.61
1866	0.25	3.25	0.63	0.27	4.78
1867	0.27	3.24	0.77	0 26	6 03
1868	0.28	3.48	1.09	0.35	7.62
1869	0.35	3.71	1.14	0 38	6.27
1870	0.41	3.68	1.29	0.44	5.03
1871	0 35	3.5	0.76	0 52	3 95
1872	0.32	4.85	0.57	0.17	2.46
1873	0.39	5.22	0.55	0.18	2.53

(ग) कालम 9 : मेयो की विकेंद्रीकरण योजना 1871-72 से लागू होने के बाद प्रांतीय सेवाओं, पुलिस, शिक्षा, लेखन सामग्री व छपाई, तथा लघु चिकित्सा एवं लोक निर्माण प्रभार के लिए प्रतिवर्ष वित्तीय साधनों का आवटन किया गया था। पिछले वर्षों के लेखे में तदनुसार सशोधन किए गए। 'शिक्षा' पर व्यय के लिए आगे सारणी 20 देखिए। वित्तीय विकेंद्रीकरण से पहले के काल में 'पुलिस' पर व्यय के अपरिष्कृत अनुमान सभव हैं :

(करोड़ रुपयों में)

1864	2.5	1868	2.9
1865	2.6	1869	3.1
1866	2.8	1870	3.0
1867	2.8	1871	2 8

सारणी 11

(गत पृष्ठ से आगे)

	13	14	15	16	17	18
		लोक निर्माण (असाधारण)	निजी प्रत्याभूत	ऋण प्रभार	विनिमय द्वारा	कुल सकल व्यय
	सिंचाई	राज्य रेलवे	(गारंटी शुदा) रेलवे		हानि	
1864	—	—	2.12	4 97	0.01	44.53
1865	—	—	2 11	4.99	0.04	45.85
1866	—	—	0.34	5 13	0.08	46.17
1867	—	—	1.1	4 89	0.16	44.64
1868	0.22	—	1.8	5 73	0.12	50.14
1869	0.47	0.55	2.01	5.65	0.19	53.41
1870	2.01	0.19	1 86	5.61	0.2	53.38
1871	0.72	0 45	2.1	5.84	0.47	51.1
1872	0.98	0.64	1.85	5.97	0.4	48.61
1873	0.77	1.41	2.29	5.86	0.76	50.64

(घ) कालम 13 · 'असाधारण' शब्द अध्याय III मे स्पष्ट किया गया है। (ङ) कालम 18 : कुल योग मे अन्य अनेक मदें सम्मिलित हैं (जैसे, गिरजा सबधी स्थापन, विभागीय लेखे मे सम्मिलित न किए गए भडार और 'प्रकीर्ण' जिसमे बहुधा विविध प्रकार के रिसाव छिपे है) · इस सारणी के मुख्य प्रभार शीर्षक में मदवार उल्लेख है। (च) कालम 17 : विनिमय द्वारा हानि के बारे मे शब्द जाल ऊपर पृ० 301 पर स्पष्ट किया गया है। (छ) कालम 16 मे ईस्ट इडिया कंपनी के स्वत्वाधिकारियो को दिया गया लाभांश सम्मिलित है ।

सारणी 11.1

लोक निर्माण विभाग में व्यय के कुछ प्रमुख शीर्षक : लोक निर्माण 'साधारण' 1857-58 से 1871-72 तक

(करोड़ रुपयों मे)

	कुल सकल व्यय	सैनिक इमारतें व सड़कें	असैनिक इमारतें	सड़कें, सिंचाई व सार्वजनिक सुधार	स्थापन औजार व संयंत्र
1858	1.52	0.83	अनुपलब्ध	0.65	अनुपलब्ध
1859	0.41	0 33	अनुपलब्ध	0.08	अनुपलब्ध
1860	3.22	1.24	0.24	1.08	0 67
1861	3.37	0.9	0.39	1.42	0.66
1862	3.4	0.54	0.29	1.85	0.72
1863	3.93	0.61	0.42	1.62	0.74
1864	4.92	0.71	0.62	2.31	0.82
1865	4 61	0 86	0.72	2.13	प्राप्त नही
1866	4.78	1.08	0.74	1.86	0.99
1867	5.03	1 54	0.75	1.86	0.81
1868	5.62	1.74	0.85	1.76	1.07
1869	6.27	2.13	0.84	1.88	1 27
1870	5.03	1.45	0.68	1.55	1.12
1871	3.95	0.99	0.51	1.32	1.08
1872	2.46	0 98	0.21	0 61	0.61

टिप्पणी : इस विवरण मे प्रत्याभूत (गारंटीशुदा) रेलो एव राज्य रेलो और 'असाधारण लोक निर्माण', अर्थात जिनका ऋणों द्वारा वित्त प्रबंधन हुआ था (देखिए सारणी 11 कालम 12-15) को सम्मिलित नहीं किया गया है। 1857-58 से 1861-62 तक के कालम 3 से 6 तक मे दिए गए आकडे व्यय की स्वीकृत राशियो को सूचित करते है। ये वास्तविक व्यय की राशियो के लगभग ही हैं, परंतु इन्हें समान नही माना जा सकता। 1872 के आकड़ो में वित्तीय विकेंद्रीकरण के परिणामस्वरूप 'प्रांतीय सेवाओं' के लिए अनुदान (कालम 4 मे 44 लाख रुपये, कालम 5 मे 64·6 लाख रुपये तथा कालम 6 मे 33 लाख रुपये) सम्मिलित नही हैं।

सारीण 12.2

प्रमुख प्रांतों : प्रेसिडेंसियों में लोक निर्माण (साधारण) पर व्यय
भारत में कुल सरकारी व्यय प्रतिशत रूप में

	1864-66 प्रतिशत	1867-69 प्रतिशत	1870-72 प्रतिशत	1871-72 लोक निर्माण (साधारण) पर प्रति व्यक्ति व्यय (रुपये में)
बंगाल	17	15.7	16.8	0 103
उत्तर-पश्चिमोत्तर प्रांत	12.9	13.3	13 5	0 19
पंजाब	11.9	14 2	13.3	0.34
मद्रास	11.9	13.8	12 2	0.106
बंबई	24	20 4	8.4	0.53

टिप्पणी · यह ध्यान रखना चाहिए कि ऊपर सारणी मे 'साधारण' लोक निर्माण के आकड़े हैं और 'असाधारण निर्माण कार्यों' को सम्मिलित नही किया गया है। कालम 5 के बारे मे इस सबध मे विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। यह निश्चित है कि 'असाधारण' निर्माण कार्यों, प्रत्याभूत (गारंटीशुदा) रेलवे और राज्य रेलवे को 'साधारण' लोक निर्माण के साथ ही मिला कर देखा जाए तो अधिक अनुकूल स्थिति उभर कर आती है। परतु स्थूल प्राक्कलनों से लगता है कि वितरण का स्वरूप (अर्थात प्रत्येक प्रात के व्यय का कुल व्यय के साथ अनुपात) लगभग वही रहेगा। इस प्रकार का प्राक्कलन स्थूल ही हो सकता है (इसलिए उसे सारणीवद्ध रूप मे प्रस्तुत नही किया गया है) क्योंकि बहुत सारे निर्माण कार्यों का वर्गीकरण साधारण से असाधारण मे और असाधारण से साधारण मे बदला गया कुछ निर्माण कार्यों पर शुद्ध व्यय के आकड़े तो उपलब्ध हैं, परतु सकल व्यय के बारे मे सूचना प्राप्त नही है, और 'साधारण' निर्माण कार्यों को छोड़कर दूसरे किस्म के निर्माण कार्यों के बारे में प्रातवार वर्गीकरण उपलब्ध नही है। स्पष्ट है कि 1871-72 के एम० एम० पी० आर० (पी० पी० एच० सी० 1873, खंड 50, पत्रक 172, पृ० 147) मे क्षेत्र और जनसंख्या के आकड़े पूरी तरह सही नहीं हैं। उपलब्ध आकडो के आधार पर लोक निर्माण में निवेश की दीर्घकालीन तुलना नही की गई है। (1898-1914 के काल का एम० के० यावराज ने अच्छा अध्ययन किया है, ग्रंथ सूची द्रष्टव्य)।

सारणी 13

लोक निर्माण विभाग में व्यय के कुछ मुख्य शीर्षक : रेलवे तथा 'असाधारण' लोक निर्माण

(लाख रुपयों मे)

	रेलवे (साधारण)				लोक निर्माण (असाधारण)			
	कुल योग रेलवे (साधारण)	निरीक्षण तथा भूमि	प्रत्याभूत (गारंटी शुदा) ब्याज (शुद्ध)	विनिमय द्वारा हानि	कुल योग	राज्य रेलवे	सिंचाई	बंबई विशेष निधि
1866	34.3	22.5	6 7	5.1	—	—	—	—
1867	110 2	25.9	73.1	11 2	—	—	—	—
1868	179.9	15.6	154	10.2	60.2	0.01	21.9	38.3
1869	201 2	26.1	170	2 1	137.1	55 2	46.9	34.9
1870	185.7	9.1	154.7	20.5	259.9	19 1	200 7	40.1
1871	210 3	8.3	183.4	17.1	116 8	44 9	71.8	—
1872	185.1	6.6	172.3	5.3	162.8	64 4	98.3	—

टिप्पणी यह विवरण उस काल से प्रारभ होता है जब रेलवे और असाधारण लोक निर्माण के लेखे साधारण लोक निर्माण के लेखे से पृथक कर फिर से दूसरे रूप मे तैयार किए गए थे। कालम 3 मे रेल पथो के लिए भूमि और निरीक्षण की लागत तथा कालम 4 मे रेल यातायात से प्राप्तियो के ऊपर प्रत्याभूत ब्याज की राशि अधिक दिखाई गई है। कालम 7 मे उत्तरी बगाल, नल्हाटी, पजाब, उत्तरी सिंधु घाटी, राजपूताना, नीमच, होल्कर, वर्दा घाटी, हुबली तथा कारवाड़ तथा कलकत्ता की राज्य रेलो और दक्षिण पूर्वी रेलवे पर व्यय दिखाए गए हैं।

सारणी 14

लोक निर्माण पर व्यय : क्षेत्रीय विवरण 1857-58, 1871-72 : प्रमुख प्रांतों/प्रेसीडेंसियों में 'साधारण' लोक निर्माण पर व्यय

(लाख रुपयों में)

	2 कुल भवन व्यय	3 बंगाल	4 पश्चिमोत्तर प्रांत	5 पंजाब	6 मद्रास	7 बंबई
1858	151.9	23 5	99.4	4 1	1 5	12 3
1859	41.1	7 4	14 7	0 8	0 4	0.3
1860	322.2	39 2	62 4	39 9	65.4	47.6
1861	337.1	51.4	61	51	62	50.5
1862	339.7	51	63	54	66	52.5
1863	356 5	51.8	60 1	51	69.5	57.9
1864	492.1	96	65.8	52 5	66.2	121.9
1865	461.3	76.4	60 5	57.7	70.5	104 7
1866	478.4	72.2	59.2	57.3	63.6	118.2
1867	502.5	69.4	69	71.3	62.5	132.2
1868	562.2	86.3	62.7	78 9	82.2	105.2
1869	627.2	100.8	86	81.7	79.9	94.6
1870	503 4	86 6	65.9	60.9	65 8	84 6
1871	394.6	61.6	49.7	49.2	58.1	77.8
1872	245.9	39.7	35.4	34.4	24.3	46.4

टिप्पणी : अवध, मध्य प्रांत, ब्रिटिश बर्मा, पूर्वी सैटिलमेंट्स (1866-67 तक) और भारत सरकार के सीधे नियंत्रण में आने वाले क्षेत्रों को मदवार प्रस्तुत नहीं किया गया है। इन क्षेत्रों में व्यय को दूसरे कालम में सम्मिलित किया गया है। 1871-72 के आंकड़ों में प्रांतीय सेवाओं के लिए आवंटन को सम्मिलित नहीं किया गया है (कुल 14,17,571 रुपये : बंगाल 2,89,528 रुपये, पश्चिमोत्तर प्रांत 2,25,600 रुपये; पंजाब 2,60,757 रुपये; मद्रास 88,858 रुपये; और बंबई 2,80,401 रुपये)। 1863 से पहले के वर्षों के विवरणों में स्वीकृत राशि दी गई है जो वास्तविक व्यय के लगभग ही है, परन्तु पूरी तरह उसके बराबर नहीं है। 1863 से लेखे नए ढंग से तैयार किए गए और ये आंकड़े वास्तविक व्यय को दिखाते हैं। 1857-58 के आंकड़े 1 मई, 1857 से 31 दिसंबर 1858 तक और 1858-59 के आंकड़े केवल 1 जनवरी से 30 अप्रैल, 1859 तक का व्यय बतलाते हैं।

सारणी 15

सैन्य व्यय का विस्तृत विवरण : काल : 1865-66, 1869-70 तथा 1871-72। कुल सैन्य व्यय के साथ प्रत्येक मद पर व्यय का अनुपात कोष्ठकों में प्रतिशत

(लाख रुपयों में)

	1865-66		1869-70		1871-72	
	(रुपये लाख मे)	कुल का प्रतिशत	(रुपये लाख मे)	कुल का प्रतिशत	(रुपये लाख में)	कुल का प्रतिशत
1. सेना तथा रक्षक सेना स्टाफ	49	(2.9)	52	(3.2)	46	(3)
2. प्रशासनिक स्टाफ	20	(1.2)	20	(1.2)	20	(1.3)
3. रेजिमेंटो को वेतन	*684*	*(40.9)*	*666*	*(40.9)*	*650*	*(41.5)*
4. निम्नलिखित स्थापन खर्च :						
(क) रसद विभाग	313	(18.7)	243	(14 9)	193	(12 3)
(ख) घोड़े	19	(1.1)	25	(1.6)	18	(1.1)
(ग) वस्त्र	15	(0.9)	11	(0 7)	12	(0.8)
(घ) बैरक	33	(2)	35	(2.2)	34	(2.1)
(छ) सेना-शासन	4	(0.3)	4	(0 3)	5	(0.3)
(च) चिकित्सा विभाग	44	(2.6)	.46	(2.8).	42	(2.7)
5. युद्ध सामग्री	45	(2.7)	54	(3.3)	60	(3.8)
6. सामुद्रिक यातायात	34	(2)	15	(0.9)	11	(0.7)
7. प्रकीर्ण सेवाए	57	(3.4)	47	(2.8)	49	(3 2)
8. पेंशन अनियमित	117	(7)	64	(3.9)	63	(4)
9. भारत में कुल योग	1436	(85.7)	1282	(78 6)	1203	(76 8)
10. इंग्लैंड मे व्यय :						
(क) भंडार	—	—	88	(5.4)	94	(6)
(ख) नियमित व्यय	128	(7.6)	142	(8.7)	132	(8.4)
(ग) गैर नियमित व्यय	111	(6 6)	119	(7.3)	138	(8.8)
11. इंग्लैंड में कुल व्यय	239	(14.2)	350	(21·4)	364	(23.2)

सारणी 16.1

ब्रिटिश भारत में नियोजन : सैनिकों की संख्या

	शाही सेना	भारतीय सेना		कुल		कुल योग
	यूरोपीय	यूरोपीय	भारतीय	यूरोपीय	भारतीय	
1859	86,186	20,104	1,96,243	1,06,290	1,96,243	3,02,533
1860	72,158	20,708	2,13,002	92,866	2,13,002	3,05,868
1861	62,120	22,174	1,84,672	84,294	1,84,672	2,68,966
1862	67,545	10,629	1,25,913	78,174	1,25,913	2,04,087
1863	71,074	5,001	1,21,775	76,085	1,21,775	1,97,860
1864	70,674	4,287	1,21,060	74,961	1,21,060	1,96,021
1865	65,901	5,979	1,18,315	71,880	1,18,315	1,90,195
1866	62,451	4,363	1,17,095	66,814	1,17,095	1,83,909
1867	61,498	3,969	1,17,681	65,467	1,17,681	1,83,148
1868	58,2888	3,609	1,19,169	61,897	1,19,169	1,81,066
1869	60,969	3,889	1,20,000	64,858	1,20,000	1,84,858
1870	59,487	3,452	1,17,881	62,939	1,17,881	1,80,820

सारणी 16.2

ब्रिटिश भारत की प्रत्येक प्रेसीडेंसी में नियोजित कुल सैनिकों की संख्या : पृथक्-पृथक् यूरोपीय और भारतीय सेना

	बंगाल			मद्रास			बंबई		
	यूरोपीय	भारतीय	कुल	यूरोपीय	भारतीय	कुल	यूरोपीय	भारतीय	कुल
1859	62,167	82,687	1,44,854	17,091	67,141	84,232	27,032	46,415	73,447
1860	57,778	91,998	1,49,676	17,851	78,440	96,291	17,237	42,664	59,901
1861	51,791	86,620	1,38,411	18,257	63,727	81,984	14,246	34,325	48,571
1862	47,912	39,210	87,122	16,421	55,687	72,108	13,841	31,016	44,857
1863	46,614	40,945	87,559	15,113	50,964	66,077	14,358	28,866	43,224
1864	45,283	42,938	88,221	15,583	50,131	65,714	14,095	27,991	42,086
1865	42,128	43,796	85,924	16,002	46,693	62,695	13,750	27,826	41,576
1866	38,992	43,394	82,386	14,184	46,435	60,619	23,638	27,266	40,904
1867	38,029	44,428	83,457	13,511	46,046	59,557	12,927	27,207	40,134
1868	35,125	45,758	80,883	12,145	45,961	58,106	14,627	27,450	42,077
1869	39,249	46,112	85,361	12,939	45,681	58,620	12,670	28,207	40,877
1870	38,106	44,642	82,748	13,650	45,744	59,394	11,183	27,495	38,678
1971	40,698	63,170	1,03,868	13,471	32,434	45,905	12,506	26,764	39,270

टिप्पणी : 1870-71 के वर्ष के आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं।

सारणी 17

प्रत्येक प्रेसीडेंसी में सेना पर सकल व्यय और इंग्लैंड में भुगतान

(करोड़ रुपयों मे)

	भारत सरकार	मद्रास प्रेसीडेंसी	बंबई प्रेसीडेंसी	इंग्लैंड मे भुगतान	कुल सकल व्यय
1864	7.16	3.06	2.47	1.81	14.51
1865	7.49	3.26	2.75	2.28	15.77
1866	8.15	3 34	2.87	2.39	16.78
1867	6.72	3.08	2 64	3.38	15.82
1868	6.75	3.07	2 78	3.5	16.1
1879	7.01	3.02	2 96	3 28	16.27
1870	6.97	2.99	2.86	3.5	16.33
1871	6 51	2.91	3.12	3.12	16.07
1872	6.54	2.85	2 64	3 64	15.68

टिप्पणी : (क) कालम2 इस कालम मे बंगाल प्रेसीडेंसी का व्यय सम्मिलित है। (ख) कालम 5 : इग्लैंड मे प्राप्तियो की राशियां 1863-64 में 24·9 लाख रुपये, 1864-65 में 1·1 लाख रुपये और 1865-66 मे 4 2 लाख रुपये थी, जो इस लेखे में इग्लैंड मे उक्त वर्षों मे होने वाले खर्चों को घटाकर दिखाई गई हैं।

सारणी 18

प्रत्येक वित्तीय वर्ष के अंत में ब्रिटिश भारत के अपरिशोधित लोक-ऋणों की राशियां 1858-69 से 1872-73 तक

लाख पौंड में
1 पौंड = 10 रुपये

वर्ष समाप्ति	1859	1860	1861	1862	1863	1864	1865	1866
इंग्लैंड में ऋण	15.09	26.14	29.98	35.1	31.84	26.31	26.12	26.95
कुल योग	81.17	98.11	101.88	107.51	104.5	98.52	98.48	98.38

वर्ष समाप्ति	1867	1868	1869	1870	1871	1872	1873
इंग्लैंड में ऋण	29.54	30.7	31.7	35.2	37.63	39.01	39.01
कुल योग	102.06	101.99	102.87	108.19	119.0	121.77	121.5

टिप्पणी : इस विवरण में 1 करोड़ 20 लाख पौंड के ईस्ट इंडिया कंपनी के शेयर (स्टाक) सम्मिलित नहीं किए गए हैं। इन पर प्रभार (ईस्ट इंडिया कंपनी के शेयरों पर लाभांश) सारणी 11 के कालम 16 में ऋण प्रभार संबंधी विवरण में सम्मिलित किया गया है।

सारणी 19

प्रत्याभूत (गारंटी शुदा) कंपनियों को भुगतान किया गया वार्षिक ब्याज 1860-61 से 1871-72 तक

लाख पौंड में
1 पौंड=10 रुपये

वर्ष समाप्ति	राशि
1861	1.48
1862	1.78
1863	2.17
1864	2.46
1865	2.69
1866	2.90
1867	3.04
1868	3.49
1869	3.91
1870	4.13
1871	4.35
1872	4.50

सारणी 20

भारत सरकार के इंग्लैंड में शुद्ध भुगतान : मुख्य मदें और भुगतान की रीति

लाख पौंड में
1 पौंड = 10 रुपये

शुद्ध भुगतान :

	2 कुल योग	3 ऋण प्रभार	4 भारत के लिए भंडार	5 ब्रिटिश सेना की सेवा	6 ब्रिटिश सेना का परिवहन
1857	4.43	.89	1.03	.29	.05
1861	8.12	1.85	1.29	1.46	.37
1862	11.17	2.13	1.12	1.33	.15
1863	8.63	.22	.70	.92	.14
1864	11.86	2.08	.41	.58	.17
1865	7.47	1.93	.71	1.03	.18
1866	9.11	1 95	1.28	.85	.46
1867	9.20	1.97	1.16	8.9	.85
1868	8.09	2.15	1.15	.97	.58
1869	9.11	2.16	1.63	.85	.44
1870	12.01	2.21	1.67	.95	.28
1871	11.57	2.35	1.58	.90	.31
1872	12.20	2.44	1.41	1.07	.27

टिप्पणी : कालम 5 मे भारत स्थित ब्रिटिश सेना की सेवा पर और कालम 6 मे इसके ब्रिटेन और भारत के बीच परिवहन पर गृह खर्चों को दिखाया गया है।

सारणी 20

गत पृष्ठ से आगे

	7 भारतीय अफसरों का अवकाश भत्ता	8 भारतीय अफसरों की पेंशन	9 प्रकीण पेंशन	10 भारतीय भविष्य निधि	11 गृह प्रशासन खर्च
1857	.23	.92	·3	.37	.19
1861	·3	.91	.38	.44	.18
1862	·3	.94	·4	.46	.19
1863	.27	1.13	.48	.45	.17
1864	.24	1.12	.53	.47	.17
1865	.24	1.09	.37	.48	.17
1866	.28	1.09	.37	.52	.18
1867	·3	1.06	.32	.43	.19
1868	.34	1.08	.39	.52	.2
1869	.38	1.07	.29	.56	.21
1870	.56	1 07	.44	·6	.21
1871	.65	1.06	.38	.62	.22
1872	61	1.05	.34	.66	.21

टिप्पणा · कालम 7 में छुट्टी पर इग्लैंड में रहने वाले अफसरों के अवकाश तथा अनुपस्थिति भत्ते सम्मिलित हैं। कालम 8 में भारत सरकार के अवकाश प्राप्त कर्मचारियों की पेंशनें और वार्षिकी तथा पेंशनों के बदले में उपदा (ग्रेचुटी) और पूंजीगत भुगतान सम्मिलित हैं। कालम 11 में भारत मंत्री, तथा भारत उपमंत्री के वेतन, इंडिया काउंसिल के सदस्यों, इंडिया आफिस के स्थापन आदि पर होने वाले खर्च दिखाए गए हैं। इस सारणी में दिखाई गई मदों के अलावा दो अन्य दिलचस्प मदें थीं : 1862-64 में 'ऋण परिशोधन'—17·6 और 55.3 लाख पौंड, तथा 'प्रत्याभूत कंपनियों' को ब्याज का भुगतान। ये मदें सारणी 19 में दिखाई गई हैं।

सारणी 20

(गत पृष्ठ से आगे)
भुगतान की रीतियां

	12 कुल भुगतान	13 विनिमय बिल	14 प्रत्याभूत (गारटी-शुदा) कंपनियों की शुद्ध प्राप्तिया	15 ब्रिटिश सरकार द्वारा पुनर्भुगतान	16 भारत से सोने-चांदी के रूप मे भेजी गई राशि	17 लिया गया ऋण
1857	4.23	2.82	1.09	—	—	—
1861	8.12	—	1.95	9.2	—	3.71
1862	11.17	1.19	5.22	9.5	—	3.69
1863	8.63	6.64	1.26	2.4	—	—
1864	118.6	8.98	2.23	—	—	—
1865	7.47	6.79	—	—	—	—
1866	9.11	6.99	—	—	.16	.85
1867	9.2	5.61	—	—	.88	2.64
1868	8.09	4.14	1.37	0.3	—	1.16
1869	9.21	3.71	.18	4.29	—	1.03
1870	12.01	6.98	—	1.35	—	3.54
1871	11.57	8.44	—	1.3	5.7	2 42
1872	12.2	10.31	—	—	—	1.41

टिप्पणी : कालम 13 में लदन मे लिखे जाने वाले विनिमय बिल तथा तार द्वारा हस्तातरण हैं। इसमे भारत पर चीन में काटे गए बिल और भारत मे खरीदे गए और लदन के नाम काटे गए बिल जो अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण थे, सम्मिलित नही हैं। कालम 15 मे चीन और अबीसीनिया मे भारतीय सेना के प्रयोग के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा की गई अदायगी को दिखाया गया है (अबीसीनिया के संबध मे इस मद में इग्लैंड में किए गए भुगतान पर वापसी की राशि की अधिकता दिखाई गई है।) कालम 16 में भारत सरकार द्वारा इग्लैंड को सोने-चांदी के रूप मे भेजी गई राशि और कालम 14 मे प्रत्याभूत (गारटीशुदा) कपनियों की शुद्ध प्राप्तिया दिखाई गई हैं।

सारणी 21.1

शिक्षा पर व्यय 1857-58 से 1871-72 तक

	2 शिक्षण संस्थाए	3 छात्रों की औसत उपस्थिति (हजारों में)	4 सकल सरकारी व्यय (लाख रुपये)	5 सभी स्रोतों से कुल व्यय (लाख रुपये)
1858	8,070	151	23.15	—
1859	12,479	239	25.94	—
1860	13,550	306	23.34	31.54
1681	14,322	333	23 54	36.39
1862	13,219	351	24.83	28.41
1863	15,159	396	27.45	40.26
1864	17,058	474	31.99	49.78
1865	17,813	448	40.7	64.46
1866	19,463	593	44.56	74.42
1867	20,683	659	46.14	75.55
1868	21,549	675	53.76	89.68
1869	23,300	758	59.16	100.97
1870	24,274	789	63.75	107.07
1871	25.147	800	64.97	107.94
187	43,192	977	68.58	108.34

टिप्पणी : (क) कालम 2 मे सरकार द्वारा चलाई जाने वाली अथवा उससे सहायता प्राप्त शिक्षा संस्थाओ की संख्या और कालम 3 मे इन शिक्षा सस्थाओ मे पढने वाले छात्रों की औसत संख्या दिखाई गई है । (ख) कालम 5 में शिक्षा पर व्यय, निजी और सार्वजनिक दोनो ही स्रोतों से, दिखाया गया है ।

सारणी 21.2

शिक्षा पर व्यय : मुख्य प्रांतों । प्रेसीडेंसियों में : सरकार व्यय (कालम क) और सभी सार्वजनिक और निजी स्रोतों से कुल व्यय (कालम ख)

(लाख रुपयों में)

	बंगाल		पश्चिमोत्तर प्रांत		पंजाब		मद्रास		बंबई	
	क	ख	क	ख	क	ख	क	ख	क	ख
1858	10.4	10.5	3.3	अनुपलब्ध	1.4	2.3	4.1	अनुपलब्ध	3.9	अनुपलब्ध
1859	10.2	10.3	4.6	"	1.7	2.9	5.1	"	4.3	"
1860	8.0	10.4	5.0	6.9	1.6	3 4	4.9	"	3.8	5.8
1861	8.1	11 0	5.0	9.5	1.5	4.2	5.3	5.6	3.7	6.1
1862	8.8	11.0	4.9	अनुपलब्ध	1.8	5.1	5.1	5.4	4.3	6.8
1863	9.9	12.3	4.9	7.5	2.6	7.3	5.6	5.6	4.4	7.5
1864	11.2	17.3	5.4	7.6	2.8	6.5	6.1	6.5	5.2	9
1865	12.6	20.3	7.3	11.2	4 1	7.9	6.7	7.1	7.1	12
1866	13.8	22.9	7.8	11.9	4.8	8.7	6.2	7.2	8.7	17.1
1867	13.9	22.9	7.7	12.3	5 6	9.5	6 2	7.3	9.2	15.2
1868	16.6	27.4	9.6	14.9	4.7	9.5	7.1	8.4	8.7	16.7
1869	17.5	29.5	9.7	18.1	6 0	9.8	8.6	10.6	8.5	17.6
1870	18.4	31.6	10.7	18.9	5.8	10.0	9.8	11.5	8.9	18.1
1871	18.7	32.0	10.5	19.4	5.9	10.2	10.2	11.7	9.5	20.9
1872	18.1	31.9	12.1	19.4	6.2	10.5	8 6	15 6	9.0	20.7

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. प्राथमिक स्रोत
    - (क) सार्वजनिक अभिलेख
    - (ख) निजी कागजात
    - (ग) भारत सरकार के शासकीय प्रकाशन
    - (घ) संसदीय कागजात
    - (ङ) समकालीन पैम्फलेट, पुस्तिका तथा विवादात्मक कृतियां
    - (च) प्रकाशित पत्र व्यवहार, भाषण, वृत आदि
    - (छ) समकालीन पत्र पत्रिकाएं
2. अनुपूरक स्रोत

1. प्राथमिक स्रोत

(क) सार्वजनिक अभिलेख

भारत सरकार की वित्तीय नीतियों पर स्रोत-सामग्री के लिए खोज यद्यपि वित्त-विभाग के अभिलेखों से प्रारंभ होनी चाहिए, परंतु यह इतने ही तक सीमित नही रहनी चाहिए। ये स्रोत अनेक सिरीज मे भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार मे रखे हुए सार्वजनिक अभिलेखों में फैले हुए हैं। यदि कोई भी शोधकर्ता अपने अध्ययन को मोटी-मोटी जिल्दों मे उपलब्ध वित्त-विभाग के अभिलेखों तक ही सीमित रखता है तो इसका अर्थ यह होगा कि उसकी जांच का क्षेत्र विगत मनमानी प्रशासनिक व्यवस्था (और अभिलेखागारीय वर्गीकरण) के द्वारा निर्धारित हो जाता है। जैसा कि ट्रैवीलियन ने कहा है 'वित्त सभी विभागों की कुंजी है।' चूकि वित्त विभाग का साधनों पर नियंत्रण था, इसलिए सरकार का प्रत्येक दूसरा विभाग वित्त विभाग के संवीक्षण जांच-पड़ताल के अंतर्गत आ जाता था। स्पष्टतः वित्तीय दृष्टि से सभी विभाग समान रूप से महत्त्वपूर्ण नही थे। अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण विभाग थे—सेना, लोक-निर्माण, गृह और (1869 में सृजित) नया विभाग राजस्व, कृषि और वाणिज्य। इसके अलावा जिस काल का हमने अध्ययन किया है, वह नव-प्रवर्तनों और प्रयोगों का काल था। प्रारंभिक वर्षों मे विभिन्न विभागों के मध्य कार्यों का विभाजन व्यवस्थित नही था। उन्नीसवी शताब्दी के सातवें दशक में वित्तीय व्यवसाय जिसका काफी बड़ा अंश वित्त विभाग के बाहर सपन्न किया जाता था, को प्रभावित करने वाले अनेक परिवर्तन हुए। 1843 में वित्तीय मामलों के लिए एक

सचिव की नियुक्ति की गई। यही से पृथक वित्त भिाग का प्रारंभ हुआ। प्रारंभ में इस विभाग का प्रधान कार्य भुगतानों पर नियत्रण रखना था। बहुत सारा वित्तीय व्यवसाय, विशेष रूप से राजस्व संग्रह के क्षेत्र में गृह-विभाग ('राजस्व' एवं 'पृथक राजस्व' शाखाएं) का उत्तरदायित्व था। गवर्नर जनरल की परिषद् में वित्त सदस्य की नियुक्ति से, जो परिषद का चौथा सामान्य सदस्य था, वित्त विभाग की स्थिति मजबूत हो गई। जेम्स विल्सन द्वारा प्रवर्तित वित्तीय नियंत्रण के केंद्रीयकरण की नीति और विशेष रूप से बजट संबंधी नियत्रण की नवीन प्रणाली से अन्य विभागो की तुलना मे वित्त विभाग के उत्तरदायित्वों और शक्तियों में वृद्धि हुई। परिषद मे संविभागीय प्रणाली (पोर्ट फोलिओ सिस्टम) से जिसका प्रारंभ कैनिंग ने किया था और जो 1851 के इंडियन काउंसिल एक्ट (जिसके अनुसार गवर्नर जनरल को परिषद में सुविधापूर्वक कार्य संचालन के लिए नियम बनाने का अधिकार मिला) के बनने के बाद और भी अधिक वैज्ञानिक पुनर्गठन तथा व्यवस्थित विभाजन को प्रोत्साहन मिला। सरकार का उद्देश्य समस्त वित्तीय कामकाज को सदस्य और वित्त सचिव के नियंत्रण में लाना था। 21 मार्च, 1861 को कुछ विषय (स्टाम्प शुल्क) गृह विभाग से वित्त विभाग को अंतरित कर दिए गए। कुछ प्रशासनिक असुविधाओं के कारण अंतरण रद्द कर दिया गया और इन करों के संग्रह का कार्य मार्च, 1862 में पुन: गृह विभाग के पास पहुंच गया। तथापि ये विषय तथा नमक शुल्क, अफीम राजस्व और आबकारी शाखाएं अंतिम रूप से अक्तूबर, 1863 में गृह विभाग से वित्त विभाग को अंतरित कर दिए गए (सितंबर, 1864 तक अवध, पंजाब, ब्रिटिश, बर्मा और मध्य प्रात मे ये परिवर्तन लागू नही हुए थे)। गृह-विभाग के अतिरिक्त दो अन्य विभाग वित्तीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण थे। इनमे से एक केंद्रीय लोक निर्माण विभाग था जिसकी स्थापना 1855 मे हुई थी। दूसरा सैन्य विभाग था। सैन्य विद्रोह के बाद सैन्य व्यय मे व्यवस्थित रूप से कटौती की नीति के कारण एक सैन्य वित्त आयोग (जून, 1859) के निर्माण की आवश्यकता हुई जो कालांतर मे सैन्य वित्त विभाग मे बदल दिया गया। कुछ समय बाद (अप्रैल, 1864) इसका स्थान सैन्य विभाग के महालेखाकार ने ग्रहण कर लिया। जून, 1871 मे राजस्व, कृषि एव वाणिज्य विभाग की स्थापना की गई। इस विभाग को मालगुजारी सर्वेक्षण बंदोबस्त, कृषि एव वाणिज्य साख्यिकी, वन, इत्यादि के कार्य गृह, वित्त, और लोक निर्माण विभागों से अंतरित कर दिए गए। थोड़े समय बाद (1872-77 मे) कुछ अन्य विषय जैसे नमक, अफीम, सीमा शुल्क तथा स्टाम्प भी इस विभाग को दे दिए गए।

वित्त विभाग मे सपरिषद गवर्नर जनरल का कार्य विवरण (शाखाएं : लेखा और वित्त, अनुपस्थिति के लिए अवकाश, पेंशन व ग्रेचुटी, व्यय, पृथक राजस्व और प्रकीर्ण) 1858-75। वित्त विभाग मे सपरिषद गवर्नर जनरल का कार्य-विवरण (शाखा : राजस्व, पृथक राजस्व, लोक) 1858-72। सैन्य विभाग में सपरिषद गवर्नर जनरल का कार्यविवरण (शाखा : वित्त), 1858-72।

लोक निर्माण सपरिषद विभाग में गवर्नर जनरल का कार्यविवरण, 1858-72।

कृषि, राजस्व एवं वाणिज्य विभाग में सपरिषद गवर्नर जनरल का कार्यविवरण (1871-73)।

कोर्ट आफ डायरेक्टर्स से भारत सरकार को प्रेषण :

(क) वित्त प्रेषण, 1857-58।

(ख) रेल प्रेषण, 1857-58।

भारत सरकार से कोर्ट आफ डायरेक्टर्स को प्रेषण :

वित्त प्रेषण 1857-58।

भारत मंत्री से भारत सरकार (सपरिषद गवर्नर जनरल) को प्रेषण :

(क) वित्त प्रेषण, 1858-75।

(ख) राजस्व प्रेषण, 1858-75।

(ग) पृथक राजस्व (गृह) प्रेषण, 1858-60।

(घ) रेल प्रेषण, 1858-72।

(ङ) सैन्य प्रेषण, 1858-72।

भारत सरकार (सपरिषद गवर्नर जनरल) से भारत मंत्री को प्रेषण :

(क) वित्त प्रेषण, 1858-72।

(ख) राजस्व प्रेषण, 1859-72।

(ग) लोक निर्माण प्रेषण, 1859-72।

(घ) सैन्य प्रेषण, 1859-72।

(ख) निजी कागजात

जेम्स ब्रूस, एल्गिन का आठवां अर्ल (1811-63), भारत का गवर्नर जनरल (1862-63), के कागजात (पाण्डुलिपियां यूरोप एफ० 83, इंडिया आफिस लाइब्रेरी)। उसकी कार्यावधि लघु थी और उसके कागजात का इस अध्ययन की दृष्टि से थोड़ा ही महत्त्व है।

सर जेम्स लारेंस (प्रथम बेरन लारेंस—1811-79), भारत का गवर्नर जनरल (1864-69), कागजात (पांडुलिपिया यूरोप एफ० 90, इंडिया आफिस लाइब्रेरी तथा असंख्यांकित माइक्रो फिल्म, भारत का राष्ट्रीय अभिलेखागार। इसमे अधिक उपयोगी सामग्री भारत मंत्री द्वारा लिखे गए पत्रों की जिल्दों मे है, ये हैं—जिल्दें I व II, 1864-65 (चार्ल्स वुड); जिल्द III, 1866 (वुड, डि ग्रे तथा रिपन; क्रैनब्रोर्न); जिल्द IV, 1867 (क्रैनबोर्न तथा नोर्थकोट); जिल्द V, 1868 (नोर्थकोट)। लारेंस द्वारा भारत मंत्रियो और सपरिषद गवर्नर जनरल के सदस्यों को लिखे गए पत्र भी उपयोगी हैं। रिचर्ड बोर्क, मेयो के छठे अर्ल (1822-72), भारत के गवर्नर जनरल (1869-72) के कागजात (पता—7490, कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय, लाइब्रेरी तथा असंख्याकित माइक्रोफिल्म, भारत का राष्ट्रीय अभिलेखागार)। प्रेषित पत्रों की संख्या लगभग 1,200 है जिनमें बहुत सारे वित्तीय समस्याओं के विषय में हैं। भारतमंत्री द्वारा प्रेषित 111 पत्र और एच० बार्टल फ्रेर, आर टेंपिल, जे० स्ट्रेची एस० नोर्थकोट, एच०, एस० मेन, जी०

कैंपबैल, एस० फिट्जजेराल्ड तथा कुछ अन्य लोगों के द्वारा लिखे गए अनेक पत्र बहुत उपयोगी तथ्य प्रकाश में लाते हैं। दुर्भाग्यवश कुछ बंडलों मे (जो संख्यांकित हैं) पत्र न तो कालक्रमानुसार व्यवस्थित है और न ही वे संख्यांकित है। प्रेषित पत्र अपेक्षाकृत व्यवस्थित है।

सर चार्ल्स एडवर्ड ट्रैवीलियन (1807-86), मद्रास का गवर्नर (1859-60) तथा वित्त सदस्य (1862-65), की पत्र-पंजियां। (मैंने बोडलियन लाइब्रेरी, आक्सफोर्ड मे इन पत्रों की माइक्रो फिल्म प्रति का उपयोग किया है। मूल कागजात जो पहले बोडलियन के पास थे अब टाइन पर न्यूकैसिल मे है। मैं ट्रैवीलियन की सामग्री की प्रबंधक लेडी मेरी का आभारी हूं जिन्होंने मुझे ये निजी कागजात देखने दिए। (इग्लैंड मे सिविल-सेवा विषयक सुधारों के बारे मे ट्रैवीलियन के कार्यों से संबधित कागजात के अतिरिक्त अब तक ट्रैवीलियन की पत्र पंजियों का उपयोग नही हुआ है। मैंने इन 44 संग्रहों मे से बाद की जिल्दो का प्रयोग किया है। इन संग्रहों का काल 1840 से 1865 तक है।

सर चार्ल्स वुड, प्रथम विसकाउंट हैलीफाक्स (1800-85), भारत मंत्री, 1859-66, के कागजात (पाण्डुलिपिया यूरोप एफ० 78 इडिया आफिस लाइब्रेरी), पत्र-पजियां 1859-66, 22 जिल्दें।

मेयो, जेम्स विल्सन, बार्टल फ्रेर, जार्ज कैंपबैल, जान लारेंस, रिचर्ड टैंपिल आदि की जीवनियां और प्रकाशित पत्रो मे अनुपूरक सामग्री मिलती है (देखें, ग्रंथ सूची, एफ)।

(ग) शासकीय प्रकाशन

'एनुअल फाइनैंशियल स्टेटमेंट्स फार दि आफीशियल इयर्स 1860-61 टु 1971-72' (कलकत्ता, 1871)।

'फाइनैंशियल स्टेटमेंट्स रिलेटिंग टु इडिया डिलीवर्ड इन पार्लियामेंट बाई सक्सेसिव प्रेसीडेंट्स आफ दि बोर्ड आफ कंट्रोल एंड सेक्रेटरीज आफ स्टेट फार इंडिया; रिप्रिंटड फ्राम हंसार्ड्स पार्लियामेंटरी डिबेट्स (कलकत्ता, 1872)।

'डब्ल्यू० एस० मेयर, मेमोरेंडम आन दि फाइनैंशियल पावर्स आफ गवर्नमेंट आफ इडिया दि प्राविंशियल गवर्नमेंट्स फार दि रायल कमीशन आन डिसेंट्रलाइजेशन' (शिमला, 1907)।

'कारेस्पांडेंस एड डिबेट्स इन दि लैंजिस्लेटिव काउंसिल एड मिनिट्स रिलेटिंग टु डायरेक्ट टैक्सेशन इन ब्रिटिश इडिया कपाइल्ड इन दि फाइनेंस डिपार्टमेंट आफ गवर्नमेंट आफ इंडिया', दो जिल्दें (कलकत्ता, 1882)।

'पेपर्स रिगार्डिंग दि कलैक्शन आफ इल्लीगल सैंसस एंड ड्यूटीज इन बंगाल सिलेक्शन फ्राम दि रेकार्ड्स आफ गवर्नमेंट आफ बंगाल', संख्या 46 (कलकत्ता, 1873)।

'जे० एफ० फिन्ले, हिस्ट्री आफ प्राविंशियल फाइनैंशियल अरेंजमेंट्स' (कलकत्ता, 1887)।

स्टैटिस्टीकल ऐब्स्ट्रैक्ट आफ ब्रिटिश इंडिया (कलकत्ता)।

इंडियन लैजिस्लेटिव काउंसिल प्रासीडिंग्स, 1861 तक पुरानी सीरीज (जिल्दें I से VI तक) और 1862 के बाद नई सीरीज (कलकत्ता)।

(घ) संसदीय कागजात

(चूंकि इनमें से अधिकाश कागजात उन अभिलेखों से उदाहरण हैं जिनका हम अनुच्छेद (क) में उल्लेख कर आए हैं, इसलिए यहां पर कुछ थोड़े से मबद्ध कागजात ही नीचे सूचीवद्ध किए गए हैं।)

	जिल्द	पृष्ठ	कागजात संख्या	विषय
एच० सी० 1859 II	23	31	154	ऋण : भारत सरकार और ईस्ट इंडिया कपनी के ऋणों का विवरण पत्र।
एच० सी० 1860	49	241	339	वित्त : भारत में प्रस्तावित वित्तीय उपायो के विषय में पत्र व्यवहार।
एच० सी० 1862	40	7	230	सेवा निवृत्ति भत्तों और लोकनिधि व लोक वार्षिकी निधि से संबधित शिकायतो के विषय मे भारतीय सिविल सेवा का स्मरण पत्र।
एच० सी० 1862	40	665	327	बेकार भूमि की बिक्री और भारतीय मालगुजारी का स्थाई परिशोधन। पत्र व्यवहार, 1859-61।
एच० सी० 1863	43	389	164	बेकार भूमि की बिक्री और मालगुजारी का परिशोधन : कुछ और कागजात।
एच० सी० 1863	22	5	87	बेकार भूमि की बिक्री, मालगुजारी परिशोधन, तथा स्थाई बंदोबस्त का विस्तार।
एच० सी० 1867	50	125	450	मालगुजारी का स्थाई बदोबस्त (पश्चिमोत्तर प्रांत)।
एच० सी० 1871	8	1	363	पूर्वी भारत का वित्त : प्रवर समिति की रिपोर्ट कार्यविवरण सहित।
एच० सी० 1872	8	1	327	पूर्वी भारत का वित्त : प्रवर समिति की रिपोर्ट कार्यविवरण सहित।
एच० सी० 1873	12	1	179	पूर्वी भारत का वित्त : प्रवर समिति की प्रथम रिपोर्ट।

एच० सी० 1873	12	9	194	पूर्वी भारत का वित्त : प्रवर समिति की द्वितीय रिपोर्ट।
एच० सी० 1873	12	19	354	पूर्वी भारत का वित्त : प्रवर समिति की तृतीय रिपोर्ट।
एच० सी० 1874	8	1	329	पूर्वी भारत का वित्त : इस देश मे भारत के राजस्व से देय खर्चों के विषय में जांच करने के लिए नियुक्त प्रवर समिति की रिपोर्ट (सैन्य व्यय)

(ङ) समकालीन पैंफलेट, पुस्तिकाएं तथा विवादात्मक कृतियां

अलैक्जेंडर, आर०	'दि राइज एंड प्रोग्रेस आफ ब्रिटिश ओपियम स्मगलिंग' (लंदन 1866)
,, ,,	'कोंट्राबैंड ओपियम ट्रैफिक' (कलकत्ता, 1857)
अज्ञात	'दि फाइनैंसज आफ इंडिया' (लंदन, 1853)
,,	'इंडियन रेलवे एंड इंडियन फाइनैंस' (बंबई, 1869)
,,	'इंडियन फाइनेंस डिफेंडेट : ए रेफ्यूटेशन आफ दि ओपीनियन टू जनरली हैल्ड दैट ब्रिटिश इंडिया इज ओवर बर्डेंड विद ईट एंड टैक्सेशन' (लंदन, 1878)
,,	'दि इंजस्टिस एंड आप्रेशन आफ दि आबकारी डिपार्टमेंट ऐज ऐक्जिब्हिटेड इन दि पैटीशंस आफ टोड्डी मर्चेंट्स' (मद्रास, 1859)
अज्ञात	'स्कैच आफ दि कमर्शियल रिसोर्सेज एंड मोनेटरी एंड मर्केंटाइल सिस्टम आफ ब्रिटिश इंडिया' (लंदन, 1837)
अज्ञात	'दि लेट गवर्नमेंट बैंक आफ बंबई : इट्स हिस्ट्री' (लंदन, 1868)
	'हाउ वी टैक्स इंडिया' (लीड्स, 1858)
आइडाराफ, एस०	'ब्रिटिश इंडिया फ्राम फाइनैंशियल प्वाइंट आफ व्यू' (शिमला, 1878)
काकबर्न, एफ० के०	'दि कस्टम्स एक्ट आफ इंडिया, बीइंग एक्ट VI आफ 1863' (कलकत्ता, 1862)
काटन, ए०	'पब्लिक वर्क्स इन इंडिया : देअर इम्पोर्टेंस विद सजैशंस फार देअर ऐक्स्टैंशन एंड इंप्रूवमेंट' (लंदन, 1857)
काटन, एच० जे० एस०	'टैकनीकल एजुकेशन आर दि इंडियन रिवोल्यूशन इन इट्स इकानामिक आस्पैक्ट्स' (लंदन, 1883)
कैलैंडर, डब्ल्यू० आर०	'दि कमर्शियल क्राइसिस आफ 1857' (लंदन, 1858)
कोस्टा, जे० डा०	'दि इंडियन बजट फार 1876' (लंदन, 1876)

कोस्टा जे० डा० 'दि गवर्नमेंट एंड दि फाइनैंसेज आफ इंडिया' (लंदन, 1879)

" " " 'दि पोलिटिकल एंड फाइनैंशियल रिक्वायरमेंट्स आफ ब्रिटिश इंडिया एज सैट फोर्थ इन ए पैटीशन आफ दि ब्रिटिश इंडियन एसोशिएशन' (लंदन, 1880)

कौनल, ए० के० 'दि इकानामिक रिवोल्यूशन आफ इंडिया एंड दि पब्लिक वर्क्स पालिसी' (लंदन, 1883)

ग्रिम्ले, डब्ल्यू० एच० 'दि सी कस्टम्स ला आफ इंडिया, एक्ट VII आफ 1878 एंड टैरिफ एक्ट' (लंदन, 1879)

ग्रेहम, ए० *'दि मींस आफ एमेलिओरेटिंग इंडिया' (ग्लासगो, 1835)।*

चैपमैन, जे० 'प्रिंसिपिल्स आफ इंडियन रीफार्म बीइंग ब्रीफ हिंट्स टु गैदर विद ए प्लान फार दि इम्प्रूवमेंट आफ दि कांस्टीचुएंसी आफ दि ईस्ट इंडिया कंपनी, एंड फार दि प्रमोशन आफ इंडियन पब्लिक वर्क्स' (लंदन, 1753)

जेफरीज, टी० डब्ल्यू० बी० 'नेशनल क्रेडिट एंड पब्लिक वर्क्स' (कराची, 1871)

टकर, हेनरी सेंट जार्ज 'प्लास आफ फाइनैंस लेटली इंट्रोड्यूस्ड बाइ दि आनरेबिल कोर्ट आफ डायरेक्टर्स एंड बाइ दि सुप्रीम गवर्नमेंट आफ इंडिया' (लंदन, 1321)

टर्कैट, एच० 'दि इंडियन रेवेन्यू सिस्टम ऐज इट इज' (लंदन, 1840)

टोरेंस, राबर्ट 'लैटर टु दि राइट आनरेबिल आर० वर्नन स्मिथ विद ए रिव्यू आफ डाक्युमेंट्स' (लंदन, 1856)

ट्रैवीलियन, सी० ई० 'लैटर्स आफ इंडोफिलस टु दि टाइम्स' (लंदन 1875, कृतक नाम 'इंडोफिलस')

डिकिंसन, जे० 'इंडिया इट्स गवर्नमेंट अंडर ए ब्यूरोक्रैसी' (लंदन, 1853)

तलयार खां, दिन्शाह आर्देशीर 'ए रिव्यू आफ दि बंबई टैक्सेशन डिस्कशन आफ 1871' (बंबई *1871*)

थोर्नटन, विलियम थामस 'इंडियन पब्लिक वर्क्स एंड कोग्नेट इंडियन टापिक्स' (लंदन, 1875)

थोर्नबर्न, डब्ल्यू० एम० 'इंडिया सोल्वेंट' (मद्रास, 1880)

नाइट, राबर्ट 'इंडियन एंपायर एंड अवर फाइनैंशियल रिलेशंस देअर विद' (लंदन, 1866)

नाइट, राबर्ट 'स्पीच आन इंडियन एफेयर्स ऐट दि मैनचेस्टर चेंबर आफ कामर्स' (लंदन, 1866)

नाइट, राबर्ट 'इंडिया : ए रिव्यू आफ इंग्लैंड्स फाइनैंशियल रिलेशंस देअर विद' (लंदन, 1868)

नाइट, राबर्ट 'दि फाइनैंशियल स्टेटमेंट दैट शुड हैव बीन डिलीवर्ड एंड वाज *नाट' (बंबई, 1870) अन्य नाम से प्रकाशित*

नाइट, रावर्ट — 'डिसेंट्रलाइजेशन आफ दि फाइनैंसेज आफ इंडिया' (बंबई, 1871)

नाइट रावर्ट — 'हाउ दि पर्मानेंट सैटिलमेंट पेज' (बंबई, 1862)

नाइट, राबर्ट — 'मैनचेस्टर एंड इंडिया : ए प्रोटेस्ट अगेंस्ट सर जोन स्ट्रैचीज फाइनैंशियल स्टेटमेंट' (कलकत्ता, 1877)

नोर्टन, जे० — 'ए न्यू फाइनैंशियल स्कीम फार इंडिया, ए स्टैप टु पोलिटीकल रीफार्म' (लंदन, 1857)

नौरोजी, दादाभाई — 'पोवर्टी आफ इंडिया' (बंबई, 1873)

नौरोजी, दादाभाई — 'एसेज, स्पीचेज, ऐड्रेसेज एंड राइटिंग्स आन इंडियन पालिटिक्स आफ दि आनरेबिल दादाभाई नौरोजी' (संपादक—सी० पारिख, बंबई, 1887)

पार्कर, एच० एम० — 'दि एपायर आफ दि मिडिल क्लासज' (लंदन, 1858)

पूना सार्वजनिक सभा — 'रिपोर्ट फ्राम सब कमिटी अप्वाइंटेड टु कलैक्ट इंफार्मेशन टु बी लेड बिफोर दि ईस्ट इंडिया फाइनैंस कमिटी' (पूना, 1872)

प्रोवीन, एल० सी० — 'इज इंडिया सोल्वैंस ?' (लंदन, 1880)

फास्ट हेनरी, (एम० पी०) — 'इंडियन फाइनैंस : थ्री एसेज रिपब्लिश्ड फ्राम दि 'नाइंटीथ सेंचुरी' ' (लंदन, 1860)

बर्न, ओ० टी० — 'ए फ्यू लैटर्स आन दि इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन आफ दि अर्ल आफ मेयो 1869-72' (शिमला, 1877, अज्ञात नाम से कुछ खास लोगों के बीच वितरण के लिए

बिन्नी, ए० आर० — 'पब्लिक वर्क्स इन इंडिया : ए लैटर एड्रैस्ड टु दि राइट आनरेबिल डब्ल्यू० ई० ग्लैड्स्टन, एम० पी० एंड अदर मेंबर्स आफ हर मैजेस्टीज गवर्नमेंट' (लंदन, 1881)

बैल, मेजर इवास — 'रिट्रास्पैक्ट एंड प्रोस्पैक्ट्स आफ इंडियन पालिसी' (लंदन, 1881)

,, ,, ,, (संपादन) — 'लास्ट कौंसिल आफ एन अननोन कौंसिलर, जोन डिकिंसन' (लंदन, 1877)

बैंगाली, सोराबजी सपूरजी — 'ए लैटर टु दि राइट आनरेबिल लार्ड लिटन अगेंस्ट दि कोंटेम्प्लेटेड रिपील आफ दि ड्यूटीज आन दि इंपोर्ट आफ फारेन काटन गुड्स इन इंडिया' (बंबई, 1877)

ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन — 'कारेस्पांडेंस बिटवीन दि गवर्नमेंट आफ बंगाल एंड दि ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन' (कलकत्ता, 1862)

ब्रूस, एच० — 'साल्ट सोर्सेज आफ इंडिया एंड दि कस्टम्स प्रिवेंटिव ऐस्टेब्लिशमेंट आफ दि नोर्थ वेस्टर्न प्राविंसेज एंड दि पंजाब' (कलकत्ता, 1863)

मिल्स, ए० 'इंडिया इन 1858, ए समरी आफ दि एक्जिस्टिंग एडमिस्ट्रेशन, पोलिटिकल, फिस्कल एंड जुडीशियल आफ ब्रिटिश इंडिया' (लंदन, 1858)

मुकर्जी, शंभू० सी० 'विलसन, कैंनिग एंड दि इनकम टैक्स' (कैंनिग, 1860)

मैकेंड्यू, आई० एफ० 'आन सम रेवेन्यू मैटर्स, चीफली इन दि प्रोविंस आफ अवध' (कलकत्ता, 1876)

मैथेसन, डोनाल्ड 'व्हाट इज दि ओपियम ट्रेड' (एडिनबर्ग, 1857)

मोक्सन, थोमस वी० 'इंडियन फाइनेंस' (मैनचेस्टर, 1881)

मोलसवर्थ, सी० एल० 'ब्रिटिश जगरनोट : फ्री एंड फेयर ट्रेड' (1884)

रश्टन, जे० 'इंडियन एक्सचेंज हाउ अफेक्टेड बाइ होम चार्जेज, विद टेबिल्स आफ इंडियन इम्पोर्ट्स एंड एक्सपोर्ट्स, फ्राम 1837 टु 1887' (कलकत्ता, 1888)

राय, मोहिनी मोहन 'टैक्सेशन इन इंडिया' (कलकत्ता, 1889)

लेविन, मालकम 'दि गवर्नमेंट आफ दि ईस्ट इंडिया कंपनी एंड ट्रुस मोनोपलीज, और दि यंग इंडिया पार्टी एंड फ्री ट्रेड ?' (लंदन, 1857)।

लैंग, सेमुअल 'फाइनेंशियल स्टेटमेंट' (कलकत्ता, 1861)

वाइली, एम० 'इंडिया ऐज ए फील्ड फार कामर्स एंड मिशन' (लंदन, 1867)।

विंगेट, जार्ज 'ए फ्यू वर्ड्स आन अवर फाइनेंशियल रिलेशंस विद इंडिया' (लंदन, 1859)

वैस्ट, एडवर्ड 'एमीग्रेशन टु ब्रिटिश इंडिया : प्रोफिटेबल इनवेस्टमैंट्स फार ज्वाइंट स्टाक कंपनीज एंड फार एमीग्रेंट्स हु पजेस कैपीटल : एम्प्लोयमेंट फार एंटरप्राइजिंग एंड इंटेलीजेंट मैन : एपिल सप्लाइज आफ रा काटन, सिल्क, सुगर, राइस, टुबैको, इंडिगो, एंड अदर ट्रापिकल प्राडक्शंस : इंक्रीज्ड डिमांड फार मैन्यूफैक्चर्ड गुड्स : सुपरसीडिंग आफ स्लेवरी : ओपनिंग्स फार मिशनरी एंड एजुकेशनल सोसाइटीज : एम्प्लायमेंट आफ ट्वेंटी मिलियंस आफ हिंदू लेबरर्स अपान वन हंड्रेड मिलियन एकर्स आफ फर्टाइल लैंड इन ब्रिटिश इंडिया, व्हिच इज नाउ वेस्ट एंड अनप्राडक्टिव' (लंदन, 1857)

हाउ, मेजर 'ए रिव्यू आफ दि टैरीटोरियल एंड मिसलेनियस रेवेन्यूज आफ ब्रिटिश इंडिया फार दि फोर इयर्स ऐंडिंग 1835-36, एंड आफ दि फोर इयर्स ऐंडिंग 1839-30, टु गैदर विद दि सिविल एंड मिलिटरी चार्जेज फार दि सेम पीरियड' (कलकत्ता, 1842)

हंटर, डब्ल्यू० डब्ल्यू० 'इंग्लैंड्स वर्क्स इन इंडिया' (लंदन, 1881)

हंटर, डब्ल्यू० डब्ल्यू० 'नोट्स आफ ए स्पीच आन सम आस्पैक्ट्स आफ इंडियन फाइनैंस' (लंदन, 1880)
" " " 'सम आस्पैक्ट्स आफ इंडियन फाइनैंस' (मैनचेस्टर, 1881)।
हिंडमैन, एच० एम० 'दि बैंकरप्सी आफ इंडिया : एन इक्वायरी इंटू दि एडमिनिस्ट्रेशन आफ इंडिया अडर दि क्राउन, इंक्लूडिंग ए चैप्टर आन दि सिल्वर क्वैश्चन' (लदन, 1886)
हैक्टर, जे० 'अडरलाइग प्रिंसिपिल्स आफ इंडियन फिस्कल एडमिनिस्ट्रेशन' (लंदन, 1880)
हैमिल्टन, लार्ड जार्ज 'स्पीच आन दि फाइनैंशियल स्टेटमेंट इन दि हाउस आफ कामंस' (लदन, 1876)

(च) प्रकाशित वृत्त, जीवनी, पत्र व्यवहार, भाषण

आरगाइल, ड्यूक आफ 'इंडिया अंडर डलहौजी एड कैनिंग' (लंदन, 1867)
ऐट्किसन, सी० यू० 'लार्ड लारेंस' (लंदन, 1905)
" " " 'लार्ड लारेंस एंड दि रिकंस्ट्रक्शन आफ इडिया अंडर दि क्राउन' (लंदन, 1903)।
कनिंघम, एच० एम० 'अर्ल कैनिंग' (लदन, 1903)
कैये, जे० डब्ल्यू० 'लाइव्ज आफ इडियन आफिसर्स', 3 जिल्दें (लंदन, 1875)।
कैंपबैल, जार्ज 'मेमाइर्स आफ माइ इडियन कैरियर, (सपादक) सर सी० ई० बर्नार्ड' (लदन, 1893)
टैंपिल, रिचार्ड 'मैन एड इवेंट्स आफ माइ टाइम इन इडिया' (लदन, 1882)।
" " 'लार्ड लारेंस' (लदन, 1890)
" " 'दि स्टोरी आफ माइ लाइफ' (लदन, 1866)
पाल, क्रिस्टो दास 'स्पीचेज एड मिनट्स' (कलकत्ता, 1882)
बाल्फर, बेटी 'लार्ड लिटस इडियन एडमिनिस्ट्रेशन 1876-80' (लंदन, 1899)
बीम्स जौन 'मेमाइर्स आफ द बंगाल सिविलियन' (लंदन, 1961)
बैरिंगटन एमिली आई० 'दि सर्वेंट आफ आल : पेजज फ्राम दि फेमिली, सोशल एंड पोलिटिकल लाइफ आफ माइ फादर जेम्स विल्सन : ट्वेंटी इयर्स आफ मिड विक्टोरियन लाइफ', 2 जिल्दें (लदन, 1927)
मार्टिन्यू, जान 'दि लाइफ एड कारेस्पाडेंस आफ सर बार्टल फ्रेर', 2 जिल्दें (लंदन, 1895)
मिल, जान स्टुअर्ट 'दि लैटर्स आफ जान स्टुअर्ट मिल', सपादक एच० एम० आर० इलियट, 2 जिल्दें (लदन, 1910)
मेयो, अर्ल आफ 'स्पीचेज इन इग्लैंड एंड इंडिया (कलकत्ता, 1873)
मैक्लैगन, माइकल क्लीमेंसी कैनिंग (लंदन, 1963)

मैलट, बर्नार्ड — 'थोमस जार्ज, अर्ल आफ नोर्थबुक, ए मेमोइर' (लंदन, 1908)
रिपन, मार्क्विस आफ — 'स्पीचेज', दो जिल्दें (कलकत्ता, 1883)
रोंग, जी० एम० — 'दि अर्ल आफ एलगिन' (लंदन, 1905)
लारेंस, जी० — 'रेमिनिसेंसेज आफ फार्टी थ्री इयर्स इन इंडिया' (लंदन, 1875)
वाचा, डी० ई० — 'प्रेमचद रायचंद . हिज अर्ली लाइफ एंड कैरियर' (बंबई, 1913)
वेस्ट, अल्जर्नन — 'सर चार्ल्स वुड्स एडमिनिस्ट्रेशन आफ इंडियन अफेयर्स 1859-66' (लंदन, 1867)
स्क्राइन, एफ० एच० — 'एन' इंडियन जर्नलिस्ट : बीइंग दि लाइफ लैटर्स एंड कारेस्पांडेंस आफ डाक्टर शंभू सी० मुकर्जी, लेट एडीटर आफ रईस एंड रैयत' (कलकत्ता, 1895)
स्मिथ, आर० बी० — 'लाइफ आफ लार्ड लारेंस', 2 जिल्दें (लंदन, 1883)
हंटर, डब्ल्यू० डब्ल्यू० — 'दि अर्ल आफ मेयो' (लंदन, 1892)
" " — 'ए लाइफ आफ दि अर्ल आफ मेयो, दि फोर्थ वायसराय आफ इंडिया', 2 जिल्दें (लंदन, 1875)

(छ) समकालीन पत्र पत्रिकाएं

(i) समाचारपत्र (नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता)

- 'बंगाल हरकारु' (कलकत्ता)
- 'दि इंग्लिशमैन' (कलकत्ता)
- 'दि फ्रेंड आव इंडिया' (सीरामपुर)
- 'दि हिंदू पेट्रिअट' (कलकत्ता)
- 'दि इंडियन डेली न्यूज' (कलकत्ता)
- 'दि मद्रास एक्जामिनर' (मद्रास)
- 'दि पायनियर' (इलाहाबाद)
- 'दि टाइम्स आफ इंडिया' (बंबई)

(ii) हिंदुस्तानी प्रेस के विषय में रिपोर्ट्स (राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली)

बंगाल, बंबई तथा मद्रास प्रेसीडेंसियों में प्रकाशित होने वाले हिंदुस्तानी समाचार पत्रों के विषय में रिपोर्ट और पंजाब, पश्चिमोत्तर प्रांत, अवध तथा मध्य प्रांत में प्रकाशित होने वाले देशी भाषाओं के समाचारपत्रों से उद्धरण भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार में उपलब्ध है। ये सरकारी नौकरी में हिंदुस्तानी समाचारपत्रों के शासकीय अनुवादकों एवं परीक्षकों की साप्ताहिक (अथवा पाक्षिक) रिपोर्टें होती थी। इन रिपोर्टों में देशी भाषाओं के समाचारपत्रों में प्रकाशित सामग्री के अंग्रेजी अनुवाद जो प्राय. संक्षिप्त अंग्रेजी रूपांतर होते थे, रहते थे। इन रिपोर्टों की थोड़ी सी प्रतियां छापी जाती थी और गृह विभाग में 'गोपनीय' कागजात के रूप में रखी जाती थी। ये रिपोर्टें बहुत उपयोगी

है क्योंकि पुराने देशी भाषाओं के समाचारपत्रों की मूल फाइलों का मिलना अब असंभव है। इन रिपोर्टों का उल्लेख करते समय आर० एन० पी० (हिंदुस्तानी प्रेस के विषय में रिपोर्ट) तथा एस० वी० एन० (देशी भाषाओं के समाचारपत्रों से उद्धरण) संकेताक्षरों का प्रयोग किया गया है। देशी भाषाओं के समाचारपत्रों (बंगला, तमिल, मराठी, उर्दू इत्यादि) के नाम व तारीख तथा रिपोर्ट जिसमें अनूदित उद्धरण उपलब्ध है, दोनों दिए है। उदाहरणार्थ, 'सोमप्रकाश', 24 फरवरी 1868, आर० एन० पी० (बंगाल) 1868, पृष्ठ 89

(iii) 'प्रकीर्ण पत्रिकाएं'

'अनुअल रजिस्टर'

'दि इकानामिस्ट' (लंदन)

'बंगाल चैंबर आफ कामर्स', समिति की अर्द्ध वार्षिक रिपोर्ट

'बंबई चैंबर आफ कामर्स', रिपोर्ट

'कलकत्ता रिव्यू', (कलकत्ता, 1844)

'कलकत्ता ट्रेड्स एसोसिएशन', समिति की रिपोर्ट, (1862)

जर्नल आफ दि ईस्ट इंडिया एसोसिएशन', (लंदन), 1867

'दि इंडियन इकानामिस्ट' (बंबई) 1869-75

'कराची चैंबर आफ कामर्स', रिपोर्ट

'लैंड होल्डर्स एंड कमर्शियल एसोसिएशन', समिति की रिपोर्ट, 1863

(2) अनुपूरक कृतियां

आर्नोल्ड, डब्ल्यू० डी० 'शार्ट एसेज आन सोशल एंड इंडियन सब्जेक्ट्स' (कलकत्ता, 1869)

एटकिंसन, एफ० जे० 'ए स्टैटिस्टीकल रिव्यू आफ दि इनकम एंड वैल्थ आफ ब्रिटिश इंडिया, जर्नल आफ दि रायल स्टैटिस्टीकल सोसायटी', 1902, LXV, पृष्ठ 209

एल्सटैटर, कार्ल 'दि इंडियन सिल्वर करेंसी, ए हिस्टोरीकल एंड इकानामिक स्टडी', (शिकागो विश्वविद्यालय 1895), अनुवादक : जे० एल० लाफलिन

एंस्टे, वेरा 'दि इकानामिक डेवलपमेंट आफ इंडिया' (लंदन, तृतीय संस्करण, 1936)

कालिंस, डब्ल्यू० एन० 'ए विक्टोरियन फ्री ट्रेड लाबी', 'इकानामिक हिस्ट्री रिव्यू,' द्वितीय सीरीज, जिल्द XIII, पृष्ठ 90-113

काले, वी० जी० 'डान आफ मोडर्न फाइनेंस इंडिया' (पूना, 1929)

केंज, जान मेनार्ड 'इंडियन करेंसी एंड फाइनेंस' (लंदन, 1911)

केये, जे० डब्ल्यू० 'दि एडमिनिस्ट्रेशन आफ दि ईस्ट इंडिया कंपनी', (लंदन, 1853)

कैंपबैल, जी०	'मोडर्न इंडिया : ए स्कैच आफ दि सिस्टम आफ सिविल गवर्नमेंट', (लंदन, 1852)
कैर्नक्रास, ए० क०	'होम एंड फारेन इंवेस्टमेंट, 1870-1913' (कैंब्रिज, 1953)
कोनल, ए० के०	'डिस्कटेंट एंड डेंजर इन इंडिया' (लंदन, 1880)
कोयाजी, जहांगीर	'इंडियन करेंसी सिस्टम', 1835-1926 (मद्रास, 1930)
—	'इंडियन फिस्कल प्राब्लम' (पटना, 1924)
काटन, आर्थर	आन दि प्रपोज्ड एडीशनल एक्पेंडीचर आफ 100 मिलियंस आन रेलवेज' 'जर्नल आफ दि ईस्ट इंडिया एसोसिएशन', जिल्द 4, 1870, पृष्ठ 1-6।
क्लिंग, ब्लेयर डब्ल्यू०	'दि ब्ल्यू म्यूटिनी : दि इंडिगो डिस्टर्बेंसेज इन बंगाल' (फिलाडेल्फिया, 1966)
गाडगिल, डी० आर०	'इंडस्ट्रियल एवोल्यूशन इन इंडिया' (ओ० यू० पी०, 1940)
गांगुली, बी० एन०	'दादाभाई नौरोजी एंड दि ड्रेन थिअरी बंबई, 1965, 1965
गोपाल, एस०	'ब्रिटिश पालिसी इन इंडिया 1858-1905' (कैंब्रिज, 1965)
गोपालकृष्णन, पी० के०	'डेवलपमेंट आफ इकानामिक आइडियाज' 1880-1914 (दिल्ली, 1954)
ग्रिफिथ्स, पर्सीवल	'दि ब्रिटिश इम्पैक्ट आन इंडिया' (लंदन, 1952)
घोष, गिरीशचंद्र	'सिलेक्शन फ्राम दि राइटिंग्ज आफ गिरीशचंद्र घोष, दि फाउंडर एंड एडीटर आफ दि 'हिंदू पेट्रिअट' एंड दि 'बंगाली'। संपादक एम० घोष (कलकत्ता, 1912)
चेजनी, जार्ज	'इंडियन पालिटी : ए व्यू आफ दि सिस्टम आफ एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया' (लंदन, 1868)
जैंकस, एल० एच०	'माइग्रेशन आफ ब्रिटिश कैपीटल, टु 1875' (न्यूयार्क, 1927, लंदन 1938)
टेंपिल, रिचर्ड	'इंडिया इन 1880' (लंदन, 1880)
ट्रेवीलियन, सी० ई०	'डिसेंट्रलाइजेशन', 'जर्नल आफ दि ईस्ट इंडिया एसोसिएशन', जिल्द V, खंड 2, 1871, संख्या जी० 2, पृष्ठ 108-27।
" "	'आन दि फाइनेंसज आफ इंडिया' 'जर्नल आफ दि ईस्ट इंडिया एसोसिएशन', जिल्द IV, संख्या 82, 1870, पृष्ठ 290-323।
ट्रोटर, एल० जे०	'हिस्ट्री आफ इंडिया अंडर क्वीन विक्टोरिया, 1836-1880' (लंदन, 1886)
डिग्बी, विलियम	'प्रास्परस ब्रिटिश इंडिया : ए रिवेलेशन फ्राम आफीशियल रेकार्ड्स' (लंदन, 1901)
डे, एच० एल०	'पालिसी आफ प्रोटेक्शन इन इंडिया : ए रिट्रास्पैक्ट' (पूना, 1950)

डे, एन० एन० 'लैंड रेवेन्यू पालिसी ब्रिटिश पैरामाउंट एंड इंडियन रियासतें' (बंबई, 1963)

थावराज, एम० के० 'पब्लिक इंवेस्टमेंट इन इंडिया 1898-1914' 'इंडियन इका-नामिक रिव्यू,' जिल्द II, 1955, पृष्ठ 37-52।

थामस, पी० जे० 'दि ग्रोथ आफ फेडरल फाइनेंस इन इंडिया : बीइंग ए सर्वे आफ इंडियाज पब्लिक फाइनेंसेज फ्राम 1833 टु 1939' (ओ० यू० पी० 1939)।

दत्त, रमेश सी० 'इकानामिक हिस्ट्री आफ इंडिया इन दि विक्टोरियन एज' (लंदन, 1903)

दास, एम० एन० 'स्टडीज इन दि इकानामिक एंड सोशल डेवलपमेंट आफ माडर्न इंडिया,' 1848-56' (कलकत्ता, 1959

धर्मपाल 'एडमिनिस्ट्रेशन आफ सर जान स्ट्रेची' (शिमला, 1952)

नायडिस, मार्क 'जान स्ट्रेची एंड इनकम टैक्स', 'बंगाल पास्ट एंड प्रेजेंट', जुलाई-दिसंबर, 1900

नियोगी, जे० पी० 'एवोल्यूशन आफ इंडियन इनकम टैक्स' (लंदन, 1929)

नौरोजी, दादाभाई 'पावर्टी एंड अन-ब्रिटिश रूल इन इंडिया' (लंदन 1901)

पटेल सुरेन्द्र जे० 'लौंग टर्म चेंजेज इन आउटपुट एंड इनकम इन इंडिया 1896-1960' 'दि इंडियन इकानामिक जर्नल', जनवरी, 1958, जिल्द 5, संख्या 3, पृष्ठ 233-46

पेअर्स, आर० 'इकानामिक फैक्टर्स इन दि हिस्ट्री आफ दि ब्रिटिश एंपायर', 'इकानामिक हिस्ट्री रिव्यू', जिल्द VII, मई, 1937, पृष्ठ 119-44

पेश, जार्ज 'ग्रेट ब्रिटेन कैपीटल इंवेस्टमेंट इन इंडीविजुअल कालोनीज एंड फोरन कंट्रीज' 'जर्नल आफ दि रायल स्टैटिस्टीकल सोसाइटी', LXXIV (1910-11)पृष्ठ 186

प्रिचार्ड, आई० टी० 'दि एडमिनिस्ट्रेशन आफ इंडिया फ्राम 1859 टु 1868', 2 जिल्दें, (लंदन, 1869)

फिलिप्स, सी० एच० 'और अन्यत्र' (संपादक) 'दि एवोल्यूशन आफ इंडिया एंड पाकिस्तान 1858-1947, सिलेक्ट डाक्युमेन्ट्स, (लंदन, 1962)

फे, सी० आर० 'ग्रेट ब्रिटेन फ्राम एडम स्मिथ टु दि प्रेजेंट डे : एन इकानामिक एंड सोशल सर्वे' (लंदन, 1932)

" " 'इंपीरियल इकानामी एंड इट्स प्लेस इन दि फार्मेशन आफ इकानामिक डाक्ट्रीन 1600-1932' (आक्सफोर्ड, 1934)

फ्रेर, एच बार्टल 'दि मीस आफ असर्टेनिंग पब्लिक ओपीनियन इन इंडिया' 'जर्नल आफ ईस्ट इंडिया एसोसिएशन', जिल्द 5, खंड IV,

1871, पृष्ठ 102-72

बगल, जे० सी	'हिस्ट्री आफ दि इंडियन एसोसिएशन' (कलकत्ता, 1953)
बनर्जी, प्रमथनाथ	'फिस्कल पालिसी इन इंडिया' (कलकत्ता (1922)
,, ,,	'ए हिस्ट्री आफ इंडियन टैक्सेशन' 1930)
,, ,,	'प्राविंशियल फाइनैंस इन इंडिया' (कलकत्ता, 1929)
बुकानन, डी० एच०	'डेवलपमेंट आफ कैपीटलिस्ट एंटरप्राइज इन इंडिया' (न्यूयार्क, 1934)
विपिन चंद्र	'दि राइज एंड ग्रोथ आफ इकानामिक नेशनलिज्म इन इंडिया 1880-1905, (नई दिल्ली, 1966)
बैल, ई०	'ट्रस्ट एज दि बेसिस आफ इंपीरियल पालिसी' 'जर्नल आफ ईस्ट इंडिया एसोसिएशन', जिल्द 6, 1872, पृष्ठ 145
बोडलसन, सी० ए० जी०	'स्टडीज इन मिड विक्टोरियन इंपीरियलिज्म' (1924)
डी० सी० बौल्जर,	'इंडिया इन दि नाइंटीथ सेंचुरी' (लंदन, 1901)
भार्गव, आर० एन०	'पब्लिक फाइनैंस-इट्स थिअरी एंड वर्किंग इन इंडिया' (इलाहाबाद, 1954)
मजूमदार, बिमनबिहारी	'हिस्ट्री आफ पोलिटिकल थाट : फ्रोम राममोहन टु दयानंद 1821-84' (कलकत्ता 1934)
मार्टिन, आर० एम०	'दि पोलिटिकल, कमर्शियल एंड फाइनैंसियल कंडीशन आफ दि ऐंग्लोईस्टर्न एपायर इन 1832' (लंदन, 1832)
,, ,,	दि इंडियन एपायर, इट्स हिस्ट्री, टोपोग्राफी, गवर्नमेंट, फाइनैंस, कामर्स एंड स्टेपिल प्राडक्ट्स' (लंदन, 1858-61)
माल्कम, जे०	'दि गवर्नमेंट आफ इंडिया' (लंदन, 1833)
मिश्र, बी० बी०	'दि सेंट्रल एडमिनिस्ट्रेशन आफ दि ईस्ट इंडिया कंपनी' (मैनचेस्टर, 1959)
,, ,,	'दि इंडियन मिडिल क्लासेज : देअर ग्रोथ इन मोडर्न टाइम्स' (लंदन, 1961)
मुकर्जी, हरीश सी०	'सिलैक्शन फ्राम दि राइटिंग्ज आफ हरीश चंदर मुकर्जी कंपाइल्ड फ्राम दि 'हिंदू पेट्रिअट', संपादक नरेश सी० सेनगुप्ता (कलकत्ता, 1910)
मूर०, आर० जे	'सर चार्ल्स वुड्स इंडियन पालिसी 1853-66' (मैनचेस्टर, 1966)
मेहता, एस० डी०	'दि काटन मिल्स आफ इंडिया 1854-1954' (बंबई, 1954)
मेटकाफ, थोमस आर०	'दि आफ्टरमैथ आफ रिवोल्ट्स, इंडिया 1857-1870', (प्रिंसटन, 1964)
मैकलैगन, माइकल	'क्लीमैंसी कैनिंग' (न्यूयार्क, 1962)

मैकफर्सन, डब्ल्यू० जे० 'इंवैस्टमेंट इन इंडियन रेलवेज' 1845-75' 'इकानामिक हिस्ट्री रिव्यू', जिल्द VII, द्वितीय सीरीज (1955)
मोरिसन, जे० एल० 'एमीग्रेशन एंड लैंड पालिसी 1815-1873' 'कैंब्रिज हिस्ट्री आफ दि ब्रिटिश एंपायर,' जिल्द II (1946)
रटलेज, जे० 'इंग्लिश रूल एंड नेटिव ओपीनियन इन इंडिया, फ्राम नोट्स टेकेन 1870-74' (लंदन, 1878)
राव, वी० के० आर० वी० 'एन एसे आन इंडियाज नेशनल इनकम 1925-29' (लंदन, 1939)
रुद्र, ए० बी० दि वायसराय एंड गवर्नर जनरल आफ इंडिया' (ओ० यू० पी०, 1940)
रे, परिमल 'इंडियाज फारेन ट्रेड, सिंस 1870' (लंदन, 1934)
रैडफोर्ड, ए० 'मैनचेस्टर मर्चेट्स एंड फारेन ट्रेड,' 2 जिल्दें (मैनचेस्टर, 1956)
लैम, हैलन बी० 'दि स्टेट एंड इकानामिक डेवलपमेंट इन इंडिया', इकानामिक ग्रोथ : ब्राजील, इंडिया, जापान, संपादक एस० कुजनेत्स आदि (डरहम, 1955)
वकील, सी० एन० 'फाइनैंशियल डेवलपमेंट इन माडर्न इंडिया' (बंबई, 1924)।
मुराजन, एव एस० के० 'करेंसी एंड प्राइसेस इन इंडिया' (बंबई, 1927)
वडेंबर्ग, एन० पी० 'दि मनी मार्केट एंड पेपर करेंसी आफ ब्रिटिश इंडिया' (बटाविया, 1884)
वाचा, डीनशा ई० 'ए फाइनैंशियल चैप्टर इन दि हिस्ट्री आफ दि बंबई सिटी' (बंबई, 1909)
वेंकटरंगैया, एम० 'बिगनिंग आफ लोकल टैक्सेशन इन मद्रास' (मद्रास, 1928)।
शिरास, जी० फिंडले 'इंडिया फाइनैंस एंड बैंकिंग' (लंदन, 1920)
शुम्पीटर, जोसफ ए० 'हिस्ट्री आफ इकानामिक एनालिसिस' (न्यूयार्क, 1954)
शेहाब, एफ० 'प्रोग्रेसिव टैक्सेशन : ए स्टडी इन दि डेवलपमेंट आफ दि प्रोग्रेसिव प्रिंसिपिल इन दि ब्रिटिश इनकम टैक्स' (आक्सफोर्ड, 1963)
श्लोट, डब्ल्यू० 'ब्रिटिश ओवरसीज ट्रेड फ्राम 1700 टु दि 1930' (आक्सफोर्ड, 1952)
सलीवान, एफ० जे० आर० 'वन हंड्रेड इयर्स आफ बंबई, हिस्ट्री आफ दि बंबई चेंबर आफ कामर्स 1836-1936' (1937)
साउल, एस० बी० 'स्टडीज इन ब्रिटिश ओवरसीज ट्रेड' (लिवरपूल, 1960)
सिंह, हीरालाल 'इंडियन करेंसी प्राब्लम 1885-1900', बंगाल पास्ट एंड प्रेजेंट, जनवरी-जून, 1961

सिंह, एस० एन० — 'दि सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इंडिया एंड हिज काउंसिल' (दिल्ली, 1962)

सिल्वर, ए० — 'मैनचेस्टर मैन एंड इंडियन काटन' (मैनचेस्टर, 1966)

सील, अनिल, — 'दि इमर्जेंस आफ इंडियन नेशनलिज्म : कांपीटीशन एंड को-आपरेशन इन दि लेटर नाइंटीन्थ सेंचुरी' (कैंब्रिज, 1968)

सुब्रह्मण्यम अय्यर, जी० — 'सम इकनामिक आस्पेक्ट्स आफ ब्रिटिश रूल इन इंडिया' (मद्रास, 1903)

सेटन, मालकम सी० सी० — 'दि इंडिया आफिस' (लंदन, 1926)

सेन, सुनील के० — 'स्टडीज इन इंडस्ट्रियल पालिसी एंड डेवलपमेंट इन इंडिया' (कलकत्ता, 1964)

स्पेंगलर, जे० जे० — आदि (संपादक) 'इकनामिक ग्रोथ' (डरहम, 1955)

स्टोक्स, एरिक — 'इंग्लिश यूटीलिटेरियन्स एंड इंडिया' (आक्सफोर्ड, 1959)

स्ट्रेची, जान — 'इंडिया : इट्स एडमिनिस्ट्रेशन एंड प्रोग्रेस' (लंदन, 1911)

स्ट्रेची, जान — 'इंडिया' (लंदन, 1888)

स्ट्रेची, जान व आर० स्ट्रेची — 'दि फाइनेंसेज एंड पब्लिक वर्क्स आफ इंडिया 1869-81' (लंदन, 1882)

हबाकुक, एच० जे० — 'फ्री ट्रेड एंड कमर्शियल एक्सपैंशन 1853-70' कैंब्रिज हिस्ट्री आफ दि ब्रिटिश एंपायर जिल्द II, (1940), पृष्ठ 753-805

हार्टेंज, रोनाल्ड थामस — 'दि मैनचेस्टर पालिटीशियन्स' 1750-1912 (लंदन, 1912)

ह्यूजेस, जे० आर० टी० — 'फ्लक्चुएशंस इन ट्रेड, इंडस्ट्री एंड फाइनेंस 1850-60' (आक्सफोर्ड, 1960)

ह्यूजेस, एडवर्ड — 'सर चार्ल्स ट्रेवेलियन एंड सिविल सर्विस रीफार्म 1855-55' 'दि इंगलिश हिस्टारिकल रिव्यू', जिल्द XVIV, 1949, खंड 1 व 2, पृष्ठ 53 व 206

त्रिपाठी, ए० — 'ट्रेड एंड फाइनेंस इन बंगाल प्रेसीडेंसी 1793-1833' (कलकत्ता, 1956)

ज्ञानचंद — 'दी फाइनेंशियल सिस्टम आफ इंडिया' (लंदन, 1926)

अनुक्रमणिका